॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला
२८६

अट्ठकथाचरियबुद्धघोसविरचिता

निदानकथा

(जातकट्ठकथायमागता)

सम्पादक तथा अनुवादक
डॉ० महेश तिवारी
एम० ए० (पालि, संस्कृत), पी-एच० डी०,
प्राध्यापक—पालि
नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा, पटना

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१
१९७०

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०२६
मूल्य :

गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० ८, वाराणसी-१ (भारतवर्ष)
फोन : ६३१४५

प्रधान शाखा
चौखम्बा विद्याभवन
चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१
फोन : ६३०७६

THE
HARIDAS SANSKRIT SERIES
286
*****

NIDĀNAKATHĀ

(From the Jātakaṭṭhakathā)

OF

ĀCARIYA BUDDHAGHOSA

Critically edited with Hindi Translation, Introduction, etc.

By

DR. MAHESH TIWARY,
M. A. (Pali, Sanskrit), Ph. D.,
Lecturer in Pali, Nava Nalanda Mahavihar,
Nalanda, Patna.

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1
1970

Gopal Mandir Lane
P. O. Chowkhamba, Post Box 8
Varanasi-1 (India)
1970
Phone : 63145

First Edition
1970
Price Rs. 10.00

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Publishers and Oriental Book-Sellers
Chowk, Post Box 69, Varanasi-1 (India)
Phone : 63076

परिनायकविकलजच्चन्धमिव संसयअटविविभन्तं मं

येन सम्मामग्गो अक्खातो

तस्स परमकारुणिकस्स विविधविज्जोदधिअवगाहमानस्स

आचरियपवरस्स परमसद्धेय्य-सिरि-

जगदीसकस्सप-महाथेरस्स

करकमलेसु

इदं नवमुकुलितं पुप्फं सादरं सभत्तिकं

समप्पितं

अभिगण्हन्तु मे भन्ते, नवमुकुलितं सुभं।
पुप्फं भत्तिसमुपेतं, आदरेन समप्पितं ॥

प्राक्कथन

गत कई वर्षों से स्थविरवादी बौद्ध परम्परा के मूल्यांकन के प्रसंग में निदानकथा के अवलोकन के कई अवसर प्राप्त हुए। इसके विषयवस्तु, शब्द-योजना, शैली आदि ने मुझे अत्यधिक आकृष्ट किये। ऐसी इच्छा जगी कि इस प्रकार की उपयोगी पुस्तक का प्रकाशन हो। मेरी यह इच्छा न मालूम कैसे चौखम्बा संस्कृत सिरीज के उदीयमान संचालक बन्धुद्वय—श्री मोहनदास गुप्त जी तथा विट्ठलदास गुप्त जी के माध्यम से मूर्त्तरूप ले, इसके प्रकाशन के प्रस्ताव के रूप में पुनः मेरे पास आ पहुँची। फलस्वरूप इसका सम्पादन-अनुवाद आदि प्रारम्भ हुआ।

सम्पादनकार्य में मूल प्रश्न शुद्ध पाठ-विषयक होता है। इस उद्देश्य से जातकट्ठकथा की देशी-विदेशी लिपियों में उपलब्ध आठ प्रतियां मंगायी गईं। उन सभी संस्करणों के अवलोकन के उपरान्त परिशुद्ध पाठ के लिये केवल दो विदेशी तथा दो देशी संस्करण ही उपयुक्त समझे गये। वे हैं—

१. जातकट्ठकथा—(बर्मी), छट्ठ संगायन संस्करण, रंगून, बर्मा।

२. जातकत्थवण्णना (रोमन) श्री फुसबल संस्करण, लन्दन।

३. जातकत्थवण्णना (नागरी), भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण, काशी।

४. निदानकथा (नागरी), पूना संस्करण, पूना।

पाठभेद के स्थलों में जिन शब्दों से अर्थावबोध में सुगमता देखी गई, उन्हें मूल रूप में रखा गया। पुस्तक को पाठभेदों के बोझ से बोझिल न कर, केवल आवश्यक पाठभेद ही पुस्तक-पाद में दे दिये गये। इस क्रम में चौखम्बा संस्कृत सिरीज के विद्वान् सम्पादक के सुझाव भी कभी-कभी बड़े उपयोगी सिद्ध हुए। शीर्षक, उपशीर्षक, विराम, अर्द्धविराम आदि के लिए नवनालन्दा महाविहार की देवनागरी-पालि-प्रकाशन-परम्परा को ही अपनाया गया। विषय को सुबोध बनाने तथा प्रसंग का पूर्वापर सम्बन्ध दर्शाने के लिये अनुच्छेदों की व्यवस्था यथास्थान नये ढंग से की गई है। मूल पाठ का हिन्दी रूप देते हुए यथासंभव पाठ के निकट ही रहने की चेष्टा रही है। जहां अनुवादमात्र से अर्थ का स्पष्टीकरण नहीं हो पाया है, वहां कुछ वाक्यांश जोड़ कर उसे विशद बनाया गया है। विषयवस्तु एवं पारिभाषिक शब्दों को बोधगम्य बनाने के लिये प्रारम्भ में सरल भूमिका तथा अन्त में पारिभाषिक शब्द-विवरण दे दिया गया है।

ऐसे अवसर पर अपने गुरुजनों, मित्रों एवं स्नेही जनों के प्रति आभार के शब्द बरबस निःसृत हो उठते हैं। इस दिशा में मैं सर्वप्रथम अपने पूज्य गुरुदेव भिक्षु जगदीश काश्यप, निदेशक, नवनालन्दा महाविहार, नालन्दा, के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनकी अहैतुकी कृपा के फलस्वरूप ही मैं पालि साहित्य एवं बौद्धदर्शन के क्षेत्र में प्रवेश पा सका हूँ। मेरे सहयोगी एवं मित्र सर्वश्री डॉ० उ० धर्मरत्न, डा० जी० सी० चौधरी, डा० सी० एस० उपासक, प्रो० उ० जागराभिवंश, प्रो० बीरबल शर्मा, पी० एल० लिखितानन्द, महावीर शर्मा आदि ने आवश्यक सुझावों से मुझे उपकृत किया है। प्रो० ब्रह्मानन्द, प्रो० अंगराज चौधरी, प्रो० दिलीपकुमार बनर्जी तथा डॉ० एन० एच० साम्ताणि (वाराणसी) के आलोचनात्मक एवं संतुलित परामर्श मेरे विचार एवं अभिव्यक्ति को संयमित बनाने में सहायक रहे हैं। इसके लिये मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। नवनालन्दा महाविहार के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री मिथिलेश्वर प्रसाद ने सर्वदा आवश्यक पुस्तकें प्रदान कर बहुत लाभ पहुँचाया है। उन्हें योग्य छात्र के रूप में देख, मंगल-कामना व्यक्त करता हूँ। श्री हरिनारायण प्रसाद, रजिस्ट्रार, को मेरा हार्दिक धन्यवाद है, जिनके शुभागमन से महाविहार में आधिविद्य परिवेश स्वतः प्रस्फुटित हो गया है। मैं महाविहार के उन समस्त प्राणियों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने जिस किसी प्रकार भी मुझे उपकृत किया है। चौखम्बा संस्कृत सिरीज के उदीयमान संचालक बन्धुद्वय–श्री मोहनदास गुप्त एवं विट्ठलदास गुप्त, मेरे साधुवाद के पात्र हैं, जिनके उदार सहयोग से यह पुस्तक सुधीजनों के करकमलों का स्पर्श पा रही है।

अन्त में एक क्षमा-याचना है। मनुष्य स्वभावतः स्खलनधर्मा है, जिसका अपवाद मैं कैसे हो सकता हूँ? इस ग्रन्थ में शुद्ध पाठ देने के लिये सर्वदा जागरूक रहने पर भी कुछ अशुद्धियां रह गई हैं। इनके निवारणार्थ पुस्तक के अन्त में एक शुद्धिपत्र दे दिया गया है। सुधीजनों से अनुरोध है कि उसके सहारे पाठों को सुधार कर पुस्तक को पढ़ें तथा इसकी अन्यान्य त्रुटियों से मुझे अवगत कराने की कृपा करें, ताकि इसका अगला रूप विशेष परिशुद्ध हो सके।

गणतन्त्र दिवस
२६ जनवरी १९७०

विनीत—
महेश तिवारी

भूमिका

आदिकथा

१. बुद्धवचन

असंख्य जन्मों से बुद्धत्व की गवेषणा में लीन बोधिसत्त्व को जिस भूभाग में सम्यक् सम्बोधि की उद्भावना हुई, वह है उरुवेला की निरञ्जना नदी का पावन तट एवं उसके प्रांगण में विलसित बोधिवृक्ष-मूल। इस अलौकिक ज्ञान के समुद्भास के अनन्तर तथागत की करुणा सुधा-जल बन पैंतालीस वर्षों तक धर्मवृष्टि करती रही। प्राणिमात्र के कल्याण के लिए अभिनिष्क्रमित तथागत के चरण कुछ क्षणों के लिए भी रुक न सके, वरन् वे अव्यवच्छिन्न गति से जम्बूद्वीप के ग्राम निगम जनपदों में चलते रहे—चारिका के क्रम से—'बहुजनहिताय बहुजन-सुखाय' के पावन उद्घोष के साथ। इस अवधि में जहाँ-जहाँ जिन-जिन जीवन-धन्य पुरुषों को लक्ष्य कर तथागत की वाणी निःसृत हुई, वह ही आज हमें प्राप्त है—बुद्धवचन के रूप में।[1]

२. त्रिपिटक का अवतरण

भगवान् बुद्ध के समस्त उपदेश मौखिक थे। वे ब्रह्मस्वर श्रवणपथ से आ श्रद्धाबहुल प्राणियों के मानसगृह में प्रविष्ट हो गोप्य निधि बन जाते थे। पर वे जन-जन व्याप्त होकर भी सर्वांग अनुभूति में सबके लिए अगम्य प्रतीत होते थे। चारिकाक्रम में न तो किसी ऐसे स्थान का सन्निवेश है, जहाँ तथागत के समस्त उपदेश निःसृत हुए हों, न किसी ऐसे पुण्यधर्मा पुरुष की ही चर्चा उपलब्ध है, जिनके श्रवणपथ ने उन समस्त वाणियों को समेट मानससागर को-अनवगाह्य कर दिया हो। वे वस्तुतः उपवन में यत्र तत्र प्रस्फुटित पुष्पचयन सदृश तद् तद् स्थानीय पुरुषनिष्ठ सा थे। इस क्रम में ऐसे पुरुष अनेक रहे होंगे, जिनका मानस-पटल उन उपदेशों से उल्लसित एवं प्रकाश-सम्पन्न अवश्य हुआ होगा, पर उन्हें अभिव्यक्ति की वाणी न रही होगी। साथ ही ऐसे श्रद्धालुओं की संख्या न्यून न रही होगी, जो अभिव्यक्ति-सम्पन्न होते हुए भी जनरव से सुदूर ध्यान रत होने के कारण सुगृहीत वचन को व्यक्त न कर सके होंगे। फलतः उस काल में भी यह मूक प्रश्न रह-रह कर चिन्तन प्रवाह में विच्छेद उत्पन्न करता होगा कि तथागत

१. पञ्चचत्तालीसवस्सानि पुप्फदामं गन्थेन्तेन विय, रतनावलिं आवुणन्तेन विय च कथितो अमतप्पकासनो सद्धम्मो···बुद्धवचनं नाम। अ० सा० १६.

के वचन वस्तुतः कितने हैं। जब तक तथागत जीवन-लीला-सम्पन्न थे, तब तक भिक्षु अपने साधना-विषयक प्रश्नों का समाधान उनसे कर लिया करते थे, पर तथागत के महापरिनिर्वाण के अनन्तर भिक्षुओं ने इस दिशा में एक सुविस्तृत रिक्तता का अनुभव किया। महापरिनिर्वाण मञ्च पर निपन्न तथागत ने उन्हें बल देते हुए कहा था कि "मेरे महापरिनिर्वाण के अनन्तर यह न समझना कि मेरे शास्ता नहीं हैं। मैंने जो धर्म एवं विनय का उपदेश किया है, वे (धर्म, विनय) ही मेरे बाद तुम्हारे शास्ता होंगे"[१]। उनके इस वचन से भिक्षुओं के लिए एक मात्र अवलम्ब बुद्ध-वचन ही था।

पर कौन बुद्धवचन ? प्रज्ञप्त धर्म तथा विनय का तो कोई सुव्यवस्थित रूप था नहीं। अतः ऐसी आवश्यकता सी प्रतीत होने लगी कि बुद्धवचनों का संग्रह हो। इसी मध्य बुद्ध के परिनिर्वाण पर व्यक्त वृद्ध प्रव्रजित सुभद्र के वचन कि "आयुष्मान्, आप लोग शोक न करें, रोदन न करें, हमलोग महाश्रमण से मुक्त हो गये, अब हम जो चाहेंगे, करेंगे; जो नहीं चाहेंगे, उसे न करेंगे"[२] आदि ने इस आवश्यकता को अधिक दृढ़ बना दिया। फलतः संघनायक स्थविर महाकाश्यप ने यह घोषणा की कि उक्त वर्ष पांच सौ अर्हत् भिक्षु राजगृह में वर्षावास करते हुए धर्म तथा विनय का संगायन करें—"धम्मं च विनयं च सङ्गायाम"।

(१) प्रथम सङ्गीति

स्थविर महाकाश्यप के उक्त निर्णय के अनुसार भिक्षुगण विभिन्न दिशाओं में चारिका करते हुए वर्षा के प्रारम्भ में राजगृह पहुँचे। स्थविर के निर्देशानुसार मगध सम्राट् अजातशत्रु ने वैभार पर्वत की सप्तपर्णीगुफा के द्वार पर एक सुरम्य मण्डप का निर्माण कराया। इसमें पाँच सौ भिक्षुओं के आसनादि की समुचित व्यवस्था थी। उचित समय पर भिक्षुगण अपने स्थान पर आ बैठे। उनकी संख्या चार सौ निनान्नबे थी। एक आसन आनन्द के लिए रिक्त था। आनन्द को भगवान का अधिक साहचर्य प्राप्त था, पर वे अर्हत् न हो पाये थे तथा अनर्हत् का वहाँ प्रवेश न था। भिक्षुओं ने आनन्द को अर्हत्वोपलब्धि के लिए प्रेरित किया। आनन्द ने तदनुसार सम्यक् अभ्यास द्वारा अर्हत्व की प्राप्ति कर अपने आसन को सुशोभित किया। इस प्रकार सभा पाँच सौ अर्हतों से सम्पन्न हो उठी।

---

१. यो वो आनन्द, मया धम्मो च विनयो च देसितो, पञ्ञत्तो, सो वो मम-च्चयेन सत्था। दी० नि० २.११८.

२. मा सोचित्थ, मा परिदेवित्थ, सुमुत्ता मयं तेन महासमणेन……।
चु० व० ४०६.

तदनन्तर महाकाश्यप ने स्थविर आसन पर बैठ सर्व प्रथम उपालि से विनय विषयक बातें पूछी। उपालि ने धर्मासन से उनके प्रश्नों का विसर्जन किया। पुनः उन्होंने आनन्द से धर्म विषयक प्रश्न पूछा तथा आनन्द ने उनका सविवरण विसर्जन किया। उक्त प्रश्न-विसर्जन के पश्चात् पांच सौ भिक्षुओं ने धर्म एवं विनय से आख्यात समस्त बुद्धवचन का संगायन[१] कर उसे विषय की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया, जो त्रिपिटक कहलाया। त्रिपिटक के अतिरिक्त बुद्धवचन का विभाजन रस, धर्म-विनय, प्रथम-मध्यम-पश्चिम वचन, निकाय, अङ्ग तथा धर्मस्कन्धों की दृष्टियों से भी किया गया।[२] यह सभा भगवान बुद्ध के निर्वाण के तीन मास बाद प्रारम्भ हुई तथा सात महीनों में समाप्त हुई। स्थविर महाकाश्यप की अध्यक्षता में पांच सौ भिक्षुओं द्वारा सम्पन्न होने के कारण इसे पंचसतिक-संगीति भी कहा जाता है।[३]

(२) द्वितीय सङ्गीति

राजगृह की प्रथम संगीति में भगवान बुद्ध के समस्त वचनों का सुव्यस्थित स्वरूप तीन पिटकों में किया गया। जनवर्ग तथा विशेषतः भिक्षुओं के समक्ष अब धर्म विनय का रूप मूर्त्त हो उठा तथा वह मुखपाठ द्वारा सौ वर्षों तक उसी विनिश्चित रूप में विद्यमान रहा। एक सौ वर्ष के पश्चात् वैशाली में इसकी कुछ विकृति देखी गयी। वहाँ के कुछ भिक्षुओं ने प्रमादवश अपनी दिनचर्या में ऐसे दस नियमों का समावेश किया, जो विनय विरुद्ध थे।[४]

---

१. पुच्छाविस्सज्जनपरियोसाने पञ्च अरहन्तसतानि गणसज्झायं अकंसु। स० सं० ६.

२. एवमेतं सब्बं पि बुद्धवचनं पंचसतिकसंगीतिकाले संगायन्तेन महाकस्सपमुखेन वसीगणेन इदं पठमं बुद्धवचनं, इदं मज्झिमं बुद्धवचनं, इदं पच्छिमं बुद्धवचनं, इदं विनयपिटकं, इदं सुत्तन्तपिटकं, इदं अभिधम्मपिटकं……इमं पभेदं ववत्थपेत्वा व संगीतं। अ० सा० २३.

३. सतेहि पञ्चहि कता, तेन पञ्च सता ति च।
थेरेहेव कतत्ता च, थेरिका ति पवुच्चति॥
एवं सत्तहि मासेहि, धम्मसंगीति निट्ठिता॥ स० सं० १०

४. तदा वेसालिया भिक्खू, अनेका वज्जिपुत्तका।
दस वत्थूनि दीपेंसु, कप्पन्ती ति अलज्जिनो॥

× × ×

तदा वेसालिया भिक्खू, अनेके वज्जिपुत्तका।
सिङ्गिलोणं द्वङ्गुलञ्च, तथा गामन्तरं पि च॥

इस प्रकार उत्पन्न विकृति को निर्मूल करने के उद्देश्य से यश नामक स्थविर ने एक द्वितीय सङ्गीति का आयोजन किया। यह सङ्गीति कालाशोक के राजत्व-काल में वैशाली के बालुकाराम नामक विहार में स्थविर रेवत की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुई। सर्व प्रथम वज्जिपुत्तक भिक्षुओं द्वारा आचरित दस विनयविरुद्ध नियमों का निराकरण किया गया। तदनन्तर सात सौ अर्हत भिक्षुओं ने आठ महीनों तक प्रथम संगीतिक्रम से समस्त बुद्धवचन का संगायन किया।[1] फलतः स्मृतिपथ में विद्यमान बुद्धवचन पुनः भिक्षुकण्ठ से मुखरित हो संशुद्ध सुवर्ण सा हो पूर्ववत् प्रकाशमान् हो उठा।

(३) तृतीय सङ्गीति

भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के दो सौ अट्ठाइस वर्ष बाद पुनः शासन में विकृति के तत्त्व देखे गये। उस समय सम्राट् अशोक का काल था। कहा जाता है कि भिक्षुओं के लाभ सत्कार से प्रलुब्ध अन्यतीर्थिक स्वयं मुण्डित केश हो काषाय वस्त्र धारण कर संघ में प्रविष्ट हो गये। वे अपने को सौगत शिष्य कहते हुए भी विभिन्न धर्मों का आचरण करते थे। फलतः छ वर्षों तक उपोसथकर्म न हो सका। अशोक ने आगत मल की विशुद्धि के लिए पाटलिपुत्र के अशोका-राम में स्थविर मौद्गलिपुत्र तिष्य की अध्यक्षता में एक तीसरी सभा का आयोजन किया।[1] स्थविर ने प्रश्न-विसर्जन-क्रम से अन्य तीर्थिकों को निष्कासित कर परिशुद्ध संघ के साथ उपोसथ किया। पुनः एक हजार त्रिपिटकपरियत्तिधर भिक्षुओं के सन्निपातपूर्वक नव महीनों में प्रथम एवं द्वितीय संगीति के क्रम से

आवासानुमताचिण्णं, अमथितं जलोगि च।
निसीदनं अदसकं, जातरूपादिकं इति ॥ महा० वं० पृ० १४–१५।

१. वेसालियं वालुकारामे सन्निसीदित्वा महाकस्सपत्थेरेन संगायितसदिसमेव सब्बं सासनं मलं धोवेत्वा पुन पिटकवसेन च निकायवसेन च अंगवसेन च धम्मक्खन्धवसेन च सब्बं धम्मविनयं संगायिसु।

× × × ×

अयं सङ्गीति अट्ठहि मासेहि निट्ठिता। स. सं. १२। इमाय खो पन विनय-संगीतिया सत्त भिक्खुसतानि अनूनानि अनधिकानि अहेंसु, तस्मायं विनयसंगीति सत्तसतिका ति वुच्चतीति। चु. व. ४३०.

२. सम्बुद्धपरिनिब्बाना, द्वे च वस्ससतानि च।
अट्ठवीसति वस्सानि, राजासोको महीपति ॥
× × ×, सकरामं मनोरमं।
कारेसि भिक्खुसंघस्स, सन्निपातं असेसतो ॥ स. सं० १२.

समस्त बुद्धवचन का संगायन किया गया।[1] फलतः बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तीन मास पश्चात् विनिश्चित बुद्धवचन उसी परिशुद्ध रूप में पुनः स्मृतिपथ से प्रवाह रत हो उठा। साथ ही अन्यतीर्थिकों के साथ हुए प्रश्न-विसर्जनों के संग्रह स्वरूप एक सहस्र सूत्रों से उपेत 'कथावत्थु' प्रकरण का प्रणयन हुआ।

(४) चतुर्थ सङ्गीति

बुद्धवचन का चतुर्थ संगायन महापरिनिर्वाण के दो सौ अड़तिस वर्ष पश्चात् लंका में देवानाम् प्रिय तिष्य के राजत्वकाल में हुआ था। तृतीय संगीति के अनन्तर मोद्गालिपुत्र तिष्य की प्रेरणा से सम्राट अशोक ने धर्मदूतों की नव मण्डलियों को धर्मप्रसारार्थ नव स्थानों में भेजा।[2] उसके पुत्र महेन्द्र भिक्षुवेष में लंका भेजे गये।[3] फलतः बुद्धवचन का प्रवेश अब भारत तक ही न रहकर अन्य देशों में भी हो चला। लंका में बुद्ध-शासन के मूल को दृढ़ करने के उद्देश्य से स्थविर महेन्द्र की प्रेरणा से उक्त तीन संगीतियों के क्रम से एक चतुर्थ संगीति का आयोजन किया गया।[4]

यह सङ्गीति लंका के थूपाराम नामक विहार के सुरम्य मण्डप में स्थविर अरिष्ट की अध्यक्षता में हुई। इसमें साठ हजार भिक्षु सन्निपतित थे, जिनमें स्थविर महेन्द्र प्रमुख अरसठ भिक्षु धर्मासन के चतुर्दिक् आसीन थे। इन भिक्षुओं ने अन्य तीन संगीतियों के क्रम[5] से समस्त बुद्ध वचन का संगायन कर लंका द्वीप में बुद्ध-शासन के मूल को दृढ़ किया।

---

१. महामोग्गलिपुत्ततिस्सत्थेरो सब्बं सासनमलं विसोधेत्वा ततियसंगीतिं अकासि।

× × ×

एवं भिक्खुसहस्सेन, रक्खायासोकराजिनो।
अयं नवहि मासेहि, धम्मसंगीति निट्ठिता ॥ स. सं. १४.

२. सं० १५–१६

३. तुम्हे लंकादीपं गन्त्वा तत्थ सासनं पतिट्ठापेथ। स. सं० १५.

४. सम्बुद्धपरिनिब्बाना, द्वीसु वस्ससतेसु च।
अट्ठतिसे अतिक्कन्ते, राजाहु पियतिस्सको ॥
महाकस्सपत्थेरो च, यसो तिस्सो च कारयुं।
यथा ते धम्मसंगीतिं, महिन्दो सो पि तं तथा ॥ स. सं. २३.

५. एवं धम्मं च विनयं च संगायन्तो महामहिन्दत्थेरो लंकादीपे सासनस्स मूलं ओतारेत्वा चतुत्थसंगीतिं अकासि। स. सं. २८.

(५) पञ्चम सङ्गीति

चतुर्थ सङ्गीति के उपरान्त भी बुद्ध वचन का रूप मौखिक रहा। जिस प्रकार मुखपाठ के रूप में उसे धारण एवं संरक्षण की परम्परा भारत में प्रचलित थी, उसी प्रकार वह लंका में भी गतिशील रही। इस क्रम से भगवान के महापरिनिर्वाण के बाद चार सौ तेतीस वर्ष व्यतीत हो चले। अब लंका के स्थविरों को कुछ कारणवश ऐसी आशंका हुई कि अनागत में स्मृतिपथ से बुद्धवचन का पूर्णतः संरक्षण नहीं हो सकता है। शासन एवं लोक की ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियों के कारण त्रिपिटक एवं अट्ठकथायें भी नष्ट हो जायेंगी। अतः उन्हें लिपिबद्ध कर लेना आवश्यक है।[1]

भिक्षुओं ने इस आशंका को राजा वट्टगामिनी अभय से कह सुनाया। तदनुसार राजा द्वारा प्रथम संगीति के अवसर पर निर्मित मंडप सदृश ही मंडप निर्माण करा, लेखन-सामग्री आदि की व्यवस्था कर दी गई। तदनन्तर समर्थ भिक्षुओं ने सुनिश्चित आसनासीन हो पूर्व की संगीतियों के क्रम से समस्त बुद्धवचन का संगायन कर उसे लिपिबद्ध कर लिया।[2] इस प्रकार चार सौ तेतीस वर्षों तक स्मृतिपथ का अवलम्बनभूत बुद्धवचन सर्वप्रथम लंका में वट्टगामिनी अभय के समय लिपिबद्ध त्रिपिटक के रूप में अवतरित हुआ।[3]

(६) त्रिपिटक

जिस बुद्धवचन का गत पांच सङ्गीतियों में संगायन तथा अन्त में अभिलेखन हुआ, वह आज हमें त्रिपिटक के रूप में प्राप्त है। यह त्रिपिटक—विनयपिटक, सुत्तपिटक तथा अभिधम्मपिटक का सम्मिलित नाम है। यह बुद्धशिक्षा के त्रैविध्य का द्योतक है।

---

१. तस्मा दानि मुखपाठो तेपिटकं बुद्धवचनं सब्बं साट्ठकथं च पालिं च पोत्थकेसु लिखापेतब्बं भवेय्या ति। स. सं० २६.

२. एवमेव भिक्खुसंघो धम्मं च विनयं च मुखपाठतो पोत्थकेसु लिखापयमानो पिटकवसेन च निकायवसेन·········धम्मविनयसंखातं तेपिटकं बुद्धवचनं साट्ठकथं च पोत्थकेसु लिखापयित्वा·········पञ्चमं धम्मसंगीतिं एव अकासि।

स० सं० २७.

३. सम्बुद्धपरिनिब्बाना, चतुवस्ससतेसु च।

तेत्तिंसेसतिक्कन्तेसु, राजाहु वट्टगामिनी॥

× × ×

सब्बम्पि थेरवादं च, सब्बं साट्ठकथं च तं।

मुखपाठेन आनेत्वा, पोत्थकेसु लिखापयुं॥ स० सं० २७.

पिटक शब्द का सामान्य अर्थ भाजन अथवा पात्र होता है।[1] प्राविधिक रूप में यह परियत्ति अर्थात् बुद्ध के उपदेशों का अभिव्यंजक है।[2] पिटक अर्थात् पात्र की उपयोगिता वस्तुसंधारण के लिए है। जब कभी भी पात्र की अभिव्यक्ति की जाती है, तो उसमें निहित वस्तु की भी संभावना देखी जाती है। वह स्वयं अपनी स्थिति को बनाये हुए उसमें निहित वस्तु की भी स्थिति का संरक्षण करता है। इस दृष्टि से पिटक शब्द पात्र एवं पात्रगत वस्तु का द्योतन करते हुए दो अर्थों से समुपेत है। अतः वह पात्र जो बुद्धवचन का द्योतन, धारण एवं संरक्षण करता है, पिटक कहलाता है। आचार्य बुद्धघोष ने इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है—

"पिटकं पिटकत्थविदू, परियत्तिभाजनत्थतो आहु।

तेन समोधानेत्वा तयो पि, विनयादयो ञेय्या ति॥" अट्ठ० सा० १८.

इस प्रकार त्रिविध शिक्षा—विनय, सुत्त, एवं अभिधम्म को धारण करते हुए धारक एवं धार्य दोनों इससे अभिप्रेत हैं।[3]

(७) विनयपिटक

भगवान बुद्ध के आचार विषयक उपदेशों के संग्रह का नाम विनयपिटक है। इसमें भिक्षु जीवन के सर्वांग विकास के लिए नियमों का कथन है। इन नियमों के सम्यक् परिपालन में ही भिक्षु-जीवन की सार्थकता कही गयी है। इसलिये विनय को बुद्ध-शासन की आयु भी कहते हैं। विनय की स्थिति से ही शासन की स्थिति है।

संघ में रहकर साधुजीवन व्यतीत करते हुए भिक्षुओं के लिए क्या कर्त्तव्य तथा क्या अकर्त्तव्य है, इसका पूर्ण विवरण विधि-निषेध-क्रम से विनयपिटक में उपलब्ध है। इसलिए इसे अधिशील शिक्षा या 'आणा-देसना'[4] या संवर-असंवर-

---

१. अथ पुरिसो आगच्छेय्य कुदालपिटकमादाय ति आदीसु यं किञ्चि भाजनं पि। म० नि० १.१२०.

२. परियत्ति पि हि मा पिटकसंपदानेना ति आदीसु पिटकं ति वुच्चति।

अं० नि० १८९.

३. तेन एवं दुविधत्थेन पिटकसद्देन सह समासं कत्वा विनयो च सो पिटकं च परियत्तिभावतो, तस्स तस्स अत्थस्स भाजनतो चा ति विनयपिटकं। यथावुत्त-नयेन सुत्तं च तं पिटकं चा ति सुत्तपिटकं। अभिधम्मो च सो पिटकं चा ति अभिधम्मपिटकं ति एवमेते तयोपि विनयादयो ञेय्या। अट्ठ० सा० १८.

४. विनयपिटकं आणारहेन भगवता आणाबहुल्लतो देसितत्ता आणादेसना।

अट्ठ. सा. १९.

कथा भी कहा जाता है। प्रसंगानुकूल नियमों के सुष्ठु परिपालन के गुण तथा व्यतिक्रम के लिए दण्ड का भी विधान है। इस दृष्टि से इसका नाम यथापराध-शासना है। आचार्य बुद्धघोष ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि—

"विविधविसेसनयत्ता, विनयनतो चेव कायवाचानं।
विनयत्थविदूहि अयं, विनयो विनयो ति अक्खातो ॥"[2]

विनयपिटक के मुख्य तीन विभाग हैं, जिन्हें सुत्तविभंग, खन्धक तथा परिवारपाठ कहते हैं। सुत्तविभंग पुनः भिक्खुविभंग तथा भिक्खुनी-विभंग नामक दो विभंगों में विभक्त है। इसी प्रकार महावग्ग तथा चूलवग्ग खन्धक के दो विभाग हैं। इस क्रम से विनय के पांच विभाग हैं। विभाजन के एक दूसरे क्रम से यह पाराजिक, पाचित्तिय, महावग्ग, चूलवग्ग तथा परिवारपाठ नामक पांच विभागों में विभक्त है।

(८) सुत्तपिटक

जम्बूद्वीप के विभिन्न ग्राम-निगम-जनपदादि में चारिका करते हुए दिये गये भगवान बुद्ध के सामान्य उपदेशों का संग्रह सुत्तपिटक है। इसमें उपदेशों का कथन समागत मनुष्यों के अध्याशय, अनुशय, अधिमुक्ति आदि को जानकर तदनुकूल उपमा, नय, दृष्टान्त आदि के सहारे अति सरल एवं बोधगम्य ढंग से हुआ है। संभवतः इसके इस क्रम को लक्ष्य कर ही इसे व्यवहारदेशना या यथानुलोम-शासन भी कहा जाता है।[3] पुनः इसके अनेक सुत्तों में प्रधान या गौण रूप से मिथ्यादृष्टियों का कथन एवं उनके प्रहाण का मार्ग प्रज्ञप्त है। इन दृष्टियों के जाल से मुक्त कराने में सहायक इसकी देशनायें 'दिट्ठिविनिवेठनकथा' नाम से अभिहित हैं। इसके स्वरूप की चर्चा करते हुए बुद्धघोष ने कहा है—

"सुत्तानं सूचनतो सुवुत्ततो, सवनतो च सूदनतो।
सुत्ताणा सुत्तसभागतो च, सुत्तं सुत्तं ति अक्खातं ति ॥"[4]

सुत्तपिटक पांच निकायों में विभक्त हैं। वे हैं—दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्तनिकाय, अंगुत्तरनिकाय तथा खुद्दकनिकाय। दीघनिकाय में दीर्घ आकार वाले

१. ये ते पचुरापराधा सत्ता ते यथापराधं एत्थ सासिता ति यथापराधसासनं। अट्ठ. सा. १९

२. अट्ठ. सा. १६.

३. अनेकज्झासयनुसयाचरियाधिमुत्तिका सत्ता यथानुलोमं एत्थ सासिता ति यथानुलोमसासनं। अट्ठ. सा. १९.

४. अट्ठ. सा. १७

चौंतीस सुत्तों का संग्रह है, जो तीन वर्गों में विभक्त हैं।[1] ब्रह्मजालसुत्त इसका आदि सुत्त है। इसी प्रकार मूलपरियायसुत्त से प्रारम्भ मज्झिमनिकाय मध्यम परिमाणवाले एक सौ बावन सुत्तों का संग्रह है। ये पन्द्रह वर्गों में विभक्त हैं।[2] संयुत्तनिकाय दीर्घ, मध्यम एवं लघु आकार वाले सात हजार सात सौ बासठ सुत्तों का संग्रह है, जो छप्पन संयुत्तों में विभक्त हैं।[3] ओघतरणसुत्त इसका आदि सुत्त है। अंगुत्तर-निकाय में एक से लेकर ग्यारह अंको के सहारे उपदेशों का कथन है। इसके ग्यारह निपातों में विभक्त नव हजार पाँच सौ सन्तावन सुत्त हैं। चित्तपरियादानसुत्त इसका आदि सुत्त है।[4] खुद्दकनिकाय में खुद्दकपाठ धम्मपद, जातक आदि पन्द्रह छोटे बड़े ग्रन्थ हैं।[5]

(९) अभिधम्मपिटक

भगवान बुद्ध के वे उपदेश जो परमार्थ के प्रतिपादनार्थ कथित हैं, तथा जिनमें दर्शन के तत्त्वों का सम्यक् समुद्घाटन एवं विवेचन है, अभिधम्मपिटक में संगृहीत हैं। बुद्धघोष के अनुसार धर्मातिरेक धर्मविशेष अर्थ में अभिधर्म शब्दप्रयुक्त है।[6] ऐसे अतिरेक एवं विशेषभाव इसके विषय, अभिव्यक्ति, विषय-विभाजनादि-क्रम सभी दृष्टियों से देखे जाते हैं। धम्मसंगणि, विभंग, धातुकथा, पुग्गलपञ्ञत्ति, कथावत्थु, यमक तथा पट्ठान नामक इसके सात प्रकरण हैं। इन सभी प्रकरणों में विभिन्न पर्यायों से चित्त, चेतसिक, रूप तथा निब्बान नामक चार परमार्थ धर्मों पर प्रकाश डाला गया है। इसके ऐसे स्वरूप के कारण इसे 'परमत्थदेसना' या

१. चतुत्तिंसेव सुत्तन्ता, तिवग्गो यस्स संगहो।
एस दीघनिकायो ति, पठमो अनुलोमिको ॥
२. दियड्ढसतसुत्तन्ता, द्वे च सुत्तानि यत्थ सो।
निकायो मज्झिमो, पंच-दसवग्गपरिग्गहो ॥
३. सत्तसुत्तसहस्सानि, सत्त सुत्तसतानि च।
द्वासट्ठि चेव सुत्तन्ता, एसो संयुत्तसंगहो ॥
४. नव सुत्तसहस्सानि, पञ्च सुत्तसतानि च।
सत्तपञ्ञाससुत्तानि, संखा अंगुत्तरे अयं ॥
५. खुद्दकपाठो धम्मपदं, उदानं इतिवुत्तकं।
सुत्तनिपातो विमानं, पेतवत्थु अथापरं ॥
थेरा थेरी च जातकं, निद्देसो पटिसम्भिदा।
अपदानं बुद्धवंसो, चरियापिटकमेव च ॥ १–५. स. सं. ७–८.

६. अट्ठ. सा. १.

२ नि० क० भू०

'यथाधम्मसासन' या 'नामरूपपरिच्छेद' कहा गया है।[1] आचार्य बुद्धघोष ने इसकी चर्चा करते हुए कहा है कि—

"यं एत्थ वुड्ढिमन्तो सलक्खणा पूजिता परिच्छिन्ना।
वुत्ताधिका च धम्मा अभिधम्मो तेन अक्खातो॥"
अट्ठ० सा० १७.

३. अट्ठकथा-परम्परा

पालि साहित्य में अर्थकथा (अट्ठकथा) की परम्परा प्राचीन प्रतीत होती है। पिटक ग्रन्थों से प्रकट होता है कि भगवान बुद्ध का एक मात्र उद्देश्य अपने ज्ञान को सर्व-सुलभ बना देना था। इसी उद्देश्य की परिपूर्ति में ही उनकी चारिका होती थी। ग्राम ग्राम विचरण करते हुए वे अपने उपदेशों को जन-जीवन-व्याप्त उपमाओं, दृष्टान्तों तथा अन्यान्य नयों से सरल एवं सुबोध बनाने में सदा यत्नशील थे। वे मुख्यतया परिप्रश्नात्मक शैली का सहारा लेते थे। किसी प्रश्न द्वारा एक आधार वाक्य का कथन कर वे तुरत उसके एक-एक अंग की व्याख्या प्रस्तुत करते थे तथा उस व्याख्याक्रम में ही नये-नये प्रश्नों की पृष्ठ-भूमि तैयार कर देते थे। इन प्रश्न परिप्रश्नों के विसर्जन स्वरूप जो स्वाभाविक फल होते थे, वे थे विषय की स्पष्टता, उपदेशों की सरसता तथा उपदिष्ट वस्तु की बोधगम्यता। इस शैली का श्रीगणेश उनके प्रथम उपदेश धम्मचक्कप्पवत्तन-सुत्त में देखा जाता है। पञ्चवर्गीय भिक्षुओं के समक्ष वे दो अन्तों का कथन कर तत्क्षण पूछ उठते हैं कि—वे दो अन्त कौन हैं? इसी प्रश्न के उत्तर स्वरूप ही दो अन्तों की व्याख्या तथा मध्यममार्ग का विश्लेषण है।

उपदेशों को व्याख्यात्मक शैली से सुबोध बनाने का क्रम उत्तरोत्तर स्पष्ट दिखायी पड़ता है। मज्झिमनिकाय के सलायतन-विभंग, धातु-विभंग, अरणविभंग, दक्खिणा-विभंग तथा अभिधम्मपिटक के धम्मसंगणि, विभंग आदि ग्रन्थों में यह स्पष्टतर हो चला है। खुद्दकनिकाय के चूल-निद्देस तथा महानिद्देस में तो सुत्तनिपात के खग्गविसाणसुत्त, पारायनवग्ग तथा अट्ठकवग्ग के एक-एक पद की व्याख्या करते हुए बुद्ध एक पूरे व्याख्याकार के रूप में दिखाई पड़ते हैं। इस पृष्ठभूमि में यह परम्परा साधार प्रतीत होती है कि त्रिपिटक के साथ उसकी अट्ठकथा भी मुखपाठ में विद्यमान थी। आचार्य बुद्धघोष भी इसके पोषक हैं कि संगीतिकारों ने त्रिपिटक के साथ उनकी अट्ठकथाओं का भी संगायन किया था तथा स्थविर महेन्द्र ने उन्हें बुद्धवचन के साथ ही लंका पहुँचाया था।[2] सद्धम्मसङ्गहकार के

१. अट्ठ सा. १८–१९.

२. या महाकस्सपादीहि, वसीहट्ठकथा पुरा।
संगीता अनुसंगीता, पच्छा पि च इसीहि या॥

अनुसार लंका में वट्टगामिनी अभय के समय जब त्रिपिटक का लिपिबद्धकरण हुआ, उसी समय सारी अट्ठकथायें भी लिख ली गईं, जो त्रिपिटक के साथ ही मौखिक परम्परा में विद्यमान थीं।[1]

यह परम्परा बौद्ध देशों में आज भी मान्य समझी जाती है, पर जनश्रुति के अतिरिक्त, इसके पोषक अन्य आधार नहीं दीख पड़ते हैं। जिस प्रकार अपने सभी अंगों के साथ त्रिपिटक उपलब्ध है, उसी प्रकार उसके साथ मुखपाठ में विद्यमान उसकी अट्ठकथा का रूप आज देखने को नहीं मिलता है। इसलिए आज जिसे अट्ठकथा कहा जाता है, उसका प्रारम्भ आचार्य बुद्धघोष से होता है, जो चौथी शताब्दी के युगपुरुष माने जाते हैं।[2]

यह सत्य है कि पिटकग्रन्थों में व्याख्यात्मक शैली का प्रचुर उपयोग है, पर वहां अर्थ-उद्धार या व्याख्या को अट्ठकथा नहीं कहा गया है। 'अट्ठकथा' शब्द का बुद्धवचनों की व्याख्या के रूप में प्रयोग चौथी शताब्दी से होने लगा है। साथ ही बुद्ध वचन से ऐसे व्याख्यापरक वचनों का पार्थक्य दर्शाने के लिए क्रमशः पालि तथा अट्ठकथा शब्द प्रयुक्त होने लगे हैं, जिनके दर्शन—"इमानि ताव पालियं, अट्ठकथायं पन" × × × "नेव पालियं, न अट्ठकथायं दिस्सति", × × "पिटकत्तयपालि च तस्सा अट्ठकथं पि च"[3] आदि वाक्यों में किये जा सकते हैं। अतः सम्प्रति उपलब्ध अट्ठकथा को देखकर इतना मात्र कहा जा सकता है कि इस प्रक्रिया का बीजवपन पिटक ग्रन्थों में हुआ अवश्य था, पर नामकरण एवं वृद्धि-वैपुल्य की प्राप्ति बुद्धघोष के काल में हुई। यह धारणा तब तक पुष्ट समझी जायगी, जब तक कि धर्मनिधि के रूप में प्राप्त धर्मप्राण पण्डितों की पोथियों के आवेष्टन से बुद्धकालीन अट्ठकथायें नहीं मिल जाती हैं।

पालिसाहित्य में अट्ठकथा का काल चौथी शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक

आभटा पन थेरेन, महिन्देनेधमुत्तमं।
या दीपं दीपवासीनं, भासाय अभिसङ्खता॥ अट्ठ. सा. २.

१ मुखपाठेन परम्पराय आनीतं तेपिटकं बुद्धवचनं सब्बं साट्ठकथं च पालि च इदानि मुखपाठेसु तिट्ठति। × × × धम्मविनयसंखातं तेपिटकं बुद्धवचनं साट्ठकथं च पोत्थकेसु लिखापयित्वा ...... पञ्चमं धम्मसंगीतिं सदिसं एव अकासि।
स. सं. २७.

२. पालि साहित्य का इतिहास डा० भरतसिंह, पृ० ५३६–५४४; History of Pali Literature, Dr. B. C. Law. pp. 372–75; Indian Literature, Vol. 2, Winternitz p. 184.

३. पालि साहित्य का इतिहास, पृ० २.

माना जाता है। इस युग में ज्ञात अज्ञात कई अट्ठकथाकार हुए पर बुद्धदत्त, बुद्धघोष तथा धर्मपाल इसके आधार स्तंभ माने जाते हैं। इनमें बुद्धदत्त बुद्धघोष के समकालीन थे। धर्मपाल उनके परवर्ती समझे जाते हैं। इनके काल का विनिश्चय अभी नहीं हो पाया है। इन तीन महापुरुषों ने अट्ठकथा परम्परा का क्रमशः जन्म, संवर्द्धन एवं अभिपोषण किया। वह ग्यारहवीं शताब्दी तक उत्तरोत्तर वृद्धि विरुल्हि तथा वैपुल्य से समुल्लसित होती गयी।

प्रकृत प्रसंग में उनके जीवन-वृत्त कार्य-क्षेत्र आदि के विशेष विवरण में न जाकर प्रसंगानुसार केवल उनकी कृतियों का उल्लेख मात्र इष्ट प्रतीत होता है।

(१०) बुद्धदत्त की रचनायें

बुद्धदत्त ने पांच ग्रन्थ या अट्ठकथायें लिखी हैं। वे हैं—विनयविनिच्छय, उत्तरविनिच्छय, अभिधम्मावतार, रूपारूपविभाग, तथा मधुरत्थविलासिनी।

(११) बुद्धघोष की रचनायें

बुद्धघोष के नाम के साथ अठारह ग्रन्थों का योग देखा जाता है। इनमें कुछ मतभेद समन्वित भी है। वे अठारह ग्रन्थ हैं—विसुद्धिमग्ग, समन्तपासादिका; कंखावितरणी, सुमंगलविलासिनी, पपञ्चसूदनी, सारत्थप्पकासिनी, मनोरथपूरणी, परमत्थजोतिका, अट्ठसालिनी सम्मोहविनोदिनी, पञ्चप्पकरण-अट्ठकथा (पांच ग्रन्थ), धम्मपद-अट्ठकथा, जातक-अट्ठकथा (जातकत्थवण्णना), तथा ञाणोदय। इनमें ञाणोदय को छोड़ अन्य सभी ग्रन्थ अभी उपलब्ध हैं।

(१२) धम्मपाल की रचनायें

धम्मपाल ने पूर्व आचार्यों की परम्परा को अभिवर्द्धित करते हुए सात अट्ठकथायें लिखी हैं, जिनके नाम हैं—परमत्थदीपनी, नेत्तिपकरण-अट्ठकथा; लीनत्थवण्णना, परमत्थमञ्जूसा, लीनत्थप्पकासिनी; जातकट्ठकथा-टीका, तथा मधुरत्थविलासिनी-टीका।

इनके अतिरिक्त आनन्द, चुल्ल, उपसेन, महानाम, कस्सप, वजिरबुद्धि, खेम, अनुरुद्ध, धम्मसिरि तथा महासामि नामक दस अट्ठकथाकारों के नाम देखे जाते हैं।[1]

१. पालि साहित्य का इतिहास—डा० भरतसिंह, पृष्ठ ५३२-५६४। आचार्य बुद्धदत्त, बुद्धघोष तथा धम्मपाल के ग्रन्थों की सूची गंधवंश में प्रस्तुत सूची से पूर्णतः नहीं मिलती है। देखें—गन्धवंश—पृ० ५८-६० (पी० टी० एस० १८८६)

४. जातक-अट्ठकथा

जातक खुद्दकनिकाय का दसवां ग्रन्थ है। इसमें भगवान बुद्ध की पूर्व जन्म की कथायें हैं, जब कि उन्होंने बोधिसत्त्व के रूप में बुद्धत्व की अभीप्सा से दान शील मैत्री आदि दस पारमिताओं का अभ्यास किया था। ये कथायें मूलतः पद्य में हैं। चुल्लनिद्देस के अनुसार इन कथाओं की संख्या पांच सौ है।[1] आचार्य बुद्धघोष तथा उनके परवर्ती आचार्यों के सम्मुख पांच सौ पचास जातक विद्यमान थे।[2] चीनी यात्री फाह्यान ने इनके पांच सौ होने की चर्चा की है[3]। पर सम्प्रति जो संस्करण उपलब्ध हैं, उनमें जातकों की संख्या पांच सौ सैंतालीस पायी जाती है।[4]

जातक-अट्ठकथा इन्हीं पांच सौ सैंतालीस जातकों की गाथाओं की अर्थ कथा या व्याख्या है। इसका दूसरा नाम जातकट्ठवण्णना या जातकत्थवण्णना भी मिलता है। सिंहली, बर्मी तथा स्यामी लिपियों में इसका प्रकाशन जातकट्ठकथा नाम से हुआ है।[5] पर रोमन लिपि में प्रकाशित फजबल संस्करण तथा भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से प्रकाशित नागरी संस्करण में इसका नाम जातकट्ठवण्णना पाया जाता है। यद्यपि दोनों शब्द अट्ठकथा तथा अत्थवण्णना एक ही अर्थ के परिचायक हैं, तथापि दो नामों के रूप में उपलब्ध होने के कारण उनके दो पृथक् पुस्तक होने की संभावना हो उठती है। इसके लेखक ने निदानकथा के प्रारम्भ में महाविहारवासियों के वाचनाक्रम के अनुसार जातकों के अर्थ-वर्णना

१. भगवा पञ्च जातकसतानि भासन्तो अत्तनो च परेसं च चित्तं आदीसति। पृ० ८०.

२. अपण्णकजातकादीनि पञ्ञासाधिकानि पञ्च जातकसतानि जातकं ति वेदितब्बं।

सु० वि० १. २४,
अट्ठ० सा० २३,
स० सं० ९.

३. The Travels of Fa-hsien by H. A. Giles, p. 71—"representations of the five hundred different forms in which the Bodhisattva successively appeared."

४. नालन्दा देवनागरी संस्करण, छट्ठसंगायन संस्करण आदि।

५. Simon Heva Vitarane Bequest Series,
Chatthasaṅgayana edition,
Mahamakuṭa Raja Vidyalaya Series.

करने की प्रस्तावना की है,[1] साथ ही जातकट्ठकथा नामक एक अन्य ग्रन्थ के होने की भी चर्चा की है।[2] संभवतः सन्देह की इस पृष्ठभूमि में ही श्रीविन्टरनित्स महोदय जातकट्ठकथा तथा जातकत्थवण्णना नामक दो पुस्तकों के होने में सहमत प्रतीत होते हैं।[3] उनका कथन है कि जातकट्ठकथा मूलतः पालि में थी, जो मौखिक परम्परा त्रिपिटक के साथ ही लंका पहुँचायी गयी तथा वहीं लिपिबद्ध हुई। कालान्तर में सिंहलवासियों द्वारा उसका अनुवाद सिंहली भाषा में किया गया। पुनः जब लंका में पालि भाषा में अट्ठकथा लिखने की परम्परा चली तो इसे पालि भाषा में अनूदित कर लिया गया तथा इसका नाम रखा गया— जातकत्थवण्णना। श्री रीज डेविड्स ने जातकट्ठकथा को प्राचीन सिंहली 'एलु' में विद्यमान अट्ठकथा माना है तथा जातकत्थवण्णना को उसी पर आधारित रचना बतलायी है।[4] डा० बी० सी० ला० ने उक्त मान्यताओं के सामञ्जस्य रूप इन्हें दो ग्रन्थ दर्शाते हुए भी इनमें वस्तुसाम्य बतलाया है।[5] श्री गायगर महोदय ने भी जातकट्ठवण्णना की चर्चा करते हुए इसे मौखिक परम्परा में विद्यमान अट्ठकथा की सामग्री पर आश्रित एक पृथक् रचना स्वीकार की है।[6]

अब वास्तविकता यह है कि आज न तो मौखिक परम्परा से लंका पहुँचायी अट्ठकथायें प्राप्त हैं, न प्राचीन सिंहल भाषा में लिखी ही। जो हमें उपलब्ध है, वह पालि भाषा में लिखित जातकों की विवरणात्मक व्याख्या। इसके दोनों नाम 'जातकट्ठकथा' तथा 'जातकट्ठवण्णना' विद्वानों द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं। व्यञ्जन-नानात्व होते हुए भी दोनों में अर्थसाम्य है।[7] फलतः

---

१. ··················जातकस्सत्थवण्णनं।
महाविहारवासीनं, वाचनामग्गनिस्सितं॥
भासिस्सं भासतो तम्मे, साधु गण्हन्तु साधवो॥ पृ० २.

२. यं पन जातकट्ठकथायं 'तदा सत्ताहजातो राहुलकुमारो होतो ति वुत्तं।' पृ० १५६.

३. Indian Literature, Vol. II pp 116-17.

४. Buddhist Birth Stories, p. 173, f. n. 2.

५. History of Pali Literature, Law, p. 376.

६. Pali Literature & Laugnage, pp. 30-31.

७. (क) अट्ठसालिनी के प्रारम्भ में—
"पदानुक्कमतो एव करिस्सामत्थवण्णनं"।

पुनः अन्त में—
"× × × आरद्धा या मया अत्थवण्णना।
अनाकुलानमत्थानं संभवा अट्ठसालिनी।
इति नामेन सा एसा सन्निट्ठानमुपागता॥"

इसे उक्त दो नामों में किसी भी एक से अभिहित करना युक्त प्रतीत होता है। यस्मात् अधिकांश संस्करणों में जातकट्ठकथा का ही प्रयोग आया है, अतः उन बहुसंख्यक आचार्यों की सङ्गति समयानुकूल समझ, मुझे भी इस ग्रन्थ का नाम 'जातकट्ठकथा' ही उचित प्रतीत होता है।

जातकट्ठकथा का मुख्य उद्देश्य पांच सौ सैंतालीस जातकों का विवरणात्मक व्याख्या प्रस्तुत करना है। इस क्रम में प्रत्येक जातक को पांच भागों में विभक्त कर उनके विषय को प्रकाशित किया गया है। वे हैं—पच्चुप्पन्नवत्थु, अतीत-वत्थु, गाथा, वेय्याकरण तथा समोधान।

(१) पच्चुप्पन्नवत्थु से वर्तमान कालीन घटनाओं का सम्बन्ध है। बुद्ध के जीवन काल में जो घटना घटी, वह पच्चुप्पन्नवत्थु है। (२) इस घटना की पृष्ठभूमि में पुनः किसी पूर्व जन्म के वृत्तान्त का कथन होता है। उसे अतीतवत्थु कहते हैं। (३) इसके अनन्तर कुछ गाथायें आती हैं, जिनका सम्बन्ध अतीत एवं वर्त्तमान दोनों जन्मों के इतिवृत्तों से है। इसे गाथा कहा जाता है। (४) वेय्याकरण का अर्थ व्याख्या है। गाथा के अनन्तर उन गाथाओं की व्याख्या तथा व्यवहृत शब्दों की विवृति देखी जाती है। यही व्याकरण है। (५) अन्त में समोधान (समवधान) आता है। इसमें बुद्ध के अतीत जीवन के पात्रों का वर्तमान जीवन के पात्रों के साथ सम्बन्ध दर्शाया जाता है। बोधिसत्त्व ऐसा बताते हैं कि "उस समय बालसत्थवाहपुत्त देवदत्त था तथा पण्डितसत्थवाहपुत्त मैं था" आदि। उन्हीं पांच अंगों से समन्वित हो जातक-अर्थकथा जातक-अर्थ-प्रकाशन में प्रवृत्त है।

पुनः अन्यत्र—
"अयं अट्ठसालिनी नाम धम्मसङ्गह-अट्ठकथा।"

(ख) सम्मोहविनोदिनी के प्रारम्भ में—
तस्स विभङ्गप्पकरणस्स अत्थवण्णनं करिस्सामि।

पुनः अन्त में—
"सम्मोहविनोदिनी नाम यं अट्ठकथं
रचयितुं आरभि, अयं निट्ठं पत्ता।"

(ग) यमक-अट्ठकथा के प्रारम्भ में—
"अयं अस्स संवण्णना होति।"

पुनः अन्त में—
"यमक-अट्ठकथा मया आरद्धा·········।"

इन उद्धरणों से अट्ठकथा, अत्थवण्णना, संवण्णना आदि एकार्थक सिद्ध होते हैं।

(१३) जातकट्ठकथा के लेखक

जातकट्ठकथा के कर्त्तृत्व के प्रश्न पर कोई सुविनिश्चित मत नहीं है। इसके अन्तः एवं बाह्य कारणों को लेकर आचार्यों में मतभेद है। प्रचलित परम्परा तथा नवीन आचार्यों के एतद्विषयक विवेचन कहीं विचारों का साम्य दर्शाते हैं, तो कहीं प्रभूत पार्थक्य। ऐसी दशा में निश्चयात्मक धारणा नहीं बन पाती है। अतः प्रकृत प्रसंग में उन मतों की पृष्ठभूमि में ही इस प्रश्न पर विचार करना इष्ट है।

गन्धवंस, जो संभवतः सतरहवीं शताब्दी की रचना है, पालि के ग्रन्थकारों को तीन श्रेणी में विभक्त कर कालानुक्रम से पालिग्रन्थों का सुविस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। इसके अनुसार आचार्य बुद्धघोष ही जातकट्ठकथा के लेखक हैं।[1] इनके विसुद्धिमग्गो, सुमंगलविलासिनी आदि ग्रन्थों के साथ जातकट्ठकथा का उल्लेख है।

श्री विन्टरनित्स के अनुसार जातकट्ठवण्णना किसी एक अज्ञात सिंहली भिक्षु की कृति है। उन्होंने इस ग्रन्थ के प्रणयन में जातक की व्याख्या रूप में लिखी प्राचीन जातकट्ठकथा से सामग्री ली है।[2]

श्री गायगर महोदय ने इसे बुद्धघोष की कृति होने में सन्देह किया है। इसके बाह्य रूप के आधार पर उन्होंने इसे किसी सिंहली भिक्षु की रचना माना है, भले ही वे बुद्धघोष हों अथवा उनके समकालीन कोई अन्य विद्वान।[3]

श्री रीज डेविड्स ने बुद्धघोष की अन्य कृतियों की तुलना में विवेच्य ग्रन्थ की भाषा एवं शैली में भिन्नता देखी है। इस प्रसंग में उन्होंने कुछ अन्य निषेधात्मक कारणों को दर्शाते हुए आचार्य बुद्धघोष को इस ग्रन्थ का रचयिता या संकलनकर्त्ता नहीं माना है।[4]

भाषा एवं शैली की दृष्टि से श्री बरलिंगम् के विचार भी श्री रीज डेविड्स के सदृश देखे जाते हैं।[5] उन्होंने इसे पालि त्रिपिटक एवं अट्ठकथाओं पर आधृत बतलाया है।

---

१. गन्धवंस पृ० ५८-५९ (पी० टी० एस १८८६),
भरतसिंह पृ० ६१७,
विन्टरनित्स १८९-९०.

२. History of Indian Literature, Vol. II, pp. 116-17.

३. Pali Literature and Language, pp. 30-31.

४. Buddhist Birth Stories Intro. p. 63.

५. Buddhist Legends. H. O. S. Vol. 28, pp. 49-57.

डा० बी० सी० लाहा भी श्री रीज डेविड्स के विचारों से सहमत प्रतीत होते हैं। उन्होंने इसके चर्चा क्रम में कुछ विद्वानों के मतों का उल्लेख कर तत्र तत्र वर्णित विषय को यथेष्ट समझा है।[1]

डा० भरतसिंह उपाध्याय इसे आचार्य बुद्धघोष की कृति होने की परम्परा दर्शाते हुए पुनः अनेकांशग्राही मति सम्पन्न देखे जाते हैं। उनका कहना है कि—"जहां तक गाथाओं की व्याख्या और उनके शब्दार्थ का सम्बन्ध है, वह संभवतः जातक का सबसे अधिक अर्वाचीन अंश है। इस अंश के लेखक आचार्य बुद्धघोष माने जाते हैं"। पुनः प्रसंग को बढ़ाते हुए—"स्वयं जातकट्ठकथा के उपोद्घात में लेखक ने अपना परिचय देते हुए कहा है—'शान्तचित्त पंडित बुद्धमित्त और महिंशासक वंश में उत्पन्न, शास्त्रज्ञ, शुद्धबुद्धि भिक्षु बुद्धदेव के कहने से...व्याख्या करूँगा'। महिंशासक सम्प्रदाय महाविहार की परम्परा से भिन्न एक बौद्ध सम्प्रदाय था। बुद्धघोष ने जितनी अट्ठकथायें लिखी हैं, शुद्ध महाविहारवासी भिक्षुओं की उपदेश-विधि पर आधारित हैं। अतः जातकट्ठकथा के लेखक को आचार्य बुद्धघोष से मिलाना ठीक नहीं"।[2]

अब उक्त विद्वानों के मतों का पर्यवेक्षण करने पर तीन बातें स्पष्ट होती हैं। वे हैं—(१) जातकट्ठकथा के लेखक बुद्धघोष हैं, (२) जातकट्ठकथा के लेखक एक अज्ञात सिंहली भिक्षु हैं तथा (३) भाषा, शैली एवं उपोद्घात की दृष्टि से इसके लेखक बुद्धघोष नहीं हैं।

इनमें प्रथम मान्यता के पक्ष में गन्धवंस का विवरण एवं जनश्रुति प्रमाण हैं। जब तक गन्धवंस में प्रस्तुत विवरण निराधार नहीं सिद्ध हो जाते हैं, तब तक यह मान्यता ग्राह्य एवं सार्थक समझी जा सकती है।

दूसरी मान्यता कि इसके लेखक एक सिंहली भिक्षु हैं, कल्पना के व्यतिरिक्त अन्य प्रमाण-पुरस्कृत नहीं है। इस प्रसंग में जो यह कहा जाता है कि गन्धवंस में 'चुल्ल बुद्धघोस' नामक एक सिंहली भिक्षु की चर्चा है और वे इसके लेखक हैं, वह भी उनकी रचनाओं की सूची से स्वयं निराकृत हो जाता है। उनकी रचनायें हैं—जातत्तग्गीनिदानं, तथा सोतत्तग्गीनदानं, न कि 'जातकट्ठकथा'।

जहां तक भाषा एवं शैली के आधार पर इसे बुद्धघोष से भिन्न किसी अन्य लेखक की रचना दर्शाने का प्रश्न है, वह दुर्बल आधार परिनिष्ठित है। केवल भाषा एवं शैली में भिन्नता के कारण इसे बुद्धघोष की कृतितन्ति से विलग नहीं किया जा सकता है। यह तो भारतीय परम्परा है कि यहां के विशिष्ट लेखक अपने लेखन-वैशिष्ट्य-विलास के कारण विषय के अनुसार विभिन्न प्रकार की भाषा

---

१. History of Pali Literature, Vol. II. pp 376-77.

२. पालि साहित्य का इतिहास पृ० ३०७-८.

एवं शैली का प्रयोग करते हैं। महाकवि श्रीहर्ष की भाषा एवं शैली खण्डनखण्डखाद्य में पूर्णतः दार्शनिक है पर वही लेखक नैषधचरित में एकान्ततः साहित्यिक भाषा एवं शैली का प्रयोग करते देखे जाते हैं। यही सत्य श्री भर्तृहरि के वाक्यपदीय एवं शतकत्रयम् में भी देखा जा सकता है। अतः यदि जातकट्ठकथा की भाषा एवं शैली विसुद्धिमग्गो, अट्ठसालिनी, या पञ्चप्पकरण-अट्ठकथा की भाषा एवं शैली से भिन्न है, तो यह स्वाभाविक है; कारण जातकट्ठकथा सरल ढंग से व्याकृत काव्यात्मक ग्रन्थ है, पर विसुद्धिमग्गो आदि दर्शनविषयात्मक हैं।

तीसरी धारणा डा० भरतसिंह उपाध्याय की है। उनके अनुसार महिंशासक वंश में उत्पन्न भिक्षु बुद्धदेव के कहने से लिखे जाने के कारण, तथा महिंशासक सम्प्रदाय के महाविहार की परम्परा से भिन्न एक बौद्ध सम्प्रदाय होने के कारण, बुद्धघोष इसके लेखक नहीं हो सकते हैं।[१] इसमें दो बातें स्पष्ट नहीं हैं। प्रथम यह कि महिंशासकवंश तथा महिंशासक सम्प्रदाय के एकावबोधक होने का कोई प्रमाण नहीं दिखाई पड़ता है। तथा द्वितीय यह कि महिंशासक सम्प्रदाय के महाविहारसम्प्रदायेतर होने पर भी पूर्वानुयायी के कथन से जातकट्ठकथा की रचना करना कोई दोषयुक्त काम नहीं है। यह भारतीय परम्परा है कि विपक्षियों से चोदित हो नये-नये ग्रन्थों की रचना होती है। इसी क्रम में वैदिक एवं बौद्ध न्याय का विकास हुआ है।

डा० उपाध्याय ने उसी क्रम में यह भी दर्शाया है कि "बुद्धघोष ने जितनी अट्ठकथायें लिखीं हैं, शुद्ध महाविहारवासी भिक्षुओं की उपदेश-विधि पर आधारित (महाविहारवासीनं देसनानयनिस्सितं) हैं"। उनका यह कथन युक्त है पर यह आश्चर्य सा प्रतीत होता है कि जिस उपोद्घात के सहारे वे इसे महाविहार-परम्पराभिन्न दर्शाने का यत्न करते हैं, उसी की निकट की पंक्ति कैसे दृष्टिपथ से विरत हो जाती हैं, जहां यह स्पष्टतः लिखित है कि इस ग्रन्थ का प्रणयन महाविहारवासियों के वाचना-मार्ग से ही हुआ है—"महाविहारवासीनं, वाचनामग्गनिस्सितं भासिस्सं"।[२]

अतः इससे ऐसा स्पष्ट सा है कि जो-जो तर्क इसे बुद्धघोष की रचना न होने के पक्ष में दिये गये हैं, वे परीक्षा से दुर्बल सिद्ध होते हैं। इस पृष्ठभूमि में जातकट्ठकथा को आचार्य बुद्धघोष की रचना मानना ही युक्त प्रतीत होता है। यस्मात् निदानकथा जातकट्ठकथा की भूमिकारूप आदि-अंश है, एतदर्थ उसके लेखक भी आचार्य बुद्धघोष ही हैं।

---

१. पालिसाहित्य का इतिहास—पृ० ३०८.

२. नि० क० पृ० २.

(१४) रचनाकाल

जातकट्ठकथा के कर्तृत्व पर विचार करते हुए देखा जा चुका है कि गन्धवंस की परम्परा के अतिरिक्त अन्य विद्वान् इसके लेखक के सम्बन्ध में किसी एक मत का प्रतिपादन नहीं करते हैं। फलस्वरूप इसके रचना-काल के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित अभिव्यक्ति नहीं देखी जाती है। श्री विन्टरनित्स ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि—"दुर्भाग्यवश हमें जातकट्ठकथा के काल निर्णय सम्बन्धी कोई दिशा नहीं है और यही बात निदानकथा के सम्बन्ध में भी है"।[१] बम्बई विश्वविद्यालय से प्रकाशित (१९३५) निदानकथा की भूमिका में उसके रचना काल का विवेचन किया गया है।[२] वहां भी प्रथमतः यह कहा गया है कि "यस्मात् जातकट्ठकथा के काल का ही निश्चय नहीं हो पाया है, अतः निदानकथा के काल के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता है। हां, इतना अवश्य कथित है कि यह उस काल की रचना है, जब कि हीनयान परम्परा धराशायी हो रही थी तथा महायान का उदय हो रहा था। गौतम बुद्ध के सामान्य जीवन का रूपान्तरण विविध देवत्व उपकरणों से युक्त अपूर्व रूप में हो चला था। जीवन की चरम उपलब्धि जो अर्हत्व तक सीमित थी, वह शनैः शनैः क्षीण होती जा रही थी तथा उसके स्थान पर बोधिसत्व की कल्पना स्पष्टतर हो चली थी। चिन्तन-प्रवाह का यह रूप भारतीय इतिहास के ईसा से एक सौ वर्ष पूर्व या एक सौ वर्ष पश्चात् देखा जा सकता है। इस दृष्टि से निदानकथा का काल प्रथम शताब्दी ई० पू० तथा प्रथम शताब्दी के मध्य माना जा सकता है। यस्मात् निदानकथा जातकअट्ठकथा का आदि भाग है, फलतः उसका भी वही काल हो सकता है। यद्यपि लेखक की यह कल्पना कुछ अन्तरंग प्रमाणों पर आधृत है, पर इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। जो पालि जातकट्ठकथा हमें प्राप्त है, उसके ईसा के प्रथम शतक पूर्व या बाद में रचे जाने की कोई परम्परा उपलब्ध नहीं है।

पूर्व पृष्ठों में इसके लेखक के प्रश्न पर विचार किया जा चुका है। तदनुसार यह आचार्यबुद्धघोष की कृति सिद्ध होती है। फलतः इसका रचना काल आचार्य बुद्ध घोष का काल कहा जा सकता है। गन्धवंश भी इस तथ्य का प्रतिपादक है। इसे लक्ष्य कर श्री विन्टरनित्स महोदय ने कहा है कि—"यदि यह बात ठीक है, तो यह पञ्चम शताब्दी की रचना हो सकती है।"[३]

---

१. History of Indian Literature, Vol. 2, 189.

२. निदान कथा—भूमिका पृ० ४.

३. History of Indian Literature, Vol. II. pp. 189-90.

आचार्य बुद्धघोष के काल के प्रश्न पर प्रभूत विवेचन उपलब्ध है।[1] अन्तः एवं बाह्य प्रमाणों के आधार पर उनका काल पांचवीं शताब्दी माना जाता है। कहा जाता है कि बुद्धघोष ने लंका के राजा महानाम के राजत्वकाल में लंका जाकर अट्ठकथायें लिखी थीं। महानाम का समय ४१०–४३२ ई० या ४१३-४३५ ई० माना जाता है। इसलिए बुद्धघोष का काल भी यही हो सकता है। इसकी पुष्टि एक दूसरे उत्स से भी देखी जाती है। बुद्धघोष लिखित विनय-अट्ठकथा समन्तपासादिका का पालि से चीनी भाषा में प्रथम अनुवाद ४८९ ई० में हो चुका था।[2] इससे सिद्ध होता है कि बुद्धघोष की रचनायें उसके पूर्व में हो चुकी थीं। इस दृष्टि से बुद्धघोष का काल पञ्चम शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है।

श्री गायगर महोदय ने महावंस के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में काल, कर्तृत्व एवं राजवंश परम्परा सम्बन्धी एक विद्वत्तापूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है। उन्होंने भगवान बुद्ध का निर्वाण काल ४८३ ई० पूर्व माना है। इस पृष्ठभूमि में महावंस की सामग्री का सम्यक् आकलन कर महानाम का काल ४५८-४८० ई० सिद्ध होता है।[3] सद्धम्मसङ्गहो के अनुसार त्रिपिटक के लिपिबद्ध होने के पांच सौ सोलह वर्ष बाद महानाम लंका में राजा हुए थे।[4] त्रिपिटक का लिपिबद्धकरण भगवान बुद्ध के निर्वाण के चार सौ तैतीस वर्ष बाद वट्टगामिनी के समय हुआ था।[5] इस प्रकार महानाम का काल भगवान के

१. B. C. Law, The Life and work of Buddhaghosha; Max Muller in S. B. E 10 (I), pp.XII-XXIV; T. W. Rhys Davids in E. R. E. II, 885 ff; The "biography" written by Mahamangala; Winternitz-History of Indian Literature, Vol. II, Appendix-IV pp. 609-11;
Gieger, pali Literature and Language, pp. 28-35;
B. C. Law History of Pali Literature, Vol. II, pp. 380-95;
Malalasekera, Dictionary of Pali proper names Vol. II, pp. 306-7;
Bharata Singh Upadhyaya, Pali Sahitya Kā Itihās pp. 536-60.

२. J. R. A. S, 1896, 415 ff.

३. p. XXXVI ff.

४. ततो पिटकत्तयलिखितत्तो पञ्चसु वस्ससतेसु सोलसवस्सेसु अतिक्कन्तेसु महानामो नाम राजा लङ्कादीपे रज्जं कारेसि। पृ० २९.

५. सम्बुद्धपरिनिब्बाना, चतुवस्ससतेसु च।
तेत्तिसेसतिक्कन्तेसु, राजाहुवट्टगामिनी॥ स० सं० पृ० २७.

निर्वाण से नव सौ उन्चास वर्ष बाद माना जा सकता है। इस क्रम से महानाम का काल ९४९–४८३ = ४६६ ई० होता है। जो हो, ये सभी उत्स इस तथ्य के परिचायक हैं कि महानाम ने पाँचवीं शताब्दी में लंका में राज्य किया था। यस्मात् उनके राजत्व काल में आचार्य बुद्धघोष का लङ्का का कार्यकलाप सिद्ध है, अतः बुद्धघोष का काल पाँचवीं शताब्दी मानना युक्त है, यद्यपि उसका पूर्वार्द्ध या उत्तरार्द्ध विवादास्पद है।[1] जब बुद्धघोष पाँचवीं शताब्दी के लेखक सिद्ध हैं, तो जातकअट्ठकथा का रचनाकाल भी वही माना जा सकता है। फलतः निदानकथा को पाँचवीं शताब्दी की रचना कहा जा सकता है।

५. निदानकथा

निदानकथा जातकट्ठकथा की भूमिका है।[2] यह उक्त अट्ठकथा का आदि एवं प्रमुख अंश है। जिस सिद्धान्त के प्रतिपादन एवं स्पष्टीकरण-स्वरूप समस्त जातकों का प्रणयन हुआ है, उसकी आदिभूत भित्ति निदानकथा में वर्णित है। यहाँ उन दृष्टिकोणों का उन्मेष है, जिनके प्रकाश में जातक कथाओं के अध्ययन में सरल बोधगम्यता की उपलब्धि होती है। इसमें दूरेनिदान, अविदूरेनिदान एवं सन्तिकेनिदान नामक तीन निदानों द्वारा चौबीस बुद्धों का जीवनवृत्त उपस्थित करते हुए गौतम बुद्ध के चार असंखेय्य एक लाख वर्ष की जीवन-चर्या वर्णित है, जो सुमेध पण्डित की कथा से प्रारम्भ हो, बुद्धत्व लाभ के अनन्तर अनाथपिण्डिक द्वारा प्रदत्त जेतवन विहार की स्वीकृति में पर्यवसित होती है।

(१५) अर्थ एवं सार्थकता

पालि साहित्य में निदान शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हुआ है। कारण, फल, आधार, प्रारम्भ, उत्स, निहित उद्देश्य, भूमिका, घटनाबन्ध, सार, अवसर

१. History of Indian Literature, Vol. II pp. 610-11.

२ The whole work is preceded by an introduction called the Nidānakathā, which contains the story of the Buddha in his earlier existence and in his last birth up to the dedication of the Jetavana in Savatthi. —Gieger, pp. 30-31

......there is, however, no connected life story of the Buddha until we come to the Nidānakathā, the 'Narrative of the Beginnings', which precedes the Jātakaṭṭhavaṇṇanā, and forms a part of this great commentary work. —Winternitz, p. 186.

.........जातक के आदि में निदानकथा उपोद्घात है।

—भरतसिंह उपाध्याय, पृ० ३०८.

आदि इसके पर्याय कहे जाते हैं।[1] प्रकृत प्रसंग में यह इन समस्त अर्थों की पृष्ठभूमि के साथ प्रयुक्त प्रतीत होता है।

निदान शब्द की व्युत्पत्ति 'नि' उपसर्ग के साथ 'दा' धातु एवं ल्युट् प्रत्यय के योग से की जाती है। 'दा' यहां अवखण्डन का द्योतक है। 'नि' उपसर्ग निषेधार्थक है। अतः 'नि' के साथ 'दा' के योग से जिस अर्थ की सिद्धि होती है, वह है—बांधना, आबद्ध करना आदि।[2] पुनः इनके साथ 'ल्युट्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न शब्द निदान का अर्थ होता है—अनुबन्धन, क्रमानुबन्धन आदि। अतः वह कथा, जो (बुद्ध के) जीवन की विभिन्न घटनाओं को क्रम से अनुबन्धित करे, निदानकथा कही जा सकती है।[3]

---

१. Dictionary of Pali Language childers, pp. 278-79;
Pali English Dictionary-Rhys Davids, p. 194;
Buddhist Hybrid Sanskrit Grammar and Dictionary, Vol. II, pp. 296-97.

२. निदानं बन्धनम्—ऋग्वेद, षष्ठ मण्डल, सूक्त ३२, मन्त्र २, पृ० ११७।

× × ×

नि + दा (दाने) + करणे ल्युट् = निदानम् = आदिकारणम्;
नि + दो (अवखण्डने) भावे ल्युट् = निदानम् = कारणक्षयः;
नि + दैप् (शोधने) + भावे ल्युट् = निदानम् = शुद्धिः
—हलायुधकोशः पृ० ३९१.

× × ×

दा त्ववखण्डने—कच्चानव्याकरण, पृ० ३७९.

× × ×

संदानम्……दोहनकाले पादबन्धनरज्जोः।—अमरकोष, पृ० ३२६.

× × ×

Nidana, ni+dāna of dā, dyati to bind, tying down to.
—Pali English Dictionary, p. 194.

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा।
सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगानं पञ्चधा स्मृतम्॥
निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः।
निदानमाहु पर्य्यायैः प्राग्रूपं येन लक्ष्यते॥ शब्दकल्पद्रुम, २.८८१.

३. The word Nidāna suggests something serial or connected in a line. 'Dā' to bind, tying down, source, origin, cause and 'ni' means 'along', which means a chain or series of

निदान शब्द का अर्थ भूमिका के रूप में भी देखा जाता है। 'नि' उपसर्ग यहां 'आधार' पृष्ठभूमि आदि का द्योतक है।[1] अतः वह कथा जो किसी की पृष्ठभूमि, आधार आदि प्रदान करे, वह निदान कथा है। इस दृष्टि से जातकों में वर्णित सिद्धान्तों के उत्तानिकरण रूप में यह कथा उनकी पृष्ठभूमि प्रदान करती है। फलतः निदानकथा भूमिका का परिचायक है[2]—(निदीयते आधारदानं क्रियते अनेन इति तत् निदानम्)।

श्री विन्टरनित्स ने निदानकथा का अंग्रेजी पर्याय "Narrative of the Beginnings" दिया है। पुनः इस पर टिप्पणी प्रस्तुत करते हुए उन्होंने निदान का अर्थ "कारण, उत्पत्ति अर्थात् प्रारम्भ" बतलाया है। 'प्रारम्भ' से उनका अभिप्राय बुद्ध की जीवन-चर्या का प्रारम्भ है[3]। अतः जिसमें बुद्ध की प्रारम्भिक जीवनचर्याओं का वर्णन है, वह है—निदानकथा।

निदान शब्द कारण एवं फल के अर्थ में बहुलतया प्रयुक्त है।[4] निदान-

---

astonishing events and miracles in the life of one individual, here the Buddha.
—Introduction to Nidānakathā (Bombay edition) p. 2.

१. निः स्यात् क्षेपे च नित्यार्थे भृशार्थाश्रयराशिषु।
कौशले बन्धने मोक्षे संशये दारुकर्मणि॥ २९॥
अधोभावोपरमयोः संनिधानेऽव्ययो मतः।
—अभिधानचिन्तामणिकोश (एकाक्षरकोश, पृ० १४)

२. निदानं मूलकारणम्। ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त११४, मन्त्र, २

× × ×

यथा अनेकेसु सुत्तसहस्सेसु "एकं समयं भगवा राजगहे विहरती" ति आदि नयेन निदानं सज्जितं एवं अस्सा पि निदानं सज्जितं भवेय्या ति।
अ० सा०, पृ० २५.

× × ×

एवं मे सुतं ति आदिकं आयस्मता आनन्देन पठममहासंगीतिकाले वुत्तं निदानं।

३. ……Nidāna kathā, the Narrative of the Beginnings … i. e. of the beginnings of Buddha's career. Nidāna means "cause", "origin", hence also beginnings. f. n. 3.
—History of Indian Literature, Vol. II, p. 186.

४. निदानम् आदिकारणम्। यागे अप्रवृत्तस्य प्रवर्त्तकं फलम्। ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त १३०, मन्त्र ३.

कथा के विषय-विश्लेषण से प्रकट होता है कि इसकी कथाओं में पुण्यकर्मों के फलस्वरूप सद्गति-प्राप्ति-विषयक सिद्धान्त प्रतिपादित हैं। यहाँ पुण्य कर्म कारण हैं तथा सद्गति या तज्जन्य आध्यात्मिक उपलब्धि कार्य या फल हैं। इस दृष्टि से कारण के अनुरूप फल की उपलब्धि-गमक कथा के संधारक ग्रन्थ का युक्त अभिधान निदानकथा प्रतीत होता है।

निदान का अन्य अर्थ विनिश्चयकरण भी होता है—"निदीयते निच्छियते अनेना ति निदानं"।[1] इस दृष्टि से बुद्धकारक धर्मों के विनिश्चयकारक कथा का नाम निदानकथा कहा जा सकता है।

कंखावितरिणी गण्ठि में निदान का प्रयोग स्पष्टतर निदर्शन के अर्थ में देखा जाता है।[2] वैसे कथन जो विविध प्रसगों के निदर्शन द्वारा अविदित को विदित कराते हैं, निदान शब्द से अभिहित होते हैं। यहां गौतमबुद्ध-पूर्व चौबीस बुद्धों के सामान्यतया-अविदित जीवनवृत्तों को विदित कराने तथा गौतम बुद्ध के सुमेध-तापस-काल से लेकर सिद्धार्थ-काल में बुद्धत्वलाभ तक की चार असंखेय्य एक लाख वर्ष की जीननचर्या को उद्भासित करने के कारण यह कथा निदर्शन कृत्य का सम्पादन करती है। फलतः निदानकथा कही जाती है।

इस प्रकार निदान शब्द के कुछ अर्थों पर विचार किया गया। ये सभी अर्थ दृष्टि-भेद से युक्त प्रतीत होते हैं, तथा निदानकथा की सार्थकता के परिचायक हैं। पर उक्त ग्रन्थ के विषय-विश्लेषण के आधार पर ऐसा कथन अधिक संगत प्रतीत होता है। निदानकथा में गौतम बुद्ध के पूर्व जन्मों का

पठमस्स पाराजिकस्स वत्थुम्पि पुच्छि, निदानम्पि पुच्छि।

समन्तपासादिका, पृ० १४.

नत्थि ततो निदानं पुञ्ञं..........दी० नि० १।४६

ततो निदानं लभेथ पामुज्जं..........।—दी० नि० १-६३

कारणं हि यस्मा फलं निदेति—हन्द, नं गण्हथा ति अप्पेति विय, तस्मा निदानं ति वुच्चति। पटिसम्भिदामग्ग-अट्ठकथा, २,२०२.

× × ×

हन्द, नं गण्हथा ति दस्सेन्तं विय अत्तनो फलं निदेती ति निदानं। यमक-अट्ठकथा पृ० ३.

× × ×

निददाति फलं ति वा निदानं। अभिधानप्पदीपिका टीका, पृ० ९३.

१. अभिधानप्पदीपिकाटीका, पृ० ९३.

२. निददाति देसनं देसादिवसेन अविदितं विदितं कत्वा निदस्सेती ति निदानं, पृ० ७४.

विवरण है। देखा जाता है कि उन्होंने चार असंखेय्य एक लाख वर्ष पूर्व सुमेध ब्राह्मण के रूप में बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए अभिनीहार किया था। तदनन्तर उन्होंने विभिन्न रूपों में चौबीस बुद्धों से व्याकरण प्राप्त कर बुद्धकारक धर्म पारमिताओं का परिपाचन करते हुए सम्यक् सम्बोधि का साक्षात्कार किया। इस प्रकार यह सम्पूर्ण पुस्तक सुमेध तापस के अभिनीहार तथा सिद्धार्थ गौतम द्वारा बोधिलाभ नामक दो विन्दुओं के मध्य विवृत है। धर्म-चक्र-प्रवर्तन तथा अनाथपिण्डिक द्वारा जेतवन के दान नामक अन्य घटनाओं का उल्लेख बुद्ध के साथ धर्म एव संघ का अभिन्न योग दर्शाने के लिए प्रसंगवश है। वस्तुतः सम्पूर्ण विवरण बोधिलाभ के पूर्व की चर्याओं का आकलनमात्र है। इससे फलित होता है कि निदान शब्द का प्रसंग-सांनिध्य-सम्पन्न अर्थ 'पूर्व' हो सकता है।[1] फलतः निदानकथा को पूर्व-कथा अर्थात् गौतम बुद्ध एवं अन्य बुद्धों की पूर्व-कथा कहा जा सकता है।

(१६) विषयवस्तु

निदानकथा का कथानक तीन निदानों में विभक्त है। वे हैं—दूरे-निदान, अविदूरे-निदान तथा सन्तिके-निदान।[2] इनमें भगवान् दीपंकर के चरणों में बोधिसत्त्व द्वारा कृत अभिनीहार से लेकर वेस्सन्तर-जन्म के अनन्तर तुसितपुर में निर्वृत्ति तक की कथा दूरे-निदान नाम से अभिहित है। पुनः तुसितपुर से आ सिद्धार्थ गौतम के रूप में जन्म ले बोधिमण्ड में सर्वज्ञता की प्राप्ति तक की कथा अविदूरे-निदान है। बुद्धत्व-प्राप्ति के अनन्तर चारिका-क्रम से पैंतालीस

---

१. निदानमाहुः पर्य्यायैः प्राग्रूपं येन लक्ष्यते।

शब्दकल्पद्रुम २,८८१.

२. दूरे-निदानं अविदूरे-निदानं सन्तिके-निदानं ति तीणि निदानानि। तत्थ दीपंकरपादमूलतो पट्ठाय याव तुसितपुरा दूरे-निदानं वेदितब्बं। तुसितपुरतो पट्ठाय याव बोधिमण्डा अविदूरेनिदानं। एकं समयं भगवा देवेसु विहरति...... कथेसी ति सन्तिके-निदानं। अ० सा० पृ० ३१.

× × ×

दीपंकरपादमूलस्मिं हि कताभिनीहारस्स महासत्तस्स याव वेस्सन्तरत्तभावा चवित्वा तुसितपुरे निब्बत्ति ताव पवत्तो कथामग्गो दूरे-निदानं नाम। तुसित-भवनतो पन चवित्वा याव बोधिमण्डे सब्बञ्ञुतप्पत्ति ताव पवत्तो कथामग्गो अविदूरे-निदानं नाम। महाबोधिमण्डे सब्बञ्ञुतापत्तितो याव महापरनिब्बानमञ्चा यस्मिं यस्मिं ठाने भगवा विहासि इदं सन्तिके-निदानं नाम।

नि० क० पृ० ४,११६,१९०.

वर्षों तक धर्मामृत का वर्षण करते हुए अस्सी वर्ष की अवस्था में कुसीनारा के मल्लों के सालवन में यमकसाल वृक्षों के नीचे महापरिनिर्वाणमञ्च पर विपन्न अवस्था तक की कथा सन्तिके-निदान कही जाती है।

इनमें दूरे-निदान में सुमेध ब्राह्मण की कथा, उनका निर्वेद, प्रव्रज्या, बुद्धकारक धर्मों का वर्णन, चौबीस बुद्धों का जीवन-वृत्त तथा पारमिताओं के परिपाचन का विवरण है।

अविदूरे-निदान सर्वप्रथम बोधिसत्त्व को तुसितपुर में दर्शाते हुए उन्हें मनुष्य रूप में जन्म लेने के लिए देवताओं द्वारा याचना से प्रारम्भ होता है। पुनः बोधिसत्त्व का सिद्धार्थ के रूप में जन्म, ब्राह्मणों द्वारा भविष्य-कथन, उद्यान जाते समय चार निमित्तों का दर्शन, निर्वेद, गृहत्याग, तपश्चर्या, सुजाता की खीर, बोधिमण्डाभिरोहण, मार-पराजय तथा बुद्धत्व-लाभ का विवरण प्रस्तुत करता है।

सन्तिके-निदान की प्रवृत्ति बुद्धत्व प्राप्ति के अनन्तर सात सप्ताह तक विमुक्ति सुख के अनुभवन से होती है। पुनः तपस्सुभल्लिक का उपासकत्व-लाभ, ब्रह्मयाचन, धर्मचक्रप्रवर्तन, चारिका-विधान, राजगृह-गमन, राजगृह से श्रावस्ती के लिए प्रस्थान की कथायें हैं। अन्तिम विवरण अनाथ-पिण्डिक द्वारा जेतवन नामक विहार का निर्माण करवा बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ के लिए दान तथा बुद्ध द्वारा उसकी स्वीकृति से सम्पन्न होता है। इस प्रसंग को प्राप्त कर निदानकथा समाप्त हो जाती है।

विषय-वर्णन को यहाँ प्राप्त कर एक प्रश्न उत्पन्न होता है। जब निदान-कथा का उद्देश्य बुद्ध या बुद्धों के जीवनवृत्त को उपस्थित करना है, तथा वह अन्यान्य बुद्धों की जीवन-चर्याओं का उल्लेख करते हुए उनके महापरिनिर्वाण तक का विवरण प्रस्तुत करती है, तो गौतम बुद्ध के जीवन-चर्चा करते हुए जेतवन की स्वीकृति प्रसंग तक ही क्यों कथा समाप्त हो जाती हैं? यहाँ आगे के वृत्तान्तों का वर्णन तथा महापरिनिर्वाण का उल्लेख क्यों नहीं है? इससे तो उनका जीवनवृत्त अधूरा ही रह जाता है।

इसका उत्तर यह है कि निदानकथाकार का उद्देश्य वस्तुतः गौतम बुद्ध के सम्पूर्ण जीवन का चित्र उपस्थित करना नहीं है, वरन् उसे यह दर्शाना है कि किस प्रकार एक सामान्य मनुष्य बुद्ध हो सकता है। इसलिए सिद्धार्थ को एक सामान्य मनुष्य की भांति शुद्धोदन-कुल में उत्पन्न दर्शाते हुए उनकी परिणति बुद्ध में दर्शाया है। अतः जिस उद्देश्य से बुद्ध के जीवन-वृत्त का पल्लवन हुआ है, उसकी परिपूर्ति बुद्धत्व-लाभ में ही हो जाती है। धर्मचक्रप्रवर्तन तथा जेतवनविहार की स्वीकृति के प्रसंग बुद्ध के साथ धर्म एवं संघ की संगति दर्शाने मात्र के लिए हैं।

(१७) निदानकथा के उत्स

यह एक सुप्रसिद्ध परम्परा है कि जब आचार्य बुद्धघोष त्रिपिटक पर भाष्य लिखने के उद्देश्य से लंका गये तो उनके सामने विनय सुत्त तथा अभिधर्म पर सिंहली भाषा में लिखी तीन अट्ठकथायें कुरुन्द-अट्ठकथा, महा-अट्ठकथा तथा महा-पच्चरी-अट्ठकथा विद्यमान थीं। उन्होंने इन अट्ठकथाओं का मागधी अर्थात् पालि में रूपान्तर कर समन्तपासादिका, सुमंगलविलासिनी आदि अट्ठकथायें लिखीं।[1] इन तीन के अतिरिक्त भी अन्धकट्ठकथा, संखेपट्ठकथा, आगमट्ठकथा आदि के नाम यत्र तत्र मिलते हैं। इस ग्रन्थ के लेखक ने स्वयं एक जातकट्ठकथा के होने की चर्चा की है।[2] संभवतः इस प्रसंग को लक्ष्य कर श्री विन्टरनित्स ने पालि जातकट्ठकथा के सिंहली अनुवाद के पुनः पालि रूपान्तरितरूप को जातकट्ठ-वण्णना बतलाया है।

इस परम्परा के साथ विषयावलोकन से प्रकट होता है कि निदानकथाकार को त्रिपिटक में निहित मूल उत्स भी विदित थे। उन्होंने अपने ग्रन्थगत विवरण को प्रमाणनिष्ठ दर्शाने के लिए पिटक-साहित्य से भी पूर्ण सहायता ली है। यह पुस्तक मुख्यतः बुद्धवंस तथा चरियापिटक पर आधृत है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मानों इनके कुछ अंशों की अट्ठकथा हो।

निदानकथा में आगत सुमेध का जीवनवृत्त बुद्धवंस के द्वितीय अध्याय में वर्णित 'सुमेधपत्थनाकथा' से प्रचुरतया उद्धृत है। पुनः चौबीस बुद्धों की कथा तथा गौतम बुद्ध के जीवन के विस्तृत वृत्तान्तों की पृष्ठभूमि बुद्धवंस में स्पष्टतया देखी जा सकती है।[3]

इसी प्रकार दीघनिकाय के महापदानसुत्त, मज्झिमनिकाय के बोधिराज कुमारसुत्त······सुत्तनिपात के पधानसुत्त, पारायनवग्ग की वत्थुगाथा, संयुत्तनि-काय का धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त, विनयपिटक के महावग्ग में वर्णित बोधिकथा, धम्म-चक्कप्पवत्तनं, सारिपुत्तमोग्गल्लानपब्बज्जा, राहुलवत्थु तथा चुल्लवग्ग की अनाथ-पिण्डिककथा आदि ऐसे स्थल हैं, जो आकरवत् उन वृत्तान्त मणियों को संजोये हैं,

---

१. बुद्धघोसो कुरुन्दट्ठकथं सीहळभासं परिवत्तेत्वा मूलभासाय मागधिकाय निरुत्तिया समन्तपासादिका नाम विनयपिटकट्ठकथा अकासि।
स० सं० पृ० ३४-३५.

२. नि० क० पृ० १५६.

३. खुद्दकनिकाय, भाग ७, २९७-४२० (नालन्दा संस्करण)

जिनका संचयन कर लेखक ने निदानकथारूप बुद्धजीवनवृत्तमाला का निर्माण किया है।

(१८) प्रतिपाद्य विषय

निदानकथा के प्रणयन में एक सुव्यवस्थित योजना है। कथा के आदि-विन्दु पर एक ऐसा मानव का चित्र है, जो भौतिकता के सभी उपकरणों से सम्पन्न लौकिक प्रभा से विरोचित है। अन्तिम विन्दु पर पुनः दूसरा मानव है, जो इन समस्त भौतिक सम्पदाओं से विरत शुद्ध, बुद्ध, मुक्त लोकोत्तरत्व-विहारी हो प्रभासित होता है। इन दो विन्दुओं के मध्य में उस मार्ग का कथन है, जो आदि-विन्दु-अवस्थित मानव का अन्त-विन्दु-स्थित मानव में परिणति में सहायक है। मार्ग-कथन-क्रम में क्रमिक विकास की अवस्थायें तथा तद् तद् अवस्था के सहायक एवं बाधक अन्य धर्म कथित हैं। वह आदि-विन्दु स्थित मानव हैं—सुमेध-ब्राह्मण तथा अन्त-विन्दु स्थित मानव हैं—गोतम बुद्ध। मध्य की अवस्था हैं—बोधिसत्त्वभाव। एक सामान्य मनुष्य की बुद्ध के रूप में परिणति में सहायक धर्म हैं—पारमितायें तथा इसके बाधक तत्त्व हैं-मार एवं उसकी सेना। सम्यक् प्रतिपन्नता है उन पर विजय तथा अन्य बुद्धों की कथायें हैं अवश्यंभावी साफल्य-ध्वज। इन्हीं सरणियों से निदानकथा प्रवाहरत है। फलतः प्रकृत प्रसंग में इसके विषयवस्तु का संक्षिप्त परिचय देने के लिये बोधिसत्त्व, पारमिता, बुद्ध, मार आदि विवेच्य हैं।

६. बोधिसत्त्व

बौद्धपरम्परा में एक अपूर्व व्यक्तित्व की चर्चा उपलब्ध है। वह एक ऐसा प्राणी है, जो पूर्ण अनासक्ति के साथ अपने सर्वस्व का परित्याग कर प्राणिमात्र के कल्याणार्थ सदा सत्कर्म-रत देखा जाता है। उसके सामने 'स्व-विषयक' चिन्ता पूर्णतः उन्मूलित रहती है तथा केवल उद्भूत रहती है भावना बहुजन-हिताय, बहुजनसुखाय की। अपने शरीर, मन एवं वाणी की दारुण दुःख वेदनायें उसे तनिक भी विचलित नहीं कर पाती हैं, पर क्षण भर का भी पर-दुःख उसे असह्य हो उठता। ऐसे अलौकिक व्यक्तित्व का नाम है—बोधिसत्त्व।

बोधिसत्त्व दो शब्दों से निष्पन्न है। वे हैं—बोधि तथा सत्त्व। बोधि शब्द सम्यक् ज्ञान, लोकोत्तर प्रज्ञा, सर्वज्ञता, सम्यक् सम्बोधि आदि का अधिवचन है। सत्त्व का अभिप्राय प्राणी, मनुज मानव आदि से है। अतः बोधिसत्त्व से एक ऐसे प्राणिविशेष का द्योतन होता है, जो सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति का अभीप्सु हो। स्पष्ट शब्दों में सम्बोधि लाभ के अनन्तर बुद्ध या सम्यक् सम्बुद्ध नाम से अभिज्ञात पुरुषविशेष के पद बुद्धत्व के लाभ की इच्छा से सम्यक् मार्ग प्रतिपन्न

सत्त्व को बोधिसत्व कहा जाता है। इसे बुद्धत्व का अभ्यर्थी भी कहा जा सकता है।[1]

प्राणिमात्र के मूलभूत दुःख-जन्म, जरा, व्याधि एवं मरण के अशेष प्रहाण के उद्देश्य से बोधिसत्त्व की चर्या प्रारम्भ होती है। तत्साधक बुद्धत्व की प्राप्ति उसका पर्यवसान है। इस प्रकार उनका जीवन-क्रम एक सामान्य पुरुष से प्रारम्भ कर बुद्धत्वलाभ में पर्यवसित होता है। प्रारम्भक्षण एवं अधिगमक्षण के बीच एक लम्बी अवधि होती है, जो अनेक जन्मों के अध्व से संसरित होती है। इस अवधि में बोधिसत्त्व के उदात्त भावनाओं से ओतप्रोत अनेक कार्य देखे जाते हैं, जो उनकी विविध गति एवं योनियों के इतिवृत्त हैं। ये अनुत्पन्न अकुशल धर्मों के अनुत्पादन, उत्पन्न अकुशलधर्मों के प्रहाण, अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पादन एवं उत्पन्न कुशल धर्मों के अभिवर्द्धन क्रम से अनेक दोषों के मार्जन एवं गुणों के संवर्द्धन स्वरूप हैं। इनका अति संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित प्रकार है—

(१९) अभिनीहार

बुद्धत्व-लाभ के लिए किये गये दृढ़ संकल्प को अभिनीहार कहते हैं। बुद्धगुणों से पूर्णतः परिचित हो बोधिसत्त्व किसी बुद्ध के सम्मुख ऐसा दृढ़ संकल्प करते हैं। निदानकथा से प्रकट है कि सुमेध तापस के रूप में विद्यमान बोधिसत्त्व ने दीपंकर बुद्ध के सम्मुख बुद्धभाव के अधिगम के लिए संकल्प किया था। दीपंकर दसबल की बुद्धश्री को अपने चक्षुपथ में पा उनका मन इस प्रकार चिन्तनोन्मुख हो उठा—"यदि मैं चाहूँ तो समस्त चित्तमलों को नष्ट कर भिक्षुवेष में रम्मनगर में प्रविष्ट हो सकता हूँ, पर अज्ञात रूप से चित्तमलों को विनष्ट कर परिनिर्वृत होना मेरा ध्येय नहीं है। मेरे लिये यही उचित है कि दीपंकर बुद्ध के समान परम अभिसम्बोधि की प्राप्ति कर धर्मनौका से जनसमूह को संसार सागर से पार उतारने के बाद स्वयं निर्वाण प्राप्त करूँ।"[2] बोधिसत्त्व का ऐसा दृढ़ संकल्प ही अभिनीहार कहलाता है।

यह संकल्प सामान्य संकल्पों के सदृश नहीं होता है। इसमें छन्द अर्थात्

---

१. मय्हं पि, खो ब्राह्मण, पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो एतदहोसि। म० नि० १–२३.

२. किम्मे अञ्ञातवेसेन, धम्मं सच्छिकतेनिध।
सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा, बुद्धं हेस्सं सदेवके॥
संसारसोतं छिन्दित्वा, विद्धंसित्वा तयोभवे।
धम्मनावं समारुय्ह, सन्तारेस्सं सदेवके॥ नि० क० ३४.

इच्छा का प्राबल्य रहता है। "जलमय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने बाहुबल से तैर कर पार करने, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त वेळुगुम्ब को हटा पैरों से मर्दन करते हुए अग्रसर होने, तीक्ष्ण असिधार से आच्छादित समस्त पृथ्वी को पैरों से मर्दन करते पार जाने, तथा रक्तवर्ण के लहलहाते अंगारों से आवृत्त पृथ्वीमण्डल को पाद से मर्दन करते हुए बढ़ने की दृढ़ इच्छा के समान ही महान् इच्छा, अदम्य उत्साह, अनवरत यत्न, एवं सत् पर्येषणा से युक्त यह बुद्धत्व की प्राप्ति का संकल्प होता है।" ऐसे गुणों से विशिष्ट होने के कारण यह अभिनीहार कहलाता है।

(२०) व्याकरण

बोधिसत्त्व द्वारा बुद्धभाव के लिए ऐसा अभिनीहार किये जाने के अनन्तर बुद्ध अपने अप्रतिहत ज्ञान से उनके भविष्य का अवलोकन करते हैं। उनकी भूत एवं भाव्य चर्याओं का विश्लेषण करते हुए यदि उनके द्वारा उक्त पद की प्राप्ति की सम्भावना देखते हैं, तो वे एतद्विषयक कल्याण वाक्य का उद्गिरण करते हैं कि 'ये इतने दिनों के अनन्तर बुद्ध होंगे।' बुद्ध का ऐसा कल्याण वाक्य 'व्याकरण' कहलाता है। भगवान दीपंकर ने कृत-अभिनीहार-कललपृष्टनिपन्न बोधिसत्त्व को देख कहा था कि—'आज से चार असंखेय्य एक लाख कल्प के व्यतीत होने पर ये गौतम नामक बुद्ध होंगे'।[1] इसके अतिरिक्त भी बोधिसत्त्व ने अपने बोधिसत्त्वजीवन के सुदीर्घ क्रम में जिन-जिन बुद्धों का साक्षात्कार किया, उन सबों ने उनके बुद्ध होने के कल्याण वाक्य का उद्घोष किया। इन समस्त बुद्धों द्वारा बोधिसत्त्व के विषय में कहे गये ऐसे वचन व्याकरण कहलाते हैं।

(२१) अभिनीहार की मूलभूत आवश्यकतायें

बुद्धत्वलाभ के साधक कुछ मूलभूत आवश्यकतायें हैं। इनके सर्वांग सहयोग से ही अभिनीहार की सिद्धि हो सकती है। वे आठ हैं। यथा—मनुष्यभाव, लिंगसम्प्राप्ति, हेतु, शास्ता का दर्शन, प्रव्रज्या, गुणसम्प्राप्ति, अधिकार तथा छन्दता[2]।

बुद्धत्वलाभ के लिए जो प्रथम आवश्यकता बतलायी जाती है, वह है मनुष्य योनि में जन्म लेना। मनुष्य के रूप में ही कोई बुद्ध हो सकता है, नाग, गरुड़ या किसी देवता के रूप में नहीं।

---

१. इतो कप्पसतसहस्साधिकानं चतुन्नं असंखेय्यानं मत्थके गोतमो नाम बुद्धो भविस्सति। नि० क० ३८.

२. मनुस्सत्तं लिंगसम्पत्ति, हेतु सत्थारदस्सनं।
पब्बज्जा गुणसम्पत्ति, अधिकारो च छन्दता॥ नि० क० ३४.

दूसरी आवश्यकता लिंगसम्प्राप्ति अर्थात् पुरुषलिंग की प्राप्ति है। मनुष्य योनि में भी पुरुष ही बुद्धत्व का अधिकारी है, स्त्री, नपुंसक या उभयलिंगी नहीं।

हेतु का अभिप्राय बुद्धबीज से है। मनुष्य योनि में उत्पन्न सभी पुरुष बुद्ध नहीं हो सकते हैं, वरन् जो बुद्धबीज से उपेत है, उसी को बुद्ध होने की संभावना है। बोधिसत्त्व के सम्बन्ध में ऐसे वचन देखे जाते हैं—कि 'तपस्वी सुमेध बुद्धबीज, बुद्धअंकुर वाले हैं।[1] ऐसा होना तृतीय आवश्यकता है।

चतुर्थ आवश्यकता शास्ता का दर्शन है। कहा जाता है कि अभिनीहार की सिद्धि तब ही इष्ट है, जब वह बुद्ध के सम्मुख किया जाय। बुद्ध के परिनिर्वृत होने पर इसके लिए यथेष्ठ स्थान कोई चैत्य या बोधिवृक्ष कहा गया है।

गृहीजीवन बाधाओं से पूर्ण रजपथ कहा गया है। इसमें रहते हुए बुद्धत्व-लाभ संभव नहीं। अतः तदोद्देश्य प्रव्रजित होना पञ्चम आवश्यकता है।

गुणसम्प्राप्ति से यहाँ दो प्रकार के गुण अभिप्रेत हैं। वे हैं—पांच अभिज्ञा तथा आठ समापत्ति। इन दो से युक्त पुरुष ही बुद्धत्वगवेषी हो सकता है, इनसे विरहित नहीं। अतः इसे एक मूलभूत आवश्यकता कहा गया है।

अधिकार शब्द शक्ति या बल का द्योतक है। उक्त गुणों से उपेत ही मनुष्य बुद्ध के लिए अपने सर्वस्व का उत्सर्ग कर देता है। उसके ऐसे त्यागपूर्ण कार्यों से जिस शक्ति का संचय होता है, उसे अधिकार कहते हैं। ऐसा अधिकार सप्तम आवश्यकता के रूप में चर्चित है।

अष्टम आवश्यकता है—छन्दता। बुद्धत्व प्राप्ति में सहायक धर्मों के प्रति प्रबल इच्छा, महान् उत्साह, अनवरत प्रयत्न, सत् पर्येषणा आदि छन्दता के द्योतक हैं। इनके होने से ही अभिनीहार की सिद्धि इष्ट समझी जाती है।

बुद्धत्वलाभ के लिए इन आठ मूलभूत धर्मों का होना आवश्यक है। कहा जाता है कि बोधिसत्त्व ने इनके संचय के अनन्तर ही अभिनीहार किया था—'सुमेधतापसो पन इमे अट्ठ धम्मे समोधानेत्वा बुद्धभावाय अभिनीहारं कत्वा निपज्जि।'

४. अन्य गुण

उक्त आठ धर्मों से उपेत बोधिसत्त्व अपने में कुछ अन्य गुणों का संबर्द्धन करते हैं। संयुक्तनिकाय-अट्ठकथा[2] से प्रकट है कि ऐसे गुणों में चार बुद्धभूमियों तथा छ अध्याशयों का अभिवर्द्धन नितान्त आवश्यक है। 'उस्साह, उम्मग्ग, अवत्थान, तथा हितचरिया' नामक चार बुद्धभूमियां हैं। इन्हें क्रमशः वीर्य, प्रज्ञा, अधिष्ठान

---

१. सुमेधतापसो किर बुद्धबीजं बुद्धंकुरो। नि० क० ४०.

२. सं० नि० अ० १-५०.

तथा मैत्रीभावना भी कहा जाता है । इसी प्रकार नेक्खम्मज्झासय, पविवेकज्झासय, अलोभज्झासय, अदोसज्झासय, अमोहज्झासय तथा निस्सरणज्झासय नामक छ अध्याशय हैं ।

इनके अतिरिक्त आतत्थचरिया, लोकत्थचरिया, भूतत्थचरिया नामक तीन चर्यायें तथा स्त्री, पुत्र, राज्य, अङ्ग एवं जीवन-परित्याग विषयक पञ्च महात्याग उनके कार्यकलापों में मूर्त्त देखे जाते हैं ।[1] वेस्सन्तर द्वारा अवचरित जिन सात महादानों का उल्लेख है, वे भी बोधिसत्त्व जीवन के सामान्यगुण समझे जाते हैं ।[2] इन गुणों के पूर्णतः संवर्द्धन के साथ बुद्धकारक धर्मों का संग्रह बोधिसत्त्व-जीवन का प्रमुख अंग है ।

(२२) बुद्धकारक धर्मों का संग्रह

अभिनीहार के अनन्तर शास्ता के व्याकरण को प्राप्त कर बोधिसत्त्व चिन्तन करते हैं कि 'बुद्धों के वचन अमोघ होते हैं, वे कभी अन्यथा नहीं हो सकते हैं । यथा आकाश में फेंके गये ढेले का पृथ्वी पर गिरना, जन्म लेने वाले का मरना, गुहा से निकले सिंह का नाद करना, गर्भभार से युक्त स्त्री का प्रसव करना अनिवार्य तथा अवश्यंभावी है, उसी प्रकार बुद्धों का वचन अमोघ तथा अवश्यंभावी होता है; मैं निश्चय ही बुद्ध होऊँगा' आदि । ऐसा चिन्तन कर वे बुद्धकारक धर्मों की गवेषणा करते हुए प्राचीन बोधिसत्त्व-परम्परा के अनुकूल पारमिताओं की पूर्ति में लग जाते हैं । वे क्रमशः दान, शील, नैष्कम्य प्रज्ञा, वीर्य, शान्ति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री तथा उपेक्षा नामक दस पारमिताओं का पूरण कर अपने धर्मतेज से पृथ्वी को प्रकम्पित करते हैं ।

बोधिसत्त्वों द्वारा इन पारमिताओं की पूर्ति किसी एक जन्म में नहीं होती है, बल्कि अनेक सहस्र कल्पों तक विविध गति एवं योनियों में जन्म लेते हुए वे एक-एक पारमिता की पूर्ति कर अपना वैशिष्ट्य दर्शाते हैं । हां, इतना अवश्य होता है कि वे अपने उदात्त गुणों के कारण विभिन्न भवों में जाते हुए भी अठारह प्रकार की अवस्थाओं में उत्पन्न नहीं होते हैं । वे अवीचि तथा लोकान्तरिक नरकों में नहीं उत्पन्न होते हैं । न तो वे निज्झामतृष्ण-सुधा-पिपासा से व्याकुल प्रेत ही होते हैं, न कालकञ्जक नामक असुर ही । क्षुद्र जन्तुओं के रूप में भी उनका जन्म नहीं होता है तथा वे दुर्गति को भी नहीं प्राप्त करते हैं । मनुष्य योनि में उत्पन्न होने पर जन्मान्ध, जन्मबधिर, गूंगा, स्त्री, उभयलिंगी, नपुंसक,

१. जा० ६० ५५२.
२. दी० नि० अ० २,४२७; ध० प० अ० ३,४४१.

प्रपंची, आनन्तर्यकर्म करनेवाला, तथा मिथ्या दृष्टि वाला नहीं होते हैं । देवयोनि में जन्म लेने पर असंज्ञक-सत्त्व तथा शुद्धावास देवता नहीं होते हैं । वे उक्त सभी अवस्थाओं से विरत भवाभव से विसंयुक्त, नैष्क्रम्योन्मुख हो जन कल्याण के लिए विचरण करते हैं ।

जातक-अट्ठकथा से प्रकट है कि गौतम बुद्ध ने बोधिसत्त्व के रूप में पाँच सौ पचास बार विविध योनियों में जन्म लेकर पारमिताओं की पूर्ति की थी । अभी पाँच सौ सैंतालीस जातककथायें उपलब्ध हैं, जिनमें उनकी तद्विषयक चर्यायें देखी जाती हैं । निम्नलिखित तालिका से प्रकट है कि उन्हें पारमीपूरणार्थ किन-किन योनियों में कितने बार जन्म लेना पड़ा था ।

योनि	रूप	जन्म-संख्या	कुल संख्या
१ मनुष्य	तपस्वी	८३	
,,	राजा	८५	
,,	शिक्षक	२६	
,,	राजसभासद	२४	
,,	ब्राह्मण	२४	
,,	राजकुमार	२४	
,,	कुलश्रेष्ठी	२३	
,,	पण्डित	२२	
,,	वणिक	१३	
,,	श्रेणी	१२	
,,	दास	५	
,,	कुम्भकार	३	
,,	चाण्डाल	३	
,,	हस्तिचालक	२	
,,	चोर	२	
,,	सर्प वैद्य	१	
,,	द्यूतचारी	१	
,,	राज	१	
,,	स्वर्णकार	१	
,,	नट	१	
,,	रजतकार	१	

योनि	रूप	जन्म-संख्या	कुल संख्या
मनुष्य	छात्र	१	
,,	वर्द्धकी	१	
			३५९
२. देवता	वृक्ष देवता	४३	
,,	शक्र	२०	
,,	ब्रह्मा	४	
,,	गन्धर्व	१	
			६८
३. पशु	कपि	१८	
,,	मृग	११	
,,	सिंह	१०	
,,	गज	६	
,,	अश्व	४	
,,	वृषभ	४	
,,	शृगाल	२	
,,	शूकर	२	
,,	श्वान	१	
,,	शश	१	
			५९
४. पक्षी	वनहंस	८	
,,	दीर्घ चन्चु (सारण)	६	
,,	कुक्कुट	५	
,,	बाज (श्येन)	५	
"	मोर	४	
,,	वन कुक्कुट	१	
,,	काक	२	
,,	कठपोड़वा	२	
,,	चिल्ल	१	
			३४
५. जल जन्तु	मत्स्य	२	
,,	गोध	३	

योनि	रूप	जन्म-संख्या	कुल संख्या
,,	जल कुक्कुट	१	
,,	मेढ़क	१	
			७
६. अन्य-जन्तु	सर्प	४	
,,	मूषिक	२	
			६
			५३३

शेप उपलब्ध चौदह कथाओं में उनका योनिगत रूप अस्पष्ट है।[1]

(२३) तुषितपुर

बोधिसत्त्व दस पारमिताओं को सम्यक् रूप से परिपूर्ति कर बुद्ध होने के पूर्व वाले जन्म में तुषित देवलोक में देव पुत्र के रूप में जन्म लेते हैं। वहां वे अनेक सहस्र वर्षों तक दिव्य सुख का अनुभवन करते हुए अपनी जीवन-अवधि का सफल अवसान प्राप्त करते हैं। लोकपाल देवता इनके बुद्ध होने की सूचना समस्त दिव्य लोक में प्रसारित कर देते हैं। फलतः दस सहस्र चक्रवाल के देवता एक-एक कर तुषितलोक में बोधिसत्त्व के निकट आ उनसे मनुष्य रूप में जन्म ले बुद्ध होने की याचना करते हैं। वे स्पष्ट शब्दों में दुहराते हैं कि—'हे मारिस, आपने लोक के उद्धार एवं सर्वज्ञता की कामना से पारमिताओं का परिपूरण किया है। अब बुद्ध होने का समय आ गया है'।[2] आदि।

७. पञ्च महाविलोकन

बोधिसत्त्व देवताओं की इस प्रकार की याचना के अनन्तर काल, द्वीप, देश,

---

१. Mannal of Budhism—Hardy, p. 102.

Buddhist Birth Stories—T. W. Rhys Duvibds, p. ci.

अतः—मनुष्य ३५९ बार
देवता ६८ बार
पशु ५९ बार
पक्षी ३४ बार
जलजन्तु ७ बार
सर्प आदि ६ बार
५३३

२. लोकनित्थरणत्थाय सब्बञ्ञुतं पत्थेन्तेहि पूरिता। सो वो इदानि कालो, मारिस, बुद्धत्ताय'। नि० क० ११८.

कुल, माता तथा उनकी आयु नामक पांच बातों पर विचार करते हैं। इसे पञ्च महाविलोकन कहा गया है।

इन पांच बातों पर विचारने का कुछ तात्पर्य है। सर्वप्रथम वे इस बात को देखते हैं कि बुद्ध के उत्पन्न होने का उचित समय है अथवा नहीं, कारण युक्त समय में की गई देसना ही सार्थक हो सकती है। यदि ऐसा समय व्यतीत हो रहा हो जिसमें मनुष्यों की आयु एक लाख वर्ष से ऊपर की हो, तो वह अकाल समझा जाता है। कारण उस समय प्राणियों को जन्म, जरा, मरण आदि का ज्ञान नहीं हो पाता है। वे अनित्य, अनात्म, दुःख-परक बुद्ध की देशना को समझ नहीं पाते हैं, फलतः उनमें श्रद्धा नहीं हो पाती है।

पुनः ऐसा समय भी उपयुक्त नहीं है, जब कि प्राणियों का आयु-काल एक सौ वर्ष से कम का हो। अल्पकालिक प्राणी चित्त मलों से आक्रान्त होने के कारण विशुद्धि विषयक उपदेशों को ग्रहण नहीं कर पाते हैं।

अतः इन दोनों के बीच का काल ही उचित समय समझा जाता है। इसमें प्राणियों की अवधि सौ वर्ष से प्रारम्भ कर इसके ऊपर तथा एक लाख वर्ष से नीचे की होती है। बोधिसत्त्व ऐसे समय को ही सुकाल समझ उसमें जन्म लेते हैं।

द्वितीय अवलोकन द्वीप सम्बन्धी होता है। बौद्ध परम्परा के अनुसार जम्बूद्वीप, अपरगोयान, पूर्वविदेह तथा उत्तरकुरू नामक चार द्वीपों की कल्पना हैं। इनमें कई कारणों से अपरगोयान, पूर्वविदेह तथा उत्तरकुरू नामक तीन द्वीप बुद्ध की उत्पत्ति के लिए अनुपयुक्त स्थान हैं। केवल जम्बूद्वीप ही सभी दृष्टियों से उपयुक्त समझा जाता है।

तृतीय अवलोकन देश सम्बन्धी होता है। प्राचीन बौद्ध परम्परा के अनुसार जम्बूद्वीप का विभाजन पांच देशों में देखा जाता है। वे हैं—उत्तरापथ, मज्झिमदेस, दक्खिणापथ, पुब्बन्त तथा अपरन्त। इनमें मध्यदेश तीन सौ योजन लम्बा, ढाई सौ योजन चौड़ा तथा नव सौ योजन की परिधि वाला है। यह पूर्व से कजंगल निगम, पश्चिम से थूण-ब्राह्मणग्राम, दक्षिण से स्वेतकर्णी निगम तथा उत्तर से उशीरध्वज पर्वत से परिवृत्त हैं। यह भूभाग ही बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध, अग्रसावक, महासावक, चक्रवर्त्ती राजा या अन्यान्य ऐश्वर्य-सम्पन्न महापुरुषों की उत्पत्ति के लिए उपयुक्त समझा जाता है।

कुल सम्बन्धी अवलोकन की भी एक परम्परा देखी जाती है। जम्बूद्वीप में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र नामक चार जाति परिनिष्ठित कुलपरम्परा है। इनमें वैश्य एवं शूद्र कुल बुद्ध के जन्म के लिए उचित कुल नहीं समझे जाते हैं।

बुद्ध केवल ब्राह्मण या क्षत्रिय कुल में जन्म लेते हैं। महापदानसुत्त[1] से प्रकट होता है कि भगवान् विपस्सी, सिखी, विश्वभू तथा गौतम ने क्षत्रिय कुल में जन्म लिया था। भगवान् ककुसन्ध, कोणागमन तथा काश्यप के ब्राह्मण कुल में जन्म लेने का उल्लेख है। वैश्य तथा शूद्र कुल में बुद्धों के जन्म का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है।

पञ्चम विलोकन बुद्ध की माता एवं उनकी आयु विषयक होता है। बुद्ध की माता स्वभावतः अखण्ड शीलवती होती है। वह सुरापान आदि से विरत काय, वाणी एवं मन से परिशुद्ध होती है।[2] उसकी आयु केवल दस महीने सात दिन की ही अवशिष्ट रहती है। कारण यह है कि जिस कुच्छि में वह बुद्ध-बीज बोधिसत्त्व को धारण करती है, पुनः उस कुच्छि में अन्य को धारण नहीं कर सकती है। इसलिये बोधिसत्त्व के जन्म के सातवें दिन वह शरीर त्याग तुषित लोक में उत्पन्न होती है। ऐसी आयुवाली माता ही बोधिसत्त्व के जन्म के लिए उपयुक्त माता समझी जाती है।

इन्हीं दृष्टियों से बोधिसत्त्व काल, द्वीप, देश, कुल, माता एवं उसकी आयु नामक पांच बातों का अवलोकन करते हैं।

इन पञ्च महाविलोकनों के अनन्तर बोधिसत्त्व उन देवताओं के साथ नन्दनवन में जाते हैं तथा वहीं वे मनुष्य लोक में उत्पन्न होने की घोषणा करते हैं।

(२४) प्रतिसन्धि-ग्रहण एवं जन्म

उक्त घोषणा के अनन्तर बोधिसत्त्व तुषित लोक से च्युत हो मां के गर्भ में प्रतिसन्धि ग्रहण करते हैं।[3] उस समय एक दिव्य प्रकाश उत्पन्न होता है, जिससे समस्त दिशायें आलोकित हो उठती हैं। बोधिसत्त्व के गर्भ में आने के पूर्व से ही उनकी माता स्वभावतः शीलसम्पन्न होती है। वह प्राणातिपात अदिन्नादानादि से विरत परम परिशुद्ध सुखी एवं शान्त रहती है। प्रतिसन्धि के दिन वह ऐसा स्वप्न देखती है कि चार दिक्पाल उसे शय्या सहित उठा हिमवन्त प्रदेश के विशाल शालवृक्ष के नीचे स्थित मनोशिला पर रख देते हैं। देवियां उन्हें अनवतप्त सरोवर में स्नान करा दिव्य वस्त्र पहना मालागन्धादि से विभूषित कर कनकविमान में ले जाती हैं। वहां बोधिसत्त्व स्वेत वर्ण के हाथी के रूप में सुण्ड में श्वेत

१. दी० नि० २-४.

२. पकतिया सीलवती बोधिसत्तमाता होति, विरता पाणातिपाता, विरता अदिन्नादाता......। म० नि० ३-१८५।

३. नि० क० १२४; दी० नि० २. ११-१६; म० नि० ३. १८४-१८८.

पद्म लिये मां की शय्या का तीन बार प्रदक्षिणा कर कुक्षि के दक्षिण पार्श्व को फाड़ कर प्रविष्ट हो जाते हैं। उस क्षण से चार देवपुत्र बोधिसत्त्व तथा उनकी मां की रक्षा के लिए सदा उनके साथ रहते हैं। माता परम प्रसन्न हो मणि में प्रविष्ट सूत्रवत कुच्छिगत बोधिसत्त्व को देखती है।

इस प्रकार पात्र में तेल धारण करने के सदृश माता बोधिसत्त्व को पूरे दस महीनों तक अपने गर्भ में धारण कर घर से बाहर किसी उद्यानादि में खड़े-खड़े प्रसव करती है। बोधिसत्त्व मां के गर्भ से निकलते समय काशिकवस्त्र में रखे रत्न सदृश किसी प्रकार की अशुचि से अलिप्त परम परिशुद्ध रूप में निकलते हैं। निकलते ही देवता उन्हें धारण कर मां के सामने यह कहते हुए रखते हैं कि—'देवी प्रसन्न होइये, महा प्रभावशाली पुत्र उत्पन्न हुआ है'। तदनन्तर आकाश से उष्ण एवं शीतल दो जलधारायें आकर मां तथा बोधिसत्त्व को स्नान कराती हैं। बोधिसत्त्व तब सभी दिशाओं में दृष्टिपात करते हुए अपने सदृश किसी को न पा उत्तराभिमुख हो सात पद चलकर ऐसा आर्ष वचन बोलते हैं कि—'मैं लोक में अग्र हूँ, लोक में मैं ज्येष्ठ हूँ, लोक में मैं श्रेष्ठ हूँ, यह मेरा अन्तिम जन्म है'।[1]

बोधिसत्त्व के जन्म के सातवें दिन उनकी माता लोकलीला समाप्त कर तुषितलोक में उत्पन्न होती है। कारण बोधिसत्त्व द्वारा वसित चैत्य-सा पवित्र उस कुक्षि में अन्य का आवास संभव नहीं।

९. गृहत्याग

पुनः बोधिसत्त्व के पिता द्वारा आमन्त्रित लक्षणशास्त्री ब्राह्मण उनके दिव्य प्रभा सम्पन्न काय का अवलोकन कर उनके बत्तीस महापुरुष लक्षणों का कथन करते हुए उनकी दो गतियों—घर रहते चक्रवर्ती होने तथा प्रव्रजित होने पर बुद्ध होने का कल्याण वाक्य व्यक्त करते हैं। पिता अपने पुत्र को चक्रवर्ती के रूप में देखने की इच्छा से उसे तीन ऋतुओं के अनुकूल तीन प्रासादों में रख उन्हें सुख के सभी उपकरणों से विभूषित करते हैं, पर बोधिसत्त्व इनमें अनासक्त हो क्रमशः जरा, व्याधि, मरण को अवश्यंभावी जान एक प्रव्रजित को देख उसके पथ को निर्वृति पथ जान महाभिनिष्क्रमण कर प्रव्रजित हो जाते हैं।

(२५) बोधिलाभ

गृहत्याग के अनन्तर बोधिसत्त्व कुछ दिनों तक घोर तपश्चर्या करते हैं। इस क्रम में उन्हें इसके असारभाव का ज्ञान हो जाता है। फलतः वे अन्न ग्रहण कर

१. अग्गोहमस्मि लोकस्स, जेट्ठोहमस्मि लोकस्स, सेट्ठोहमस्मि लोकस्स, अयमन्तिमा जाति, नत्थिदानि पुनब्भवो ति। दी० नि० २-१४.

बोधिमण्डाभिरोहण कर अभेद्य आसन लगा बैठ आगत मार सेना का विध्वंस कर रात्रि के प्रथम प्रहर में पूर्वनिवासानुस्मृति, द्वितीय प्रहर में दिव्य चक्षु तथा तृतीय प्रहर में समस्त आस्रवों का क्षय कर प्रतीत्य समुत्पाद पर अनुलोम प्रतिलोम क्रम से विचार करते हुए सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कर निम्नलिखित उद्घोष करते हैं—

अनेकजाति संसारं, सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो, दुक्खा जाति पुनप्पुनं॥
गहकारक, दिट्ठोसि, पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा, गहकूटं विसङ्खतं॥
विसङ्खारगतं चित्तं, तण्हानं खयमज्झगा। नि० क० १९०.

(२६) अन्य बातें

बोधिसत्त्व के जीवनक्रम की उक्त प्रकार की बातें प्रायः सभी बोधिसत्त्वों में सामान्य रूप से देखी जाती हैं। पर इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी बातें हैं, जो एक दूसरे से भिन्न होती हैं। सभी बोधिसत्त्वों की बोधिलाभ की अवधि एक नहीं होती है। प्रज्ञा, श्रद्धा एवं वीर्य के आधिक्य से बोधिसत्त्वजीवन अवधि में भेद देखा जाता है। जिन बोधिसत्त्वों में प्रज्ञा की विशेषता रहती है, वे चार असंखेय्य एक लाख वर्षों में सम्बोधि को प्राप्त करते हैं। श्रद्धा के आधिक्य वालों को आठ असंखेय्य एक लाख वर्ष तथा वीर्य के आधिक्य से युक्त बोधिसत्त्वों को सोलह असंखेय्य एक लाख वर्ष लगते हैं। उनके महाभिनिष्क्रमण के ढंग, वाहन, तपश्चर्या की अवधि, बोधिवृक्ष आदि में भी भिन्नता देखी जाती है।

गौतम बुद्ध के बोधिसत्त्वजीवन का विवरण निदानकथा, बुद्धवंश, दीर्घनिकाय, मज्झिमनिकाय आदि में उपलब्ध होता है। उन्होंने सुमेध के रूप सर्वप्रथम दीपंकर बुद्ध द्वारा बुद्धत्वविषयक व्याकरण प्राप्त किया था। इनके अतिरिक्त भगवान् कौण्डिन्य, मंगल, सुमन, रेवत, शोभित, अनोमदर्शी, पद्म, नारद, पद्मोत्तर, सुमेध, सुजात, प्रियदर्शी, अर्थदर्शी, धर्मदर्शी, सिद्धार्थ, तिष्य, पुष्य, विपश्यी, शिखी, विश्वभू, ककुसन्ध, कोणागमन तथा काश्यप नामक तेइस बुद्धों से उनका साक्षात्कार हुआ था तथा उन सबों ने उनके बुद्ध होने का कल्याण वचन व्यक्त किया था। इन प्रसंगों में बोधिसत्त्व के विजितावी नामक चक्रवर्ती राजा, सुरुचि ब्राह्मण, अतुल नागराज, अतिदेव ब्राह्मण, 'अजित ब्राह्मण, सीह, प्रव्रजित, उत्तर माणवक, चक्रवर्ती राजा, काश्यप माणवक, सुसीम तपस्वी, शक्र, मंगल तपस्वी, सुजात क्षत्रिय, विजितावी क्षत्रिय, अतुलनागराज, अरिन्दमा राजा, सुदर्शन, क्षेम राजा, पर्वत राजा, तथा ज्योतिपालमाणवक के रूप में

उत्पन्न होने का उल्लेख है। पारमी-पूरण-प्रसंग से ज्ञात होता है कि बोधिसत्त्व ने अकीर्त्ति ब्राह्मण, शंख ब्राह्मण, धनन्जय राजा, महासुदर्शन, महागोविन्द, निमि महाराज, चन्द्रकुमार, विसह्य श्रेष्ठी, शिविराजा, वेस्सन्तर राजा, शशपण्डित, शीलव नागराज, चम्पेय्य नागराज, भूरिदत्त नागराज, छद्दन्त नागराज, अलीन शत्रुकुमार, शंखपाल, सौमनस्य कुमार, हस्तिपाल, अयोधर पण्डित, चूलसुतसोम, विधुरपण्डित, महागोविन्द पण्डित, कुदाल पण्डित, अरक पण्डित, बोधि परिव्राजक, महोषधिपण्डित, सेनक पण्डित, महाजनक, महासुतसोम आदि विविध रूपों में जन्म लेकर तद् तद् पारमिता-विषयक वैशिष्ट्य दर्शाया है। इस बोधिसत्त्व द्वारा बोधिलाभ के अनन्तर दिये गये उपदेशों का संग्रह एवं स्थापित शासन आज भी विद्यमान है, पर अन्य बोधिसत्त्वों के पक्ष में ऐसी बातें नहीं देखी जाती हैं। ऐसे ही तथ्यों की पृष्ठभूमि में इस बोधिसत्त्व तथा अन्य बोधिसत्त्वों के कार्यकलापों में पार्थक्य देखा जा सकता है।

७. पारमिता

बुद्धकारक धर्मों को पारमी या पारमिता कहा गया है। इस शीर्ष के अन्तर्गत ऐसे दस धर्मों का कथन है, जिनकी सम्यक् परिपूर्ति के फलस्वरूप बुद्धत्व की प्राप्ति इष्ट है। परम्परा से प्रकट है कि अतीत के सभी बोधिसत्त्वों ने इन धर्मों का पूर्णतः परिपाचन किया था। उनकी ऐसी चर्या को लक्ष्य कर ही ये—"पौराणिक बोधिसत्त्वों द्वारा आसेवित निसेवित कहे गये हैं।" ये दस धर्म हैं—दानपारमिता, शीलपारमिता, नैष्क्रम्यपारमिता, प्रज्ञापारमिता, वीर्यपारमिता, क्षान्तिपारमिता, सत्यपारमिता, अधिष्ठानपारमिता, मैत्रीपारमिता, तथा उपेक्षापारमिता।

पारमिता का अर्थ पार चला जाना (पारम् इता) अथवा पराकाष्ठा को प्राप्त करना है। ये उस अवस्थाविशेष का द्योतन करती है, जहां एक एक धर्म का परिपालन पराकाष्ठा प्राप्त रहता है। बोधिसत्त्व की चर्याओं से अभिदर्शित है कि उन्होंने दान, शील आदि धर्मों का कोटिनिष्ठ परिपूर्ति की थी, फलतः ये पारमी अर्थात् पारमिता के नाम से अभिहित हुए। इन्हें धर्मविशेष की परिपूर्ति का परमभाव भी कहा जा सकता है।[1]

बौद्धपरम्परा में पारमिताओं का बहुत महत्व है। बुद्ध के प्रादुर्भाव से से बौद्धशासन का अस्तित्व है तथा इन दोनों के मूलस्वरूप पारमितायें हैं।

---

१. पारमिता (पारमी + ता) = पारमी। नेत्ति. पृ. ८७

Pāramī (abstract from parama)—Completeness, perfection, highest State etc; Pali English Dictionary, Rhys Davids, P. 77

इनके सम्यक् परिपाचन बिना बुद्ध का प्रादुर्भाव असंभव है। जैनधर्म में भी तीर्थङ्करत्व की प्राप्ति के लिए बीस धर्मों का पालन अपेक्षित बतलाया गया है। वे निमित्त कहलाते हैं। वे हैं—अरिहन्त की आराधना, सिद्ध की आराधना, प्रवचन की आराधना, गुरु का विनय, स्थविर का विनय, बहुश्रुत का विनय, तपस्वी का विनय, अभीक्ष्ण ज्ञानोपभोग, निर्मल सम्यग्दर्शन, विनय, षड् आवश्यक का विधिवत् समाचरण, ब्रह्मचर्य का निरतिचार पालन, ध्यान, तपश्चर्या, पात्रदान, वैयावृत्ति, समाधिदान, अपूर्व ज्ञानाभ्यास, श्रुतभक्ति, तथा प्रवचन प्रभावना।[1] यहाँ दर्शनीय है कि दस पारमिताओं एवं बीस निमित्तों में बहुत कुछ सादृश्य है, साथ ही दोनों परम्पराओं में बुद्धत्व तथा तीर्थंकरत्व की प्राप्ति के लिए कुछ विशिष्ट धर्मों का परिपालन अपेक्षित है।

(२७) उद्भव एवं विकास

पारमितापरिपूरण-परम्परा के उद्भव तथा विकास पर दृष्टि डालने से ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी कल्पना अपेक्षाकृत नवीन है। यद्यपि बुद्ध के अनेक जन्मों के साथ इनका सम्बन्ध दर्शाया जाता है, पर पिटक काल में ये अज्ञात-सा प्रतीत होती हैं। समस्त विनयपिटक, अभिधर्मपिटक तथा सुत्तपिटक के प्रथम चार निकायों में पारमिताओं का उल्लेख अनुपलब्ध है।

सर्वप्रथम इनका कथन खुद्दकनिकाय के बुद्धवंस में सारिपुत्र के प्रश्न के रूप में आता है। भगवान् बुद्ध को प्रसन्न जान सारिपुत्र ने पारमी-पूरण-वृत्तान्त को उनसे जानने के उद्देश्य से पूछा था कि—

'दानं सीलं च नेक्खम्मं, पञ्ञाविरियं च कीदिसं।
खन्तिसच्चमधिट्ठानं, मेत्तुपेक्खा च कीदिसा॥

---

१. इमेहि य णं वीसाएहि य कारणेहिं आसेवियबहुली कएहिं तित्थयरनामगोयं कम्मं निव्वत्तिंसु तं जहा—

अरहंत सिद्ध पवयण गुरु थेर बहुस्सुए तवस्सीसुं।
वच्छल्लया य तेसिं अभिक्ख णाणोवओगे य॥
दंसण विणय आवस्सए य सीलव्वए णिरइयारं।
खणलव तव च्चियाए वेयावच्चे समाही च॥
अपुव्वणाणगहणे सुयभत्ती पवयणे पभावणया।
एएहिं कारणेहि त्तित्थयरत्तं लहइ जीओ॥
ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र, ८,७०; आगम और त्रिपिटक, पृ० १३४-३५,

दस पारमी तया धीर, कीदिसी लोकनायक ।
कथं उपपारमी पुण्णा, परमत्थपारमी कथं ॥[1]

अर्थात् हे भगवान्, आपके द्वारा दान, शील, नैष्काम्य, प्रज्ञा, वीर्य, शान्ति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री तथा उपेक्षा नामक दस पारमिताओं, दस उपपारमिताओं तथा दस परमार्थ पारमिताओं का परिपूरण किस प्रकार किया गया ? इसी प्रश्न के विसर्जन स्वरूप भगवान् ने अतीत के बुद्धों तथा अपनी पूर्वकथा कही तथा उसी क्रम में पारमिताओं का आख्यान किया ।[2] सुमेधकथा के प्रसंग में इनका बुद्धकारक धर्म के रूप में दूसरी बार कथन है,[3] जो प्रायः उसी रूप में जातकट्ठकथा (निदानकथा) में वर्णित है । इन प्रसंगों के अतिरिक्त बुद्धकारक धर्म के रूप में पारमिताओं का अन्यत्र वर्णन नहीं है, यद्यपि पारमी शब्द अन्य अर्थों में प्रयुक्त है ।[4]

अब यहां प्रश्न है कि पारमिता जैसे व्यापक धर्मों का त्रिपिटक में अन्यत्र कथन क्यों नहीं है ? इसका उत्तर यह है कि पारमिताओं का बुद्धकारक धर्मों के रूप में सुव्यवस्थित ढंग से कथन बाद में हुआ है, पर ये धर्म पिटक में अज्ञात नहीं हैं । इनका समावेश अष्टांगिक मार्ग में सुगमतया देखा जा सकता है, जो तथागत की आदिदेशना का प्रतिपाद्य विषय है तथा पिटक में सर्वत्र चर्चित है । इनका यह रूप निम्नलिखित प्रकार से दर्शनीय है :—

त्रिविध शिक्षा	मार्गाङ्ग	पारमिता
शील	सम्यक् वचन सम्यक् कर्म सम्यक् आजीविका	सत्यपारमिता दानपारमिता शीलपारमिता शान्तिपारमिता
समाधि	सम्यक् व्यायाम सम्यक् स्मृति सम्यक् समाधि	वीर्यपारमिता मैत्रीपारमिता उपेक्षापारमिता अधिष्ठानपारमिता

१. बु० वं० पृ० ३०४.
२. तस्य पुट्ठो वियाकासि, करवीकमधुरगिरो ।
निब्बापयन्तो हदयं, हासयन्तो सदेवकं ॥ बु० वं० पृ० ३०४.
३. बु० वं० पृ० ३१४–३१७;
नि० क० पृ० ४८–६२.
४. म० नि० ३,९२; सु० नि० पृ० ४२२.

त्रिविध शिक्षा	मार्गाङ्ग	पारमिता
प्रज्ञा	सम्यक् दृष्टि सम्यक् संकल्प	प्रज्ञापारमिता नैष्कम्यपारमिता

आधुनिक विद्वानों के अनुसार पारमिताओं की कल्पना उत्तरकालीन है ।[1] निदानकथा में आगत बोधिसत्त्व के ऐसे वचन कि—"अज्ञात वेष से सभी चित्तमलों को नष्ट कर निर्वाण प्राप्त करना मेरा ध्येय नहीं है, मेरे लिए उचित यह है कि दीपंकर बुद्ध के समान परम सम्बोधि की प्राप्ति कर धर्मनौका बना जन समूह को संसार सागर से पार उतारने के उपरान्त स्वयं निर्वाण प्राप्त करूं"[2]—महायान की ओर झुके दीखते हैं । पारमितायें भी ऐसे विचार के परिपोषक हैं ।

डा० नलिनाक्ष दत्त ने इस प्रसंग को बढ़ाते हुए इनके कथन-क्रम के पीछे एक निश्चित उद्देश्य को बतलाया है । उनका कथन है कि पारमिताओं की चर्चा अनेक सरस कथाओं, उपमाओं, दृष्टान्तों तथा उदाहरणों के वेष्ठन में हुआ है । इसका एकमात्र उद्देश्य था—बौद्धधर्म को जनप्रिय बनाना । कथाओं के पात्र में केवल बोधिसत्त्व ही आदर्श पुरुष के रूप में चित्रित नहीं हैं, वरन् उन सत्पुरुषों का चित्रण भी उसी पूत भावना से है, जिन्होंने बौद्धसाधना में वैशिष्ठ्य प्राप्त की थी । इससे इस तथ्य का स्फुरण हो चला था कि बौद्धधर्म केवल कुछ विरक्तों के कल्याण के लिए नहीं है, वरन् गृहीजनों के लिए भी उसी प्रकार उपादेय है । दान, शील आदि को पारमिता के रूप में सुव्यवस्थित कर गृही-प्रव्रजित-भेद-विरहित प्राणिमात्र में दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न कर दान, शील, आदि सत्कर्मों में उत्साह-अभिजनन ही इनका इष्ट था । यह भावना बौद्धधर्म के आदि काल में अव्यक्त-सी थी, जो परिस्थिति एवं समय की गति के साथ निखरे रूप में सम्मुख आने लगी थी ।

हीनयान तथा महायान के संस्कृत ग्रन्थों में मुख्यतया छ पारमिताओं का उल्लेख है ।[3] असंग ने इनके आनिशंस का चित्रण उपस्थित करते हुए दानपारमिता से दारिद्र्य-निवारण, शीलपारमिता से विषयनिमित्तकक्लेश-अग्नि का निर्वापन, शान्तिपारमिता से क्रोध का अपचयन, वीर्यपारमिता से

1. DE LA VALLEE Poursin—E. R. E. pp. 739-753; N. Dutta—Some aspects of Hinayana in relation to Mahayana, pp. 11-13.
2. Hinayana Mahayana, p. 11.
३. दिव्यावदान पृ० १२७,४९०; ललितविस्तर पृ० ३४५,४७४.

कुशलधर्मों का संचयन, ध्यानपारमिता से चित्त का सन्धारण तथा प्रज्ञापारमिता से परमार्थ का प्रजानन बतलाया है।[1] महायान के अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं छ पारमिताओं की चर्चा है। केवल दशभूमिकसूत्र में सर्वप्रथम दस पारमिताओं के नाम आते हैं।[2] वहां इन छ के साथ उपायकौशल्य, प्रणिधान, बल तथा ज्ञान का योग है। इस प्रकार पारमिताओं की तीन सूची उपलब्ध होती है—स्थविरवादसम्मत दस, महायानसम्मत छ तथा दशभूमिकसूत्र आगत दस। इन तीन सूचियों पर तुलनात्मक दृष्टि डालने से प्रकट होता है कि दान, शील, शान्ति, वीर्य, ध्यान तथा प्रज्ञा नामक छ पारमितायें तीनों सूचियों में समान हैं तथा अपने प्राचीनतम रूप का परिचय देती हैं। स्थविरवादी परम्परा ने नैष्क्रम्य, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री तथा उपेक्खा नामक पांच का योग कर ध्यान को उससे पृथक् कर दिया है। इस प्रकार स्थविरवादी परम्परा में दस पारमितायें हुई। इनके स्वभाव पर विचार करने से सुगमतया देखा जा सकता है कि इन दस का अन्तर्भाव छ पारमिताओं के भीतर हो सकता है। शील के अन्तर्गत सत्य तथा नैष्क्रम्य, तथा ध्यान के अन्तर्गत मैत्री तथा उपेक्षा स्वभावतः समाविष्ट हैं। पुनः दशभूमिकसूत्र में जिन चार पारमिताओं को जोड़ा गया है, वे भी उक्त छ के अन्तर्गत देखी जा सकती हैं। यथा ज्ञान का प्रज्ञा के भीतर तथा उपाय कौशल्य, प्रणिधान तथा बल का वीर्य के भीतर अन्तर्भाव संभव है। इस दृष्टि से पूर्वकथित छ पारमिताओं का ही सुव्यवस्थित एवं प्राचीनतम रूप सिद्ध होता है। आर्य असंग ने भी महायानसूत्रालंकार में छ पारमिताओं का अधिशील, अधिचित्त, अधिप्रज्ञा तथा सर्वसहायक नामक चार वर्गों में विभाजन किया है। उक्त विभाजन तथा दस पारमिताओं का छ में अन्तर्भाव निम्न तालिका से स्पष्ट हो सकता है।[3]

वर्गीकरण	छ पारमितायें	दस पारमितायें
(क) अधिशील	१. दान	१. दान
	२ शील	२. शील
	३. क्षान्ति	३. नैष्क्रम्य
		४. सत्य
		५. क्षान्ति
(ख) अधिचित्त	४. ध्यान	६. मैत्री
		७ उपेक्षा
(ग) अधिप्रज्ञा	५. प्रज्ञा	८. प्रज्ञा
(घ) सर्व सहायक	६. वीर्य	९. वीर्य
		१०. अधिष्ठान

१. महायान सूत्रालंकार १६,१३.

२. दशभूमिकसूत्र पृ० ६३,७२,८१,९४.

३. महायान-शान्ति भिक्षु पृ० ३०-३१.

(२८) पारमिताओं के भेद

पारमिताओं का परिपूरण त्याग पर आश्रित है। दृष्टि-भेद से भले ही इनके दस प्रकार हैं, पर सब के मूल में त्याग का प्राबल्य है। त्याग बहुमुखी तथा विविध प्रकार का हो सकता है, पर पारमिता-परम्परा में वह केवल तीन भागों में विभक्त है। वे हैं—वस्तु-परित्याग, अंग-परित्याग तथा जीवन-परित्याग। वस्तु के अन्तर्गत अन्न, पान, धन, रजत, सुवर्ण, गेह, रथ आदि हैं। अंग-परित्याग से शरीर के हस्त, पाद, चक्षु, आदि किसी भी अंग का त्याग अभिप्रेत है। जीवन का उत्सर्ग ही जीवन-परित्याग है। इन तीन प्रकार के त्याग का विवरण जातक की कथाओं में उपलब्ध है। कुछ ऐसी कथायें हैं, जहां विशेषतः वस्तु-त्याग की चर्चा है, किन्हीं में अंगत्याग तथा किन्हीं में जीवनोत्सर्ग का चित्रण है। फलतः त्याग के विषयगत भेद के कारण पारमिताओं के तीन भेद देखे जाते हैं। वे हैं—पारमिता, उपपारमिता तथा परमार्थ-पारमिता।

दान, शील, क्षान्ति आदि किसी भी पारमिता की पूर्ति करते समय जब बोधिसत्त्व द्वारा अपने शरीर के प्रिय से प्रिय अंग के परित्याग द्वारा उसका चरमभाव दर्शाया जाता है, तो उस परिपूरणभाव को पारमिता कहा जाता है। यस्मात् ऐसा परिपूर्ण उत्सर्ग दान, शीलादि दसों के क्षेत्र में देखा जा सकता है, इसलिए इस दृष्टि से दस पारमितायें होती हैं।

जब किसी भी पारमिता की परिपूर्ति बाह्य वस्तुओं के परित्यागपूर्वक उस गुणविशेष के चरमभाव को प्राप्त होती है, तो वह उपपारमिता कहलाती है। ऐसे कार्यों का सम्बन्ध यस्मात् दान, शीलादि सभी के साथ देखा जा सकता है, फलतः उपपारमितायें भी दस होती हैं।

परमार्थ-पारमिता की अभिहिति जीवन-परित्याग-पुरस्सर कोटिनिष्ठ कार्यों से है। जब बोधिसत्त्व ने दानादि के परिपाचन में जीवन-परित्याग द्वारा चरमोत्कर्षता दर्शायी है, तो उन परमभावोपगत गुणविशेष को परमार्थ-पारमिता कहा गया है।[1]

१. अंगपरिच्चागो पारमियो नाम, बाहिरभण्डपरिच्चागो उपपारमियो नाम, जीवितपरिच्चागो परमत्थपारमियो नामा ति। नि० क० पृ० ६२.

जातकों में परमार्थ-पारमिता का विशिष्ट स्थान देखा जाता है। वस्तु तथा अंग का परित्याग कुछ क्षणों के लिए अधिक पुरुषों में देखा जा सकता है, पर जीवन का त्याग कुछ ही द्वारा संभव है। इस दृष्टि से वस्तु तथा अंग के परित्याग की तुलना में जीवन का परित्याग महान् त्याग समझा जा सकता है। जातक-कथाओं से प्रकट है कि बोधिसत्त्व की चर्याओं में परमार्थ-पारमिता का ही बाहुल्य है। शशजातक में अभ्यागत ब्राह्मण के लिए बोधिसत्त्व द्वारा शरीरत्याग के कार्य को परमार्थपारमिता कहा गया है।[1] शंखपालजातक तथा चूलसुतसोम जातक के त्याग भी इसी कोटि के हैं।

(२९) पारमिताओं के प्रकार

स्थविरवादी तथा इतर बौद्ध परम्पराओं में पारमिताओं की संख्या में कुछ विभेद है। निदानकथा इसके दस प्रकार बतलाती है। यस्मात् प्रकृत प्रयत्न में निदानकथागत विषयवस्तु का उत्तानिकरण इष्ट है, अतः इन दस पारमिताओं का सामान्य परिचय यहां निक्षिप्त है।

(३०) दानपारमिता

त्रिपिटक में कुशल एवं अकुशल कर्मों का प्रचूर विवेचन है। कुशल कर्मों के उद्देशक्रम में सर्वत्र दान का नाम आता है। अधिकतर 'दान, शील, भावना' या 'दान, शील, भावना, वेय्यावच्च, अपचायन' आदि ढंग से कुशलकर्मों की गणना देखी जाती है।[2] ऐसी सूचियों से प्रकट होता है कि 'दान' एक कुशल कर्म है। बौद्ध परम्परा में कर्म वस्तुतः चेतना का नाम है। फलतः दान को परित्याग चेतना कहा जा सकता है।[3] इसे कायद्वार से उत्पन्न होने पर कुशल कायकर्म, वचीद्वार से उत्पन्न होने पर कुशल वचीकर्म तथा मनोद्वार से उत्पन्न होने पर कुशल मनोकर्म कहा जा सकता है।[4] कायकर्म तथा वचीकर्म में मन का योग आवश्यक है। प्रवृत्ति-द्वार के कारण उनका वैसा नाम पड़ता है।

---

१. भिक्खाय उपगतं दिस्वा, सकत्तानं परिच्चजि।
दानेन मे समो नत्थि, एसा मे दानपारमी ति॥
एवं अत्तपरिच्चागं करोन्तस्स दानपारमिता परमत्थपारमिता नाम जाता।
नि० क० पृ० ११२.

२. अभि० सं० पृ० ९८.

३ दीयति अनेन दानं, परिच्चागचेतना। विभा० टी० पृ० १३४.

४. कामावचरकुसलम्पि कायद्वारे पवत्तं कायकम्मं, वचीद्वारे पवत्तं वचीकम्मं, मनोद्वारे पवत्तं मनोकम्मं चेति कम्मद्वारवसेन तिविधं होति। अभि० सं० पृ० ९८.

चित्त में परित्याग की भावना सर्वदा एक-सी नहीं रहती है। परिस्थिति अनुसार इसमें मात्रागत भेद स्वाभाविक है। इस कारण दान कृत्य में भी भेद होता है। उत्तम कोटि का दान वह है, जिसके सम्पादन-क्षण में चित्त सौमनस्य, ज्ञान तथा तीन कुशल हेतु—अलोभ, अद्वेष तथा अमोह से युक्त रहता है तथा उसकी ऐसी प्रवृत्ति स्वयं उत्पन्न रहती है। अभिधर्म में इसकी चर्चा प्रथम कामावचर कुशल चित्त के शीर्ष में की जाती है।[1]

निदानकथा में ऐसे दानकृत्य का सम्पादन एक पारमिता के रूप में दर्शाया गया। यहां यह अपनी सामान्य परिधि से ऊपर परिपूरण की पराकाष्ठागत रूप को प्राप्त है। उपलब्ध विवरण से प्रकट है कि आगत याचक द्वारा याचना किये जाने पर उसकी इच्छा की पूर्त्ति के लिए स्पृहाविहीन हो सर्वस्व का परित्याग इष्ट है। धन, यश, स्त्री, पुत्र, अंग, शरीर आदि जिस किसी वस्तु की याचना वह करता है, वह उसके लिए अलभ्य नहीं होती है। इस पारमिता की परिपूर्त्ति के समय बोधिसत्त्व की भी चर्या उस उलटे हुए जलपूर्ण घट के सदृश होती है, जो अपने को पूर्णतः रिक्त बनाते हुए सम्पूर्ण जल का त्याग करता है। जिस प्रकार घट परित्यक्त जल को पुनः पाने की आशा नहीं रखता है, उसी प्रकार दानपारमिता का परिपूरण उसके फलस्वरूप कुछ प्राप्ति की आशा से विरहित होता है।[2] जातक की कथाओं से प्रकट है कि बोधिसत्त्व ने ऐसी ही उदात्त भावना से दानकृत्य का सम्पादन किया था।

बोधिसत्त्व द्वारा सम्पादित दानकृत्यों का परिचय कई जातकों से प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप अकीर्ति ब्राह्मण,[3] संखब्राह्मण,[4] धनञ्जय राजा,[5] महासुदर्शन,[6] महागोविन्द,[7] निमि महाराजा,[8] चन्द्रकुमार,[9] विसय्ह

---

१. अभि० सं० पृ० १२.

"यदा हि देय्यधम्म-पटिग्गाहकादिसम्पत्तिं, अञ्ञं वा सोमनस्सहेतुं आगम्म हट्ठपहट्ठो—'अत्थि दिन्नं' ति आदिनयपवत्तं सम्मादिट्ठिं पुरक्खत्वा असंसीदन्तो अनुस्साहितो परेहि दानादीनि पुञ्ञानि करोति, तदास्सचित्तं सोमनस्ससहगतं ञाणसम्पयुत्तं असंखारं होति। न. टी. पृ. १२.

२. नि. क. पृ. ५०.

३. जा. ४. ४३८–४४.

४. जा. ४. २१४–२०.

५. जा. ३. २६२–६५.

६. जा. १. ५१२–१५.

७. जा. D. P. P. N. २, ४८८.

८, जा. ६. १०९–४७.

९. जा. ६. १४८–९१.

सेट्ठि[1], राजा शिवि[2] तथा राजा वेस्सन्तर[3] के रूप में दिये गये दान के प्रसंगों की पारमिता-पूरण-प्रक्रिया के परिज्ञानार्थ देखा जा सकता है। इसका परम उदात्त रूप 'शशजातक' में उपलब्ध है, जहाँ बोधिसत्त्व ने द्वार पर आये याचक के लिए अन्य देय पदार्थ को योग्य न पा अपने शश-शरीर को उसके लिए विसर्जित करते हुए कहा था—

"न ससस्स तिला अत्थि, न मुग्गा नापि तण्डुला।
इमिना अग्गिना पक्कं, ममं भुत्वा वने वसा" ति॥

—ससजातक।

उनका इस प्रकार आत्मोत्सर्गमयिक दान क्रिया होने के कारण यह पारमिता परमार्थ पारमिता कहलाई। यथाः—

"भिक्खाय उपगतं दिस्वा, सकत्तानं परिच्चजिं।
दानेन मे समो नत्थी, एसा मे दानपारमी॥"[4]

(३१) शील-पारमिता

शील बौद्ध साधना का आधार है। शील की ही भीत्ति पर स्थित हो ब्रह्मचर्य जीवन का परिफलन होता है। जिस प्रकार सभी प्रकार के बीज पृथ्वी के आश्रय से वृद्धि वैपुल्य को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार श्रद्धा, स्मृति, बल, बोध्यङ्ग आदि कुशल धर्म शील में ही स्थित हो विकसित होते हैं। इस दृष्टि से ही—"सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो" आदि वचन कहे गये हैं। शील के अभ्यास के बिना कुलपुत्रों का साधना में प्रतिष्ठा नहीं हो सकती है—"सासने कुलपुत्तानं पतिट्ठा नत्थि यं विना"।

शील की प्रज्ञप्ति "पञ्च सील, अट्ठ सील, दस सील, इन्द्रियसंवरसील, आहारपारिसुद्धिसील, पातिमोक्खसंवरसील" आदि अनेक प्रकार से की गई है। इन शीर्षों के अन्तर्गत कतिपय नियमों का प्रज्ञापन है, जिनका पालन अपना हित चाहने वाले व्यक्तियों के लिए अनिवार्य है। इन नियमों के पालन से कायिक-वाचिक तथा मानसिक समस्त प्रकार के अध्याचारों का निषेध हो जाता है, अर्थात् काय, वाचा तथा मन पूर्णतः संयमसम्पन्न हो जाते हैं।

---

१. जा. ३. २९२–९५.
२. जा. ४. ६०९–२०.
३. जा. ६. ५१८–६५६.
४. नि० क० पृ० १११.

शील के परिपालन के सम्बन्ध में भगवान का आदेश है कि उनके शिष्य इन नियमों का पालन जीवन के मूल्य से करें। उन्होंने बतलाया है कि "जिस प्रकार टिटहरी अपने अण्डे की, चमरी गाय अपनी पूंछ की, माता एकलौते प्रिय पुत्र की तथा काना पुरुष अपनी एकमात्र आंख की रक्षा करता है, उसी प्रकार शील की रक्षा करते हुए उसके प्रति सदा प्रेम एवं गौरव करने वाले बनें"।[1] "जिस प्रकार चमरी गाय पूंछ के कहीं उलझ जाने पर उसकी रक्षा के लिए जीवन का परित्याग कर डालती है, पर पूंछ को नहीं जाने देती है; उसी प्रकार शील की रक्षा चमरी गाय-सदृश जीवनोत्सर्गपुरस्सर की जाय"।[2] आचार्य बुद्धघोष ने शीलपालन तथा उसके फल का परिदीपन करते हुए अट्ठसालिनी में सीहलवासी चक्कन उपासक की बहुत ही सुन्दर कथा कही है।[3] विसुद्धिमग्ग के प्रथम अध्याय में भी उन्होंने शील का सुन्दर विवरण प्रस्तुत किया है, जो इसके विशद रूप के ज्ञान के लिए देखा जा सकता है।

जातक में शील का पालन एक पारमिता के रूप में देखा जाता है। सीलवनागराज,[4] चम्पयनागराज,[5] भूरिदत्तनागराज,[6] छद्दन्तनागराज,[7] तथा जयद्दिस्स राजा के पुत्र अलीन कुमार[8] की कथा इस तथ्य पर प्रभूत प्रकाश डालती हैं कि बोधिसत्त्व ने किस अपूर्व मनोबल से शील का परिपालन किया है। संखपालजातक की घटनायें उसके परमोत्कर्ष का परिदीपन करती हैं, जिनके कारण यह परमार्थपारमिता के नाम से आख्यात है।[9] चरियापिटक का यह वचन इस उदात्त भावना का परिचायक है कि—

---

१. किकीव अण्डं चमरी व वालधिं,
पियं व पुत्तं नयनं व एककं।
तथेव सीलं अनुरक्खमानका,
सुपेसला होथ सदा सगारवा ति॥ वि० म० पृ० २३.
२. नि० क० पृ० ५०.
३. अट्ठ. सा० पृ० ८५.
४. जा. १. ४१५–१८.
५. जा. ५. ४२–५७.
६. जा. ६. १९१–२५५.
७. जा. ५. १२५–४३.
८. जा. २. १५९–६४; ५. १०९–२४.
९ जा. ४. २१४–२२०.

सूलेहि विज्झयन्तेपि, कोट्टयन्तेपि सत्तिहि ।
भोजपुत्ते न कुप्पामि, एसा मे सीलपारमी ॥[१]

(३२) नैष्क्रम्यपारमिता

'नेक्खम्म' शब्द नैष्क्रम्य तथा निष्काम्य दोनों अर्थों का द्योतक है । भगवान बुद्ध की देशना विशेषतः वैराग्यपरक हैं । उन्होंने संसार के प्राणिमात्र को दुःख की ज्वाला से तड़फड़ाते देखा तथा इस तथ्य को स्पष्टतः जान लिया कि "जन्म लेना, वृद्ध होना, जीर्ण होना, प्रिय जनों से विलग होना, अप्रिय जनों का सम्पर्क होना, अभीप्सित वस्तु को न पाना" आदि मनुष्य जीवन के साथ अवश्यंभावी घटनायें हैं ।[२] जन्म धारण करने पर इनसे छुटकारा पाना कठिन है । इसलिए उन्होंने दर्शाया कि 'पञ्च उपदानस्कन्ध' ही दुःख है ।[३] जब संसार का ऐसा रूप है, तो यह वास योग्य भूमि कैसे समझा जा सकता है ? यहां का "जीवन विविध बाधाओं से युक्त रजोपथ है" ।[४] स्त्री, पुत्र, बन्धु, दास, दासी, खेत, हिरण्य आदि सर्वदा मनुष्य को व्याकुल बनाये रहते हैं तथा तज्जन्य बाधायें उसे अबलावत् मर्दित करती हैं । सागर मध्य भग्न नाव में बैठे मनुष्य की भांति सभी प्राणी निराश हो केवल दुःख में डूबे हुए हैं ।[५] इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सदा स्मृतिमान् हो इस संसार के प्रति उत्पन्न समस्त आसक्तियों का परित्याग करे—"तस्मा जन्तु सदा सतो, कामानि परिवज्जये" ।

तब प्रश्न है कि इस संसार से निष्काम हो नैष्क्रम्याभिमुख कैसे हुआ जाय ? इसका उत्तर है कि इस संसार अर्थात् भव को बन्धनागार के रूप में ग्रहण करते हुए ऐसा संभव है । "जिस प्रकार बहुत दिनों तक बन्धनागार में रहता हुआ भी मनुष्य उस बन्धनागार के प्रति स्नेह नहीं करता है, सर्वदा उससे असन्तुष्ट रह उससे निकलना ही चाहता है; उसी प्रकार सभी भवों को बन्धानागारवत्

१. नि० क० पृ० ११२.
२. म० व० पृ० १३.
३. म० व० पृ० १३.
४. दी० नि० १.५२—सम्बाधो घरावासो रजोपथो, अब्भोकासो पब्बज्जा ।
५. खेत्तं वत्थुं हिरञ्ञं वा, गवस्स दासपोरिसं ।
थियो बन्धू पुथु कामे, यो नरो अनुगिज्झति ॥
अबला नं बलीयन्ति, मद्दन्तेनं परिस्सया ।
ततो नं दुक्खमन्वेति, नावं भिन्नमिवोदकं ॥ सु० नि० पृ० ३८८.

जान, सभी योनियों से मुक्त होने के लिए उत्कंठित हो नैष्क्रम्याभिमुख होना चाहिए ।[१] ऐसी प्रवृत्ति की परम भावप्राप्ति ही नैष्क्रम्यपारमिता है ।

जातक कथाओं से प्रकट है कि बोधिसत्त्व ने सोमनस्सकुमार,[२] हत्थिपाल-कुमार[३] अयोधरपण्डित[४] के समय इस पारमिता का पूर्णतः परिपाचन करते हुए नैष्क्रम्यभावबहुल अनेक कृत्यों का सम्पादन किया । चूलसुतसोमजातक[५] के विवरण से स्पष्ट है कि बोधिसत्त्व ने अपने विशाल राज्य को थूक के समान त्यागते हुए उसके प्रति तनिक भी आसक्ति न दिखलायी । फलतः उनका यह नैष्क्रम्य परमभाव प्राप्त कृत्य परमार्थपारमिता कहलाया—

"महारज्जं हत्थगतं, खेलपिण्डं च छड्डयि ।
चजतो न होति लग्गनं, ऐसा मे नेक्खम्मपारमी" ति ॥

(३३) प्रज्ञापारमिता

बौद्धसाधना के तीन पाद हैं, जिन्हें शील, समाधि तथा प्रज्ञा कहा जाता है । इनमें प्रज्ञा उस ज्ञानविशेष का नाम है, जिसके सहारे संसार की वस्तुओं के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान तथा निर्वाण का साक्षात्कार होता है । प्रज्ञा के उदय होने से मनुष्य इस सत्य को स्पष्टतः जान लेता है कि सभी पदार्थ अनित्य अनात्म तथा दुःखस्वरूप हैं । ऐसा जानने से उसे संसार से निर्वेद होता है तथा वह समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है ।[६] इसे कुशल चित्त सम्प्रयुक्त विपश्यना ज्ञान भी कहा गया है ।[७] ऐसी प्रज्ञा की चरमोपलब्धि ही प्रज्ञापारमिता है ।

इस पारमिता के परिपाचन के सम्बन्ध में कहा गया है कि अभीप्सु को चाहिए कि हीन, मध्यम या उत्तम की भावना का परित्याग कर सभी पण्डितों के निकट जा प्रश्न परिपृच्छा करे । उसकी यह वृत्ति उस भिक्षु के समान होनी चाहिए जो हीनादि भाव से रहित हो सभी घरों से भिक्षा मांगता है ।[८] ऐसे

१. नि० क० पृ० ५२.
२. जा. ५. ३१–४१.
३. जा. ५. ६४–७९.
४. जा. ५. ८०–८७.
५. जा. ५ २६०–७४.
६. सब्बे संखारा अनिच्चा ति, यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति धीरा, सब्बदुक्खा विमुच्चति ॥ ध० प० पृ० ४२.
७. वि० म० पृ० १४.
८. नि० क० पृ० ५२.

ही समस्त पण्डितों से तत्त्व की गवेषणा करते हुए इस पारिमिता की पूर्ति होती है ।

बोधिसत्त्व की चर्चाओं से प्रकट है कि उन्होंने विधुरपण्डित,[१] महागोविन्द-पण्डित,[२] कुद्दालपण्डित,[३] अरकपण्डित,[४] बोधिपरिब्बाजक[५] तथा महौषधिपण्डित[६] के समय उक्त ढंग से इस पारमिता का परिपाचन किया । सेनकपण्डित[७] के रूप में उन्होंने प्रज्ञा की गवेषण करते हुए एतद्विषयक कृत्यों से ब्राह्मण को दुःख से मुक्त करते हुए इसे परमार्थ पारमिता के रूप में दर्शाया है । इसे लक्ष्य करते हुए निदानकथाकार ने कहा है कि—

"पञ्जाय विचिनन्तोहं, ब्राह्मणं मोचयिं दुखा ।
पञ्जाय मे समो नत्थि, एसा मे पञ्ञापारमी"ति ॥

(३४) वीर्यपारमिता

समस्त सत्कर्मों के सम्यक् सम्पादन के लिए पांच गुण अपेक्षित हैं । वे हैं— श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि तथा प्रज्ञा । इनमें श्रद्धा द्वारा विश्वास, वीर्य द्वारा उत्साह, समाधि द्वारा एकाग्रता तथा प्रज्ञा द्वारा ज्ञान की वृद्धि होती है । स्मृति व्यञ्जन में लवण की भांति सब में जागरूकता के रूप में विद्यमान रहती है । इन पांच गुणों के समभाव-अवस्थान के फलस्वरूप कार्यों में सफलता इष्ट है । यद्यपि इन सभी गुणों का अपना अपना महत्व है, पर वीर्य का विशिष्ट स्थान है । वीर्य के कारण ही कार्यों में प्रवृत्ति होती है । अतः अन्य गुणों के साथ वीर्य का सम्यक् अभिवर्द्धन की वीर्यपारमिता है ।

वीर्यपारमिता के परिपाचन के सम्बन्ध में कहा गया है कि सभी कर्मों में दृढ़ वीर्य सम्पन्न होना चाहिए । "जिस प्रकार मृगराज सिंह सभी अवस्थाओं में दृढ़ उत्साह सम्पन्न रहता है, उसी प्रकार वीर्यपारमिता की परिपूर्ति में लगे प्राणी द्वारा सभी योनियों तथा अवस्थाओं में दृढ़ उत्साह-उद्योग तथा वीर्य-सम्पन्न होना चाहिए ।"[८]

---

१. जा. ६. २९३–३६९.
२. सं. नि. अ. २. ४१३.
३. जा. १. ४०५–१०.
४. जा. २. २१०–१८.
५. जा. ५. ३१२–३०.
६. जा. ६. ३६९–५१६.
७ जा. ४. १–५.
८. नि० क० पृ० ५४

बोधिसत्त्व द्वारा अपने लक्ष्य के अधिगम-क्रम में ऐसे अनेक कार्य देखे जाते हैं, जिनमें उन्होंने वीर्य का अभिवर्द्धन किया है । महाजनक-जातक[१] में उपलब्ध विवरण उनके एतद्विषयक कार्य की चरमभाव-प्राप्त अवस्था के द्योतक हैं । इस कारण ही यह पारमिता परमार्थ पारमिता के नाम से आख्यात है ।[२]

(३५) क्षान्तिपारमिता

क्षान्ति का अर्थ होता है—सहनशीलता । सम्मान तथा अपमान की उपस्थितिक्षण में समस्थिति को बनाये रखना सहनशीलता है । यह उस गुण-विशेष का नाम है, जिसके कारण मनुष्य सम्मान या अपमान के प्रति क्षमाशील रहता है । इसके स्वरूप को पृथ्वी की उपमा से स्पष्ट किया जा सकता है । जिस प्रकार पृथ्वी शुद्ध या अपवित्र वस्तुओं के फेके जाने पर न तो शुद्ध वस्तु के फेकने वाले के प्रति स्नेह करती है, न अपवित्र वस्तु के फेकने वाले के प्रति द्वेष की भावना ही रखती है । वह उनके प्रति क्षमा का भाव प्रदर्शित करते हुए सबका सहन करती है, सबको समभाव से स्वीकार करती है । उसी प्रकार क्षान्ति के विकास के लिए सम्मान तथा अपमान दोनों के प्रति सहनशील होना आवश्यक बतलाया गया है ।[३] अथवा जिस प्रकार शीतल, उष्ण, मन्द तथा कर्कश सभी प्रकार के वायु के झकोरे को पर्वत एक रस, से स्वीकार करता है, उसी प्रकार निन्दा, प्रशंसा, मान, अपमान आदि समस्त आघातों को अनासक्त भाव से सहन करना ही क्षान्ति है । साथ ही इस गुण का चरमभावोपलब्धि ही क्षान्ति-पारमिता है ।

इस पारमिता का विशद रूप क्षान्तिवाद-जातक[४] में देखने को मिलता है, जब अचेतन वस्तु के समान तेज परशु द्वारा बोधिसत्त्व के काटे जाने पर भी इस निर्मम कृत्य के सम्पादक के प्रति तनिक भी क्रोध नहीं देखा गया । इस परम भाव की प्राप्ति के कारण ही यह पारमिता परमार्थपारमी के नाम से अभिहित हुई । इसी तथ्य को उद्भाषित करते हुए निदानकथाकार ने दर्शाया है कि—

"अचेतनं व कोट्टेन्ते,तिण्हेन फरसुना ममं ।
कासिराजे न कुप्पामि, एसा मे खन्तिपारमी"ति ।[५]

---

१. जा. ६. ३४–७७.
२. अतीरदस्सी जलमज्झे, हता सब्बेव मानुसा ।
चित्तस्स अञ्ञथा नत्थि, एसा मे पञ्ञापारमी ति ॥ नि० क० पृ० ११४.
३. नि० क० पृ० ५५-५६.
४. जा. ३. २०८–११.
५. नि० क० पृ० ११४.

(३६) सत्यपारमिता

जो घटना जिस रूप में घटित हो, उसे उसी रूप में कथन करना ही सत्य कथन है। 'अयथार्थ' को 'यथार्थ' रूप में 'अतथ' को 'तथ' रूप में व्यक्त करने से विरति ही इसका अभिप्राय है। बौद्ध शासन में ऐसे सत्य कथन की प्रशंसा सर्वत्र की गई। भगवान बुद्ध ने शिक्षापदों का प्रज्ञापन[1] करते हुए चतुर्थ शिक्षापद के रूप में असत्य भाषण से विरत रहने का उपदेश किया है। संसार की समस्त बाधाओं का अतिवर्तन करने के लिए जिन चार धर्मों का कथन है, उनमें सत्य प्रथम है।[2] ऐसे सत्य कथन के सम्यक् परिपालन में जो परम भाव दर्शाया जाता है, उसे सत्य-पारमिता कहते हैं।

पर यह चरमभाव होता कैसा है? इसका उत्तर यह है कि किसी भी प्रकार के भयंकर से भयंकर भय या प्रलोभन के कारण, अथवा अन्य किसी इच्छा के वशीभूत हो जानकर असत्य भाषण नहीं करना चाहिए। सत्य-कथन-क्रम में वैसे ही अडिग रहना चाहिए, जिस प्रकार औषधितारा (शुक्र) किसी भी ऋतु में अपने पथ का परित्याग नहीं करता है।[3] सुतसोम-जातक[4] से प्रकट है कि बोधिसत्त्व ने अपने प्राण का उत्सर्ग करना सुकर समझा, पर सत्य कथन का परित्याग उनके लिए असंभव कृत्य रहा। उनके द्वारा सत्य-परिपालन-कृत्य के ऐसे परम भाव को लक्ष्य कर ही इसे परमार्थ पारमिता कहा गया है। जातक कथाओं में अन्यत्र भी ऐसे उदाहरण देखे जाते हैं।

(३७) अधिष्ठान-पारमिता

अधिष्ठान का अर्थ दृढ़ निश्चय होता है। सत्कर्म-प्रतिपादन में दृढ़ निश्चय का होना परमावश्यक है। लक्ष्य एवं तद्गामीपथ के प्रति निश्चय के प्रबल होने से ही उसकी प्राप्ति के लिए किये गये यत्न सफल होते हैं। इसलिए निश्चय के प्रति अचल रहना एक महान गुण बतलाया गया है।

निदानकथा में इस गुण के सम्यक् अभिवर्द्धन के सम्बन्ध में कहा गया है कि "जिस प्रकार पर्वत सभी दिशाओं से हवा से झकझोरे जाने पर भी न प्रकम्पित होता है, न चलायमान होता है, अपने स्थान पर ही यथावत् स्थित रहता है,

---

१. खु० पा० पृ० १.

२. यस्सेते चतुरो धम्मा, वानरिन्द यथा तव।
सच्चं धम्मो धिति चागो, दिट्ठं सो अतिवट्टती ति॥—वातरिन्दजातक.

३. नि० क० पृ० ५६.

४. जा. ५. ५३५-८९.

उसी प्रकार लक्ष्य-विनिश्चय के प्रति अडिग तथा अचल रह ही अभीप्सित पदार्थ की प्राप्ति की जा सकती है[1]। इस गुण के इस प्रकार परम भाव-प्राप्त रूप को अधिष्ठान-पारमिता कहा गया है।

बोधिसत्त्व का ऐसा अधिष्ठान बोधिमण्डाभिरोहण के क्षण में देखा जाता है, जब वे कह उठते हैं कि "भले ही मेरा चमड़ा, नसें, हड्डियां सूख जांय, शरीर के मांस, रक्त भी सूख जांय, पर सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति बिना इस आसन को न छोड़ूंगा"। इस प्रकार के दृढ़ निश्चय के साथ वे सौ वज्रों के पात से भी नहीं टूटने वाला अपराजित आसन लगा बैठ गये[2]।

(३८) मैत्री-पारमिता

अद्वेषचित्त का नाम मैत्री है। इसे परहित चिन्ता भी कहा जा सकता है। 'अनुदया, हितेसिता, अनुकम्पा, अव्यापाद' आदि इसके अनेक पर्याय हैं।[3] लक्षणादि दृष्टि से उसका हिताकारप्रवृत्ति लक्षण, हित उपसंहरण रस, आघात-विनयन प्रत्युपस्थान तथा सत्त्वों के लिए प्रियभावदर्शन पदस्थान है।[4] यह मातृहृदय का वह समान गुण है, जिसके कारण वह अपने सभी पुत्रों के प्रति स्वभावतः मंगल कामना करती है।[5] फलतः इसे हितभावना-समुत्थापित प्रेम-विस्फार कहा जा सकता है।

निदानकथा में मैत्री की चर्चा एक बुद्धकारक धर्म के रूप में उपलब्ध है। इसकी भावना के सम्बन्ध में हित तथा अहित दोनों के प्रति एकचित्तता का भाव लाना प्रथम चरण बतलाया गया है—"हितेसु अहितेसु पि एकचित्तो भवेय्यासि"। इस भाव की अभिवृद्धि के लिए उदकवत् चर्या वाञ्छनीय है। जिस प्रकार पापी तथा पुण्यात्मा दोनों के प्रति जल एक भाव रखता है, दोनों को शीतलता प्रदान करता है, उसी प्रकार हित तथा अहित करने वाले समस्त प्राणियों के प्रति हित की भावना रखना ही मैत्री है।

पर यह हित की भावना कैसे रखी जाय? इसका उत्तर यह है कि हम ऐसे उदात्त विचार का संवर्द्धन करें कि—"सुखिनो व खेमिनो होन्तु, सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता"।

---

१. नि० क० पृ० ५८-५९.

२. नि० क० पृ० १७८.

१. ध० सं० पृ० २३९.

२. अट्ठ० सा० पृ० १५७.

मेत्तसुत्त[1] में भगवान ने इस क्रम पर प्रकाश डालते हुए निम्नलिखित उद्गार व्यक्त किया है कि—"संसार के समस्त प्राणी जंगम या स्थावर, दीर्घ या महान, मध्यम या ह्रस्व, अणु या स्थूल, दृष्ट या अदृष्ट, दूरस्थ या निकटस्थ, उत्पन्न या उत्पत्स्यमान—सुखपूर्वक विहार करें। कोई भी किसी की वञ्चना या अपमान न करे। वैमनस्य या विरोध से एक दूसरे के दुःख की इच्छा न करे। जिस प्रकार माता अपने जीवन की तनिक भी चिन्ता न कर अपने प्रिय एवं एकलौते पुत्र की रक्षा करती है; उसी प्रकार मनुष्य समस्त प्राणियों के प्रति असीम प्रेम बढ़ावे। ऐसे असीम प्रेम की भावना बाधा, हिंसा, शत्रुता से रहित संसार के ऊपर-नीचे तथा तिरछे जहां कहीं भी रहने वाले प्राणियों के प्रति हो"। मैत्री भावना का ऐसा अप्रमाण्य रूप ही ब्रह्मविहार कहा गया है तथा इसी की चरमोपलब्धि मैत्रीपारमिता है।

जातकों में ऐसी कई कथायें प्राप्त होती हैं, जहां बोधिसत्त्व ने इस मैत्री भावना का परिपाचन किया है। कुरङ्गमिगजातक में उन्होंने एक आदर्श मित्र का परिचय दिया है।[2] एकराजजातक से इस सत्य पर प्रकाश पड़ता है कि मैत्रीबल से किस प्रकार भयविरहित निर्द्वन्द्व रहा जा सकता है।[3] बोधिसत्त्व की यह वाणी किस प्रकार अभयविहार का द्योतन करती है कि—"न मुझे कोई डराता है, न मैं किसी से डरता हूँ। मैं मैत्रीबल में आश्रित हो सर्वदा वन में विचरण करता हूँ"।[4] इस प्रकार मैत्री भावना के आनिशंस अनेक स्थलों में

१. ये केचि पाणभूतत्थि, तसा वा थावरा वनवसेसा।
दीघा वा ये व महन्ता, मज्झिमा रस्सका अणुकथूला॥
दिट्ठा वा ये व अदिट्ठा, ये व दूरे वसन्ति अविदूरे।
भूता व सम्भवेसी व, सब्बसत्ता भवन्तु सुखितत्ता॥
न परो परं निकुब्बेथ, नातिमञ्ञेथ कत्थचि न कञ्चि।
ब्यारोसना पटिघसञ्ञा, नाञ्ञमञ्ञस्स दुक्खमिच्छेय्य॥
माता यथा नियंपुत्तं, आयुसा एकपुत्तमनुरक्खे।
एवं पि सब्बभूतेसु, मानसं भावये अपरिमाणं॥
मेत्तं च सब्बलोकस्मिं, मानसं भावये अपरिमाणं।
उद्धं अधो च तिरियं च, असम्बाधं अवेरसम्पत्तं॥—खुद्दकपाठ पृ० १२.

२. जा. १. २२५–२६.

३. जा. ३. २२०–२३.

४. न मं कोचि उत्तसति, नपिहं भायामि कस्स चि।
मेत्ताबलेनुपत्थद्धो, रमामि पवने सदा॥ नि० क० पृ० ११६.

देखे जा सकते है। विशेषतः इसके स्वरूपगत परिचय के लिए विशुद्धिमार्ग का नवम परिच्छेद द्रष्टव्य है।

(३९) उपेक्षापारमिता

अदुःख-असुख-भाव का नाम उपेक्षा है। अभिधर्म दर्शन के अनुसार सुख, दुःख, सौमनस्य, दौर्मनस्य तथा उपेक्षा नामक पांच वेदनायें होती हैं। कायिक आनन्द को सुख, कायिक पीड़ा को दुःख, मानसिक सुख को सौमनस्य, मानसिक दुःख को दोर्मनस्य तथा मानसिक न दुःख-न सुखभाव को उपेक्षा कहते हैं—"मज्झत्तभावूपगमनेन च उपेक्खतीति उपेक्खा"। इस प्रकार उपेक्षा एक वेदना का नाम है।

आचार्य बुद्धघोष ने उपेक्षावेदना के लक्षणादि पर प्रकाश डालते हुए—"इसे सत्त्वों के प्रति मध्यस्थाकार प्रवृत्ति लक्षण युक्त बतलाया है। सत्त्वों के प्रति समभाव दर्शन इसका रस, तथा प्रतिघानुनयुपसमन इसका प्रत्युपस्थान है।[1]

अन्यत्र इसकी चर्चा करते हुए—"उपपत्तितो इक्खती ति उपेक्खा। अपक्खपतिता हुत्वा पस्सती ति अत्थो"[2] तथा "सा हि सुखदुक्खाकारप्पवत्ति उपेक्खति, मज्झत्ताकारसण्ठित्ता तेनाकारेन न पवत्तती ति उपेक्खा"[3] आदि वचन पाये जाते हैं। इन वचनों से यही प्रकट होता है कि सुख-दुःख के प्रति मध्यस्थ भाव ही उपेक्षा है।

विशुद्धिमार्ग में उपेक्षा एक 'कम्मट्ठान' के रूप में वर्णित है।[4] वहां इसकी भावना का सविस्तर वर्णन है। निदानकथाकार ने इसके अभ्यास के क्रम पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि—"सुख तथा दुःख के प्रति तटस्थ रहना उपेक्षा है"। इसकी भावना पृथ्वीवत् करनी चाहिए। जिस प्रकार पृथ्वी शुचि तथा अशुचि के फेंके जाने पर मध्यस्थ ही बनी रहती है, उसी प्रकार सुख-दुःख की अवस्थाओं के प्रति तटस्थ बने रहना ही इष्ट बतलाया गया है। इस गुण के इस रूप में परम भाव को प्राप्त होना ही उपेक्षा-पारमिता है।

१. अट्ठ० सा० पृ० १५७.

२. अट्ठ० सा० पृ० १४१–१४३.
उपेक्खा पन दस विधा होति—छलङ्गुपेक्खा, ब्रह्मविहारुपेक्खा, बोज्झङ्गुपेक्खा, विरियुपेक्खा, संखारुपेक्खा, वेदनुपेक्खा, विपस्सनुपेक्खा, तत्रमज्झत्तुपेक्खा, झानुपेक्खा, पारिसुद्धि-उपेक्खा ति।

३. अट्ठ० सा० पृ० ३७.

४. नवम परिच्छेद.

५ नि० क० भू०

लोमहंस जातक से प्रकट है कि बोधिसत्त्व ने इसके परिपाचन क्रम में सर्वत्र सुख-दुःख के प्रति उपेक्षा दर्शायी है। उनके इन वचनों से कि "मैं श्मशान में शवों तथा हड्डियों को नीचे रख कर सोता हूँ। गोपमण्डली मेरे निकट आ अनेक रूप दर्शा व्यंग करती है। उनके द्वारा थूक फेंक कर पीड़ा देने तथा माला गन्ध आदि के उपाहारादि से सुख पहुँचाने से मैं कभी समभाव का उलंघन नहीं किया। उपेक्षा का ऐसा कोटिनिष्ठ रूप होने के कारण यह परमार्थ पारमिता कहलायी।[1]

इस प्रकार उपलब्ध विवरण से विदित होता है कि ये दस पारमितायें ही दस बुद्ध कारक धर्म हैं। इनसे भिन्न अन्य किसी धर्म का उल्लेख नहीं है।[2] यह जान बोधिसत्त्व ने चार असंखेय्य एक लाख वर्षों तक विविध गति एवं योनियों में जाते हुए इनका परिपाचन किया। उनकी यह चर्या सुमेध ब्राह्मण के रूप में प्रारम्भ हुई तथा वेस्सन्तर राजा के रूप में समाप्त हुई। इस भव के अनन्तर तुसित लोक में कुछ दिन तक निवास कर पुनः सिद्धार्थ गौतम के रूप में जन्म लेकर उन्होंने बुद्धत्व की प्राप्ति की।

(४०) पारमिता-परिपाचन-क्रम

सुमेध ब्राह्मण ने भगवान दीपंकर से अपने सम्बन्ध में बुद्ध होने का व्याकरण प्राप्त कर बुद्धकारक धर्मों की गवेषणा की तथा उन्हें परम्परानुसार दान, शील, नैष्क्रम्य, प्रज्ञा, वीर्य, क्षान्ति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री तथा उपेक्षा नामक दस पारमिताओं के रूप में प्राप्त किया। जातकट्ठकथा से प्रकट होता है कि इन्हीं के परिपाचन स्वरूप उन्होंने बुद्धत्व की प्राप्ति की। अब यहाँ प्रश्न यह होता है कि पारमिताओं के कथन में जो क्रम है, वह ही क्या परिपाचन में भी क्रम है? अर्थात् क्या उन्होंने पहले दानपारमिता का परिपाचन किया, पुनः शीलपारमिता का तथा इसी क्रम से अन्त में उपेक्षा पारमिता का? यदि ऐसी बात है, तो इनके इस क्रम से कहने में कोई आधार होना चाहिए। दान, शील, नैष्क्रम्य, प्रज्ञा आदि को आध्यात्मिक विकास प्रक्रिया के क्रम के रूप में होना चाहिए।

---

१. नि० क० पृ० ११६.

२. इमस्मिं लोके बोधिसत्तेहि पूरेतब्बा बोधिपरिपाचना बुद्धकारकधम्मा एत्तका येव। दस पारमियों ठपेत्वा अञ्ञे नत्थि। नि० क० पृ० ६२.

× × ×

एत्तका येव ते लोके, ये धम्मा बोधिपाचना।
ततुद्धं नत्थि अञ्ञम,········ ॥ बु० वं० ३१७.

इसका उत्तर यह है कि यह सत्य है कि बोधिसत्त्व ने इन्हीं दस धर्मों के परिपाचन से बुद्धत्व का लाभ किया पर इसी क्रम से उन्होंने इनका परिपाचन किया इसका कोई साधार विवरण उपलब्ध नहीं होता है। पुनः दस पारमिताओं के कथन के अनन्तर जो उनके 'सम्मसन' की चर्चा है, उससे किसी विनिश्चित क्रम के होने की सूचना नहीं मिलती है। विवरण है कि—"बोधिसत्त्व ने दृढ़ता के साथ अधिष्ठान करते हुए पुनः पुनः सम्मसन कर अनुलोम प्रतिलोम क्रम से उनके ज्ञान को दृढ़ किया। वे अन्त से प्रारम्भ कर आदि तक पहुँचाते थे, आदि से लेकर अन्त तक पहुँचाते थे, मध्य से प्रारम्भ कर दोनों ओर छोर तक ले जाते थे, तथा दोनों छोरों से प्रारम्भ कर मध्य तक ला समाप्त करते थे।" इससे स्पष्ट है कि इनकी गणना का आदि से या मध्य से या अन्त से कोई क्रम हो सकता है।

साथ ही इन दस धर्मों के स्वरूप का सूक्ष्मतया विश्लेषण से विवृत होता है कि किसी भी एक धर्म का परिपालन नितान्ततः पृथक् रूप से नहीं हो सकता है। ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि दानपारमिता का तो परिपाचन हो रहा है, पर शील, नैष्क्रम्य, प्रज्ञा, सत्य आदि का नितरां अभाव है। दुःशील या असत्यवादी द्वारा दानपारमिता का परिपाचन हो ही नहीं सकता है। अतः वास्तविकता ऐसी प्रतीत होती है कि दसो धर्मों का परिपालन एक साथ ही चल रहा था, पर एक एक जीवन में या उस जीवन के कृत्यविशेष में किसी एक धर्म का परमभाव प्राप्त हुआ और उसी के कारण वह तन्नामिक पारमिता कहलायी। यथा शशयोनि में विद्यमान बोधिसत्त्व ने याचक ब्राह्मण को अभीप्सित वस्तु देने में आत्मोत्सर्ग किया। फलतः चरमभाव प्राप्त वह दान कृत्य दानपारमिता कहलायी।[1] इसी प्रकार अन्य पारमिताओं के पक्ष में भी जाना जा सकता है।

८. बुद्ध

निदानकथा में भगवान दीपंकर से लेकर गौतम बुद्ध तक पचीस बुद्धों की चर्चा प्राप्त है। इस परम्परा में भगवान दीपंकर आदि बुद्ध समझे जाते हैं। इनसे लेकर चौबीसवें बुद्ध काश्यप तक सभी द्वारा बोधिसत्त्व (गौतम बुद्ध) को व्याकरण प्राप्त है। ऐसी भी चर्चा उपलब्ध है कि जिस कल्प में भगवान दीपंकर उत्पन्न हुए थे, उस कल्प में तण्हंकर, मेधंकर तथा सरणंकर नामक तीन अन्य बुद्ध भी उत्पन्न थे। यस्मात् उनके द्वारा बोधिसत्त्व को बुद्ध होने के विषय

---

१. भिक्खाय उपगतं दिस्वा, सकत्तानं परिच्चजिं।
दानेन मे समो नत्थि, एसा मे दानपारमी ॥ नि० क० पृ० ११२.

में व्याकरण प्राप्त नहीं है, इसलिए उनका विवरण निदानकथा में नहीं है।[1] यह पुस्तक केवल पचीस बुद्धों का जीवनवृत्त प्रस्तुत करती है।

अब बुद्ध-विषयक उपलब्ध सामग्री की पृष्ठभूमि में बुद्धत्व, उनकी परम्परा उनके प्रादुर्भाव के कारण, उनकी विलक्षणता आदि विचार्य हैं।

(४१) बुद्ध कौन हैं ?

सौगत परम्परा में एक ऐसे लोकोत्तर मानव की कल्पना है, जो समस्त ज्ञेय पदार्थों को जान, परम सत्य का साक्षात्कार कर, स्वयं शुद्ध एवं विमुक्त हो, दूसरों के लिए विमुक्ति-पथ का प्रदर्शन करता है, ऐसा देवता तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ पुरुष ही बुद्ध कहलाता है। यह किसी व्यक्ति का जातिगत या वंशगत नाम नहीं है, वरन् एक विशिष्ट उपलब्धि-विषयक नाम है। 'चुल्लनिद्देस' से प्रकट है कि "बुद्ध जैसा नाम माता, पिता, भाई, बहन, मित्र, सम्बन्धी, श्रमण-ब्राह्मण, या देवता द्वारा दिया हुआ नहीं है, वरन् बोधिमूल में विमोक्ष-पुरस्सर सर्वज्ञता के अधिगम के साथ उपलब्ध एक प्रज्ञप्ति है"।[2] यह उस पुरुष का अभिधान है, जिसने चार आर्य सत्यों को जान लिया है, सर्वज्ञता को प्राप्त कर लिया है, राग, द्वेष, मोह, आस्रव तथा अन्यान्य क्लेशों से पूर्णतः विमुक्त हो परम सम्बोधि का अधिगम कर, सब कुछ यथार्थ रूप से जान प्रजा को उपदेश करता है। ऐसा अबुद्धिविहत तथा बुद्धिप्रतिलाभी पुरुष ही बुद्ध कहलाता है।[3] "वह स्वयंभू, अनाचार्यक, समस्त पदार्थों का ज्ञाता, सभी बलों पर वशिभाव प्राप्त तथा सर्वज्ञ

१. यस्मिं पन कप्पे दीपंकरदसबलो उदपादि, तस्मिं अञ्ञे पि तयो बुद्धा अहेसुं। तेसं सन्तिका बोधिसत्तस्स व्याकरणं नत्थि। तस्मा ते इध न दस्सिता। नि० क० पृ० १०८.

२. बुद्धो ति नेतं नामं मातरा कतं, न पितरा कतं, न भातरा कतं, न भगिनिया कतं, न मित्तामच्चेहि कतं, न ञातिसालोहितेहि कतं, न समणब्राह्मणेहि कतं, न देवताहि कतं। विमोक्खन्तिकमेतं बुद्धानं भगवन्तानं बोधिया मूले सह सब्बञ्ञुतञाणस्स पटिलाभा सच्छिका पञ्ञत्ति। चु० नि० पृ० २०९, म० नि० पृ० ३९८–९९.

३. बुद्धो ति केनट्ठेन बुद्धो ? बुज्झिता सच्चानी ति बुद्धो, बोधेता पजाय ति बुद्धो, सब्बञ्ञुताय बुद्धो, सब्बदस्साविताय बुद्धो, अभिञ्ञेय्यताय बुद्धो, विकसिताय बुद्धो, खीणासवसङ्खातेन बुद्धो, निरूपक्किलेससंखातेन बुद्धो, एकन्तवीतरागो ति बुद्धो, एकन्तवीतदोसो ति बुद्धो, एकन्तवीतमोहो ति बुद्धो, एकन्तनिक्किलेसो ति बुद्धो, एकायनमग्गं गतो ति बुद्धो, एको अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो ति बुद्धो, अबुद्धिविहतत्ता बुद्धिपटिलाभा ति बुद्धो। चु० नि० पृ० २०८–९.

होता है।" बुद्धभाव की ऐसी अभिव्यक्ति निम्नलिखित गाथा में स्पष्टतया देखी जा सकती है—

"अभिञ्ञेय्यं अभिञ्ञातं, भावेतब्बं च भावितं।
पहातब्बं पहीनं मे, तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मणा" ति॥

(४२) बुद्धों के प्रकार

पिटक-परम्परा के अनुसार बुद्ध दो प्रकार के होते हैं। वे हैं—सम्यक् सम्बुद्ध तथा प्रत्येक बुद्ध।[1] सम्यक् सम्बुद्ध पद की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि—"सम्मा सामञ्च सब्बधम्मानं बुद्धत्ता पन सम्मासम्बुद्धो।"

अर्थात् वे सम्यक् सम्बुद्ध इसलिए कहलाते हैं क्योंकि उन्होंने समस्त धर्मों को सम्यक् रूप से जान लिया है।[2] वे भगवान्, अर्हत्, विद्याचरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविदु, अनुत्तर, पुरुषदम्यसारथी तथा देवता एवं मनुष्यों के शास्ता कहे जाते हैं।[3] वे स्वयं तीर्ण हैं तथा प्राणिमात्र के तरणार्थ मार्ग का प्रतिपादन करते हैं। सम्बोधि प्राप्त किये रहते हैं तथा बहुजनहिताय बहुजनसुखाय धर्मोपदेश करते हैं।

प्रत्येक बुद्ध को आधुनिक विद्वानों ने मौन बुद्ध कहा है। इसका कारण यह है कि ऐसे बुद्ध अनाचार्यक भाव से प्रत्येक सम्बोधि को प्राप्त किये रहते हैं,[4] पर धर्मोपदेश नहीं करते हैं। वे स्वयं तीर्ण रहते हैं, पर जनसमूह के तारणार्थ

१. इधेकच्चो पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अभिसम्बुज्झति, तत्थ च सब्बञ्ञुतं पापुणाति, बलेसु च वसीभावं। अयं वुच्चति पुग्गलो सम्मासम्बुद्धो।

× × ×

इधेकच्चो पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अभिसम्बुज्झति, न च तत्थ सब्बञ्ञुतं पापुणाति, न च बलेसु वसीभावं। अयं वुच्चति पुग्गलो पच्चेकबुद्धो। पु० प० पृ० २३.

२. "जरामरणं दुक्खसच्चं, जाति समुदयसच्चं, उभिन्नम्पि निस्सरणं निरोधसच्चं, निरोधपजाननापटिपदा मग्गसच्चं" ति, एवं एकेकपदुद्धारेन सब्बधम्मे सम्मा सामञ्च बुद्धो अनुबुद्धो पटिबुद्धो। वि० म० पृ० १३७.

३. इति पि सो भगवा अरहा सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदु अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथी सत्था देवमनुस्सानं। म० नि० २–३७६.

४. एवं सो पच्चेक-सम्बुद्धो एको अनुत्तरं पच्चेकसम्बोधिं अभिसम्बुद्धो ति एको। चु० नि० पृ० २४१.

धर्म-शासन की स्थापना नहीं करते हैं। वे सर्वदा विमुक्ति सुख में रत हो एकान्त विहार करते हैं। केवल सुत्तनिपात के "खग्गविसाणसुत्त" में एकतालीस गाथायें हैं, जो प्रत्येक बुद्ध के उद्गार के रूप में बतलायी जाती हैं।

'चुल्लनिद्देस' में प्रत्येक बुद्ध पद की चर्चा करते हुए उन्हें नव कारणों से एकान्त विहारी कहा गया है। वे प्रव्रज्या, अद्वितीय विहार, तृष्णा प्रहाण, एकान्ततः वीतरागता, एकान्ततः वीतद्वेषता, एकान्ततः वीतमोहता, एकान्ततः क्लेशरहितता, एकमात्रमार्गगमनता, अनुत्तर प्रत्येक सम्बोधिअधिगमनता की दृष्टियों से 'अकेले' होने के कारण एकान्त बिहारी हैं। वे दो असंखेय्य एक लाख कल्प तक पारमिताओं की परिपूर्ति कर प्रत्येक सम्बोधि की प्राप्ति करते हैं। पर वे न तो सर्वज्ञ होते हैं, न बलों पर वशिभाव प्राप्त रहते हैं। उनकी ईर्यापथ ही विज्ञजनों के लिए देशना है। वे अन्य सम्यक् सम्बुद्धों के काल में भी उत्पन्न होते हैं, पर ऐसे प्रसंग नहीं देखने को मिलते हैं, जब उनका अन्य बुद्धों से साक्षात्कार हुआ हो।

अट्ठकथाओं में चार प्रकार के बुद्धों की चर्चा आई है।[१] वे हैं—सम्यक् सम्बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध, चतुसच्च-बुद्ध, सुत-बुद्ध।[२] इनमें अर्हन्त को चतुसच्चबुद्ध तथा परियत्ति—पटिपत्तिविद् पण्डित को 'बहुस्सुतबुद्ध' कहा जाता है।

(४३) बुद्धों की संख्या

त्रिपिटक में कई स्थलों में बुद्धों की चर्चा आयी है। महापदान सुत्त से प्रकट होता है कि गौतमबुद्ध के पूर्व केवल छ बुद्ध हुए है। गौतम बुद्ध सातवें बुद्ध के रूप में वर्णित हैं। इस प्रकार पिटक के पूर्ववर्ती ग्रन्थों के अनुसार विपश्यी, सिखी, विश्वभू, ककुसन्ध, कोणागमन, काश्यप तथा गौतम नामक सात बुद्धों के नाम पाये जाते हैं।[३] संयुत्तनिकाय तथा पाराजिक में में भी इन्हीं सात बुद्धों की चर्चा है।[४] इन सात बुद्धों से इनकी संख्या पचीस या अट्ठाइस कैसे हो गई, इसका कोई क्रमबद्ध रूप नहीं उपलब्ध है। पर इतना स्पष्ट है कि 'बुद्धवंस' के समय पचीस बुद्धों की परम्परा जीवित थी। इसी क्रम में तीन अन्य बुद्धों का भी उल्लेख है, जिनका बोधिसत्त्व ने न तो दर्शन ही किया था,

१. चु० नि० पृ० २४४.

२. सं० नि० अ० १.२०; अं० नि० अ० १.६५; D. P. P. N. २.२१.

३. दी० नि० २, ४.

४. सं० नि० २,६–१२;
पारा० पृ० १०–११.

न उन्हें उनका व्याकरण ही प्राप्त था। निदानकथाकार ने अपने वर्णनक्रम में बुद्धवंस को आधार मान पचीस बुद्धों का संक्षिप्त जीवनवृत्त प्रस्तुत किया है।

परवर्ती संस्कृत ग्रन्थों में बुद्धों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई है। ललितविस्तर के अनुसार चौवन तथा महावस्तु के अनुसार एक सौ से अधिक बुद्धों के प्रादुर्भाव के प्रसंग हैं। महायान के विकासकाल में मनुष्यमात्र को बुद्धबीजी स्वीकार कर असंख्य बुद्धों की कल्पना की गई है। वहां यह मान्यता दृढ़ एवं स्पष्ट-सी हो गई है कि कोई भी पुरुष सम्यक् व्यायाम द्वारा शील समाधि तथा प्रज्ञा से युक्त आर्यमार्ग का अनुसरण करते हुए पारमिताओं को पूरण कर बुद्ध हो सकता है।

स्थविरवादी परम्परा के अनुसार बुद्ध केवल जम्बुद्वीप में ही उत्पन्न होते हैं। एक समय केवल एक बुद्ध का प्रादुर्भाव होता है। जब एक बुद्ध के शासन का पूर्णतः अन्तर्धान हो जाता है, तो अन्य बुद्ध का आगमन होता है।

यहां दर्शनीय है कि ब्राह्मण परम्परा में भी अवतारों की संख्या एक नहीं है। महाभारत के शान्तिपर्व में वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम तथा कृष्ण नामक छ अवतारों का उल्लेख है।[१] पद्मपुराण में इनकी संख्या दस देखी जाती है।[२] वहां मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि के नाम आते हैं। जयदेव कृत 'गीतगोविन्द' में इन्हीं दस अवतारों की वन्दना है तथा क्षेमेन्द्र के 'दशावतारचरित' में इनका ही जीवनवृत्त उपलब्ध होता है। प्रचलित परम्परा के अनुसार इनमें दो जलज (मत्स्य तथा कच्छप), दो वनज (वराह तथा नरसिंह), तीन राम (परशुराम, दाशरथी राम तथा बलराम), एक कृपायुत्त (बुद्ध) तथा एक कृपारहित (कल्कि) कहे जाते हैं।[३] कहीं-कहीं इन दस नामों में कुछ विभेद भी देखा जाता है। शान्तिपर्व के एक अन्य गणनाक्रम में बुद्ध का नाम नहीं है तथा हंस का एक नया नाम आ गया है।[४] श्रीमद्भागवतपुराण के प्रथम, द्वितीय, दशम तथा एकादश स्कन्धों में

१ शान्तिपर्व, ३३९ ७७–१०२.

२. मत्स्यः कूर्मो वराहश्च, नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च, बुद्धः कल्किश्च ते दश॥
पद्मपुराण, उत्तर २५७ ४०–१.

३. वनजौ वनजौ खर्वः, त्रिरामी सकृपोऽकृपः।
अवतारा दशैवैते, कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥ पुराणविमर्श, पृ० १७५.

४. हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावाद् द्विजोत्तम।
वाराहो नरसिंहश्च, वामनो राम एव च।
रामो दाशरथिश्चैव, सात्त्वतः कल्किरेव च॥ शान्तिपर्व ३३९. १०३–४.

अवतारों की सूची आई है, पर वहां भी संख्यागत विभेद देखा जाता है। प्रथम स्कन्ध की सूची में बाइस नाम हैं। द्वितीय स्कन्ध में भी बाइस नाम आये हैं। दशम तथा एकादश स्कन्धों में क्रमशः चौदह तथा बीस संख्या है। पर प्रसिद्ध परम्परा अवतारों की संख्या चौबीस बतलाती है। पं० बलदेव उपाध्याय ने इसकी परिपूर्ति-रूप प्रथम स्कन्ध की सूची में हंस तथा हयग्रीव को जोड़ अवतारों की संख्या चौबीस बतलायी है।[1]

जैन परम्परा में चौबीस तीर्थंकरों का वर्णन है। वहाँ संख्या में व्यतिक्रम नहीं देखा जाता है। ऐसी मान्यता है कि वे ही चौबीस तीर्थंकर कालक्रम से आते रहते हैं।

इन बुद्धों, अवतारों तथा तीर्थंकरों के नाम निम्नलिखित प्रकार से देखे जा सकते है। इनकी संख्या तथा प्रादुर्भाव में निहित्त सिद्धान्तों के तुलनात्मक अध्ययन से महापुरुषप्रादुर्भावविषयक प्राचीन भारतीय चिन्तन प्रक्रिया पर प्रभूत प्रकाश पड़ सकता है।

२५ बुद्ध	**२४ अवतार**	**२४ तीर्थंकर**
१. दीपंकर	१. कौमारसर्ग	१. ऋषभदेव
२. कौण्डिन्य	२. वराह	२. अजितनाथ
३. मंगल	३. नारद	३. संभव
४. सुमन	४. नरनारायण	४. अभिनन्दन
५. रेवत	५. कपिल	५. सुमति
६. शोभित	६. दत्तात्रेय	६. पद्म
७. अनोमदर्शी	७. यज्ञ	७. सुपार्श्व
८. पद्म	८. ऋषभदेव	८. चन्द्रप्रभ
९. नारद	९. पृथु	९. पुष्पदन्त
१०. पद्मोत्तर	१०. मत्स्य	१०. शीतल
११. सुमेध	११. कच्छप	११. श्रेयान्स
१२. सुजात	१२. धन्वन्तरि	१२. वसुपुत्र
१३. प्रियदर्शी	१३. मोहिनी	१३. विभव
१४. अर्थदर्शी	१४. नरसिंह	१४. अनन्त
१५ धर्मदर्शी	१५. वामन	१५. धर्म
१६. सिद्धार्थ	१६. परशुराम	१६. शान्ति
१७. तिष्य	१७, वेदव्यास	१७. कुन्थु

१. पुराणविमर्श, पृ० १७३–७४.

१८. पुष्य	१८. हंस	१८. अर
१९. विपश्यी	१९. हयग्रीव	१९. मल्लि
२०. शिखी	२०. रामचन्द्र	२०. मुनिसुव्रतनाथ
२१. वेस्सभू	२१. बलराम	२१. नमिनाथ
२२. ककुसन्ध	२२. कृष्ण	२२. नेमिनाथ
२३. कोणागमन	२३. बुद्ध	२३. पार्श्वनाथ
२४. काश्यप	२४. कल्कि[2]	२४. महावीर[3]
२५. गौतमबुद्ध[1]		

इस प्रसंग में यह स्पष्टतः जानना चाहिए कि अवतारों, बुद्धों तथा तीर्थंकरों में प्रभूत पार्थक्य है। जिस अर्थ में ब्राह्मण-परम्परा राम, कृष्ण आदि को भगवान मानती है, उस अर्थ में बौद्ध तथा जैन परम्परा बुद्ध तथा तीर्थंकरों को भगवान नहीं मानती है। अवतार ईश्वर के अंश या स्वयं ईश्वर ही होते हैं, जब कि बुद्ध या तीर्थंकर एक पूर्ण, शुद्ध, प्रबुद्ध मनुष्य होते है। ईश्वर सर्वशक्तिमान् होते हैं तथा प्राणियों का उद्धार उनकी कृपा पर निर्भर है। जिस मनुष्य पर भगवान की अकृपा होती है, उसका पुनः कहीं स्थान नहीं रह जाता है। इसके विपरीत जिस पर वे प्रसन्न हो जाते हैं, उसके समस्त ताप समाप्त हो जाते हैं। मनुष्यों के उद्धार का काम वे अपने हाथों लेते हैं। उनकी ऐसी स्पष्ट उक्ति है कि—

"सर्वं धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥" गीता, १८–६६.

बौद्ध-परम्परा में बुद्ध केवल सन्मार्ग का प्रज्ञापन करते हैं। यदि मनुष्य उस पर नहीं चले तो, इससे उनका कोई सम्बन्ध नहीं। वे उस वैद्य के समान हैं, जो व्याधिगत पुरुष को औषधि का विधान करते हैं। यदि रोगी औषधि का ग्रहण नहीं करे या पथ्यापथ्यविभेद न रखे, तो इसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। बुद्ध की स्पष्ट उक्ति हैं कि 'वे तो केवल मार्ग दिखलाने वाले है, चलना तो मनुष्य को ही पड़ेगा'[4]—'तुम्हेहि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागतो'।[5] जैन-परम्परा भी इसी तथ्य का प्रतिपादन करती है।[6]

१. नि० क० पृ० १०८.
२. पुराणविमर्श पृ० १७३.
३. पद्मपुराण (रविषेणाचार्य), २०, ८–१०।
४. इह इत्तरियम्मि आउए, जीवियए बहुपच्चवायए।
विहुणाहि रयं पुरे कडं, समयं गोयम मा पमायए॥ उत्त० अ० १०–३.

(४४) कल्पभेद तथा बुद्ध

बौद्ध-परम्परा के अनुसार काल की गणना कल्प की दृष्टि से की गई है। बुद्धों की उत्पत्ति की दृष्टि से कल्प दो प्रकार के होते हैं—शून्य कल्प तथा अशून्य कल्प। शून्य कल्प में बुद्ध उत्पन्न नहीं होते हैं। उनकी उत्पत्ति केवल अशून्य कल्प में देखी जाती है। पुनः अशून्य कल्प के पाँच भेद होते है। यथा—सारकल्प, मण्डकल्प, वरकल्प, सारमण्डकल्प, भद्रकल्प। इन प्रत्येक कल्प में बुद्धों की उत्पत्ति की चर्चा है, पर उनकी संख्या में भेद है।

कहा जाता है कि कभी एक कल्प में एक ही बुद्ध उत्पन्न होते हैं। ऐसा कल्प सारकल्प कहा जाता है। कभी एक कल्प में दो बुद्ध उत्पन्न होते हैं। यह कल्प मण्डकल्प के नाम से अभिहित होता है। इसी प्रकार तीन बुद्धों के उत्पन्न होने वाले कल्प को वरकल्प, चार बुद्धों वाले कल्प को सारमण्डकल्प तथा पांच बुद्धों से सम्पन्न कल्प को भद्रकल्प कहा जाता है।[1] कल्पों का स्वरूप स्थिर नहीं है। वे चक्रवत् आते जाते रहते हैं। इस दृष्टि से निदानकथा में वर्णित पचीस बुद्धों की कल्पगत उत्पत्ति का विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है—

	कल्पनाम	बुद्धनाम
१.	सारकल्प	कौण्डिन्य, पद्मोत्तर, सिद्धार्थ, विपश्यी।
२.	मण्डकल्प	सुमेध, सुजात, तिष्य, पुष्य, शिखी, विश्वभू।
३	वरकल्प	अनोमदर्शी, पद्म, नारद, प्रियदर्शी, अर्थदर्शी, धर्मदर्शी।
४.	सारमण्डकल्प	दीपंकर, मंगल, सुमन, रेवत, शोभित।
५.	भद्रकल्प	ककुसन्ध, कोणागमन, काश्यप, तथा गौतम बुद्ध।

(४५) निदानकथा में बुद्ध

निदानकथा में पचीस बुद्धों की संक्षिप्त कथा है। इनमें दीपंकर से लेकर काश्यप बुद्ध तक चौबीस बुद्धों की कथा सामान्य विवरणभेद के अतिरिक्त प्रायः एक-सी है। वहां सर्वप्रथम काल का निर्देश है कि वे आदि बुद्ध के कितने कल्प बाद उत्पन्न हुए। पुनः कितने श्रावकसन्निपात तथा उक्त श्रावकसम्मेलनों में कितने को ज्ञान हुआ, उस समय बोधिसत्त्व किस रूप में थे, आदि। तदनन्तर उनके नगर, माता-पिता, अग्रश्रावक, परिचारक, अग्रश्राविका, बोधिवृक्ष, शरीर

१. D. P. P. N. २.२०८.

की लम्बाई तथा आयुप्रमाण का उल्लेख है। यह क्रम सब में इस प्रकार शृंखलाबद्ध-सा होने के कारण कुछ कृत्रिमता का द्योतन करता है। बुद्धवंस तथा उसकी अट्ठकथा में भी क्रमशः ग्यारह तथा बाइस उक्त प्रकार के शीर्षों में बुद्धकथा का कथन तथा व्याख्या देखी जाती है। इसके विश्लेषण से प्रकट होता है कि प्रत्येक बुद्ध एक दूसरे से आठ बातों में भिन्न होते हैं। वे हैं—आयुप्रमाण, शरीर की लम्बाई, जाति, तपश्चर्या-काल, शरीरप्रभा, गृहत्याग के वाहन, बोधिवृक्ष, पल्लंकासन का आकार।[1] पुनः अट्ठकथा में ऐसे तीस धर्मों (समतिंस विधा धम्मता) का उल्लेख है, जो सभी बुद्धों में समान हैं।[2] उदाहरण स्वरूप प्रत्येक बोधिसत्त्व द्वारा प्रतिसन्धि के क्षण स्मृतिमान् होना, मां के गर्भ में आसन सम्पन्न विद्यमान रहना, मां की खड़ी अवस्था में उनका प्रसव होना, किसी उद्यान में जन्म लेना, जन्म के तुरत बाद उत्तर दिशा में सात पद चलना तथा सिंहनाद करना, आदि।

सभी बुद्धों के सम्बन्ध में चार अविजहित स्थानों का उल्लेख है। वे चारों स्थान सर्वदा एक होने के कारण अविजहित स्थान कहे जाते हैं। वे हैं—बोधिवृक्ष के नीचे पल्लंकासन का स्थान, ऋषिपतन मृगदाव का प्रथम-देशना-स्थान, तुषित देवलोक से संकाश्य में उतरने पर प्रथम-पाद-निक्षेपन-स्थान, जेतवन में चार स्तम्भों से निर्दिष्ट गन्धकुटी का स्थान।[3] इसी प्रकार अट्ठकथाओं में पूर्ण विवरण के साथ बुद्ध की कथायें देखी जाती हैं।

निदानकथा गौतम बुद्ध का केवल पूर्वार्द्ध चरित उपस्थित करती है। इनकी कथा का भी विश्लेषण पूर्वोक्त शीर्षकों में किया जा सकता है, पर पूर्ण चरित के अभाव में आयुप्रमाणादि-विषयक बातें यहां अधूरी रह जाती हैं।

यहां एक बात दर्शनीय है कि गौतम बुद्ध के अतिरिक्त अन्य बुद्धों के शासन तथा धर्मोपदेश के सम्बन्ध में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। इसलिए कभी-कभी चौबीस बुद्धों की परम्परा के पीछे किसी कुशल कलाकार की कल्पना की आशंका होने लगती है। जो हो, निदानकथा, बुद्धवंस, बुद्धवंस-अट्ठकथा तथा दीघनिकाय-अट्ठकथा में उपलब्ध विवरणों के आधार पर पचीस बुद्धों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित प्रकार से दिया जा सकता है—

१. बु० वं० अ० पृ० २४७.
२. ब० वं० अ० पृ० २४८–४९.
१. बु० वं० अ० पृ० २४७; D. P. P. N. २, २१६.

१. बुद्ध का नाम	१. दीपंकर	२. कौण्डिण्य	३. मंगल
२. कितने पूर्व	चार असंखेय्य एक लाख कल्प	दो असंखेय्य एक लाख कल्प	दो असंखेय्य एक लाख कल्प
३. कल्प	सारमण्ड	सार	सारमण्ड
४. नगर	रम्यवती	रम्यवती	उत्तर
५. पिता	सुदेव	आनन्द	उत्तर
६. माता	सुमेधा	सुजाता	उत्तरा
७. प्रासाद	हंस, क्रौंच, मयूर	सुचि, सुरुचि, शुभ	यशमान्, रुचिमान्, श्रीमान्
८. स्त्री	पद्मा	रुचि देवी	यशवती
९. पुत्र	वृषभस्कन्ध	विजितसेन	शिवल
१०. गृहीजीवन	दस हजार वर्ष	दस हजार वर्ष	नव हजार वर्ष
११. गृहत्याग का वाहन	हाथी	रथ	अश्व
१२. तपश्चर्या काल	दस मास	दस मास	आठ मास
१३. बोधिवृक्ष	पिप्पली	अश्वत्थ	नाग वृक्ष
१४. अग्रश्रावक	सुमंगल, तिष्य	भद्र, सुभद्र	सुदेव, धर्मसेन
१५. परिचारक	सागत	अनुरुद्ध	पालित
१६. अग्रश्राविका	नन्दा, सुनन्दा	तिष्या, उपतिष्या	शिवला अशोका
१७. श्रावक सम्मेलन	तीन	तीन	तीन
१८. आयु	एक लाख वर्ष	एक लाख वर्ष	नब्बे हजार वर्ष
१९. उंचाई	अस्सी हाथ	अट्ठासी हाथ	अट्ठासी हाथ
२०. बोधिसत्त्व	सुमेध	विजितावी राजा	सुरुचि ब्राह्मण
२१. पारमी-पूरण-अवधि	× ×	सोलह असंखेय्य एक लाख कल्प	सोलह असंखेय्य एक लाख कल्प

१. बुद्ध का नाम	४. सुमन	५. रेवत	६. शोभित
२. कितने पूर्व	दो असंखेय्य एक लाख कल्प	दो असंखेय्य एक लाख कल्प	दो असंखेय्य एक लाख कल्प
३. कल्प	सारमण्ड	सारमण्ड	सारमण्ड
४. नगर	खेम	धन्यवती	सुधर्म
५. पिता	सुदत्त	विपुल	सुधर्म
६. माता	सिरिमा	विपुला	सुधर्मा
७. प्रासाद	चन्द्र, सुचन्द्र, वट्टंस	सुदर्शन, रत्नग्घि, आवेल	कुमुद, नलिन, पद्म
८. स्त्री	वहंसिका	सुदर्शना	मनिला
९. पुत्र	अनुपमा	वरुण	सिंह
१०. गृही जीवन	नव हजार वर्ष	छ हजार वर्ष	नव हजार वर्ष
११. गृह त्याग का वाहन	हाथी	रथ	प्रासाद
१२. तपश्चर्या काल	दस महीना	सात महीना	सात दिन
१३. बोधिवृक्ष	नागवृक्ष	नागवृक्ष	नागवृक्ष
१४. अग्रश्रावक	शरण, भावितत्त	वरुण, ब्रह्मदेव	असम, सुनेत्र
१५. परिचारक	उदेन	संभव	अनोम
१६. अग्रश्राविका	सोणा, उपसोणा	भद्रा, सुभद्रा	नकुला, सुजाता
१७. श्रावक सम्मेलन	तीन	तीन	तीन
१८. आयु	नब्बे हजार वर्ष	साठ हजार वर्ष	नब्बे हजार वर्ष
१९. ऊँचाई	नब्बे हाथ	अस्सी हाथ	अट्ठावन हाथ
२०. बोधिसत्त्व	अतुलनागराज	अतिदेव ब्राह्मण	सुजात ब्राह्मण
२१. पारमी-पूरण-अवधि	× ×	× ×	चार असंखेय्य एक लाख कल्प

१. बुद्ध का नाम	७. अनोमदर्शी	८. पद्म	९. नारद
२. कितने पूर्व	एक असंखेय्य एक लाख कल्प	एक असंखेय्य एक लाख कल्प	एक असंखेय्य एक लाख कल्प
३. कल्प	वर	वर	वर
४. नगर	चन्द्रवती	चम्पक	धन्यवती
५. पिता	यशवान्	असम	सुदेव
६. माता	यशोधरा	असमा	अनोमा
७. प्रासाद	श्री, उपश्री, वड्ढ	नन्दुत्तर, वसुत्तर, यशुत्तर	जित, विजित, अभिराम
८. स्त्री	सिरिमा	उत्तरा	विजितसेना
९. पुत्र	उपवाण	राम	नन्दुत्तर
१०. गृही जीवन	दस हजार वर्ष	दस हजार वर्ष	नव हजार वर्ष
११. गहत्याग का वाहन	शिविका	रथ	पैदल
१२. तपश्चर्या काल	दस मास	आठ मास	सात दिन
१३ बोधिवृक्ष	अर्जुनवृक्ष	महासोण	महासोण
१४. अग्रश्रावक	निसम, अनोम	साल, उपसाल	भद्रसाल, जितमित्र
१५. परिचारक	वरुण	वरुण	वाशिष्ठ
१६. अग्रश्राविका	सुन्दरी, सुमना	रामा, सुरामा	उत्तरा, फाल्गुनी
१७. श्रावक सम्मेलन	तीन	तीन	तीन
१८. आयु	एक लाख वर्ष	एक लाख वर्ष	नब्बे हजार वर्ष
१९. ऊँचाई	अन्ठावन हाथ	अन्ठावन हाथ	अठ्ठासी हाथ
२०. बोधिसत्त्व	यक्ष सेनापति	सिंहराज	तपस्वी
२१. पारमी-पूरण-अवधि	सोलह असंखेय्य एक लाख कल्प	× ×	चार असंखेय्य एक लाख कल्प

१. बुद्ध का नाम	१०. पद्मोत्तर	११. सुमेध	१२. सुजात
२. कितने पूर्व	एक लाख कल्प	तीस हजार कल्प	तीस हजार कल्प
३. कल्प	सार	मण्ड	मण्ड
४. नगर	हंसवती	सुदर्शन	सुमंगल
५. पिता	आनन्द	सुदत्त	उग्रत
६. माता	सुजाता	सुदर्शना	प्रभावती
७. प्रासाद	नरवाहन, यशवाहन, वशवर्ती	सुचन्दन, कञ्चन श्रीवर्द्धन	श्री, उपश्री, नन्द
८. स्त्री	वसुदत्ता	सुमना	श्री नन्दा
९. पुत्र	उत्तर	पुनर्वसु	उपसेन
१०. गृही जीवन	दस हजार वर्ष	नव हजार वर्ष	नव हजार वर्ष
११. गृह त्याग का वाहन	प्रासाद	हाथी	अश्व
१२. तपश्चर्या काल	सात दिन	पन्द्रह दिन	नव मास
१३. बोधिवृक्ष	साल वृक्ष	महानीप	महाबेगु
१४. अग्रश्रावक	देवल, सुजात	शरण, सर्वकाम	सुदर्शन, देव
१५. परिचारक	सुमन	सागर	नारद
१६. अग्रश्राविका	अमिता, असमा	रामा, सुरामा	नागा, नागसमाला
१७. श्रावक सम्मेलन	तीन	तीन	तीन
१८. आयु	एक लाख वर्ष	नब्बे हजार वर्ष	नब्बे हजार वर्ष
१९. ऊँचाई	अट्ठासी हाथ	अट्ठासी हाथ	पचास हाथ
२०. बोधिसत्व	जटिल	उत्तर माणव	चक्रवर्ती राजा
२१. पारमी-पूरण-अवधि	× ×	× ×	× ×

१. बुद्ध का नाम	१३. प्रियदर्शी	१४. अर्थदर्शी	१५. धर्मदर्शी
२. कितने पूर्व	एक सौ अट्ठारह कल्प	एक सौ अट्ठारह कल्प	एक सौ अट्ठारह कल्प
३. कल्प	वर	वर	वर
४. नगर	अनोम	शोभित	शरण
५. पिता	सुदिन्न	सागर	शरण
६. माता	चन्दा	सुदर्शना	सुनन्दा
७. प्रासाद	सुनिर्मित, विमल, गिरिगुहा	अमर, गिरि, सुगिरिवाहन	अरज, बिरज, सुदर्शन
८. स्त्री	विमला	विशाखा	वीचिकोलि
९. पुत्र	कञ्चनवेल	सेल	पुष्यवर्द्धन
१०. गृही जीवन	नव हजार वर्ष	दस हजार वर्ष	आठ हजार वर्ष
११. गृहत्याग का वाहन	रथ	अश्व	प्रासाद
१२. तपश्चर्या काल	छ मास	आठ मास	सात दिन
१३. बोधिवृक्ष	ककुध	चम्पक	बिम्बिजाल
१४. अग्रश्रावक	पालित, सर्वदर्शी	शान्त, उपशान्त	पद्म, पुष्यदेव
१५. परिचारक	शोभित	अभय	सुनेत्त
१६. अग्रश्राविका	सुजाता, धर्मदिन्ना	धम्मा, सुधम्मा	सेमा, सर्वनामा
१७. श्रावक सम्मेलन	तीन	तीन	तीन
१८. आयु	नब्बे हजार वर्ष	दस हजार वर्ष	दस हजार वर्ष
१९. ऊँचाई	अस्सी हाथ	अस्सी हाथ	अस्सी हाथ
२०. बोधिसत्त्व	काश्यप माणव	सुषीम तापस	शक्र
२१. पारमी-पूरण-अवधि	× ×	× ×	× ×

१. बुद्ध का नाम	१६. सिद्धार्थ	१७. तिष्य	१८. पुष्य
२. कितने पूर्व	चौरानबे कल्प	बानबे कल्प	बानबे कल्प
३. कल्प	सार	मण्ड	मण्ड
४. नगर	वैभार	क्षेम	काशी
५. पिता	जयसेन	जनसन्ध	जयसेन
६. माता	सुस्पर्शा	पद्मा	सिरिमा
७. प्रासाद	कोक, सुप्पल, कोकनद	गुहासेल, नारिसया, निसभ	गरुड़पक्ष, हंस, सुवर्णसार
८. स्त्री	सौमनस्या	सुभद्रा	कृशा गौतमी
९. पुत्र	अनुपम	आनन्द	अनुपम
१०. गृही जीवन	दस हजार वर्ष	सात हजार वर्ष	नव हजार वर्ष
११. गृहत्याग का वाहन	शिविका	अश्व	हाथी
१२. तपश्चर्या काल	दस मास	आठ मास	छ मास
१३. बोधि वृक्ष	कणिकार	असनवृक्ष	आमलक
१४. अग्रश्रावक	सम्बल, सुमित्र	ब्रह्मदेव, उदय	सुरक्षित, धर्मसेन
१५. परिचारक	रेवत	संभव	सभिय
१६. अग्रश्राविका	सिवली, सुरामा	स्पर्शा, सुदत्ता	चाला, उपचाला
१७. श्रावक सम्मेलन	तीन	तीन	तीन
१८. आयु	एख लाख वर्ष	एक लाख वर्ष	नब्बे हजार वर्ष
१९. ऊँचाई	साठ हाथ	साठ हाथ	अनठावन हाथ
२०. बोधिसत्त्व	मंगल तापस	सुजात क्षत्रिय	विजितावी क्षत्रिय
२१. पारमी-पूरण-अवधि	× ×	× ×	× ×

१. बुद्ध का नाम	१९. विपश्यी	२०. शिखी	२१. विश्वभू
२. कितने पूर्व	एकानबे कल्प	एकतीस कल्प	एकतीस कल्प
३. कल्प	सार	मण्ड	मण्ड
४. नगर	बन्धुमती	अरुणवती	अनुपम
५. पिता	बन्धुमान्	अरुण	सुप्रतीत
६. माता	बन्धुमती	प्रभावती	यशवती
७. प्रासाद	नन्द, सुनन्द, सिरिमा	सुचन्दक, गिरि वृषभ	रुचि, सुरुचि, रतिवर्द्धन
८. स्त्री	सुदर्शना	सर्व कामा	सुचिमा
९. पुत्र	समवृत्तस्कन्ध	अतुल	सुप्रबुद्ध
१०. गृही जीवन	आठ हजार वर्ष	सात हजार वर्ष	छ हजार वर्ष
११. गृहत्याग का वाहन	रथ	हाथी	शिविका
१२. तपश्चर्या काल	आठ मास	आठ मास	छ मास
१३. बोधिवृक्ष	पाटली	पुण्डरीक	महा साल
१४. अग्रश्रावक	खण्ड, तिष्य	अभिभू, संभव	सोण, उत्तर
१५. परिचारक	अशोक	खेमंकर	उपशान्त
१६. अग्रश्राविका	चन्द्रा, चन्द्रमित्रा	मखिला, पद्मा	दामा, सुमाला
१७. श्रावक सम्मेलन	तीन	तीन	तीन
१८. आयु	अस्सी हजार वर्ष	सत्तर हजार वर्ष	साठ हजार
१९. ऊँचाई	अस्सी हाथ	सत्तर हाथ	साठ हाथ
२०. बोधिसत्त्व	अतुल नागराज	अरिन्दम राजा	सुदर्शन राजा
२१. पारमी-पूरण-अवधि	× ×	× ×	× ×

१. बुद्ध का नाम	२२. ककुसन्ध	२३. कोणागमन	२४. काश्यप
२. कितने पूर्व	वर्तमान कल्प	वर्तमान कल्प	वर्तमान कल्प
३. कल्प	भद्रकल्प	भद्रकल्प	भद्रकल्प
४. नगर	क्षेम	शोभावती	वाराणसी
५. पिता	अग्निदत्त	यज्ञदत्त	ब्रह्मदत्त
६. माता	विशाखा	उत्तरा	धनवती
७. प्रासाद	काम, कामवर्ण, कामसुधि	तुसित, संतुसित, संतुष्ट	हंस, यश, श्री नन्द
८. स्त्री	रोचिनी	रुचिगात्रा	सुनन्दा
९. पुत्र	उत्तर	सार्थवाह	विजितसेन
१०. गृही जीवन	चार हजार वर्ष	तीन हजार वर्ष	दो हजार वर्ष
११. गृहत्याग का वाहन	रथ	हाथी	प्रासाद
१२. तपश्चर्या काल	आठ मास	छ मास	सात दिन
१३. बोधिवृक्ष	शिरीष	उदुम्बर	निग्रोध
१४. अग्रश्रावक	विधुर, संजीव	भीयश, उत्तर	तिष्य, भारद्वाज
१५. परिचारक	बुद्धिज	स्वस्तिज	सर्व मित्र
१६. अग्रश्राविका	श्यामा, चम्पका	सुभद्रा, उत्तरा	अनुला, उरुवेला
१७. श्रावक सम्मेलन	तीन	तीन	तीन
१८. आयु	चालीस हजार वर्ष	तीस हजार वर्ष	बीस हजार वर्ष
१९. ऊँचाई	चालीस हाथ	तीस हाथ	बीस हाथ
२०. बोधिसत्त्व	क्षेम राजा	पर्वत नामक राजा	ज्योतिपाल माणव
२१. पारमी-पूरण-अवधि	× ×	× ×	× ×

१. बुद्ध का नाम	२५. गौतम बुद्ध
२. कितने पूर्व	वर्तमान कल्प (भद्रकल्प)
३. कल्प	भद्रकल्प
४. नगर	कपिलवस्तु
५. पिता	शुद्धोदन
६. माता	महामाया
७. प्रासाद	रम्य, सुरम्य, शुभ
८. स्त्री	यशोधरा
९. पुत्र	राहुल
१०. गृही जीवन	उनतीस वर्ष
११. गृहत्याग का वाहन	अश्व
१२. तपश्चर्या काल	छ वर्ष
१३. बोधिवृक्ष	अश्वत्थ
१४. अग्रश्रावक	उपतिष्य, कोलित
१५. परिचारक	आनन्द
१६. अग्रश्राविका	क्षेमा, उत्पलवर्णा
१७. श्रावक सम्मेलन	धर्मचक्रप्रवर्तन, यावत् जीवन चारिका
१८. आयु	एक सौ वर्ष
१९. ऊँचाई	अठारह हाथ
२०. बोधिसत्त्व	स्वयं बुद्ध थे
२१. पारमी-पूरण-अवधि	चार असंखेय्य एक लाख वर्ष

(४६) अनागत बुद्ध

स्थविरवादी परम्परा में 'मैत्रेय' नामक एक अनागत बुद्ध की मान्यता है। चक्कवत्तिसीहनादसुत्त में इनकी उत्पत्ति वर्तमान भद्रकल्प में कही जाती है। भगवान बुद्ध के मुख से ऐसा व्याकरण देखा जाता है कि—"मनुष्य लोक में मेरे सदृश मैत्रेय नामक बुद्ध उत्पन्न होंगे, जो मनुष्य तथा देव लोक की प्रजा को उपदेश करेंगे। मेरे सदृश ही उनका कई हजार शिष्यों का भिक्षुसंघ होगा[1]। उनके नगर का नाम केतुमती होगा तथा उस समय मनुष्यों की आयु अस्सी हजार वर्षों की होगी—'असीतिवस्ससहस्सायुकेसु मनुस्सेसु मेत्तेय्यो उप्पज्जिस्सति।'

१. मनुस्सेसु मेत्तेय्यो नाम भगवा लोके उप्पज्जिस्सति अरहा सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो·········सो इमं लोकं सदेवकं समारकं·········सयं अभिञ्ञा

'अनागतवंस', जो बाद की रचना है, उसमें मैत्रेय बुद्ध का पूर्ण विवरण उपलब्ध है।[1] इस ग्रन्थ में उनकी कथा ठीक उसी क्रम से प्रवृत्त है, जैसे निदानकथा में अन्य बुद्धों की।[2] कहा गया है कि वे एक विख्यात ब्राह्मण कुल में ब्रह्मवती नामक माता के गर्भ से उत्पन्न होंगे। उनके पिता का नाम सुब्रह्मा होगा। उनका गृही नाम अजित रहेगा। वे श्रीवर्द्धन, वर्द्धमान, सिद्धार्थ तथा चन्दक नामक चार प्रासादों में आठ हजार वर्षों तक राज्यसुख का उपभोग करते हुए चन्द्रमुखी भार्या के योग से ब्रह्मवर्द्धन नामक पुत्र उत्पन्न कर उद्यान जाते हुए चार निमित्तों को देख प्रव्रजित होंगे। तदनन्तर नाना ग्राम निगमों में घूमते हुए एक सप्ताह तक तपश्चर्या कर नागवृक्ष के नीचे बोधि-लाभ कर नागवन में धर्मचक्र-प्रवर्तन करेंगे। शंख राजा उनकी देशना को सुन प्रव्रजित होंगे। अशोक तथा ब्रह्मदेव उनके अग्रश्रावक, सिंह परिचारक, तथा पद्मा एवं सुमना दो अग्रश्राविकायें होंगी। उनके महापरिनिर्वाण के बाद अस्सी हजार वर्षों तक उनका शासन रहेगा।

इसी क्रम में एक अन्य परम्परा के अनुसार दस अनागत बुद्धों का उल्लेख है। वे हैं—मैत्रेय, उत्तम, राम, प्रसेनजित, अभिभू, दीर्घश्रोणि, संकृत्य, शुभ, तोदेय्य तथा नालागिरिपललेय्य।[3] कहा जाता है कि इन दस बोधिसत्त्वों को बुद्ध होने के सम्बन्ध में गौतम बुद्ध द्वारा व्याकरण प्राप्त है। पर मैत्रेय के अतिरिक्त अन्य भावी बुद्धों के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है। मैत्रेय के बुद्धभाव की कथा वैसे ही रोचकता के साथ बौद्ध जगत में चर्चित है, जैसे ब्राह्मण परम्परा में कल्कि अवतार की।[4] लंका में अन्य बुद्धों की भांति उनकी पूजा भी होती है।

सच्छिकत्वा पवेदेस्सति, सेय्यथपिहमेतरहि।·········सो अनेकसहस्सं भिक्खुसंघं परिहरिस्सति, सेय्यथापि अहं एतरहि अनेकसतं भिक्खुसंघं परिहरामि।

दी० नि० ३.६०.

१. इमस्मिं भद्दके कप्पे, असंजाते वस्सकोटियो।
मेत्तेय्यो नाम नामेन, सम्बुद्धो द्विपदुत्तमो॥

२. जे० पी० टी० एस., १८८६, पृ० ३३-५३.

३. मेत्तेय्यो उत्तमो रामो, पसेनदिकोसलोभिभू।
दीघसोणि च संकच्चो, सुभो तोदेय्यब्राह्मणो।
नालागिरिपललेय्यो, बोधिसत्ता इमे दस।
अनुक्कमेन सम्बोधिं, पापुणिस्सन्ति नागते॥

जे० पी० टी० १८८६, पृ० ३७.

४. महावंस, D. P. P. N. २.६६०-३.

(४७) बुद्ध का प्रादुर्भाव

मनुष्य लोक में बुद्ध का प्रादुर्भाव एक अद्भुत घटना के रूप में समझा जाता है।[1] निदानकथा से प्रकट है कि 'बुद्ध' जैसे शब्द की ध्वनि दुर्लभ है।[2] बुद्धत्व की प्राप्ति असंख्य जन्मों की अनवरत साधना के फलस्वरूप है। दस पारमिताओं, दस उपपारमिताओं तथा दस परमार्थ पारमिताओं की पूर्तिक्रम में उनके द्वारा अनेक उदात्त गुणों का संग्रह किया जाता है। दान, शील आदि के बाहुल्य से वे प्राणिमात्र की कल्याणमूर्त्तिरूप हो जाते हैं।[3]

बुद्ध की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि का अवलोकन करने से प्रकट होता है कि उनके आगमन के पूर्व वह क्षेत्र विभिन्न तीर्थिकों के मतमतान्तर से आच्छन्न रहता है। उनके कुप्रभाव से सत्य का स्वरूप आवृत हो जाता है। ऐसे ही अज्ञानान्धकार में अभिनिविष्ट जनवर्ग को ज्ञान का साक्षात्कार करा विमुक्तिपथ का निदर्शन ही बुद्ध जैसे अपूर्व मानव का ध्येय होता है। निदानकथा से ज्ञात है कि बोधिसत्त्व को केवल अपनी मुक्ति इष्ट नहीं है। उनकी स्पष्टोक्ति है कि धर्मनौका बना समस्त जनवर्ग को संसारसागर से तार वे स्वयं परिनिर्वृत होंगे।[4] ऐसी उक्ति के प्रकाश में बुद्ध के प्रादुर्भाव के कारण तथा उद्देश्य को सुगमतया जाना जा सकता है।

(४८) बुद्धविषयक सामान्य बातें

बुद्ध मनुष्य के चरम विकास के प्रतीक होते हैं। मनुष्य लोक में बुद्ध का प्रादुर्भाव एक दुर्लभ घटना है। वे उत्पन्न हो बोधिलाभ कर धर्मचक्रप्रवर्तन

---

१. यस्सेते दुल्लभो लोके, पातुभावो अभिण्हसो।
स्वज्ज लोकह्मि उप्पन्नो, सम्बुद्धो इति विस्सुतो॥ सु० नि० पृ० ४२१.

२. बुद्धो ति घोसमत्तं पि लोके दुल्लभं, पगेव बुद्धुप्पादो। नि० क० पृ० ३०.

३. सो बोधिसत्तो रतनवरो अतुल्यो।
मनुस्सलोके हितसुखत्थाय जातो॥ सु० नि० पृ० ३७५.

४. यन्नूनाहं दीपंकरदसबलो विय परमाभिसम्बोधिं पत्वा धम्मनावं आरोपेत्वा महाजनं संसारसागरा उत्तारेत्वा पच्छा परिनिब्बायेय्यं। नि० क० पृ० ३४.

तुलना करें—

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ गीता० ४,७-८.

करते हैं। यही उनकी प्रथम देशना होती है, जिससे उनके धर्म (सिद्धान्त) का जनवर्ग के सम्मुख अवतरण होता है। गौतम बुद्ध की चर्या से प्रकट है कि उन्होंने ऋषिपतन मृगदाव में प्रथम धर्मोपदेश के अनन्तर पैंतालीस वर्षों तक जम्बुद्वीप के नाना ग्राम-निगम, जनपदों में चारिका करते हुए धर्मोपदेश किया। उनके समक्ष प्राणिमात्र का कल्याण एकमात्र उद्देश्य रहता है।

गौतम बुद्ध की चारिका वर्षा काल के तीन महीनों को छोड़ सर्वदा होती रहती थी। वे विनेयजनों की आवश्यकतानुसार कभी त्वरितचारिका तथा कभी अतुरितचारिका किया करते थे। मार्ग के लोगों को उनके अध्याशय, अनुशय तथा अधिमुक्ति के अनुकूल उपदेश करते हुए बढ़ते थे।

बुद्ध का प्रतिदिन का समय सुव्यवस्थित रूप से विभक्त था।[1] वे प्रातः उठ शरीर शुद्धि (कायपटिजग्गन) कर ध्यान करते थे। पूर्वाह्न समय में भिक्षाचार वेला को देख व्यवस्थित ढंग से अपने को चीवर से आवृत कर उत्तम ईर्यापथ सम्पन्न हो अकेले या भिक्षुओं के साथ पिण्डपात के लिए ग्राम में प्रवेश करते थे। ग्राम से लौट भोजन कर अभीप्सुओं को कर्मस्थान देते थे। यह उनका 'पुरेभत्तकिच्च' कहलाता था। पुनः वे कुछ क्षण के लिए विश्राम के अनन्तर दिव्य चक्षु से विनेयजनों की दशा देख तदनुकूल धर्मोपदेश करते थे। रात के प्रथम प्रहर में वे उन लोगों को धर्मोपदेश करते थे, जिन्हें कहीं उनके प्रज्ञप्त पथ में शंका रहती थी। द्वितीय प्रहर देवताओं के शंकासमाधान में व्यतीत होता था। तृतीय प्रहर का प्रथम भाग चंक्रमण, द्वितीय भाग शयन तथा तृतीय भाग ध्यानभावना में व्यतीत होता था।[2]

बुद्ध अनन्त गुणों से युक्त होते हैं। उन्हें दस बल, चार वैशारद्य प्राप्त रहते हैं। सबसे विशिष्ट गुण उनकी सर्वज्ञता होती है। यह उस ज्ञान का नाम है जिसके सहारे वे सभी ज्ञेय पदार्थों को जान लेते हैं। जान लेने का अर्थ यहाँ यह नहीं है कि वे सभी पदार्थ सर्वदा उनके सम्मुख उपस्थित रहते हैं, वरन् वे जानने की शक्ति से युक्त रहते हैं। जब कभी जिस वस्तु को जानना चाहते हैं, उसे आवर्जन कर जान लेते हैं। उनकी ऐसी सर्वज्ञता को आवर्जन प्रतिबद्ध सर्वज्ञता कहा जाता है।[3]

---

१. दी० नि० अ० पृ० १-४५; सं० नि० अ० १-१३१.

२. दी० नि० अ० २.४७०.

३. सब्बे धम्मा बुद्धस्स भगवतो आवज्जनप्पटिबद्धा, आकङ्खप्पटिबद्धा, मनसिकारप्पटिबद्धा, चित्तुप्पादप्पटिबद्धा। सब्बसत्तेसु बुद्धस्स भगवतो ञाणं पवत्तति। पटि० म० पृ० ४५७.

बुद्ध रोग से एकान्ततः मुक्त नहीं होते हैं। वे एक कल्प तक जीने की शक्ति से युक्त रहते हैं, पर स्थान, जलवायु तथा भोजन के प्रभाववश इसके पूर्व भी उनका शरीर-त्याग देखा जाता है।[1] प्रत्येक बुद्ध तब तक जीवन को धारण किये रहते हैं, जब तक उनका शासन पूर्णतः स्थापित नहीं हो जाता है। बुद्ध के शरीरान्त को महापरिनिर्वाण कहा जाता है।

बुद्ध के महापरिनिर्वाण के उपरान्त कुछ काल तक उनका शासन विद्यमान रहता है। कालक्रम से उसमें ह्रास होने लगता है, तथा उनकी देशनायें स्मृतिपथ से क्षीण हो उठती हैं। इस दिशा में प्रतिलोम क्रम से पहले अभिधर्मपिटक की देशनायें विस्मृत होती हैं तथा उनके अनन्तर सुत्तपिटक की। विनयपिटक की देशनायें सब के अन्त में विलीन होती हैं। उनके विलीन होने से बुद्ध-शासन पूर्णतः विलीन हो जाता है।[2] लोक में ऐसी स्थिति तब तक बनी रहती है, जब तक पुनः एक नये बुद्ध का प्रादुर्भाव नहीं होता है। जब पारमिताओं के परिपूरण-फलस्वरूप एक नये बुद्ध का प्रादुर्भाव होता है, तब पुनः बुद्ध शासन का प्रारम्भ होता है। इसी नय से बौद्ध परम्परा सुदीर्घ काल से चलती आ रही है।

९. मार

भारत तथा अन्य देशों की धार्मिक परम्परा के अध्ययन से प्रकट होता है कि शुक्ल एवं कृष्ण धर्मों तथा उनकी प्रतिमूर्त्ति रूप सत्पुरुष एवं कुपुरुष का चित्रण समान तत्परता से किया गया है। एक ओर जहां मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अवदात्त चरित्र का आख्यान है, तो दूसरी ओर रावण के कुकृत्यों का विशद वर्णन भी उपलब्ध है। जहां भगवान श्रीकृष्ण को धर्म की स्थापना में तल्लीन देखा जाता है, वहाँ अधर्म के प्रसारक कंस का नाम भी देखा जाता है। अन्य धर्मों में जहां ईश्वर या ईश्वर के दूत को विश्व में सद्भाव के विस्तार के लिये प्रयत्नशील देखा जाता है, वहां धर्मशासन के प्रतिपक्षी शैतान की भी विशद लीला को विस्मृत नहीं किया जा सकता है। इसी क्रम में जहाँ एक पार्श्व में समस्त सद्गुणों से समन्वित एक पूर्ण मानव के रूप में भगवान बुद्ध का प्रादुर्भाव है, वहां अपर पार्श्व में सन्मार्ग का अवरोधक मार की भी चर्चा है। पालि साहित्य में बुद्ध की पूत चर्चाओं के रोचक वर्णन के साथ ही मार की भी कृष्ण चर्याओं का भी स्थान-स्थान पर उल्लेख है। कहीं-कहीं मार की कृष्ण चर्याओं की सविस्तर पृष्ठभूमि में बुद्ध की चर्यायें विशेषतः अवभासित हो उठी हैं।

---

१. दी० नि० अ० २.४१३.

२. विभं० अ० पृ० ४३२.

(४९) मार कौन है ?

पालि साहित्य में मार शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हुआ है। यह प्रसंगानुसार मृत्यु, दुष्टात्मा, सद्धर्म का विरोधी, दुष्ट चेतना, एक देवपुत्र के रूप में चर्चित है। अट्ठकथाओं में इसके प्रकार की चर्चा करते हुए—स्कन्धमार, क्लेशमार, अभिसंस्कारमार, मृत्युमार, तथा देवपुत्रमार नामक इसके पांच भेद दिखलाये गये हैं।[1] कहीं-कहीं इसके तीन या चार प्रकार देखे जाते हैं। इसके तीन प्रकार दर्शाते हुए क्लेशमार, मरणमार, तथा देवपुत्रमार नामक तीन नाम दिखलाये जाते हैं। पुनः इसके साथ स्कन्धमार का योग कर इसके चार भेद कहे जाते हैं। जहां मार का एक रूप में उल्लेख है, वहां यह शब्द क्लेश के अर्थ में प्रयुक्त है—'मारेना ति किलेसमारेन'[2]। अथवा 'मारस्स विसये ति किलेसमारस्स विसये'।[3] आधुनिक विचारकों द्वारा भी मार की चर्चा कई स्थानों में देखी जाती है।[4]

अब मार-विषयक इन पांच प्रभेदों पर दृष्टिपात करने से प्रकट होता है कि स्कन्ध, क्लेश, मरण तथा अभिसंस्कार बौद्ध धर्म की चार अकुशल मान्यतायें हैं। इनके अकुशल पक्षों को लक्ष्य कर इन्हें मार कहा जाता है। पञ्चम मार एक देवपुत्र है, जो वशवर्ती मार भी कहलाता है तथा 'परनिम्मितवसवत्ती' देवलोक में रहता है (मारो ति वसवत्तिभूमियं अञ्ञतरो देवपुत्तो)। इसे वशवर्ती मार कहे जाने का यह भी कारण है कि यह छ कामावचर देवलोकों में अन्तिम का शक्र के समान शासक के रूप में भी देखा जाता है। संभवतः यही सत्कर्मरत पुरुषों के प्रतिपक्षी के रूप में चर्चित है।

(५०) मार का व्यक्तित्व

मार का व्यक्तित्व विविध रूपों में चर्चित है। वह इच्छानुसार शरीर धारण

---

१. पञ्चन्नं पि मारानं विजयतो जिनो; × × सब्बामित्तेहि खन्धकिलेसाभिसंखारमच्चुदेवपुत्तसंखाते सब्बपच्चत्थिके × ×। थेर० गा० अ० २.१६,४६.

२. इति० वु० अ० पृ० १९७.

३. थेर० गा० अ० २-७०.

4. Buddhist Studies—Law, pp. 257–83; Manual of Indian Buddhism-kern, pp. 16, 20, 31, 42, 101; Hinduism and Buddhism 1. 143, 164–65; 2. 160; 3. 69, 73, 350; The Life of Buddha as Legends and History, p. 27, 31, 32, 39, 119.

कर सकता है । निकायों में उसकी एक देवता,[1] सर्प,[2] वृषभ,[3] कृषक,[4] एक युवक[5] आदि रूपों में चर्चा उपलब्ध है । निदानकथा के अनुसार मार एक विशालकाय तथा भयानक रूप धारण किये देखा जाता है । वहां उसके एक हजार हाथों का उल्लेख है, जिनमें वह अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों को धारण किये रहता है । वह गिरिमेखला नामक हाथी पर विचरण करता है । उसका उद्घोष भयानक तथा हृदय विदारक होता है । वह अपार बल से युक्त है तथा उसके जाल से निकलना एक दुष्कर कार्य है ।

(५१) मार के परिजन

संयुक्तनिकाय से प्रकट है कि मार की तीन कन्यायें हैं । उनका नाम तृष्णा, अरति तथा रागा है । वे भी मार की भांति सत्कर्मों में बाधा पहुँचाती हैं । इनके अतिरिक्त मार के सहायकों की एक लम्बी सूची देखी जाती है, जो मार की सेना के नाम से आख्यात हैं । उसकी यह सेना बहुविधा कही जाती है । यथा—काम, अरति, क्षुधापिपासा, तृष्णा, स्त्यान-मृद्ध, भिरुता, विचिकित्सा, म्रक्ष, दंभ, लाभ, यश, सत्कार, मिथ्या-लब्ध-यश आदि ।[6] यह महती सेना सर्वदा कुशल कर्मों में बाधा उपस्थित करते हुए अकुशल कर्मों के प्रसार में सहायक है ।

(५२) मार के कार्य

मार सत्कर्मों का प्रतिपक्षी है । उसके ऐसे कार्य देखे जाते हैं, जो शुभ कर्मों के विरोध के रूप में हैं । बोधिसत्त्व को गृहत्याग कर महाभिनिष्क्रमण करते हुए देख

१. सं० नि० १.६४-६६.
२ सं० नि० १.१०६.
३. सं० नि० १.११२.
४. सं० नि० १.:०४-१५.
५. सं० नि० १.१२९-३०.
६. कामा ते पठमा सेना, दुतिया अरति वुच्चति ।
तत्तिया खुप्पिपासा ते, चतुत्थी तण्हा पवुच्चति ॥
पञ्चमं थीनमिद्धं ते, छट्ठा भीरुपवुच्चति ।
सत्तमी विचिकिच्छा ते, मक्खो थम्भो ते अट्ठमो ॥
लाभो सिलोको सक्कारो, मिच्छालद्धो च यो यसो ।
यो चत्तानं समुक्कंसे, परे च अवजानति ॥
एसा नमुचि, ते सेना, कण्हस्साभिप्पहारिनी ।
—सुत्तनिपात पृ० ३३१-३२.

मार ने उन्हें रोका । उसने उन्हें चक्रवर्ती राज्य का प्रलोभन दिया तथा उसकी बातों को नहीं सुनने पर सर्वदा पीछा करते रहने की धमकी दी । बोधिसत्त्व को सम्बोधि लाभ के उद्देश्य से बोधिमण्ड में बैठे देख उसने विविध उपायों से उन्हें विचलित करना चाहा । महापरिनिब्बानसुत्त से प्रकट होता है कि उसने पुनः पुनः उनके निकट जा उनसे जीवन लीला समाप्त करने का अनुरोध किया ।

मार ने भिक्षु तथा भिक्षुणियों को भी कई प्रकार से कष्ट दिया । मारतज्ज-नियसुत्त से प्रकट है कि एक बार उसने मौद्गल्यायन की कुक्षि में प्रवेश किया था ।[1] पुनः उसने शीलवती ग्राम में एक वृद्ध ब्राह्मण के वेष में भिक्षुओं के निकट जा काम भोग में लिपटे रहने की राय दी ।[2] गोधिक[3] तथा वक्कलि[4] नामक स्थविरों के प्रसंग में मार के दुष्कर्म देखे जाते हैं । भिक्खुनीसंयुत्त[5] से यह ज्ञात है कि उसके दुष्कर्म भिक्षुणियों को सत्पथ से भ्रष्ट करने में कम न थे । उसने उपासकों को भी सम्मार्ग पर जाते देख विबाधित किया । धनियसुत्त में उसका ऐसा कार्य स्पष्टतया देखा जा सकता है ।[6]

(५३) मार का आक्रमण

सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति के निश्चय से अभेद्य आसन से बैठे सिद्धार्थ का कृत्य मार को असह्य हो उठा । उसने सिद्धार्थ को उस निश्चय से च्युत करना चाहा । उस उद्देश्य से उसने अपनी महती सेना का अह्वान और उससे व्यूह की रचना कर मार-घोषणा की । मार-सेना अति विशाल थी । वह मार के आगे बारह योजन तक, दाहिने तथा बायें पार्श्व में बारह योजन तक, पीछे चक्रबाल पर्यन्त तथा ऊपर नव योजन तक विस्तृत थी । स्वयं मार ने अपनी एक हजार बांह बना, प्रत्येक में भयावह अस्त्र-शस्त्र ले गिरिमेखला नामक हाथी पर बैठ सिद्धार्थ को ललकारा । उसके अन्य सदस्यों ने भी भयंकर रूप बना विषाक्त शस्त्रों से आक्रमण किया ।

१. म० नि० १.४०६-१३.
२. D. P. P. N. २.६१७.
३. सं० नि० १.११९-२१.
४. सं० नि० ४.३४०-४४.
५. सं० नि० १.१२८-३६.
६. सु० नि० पृ० १७४.
नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा, गोमिको गोहि तथेव नन्दति ।
उपधि हि नरस्स नन्दना, यो न नन्दति सो निरुपधि ॥

मार-आक्रमण का दृश्य अत्यधिक भयावह था । एक ओर ध्यान में मग्न बैठा एक मात्र निरस्त्र पुरुष तथा दूसरी ओर अनेक सहस्र नाना आयुधसम्पन्न योद्धागण । यह युद्ध था मानवी तथा दानवी शक्तियों का । सारा दिग्-दिगन्त क्लान्त था, इस भयंकर दृश्य के अज्ञात परिणाम की चिन्ता से । आकाश का ऊपरी भाग देवताओं से सञ्छन्न था । कुछ तो स्तुति में लगे थे तथा कुछ हतप्रभ सा अवलोकन में । वे दिव्य दर्शकगण भी तभी तक सुदूर आकाश में स्थित रहे, जब तक मार-सेना दूर थी । बोधिमण्ड के निकट उसके आते ही वे दर्शक भी भय के कारण अपने-अपने भवनों में तिरोभूत हो गये । सिद्धार्थ मार की इस महती सेना को आते हुए देख आश्चर्य एवं असहाय भाव मिश्र वाणी से मन ही मन गुनगुना उठे—'ये इतने लोग मुझ अकेले के विरुद्ध इतना यत्न एवं पराक्रम दिखला रहे हैं । (स्थिति ऐसी है कि) इस स्थान में सहायक के रूप में न तो मेरे माता-पिता, न अन्य स्वजन की हैं । अतः ये दीर्घकाल पोषित दस पारमितायें ही मेरे परिजन हैं । इस पारमिता शस्त्र से ही मार सेना का विध्वंस करना है ।' ऐसा विचार सिद्धार्थ पारमिताओं का आवर्जन कर वहीं बैठ गये ।

मार सिद्धार्थ के आध्यात्मिक बल से सुपरिचित था । उसने उनसे सम्मुख लोहा लेने में अपने को असमर्थ पा पीछे से आक्रमण किया ('मयं सम्मुखा युद्धं दातुं न सक्खिस्साम, पच्छाभागेन दस्सामा'ति) । उसका यह आक्रमण नव रूपों में हुआ ।

प्रथम बार उसने वात-मण्डल से प्रहार किया । उसकी प्रेरणा पा समस्त दिशाओं को प्रकम्पित करती, पर्वत शिखरों को मर्दन करती, वृक्षों को उन्मूलन करती, ग्राम-निगमों को चूर्ण-विचूर्ण करती प्रबल वेग-सम्पन्न हवा सिद्धार्थ को झकझोर कर पददलित करने टूट पड़ी । पर उनकी पारमिता ढाल से आहत हो, उनके चीवर को भी प्रकम्पित न कर सकी ।

द्वितीय आक्रमण जल से हुआ । मार का संकेत पा सहस्र पटल-सम्पन्न मेघ अजस्र जलप्रवाह से सिद्धार्थ को भयभीत करने के उद्देश्य से कार्यरत हो उठे । वर्षणवेग से पृथ्वी छिद्र-सम्पन्ना हो उठी । पर इस भयंकर मेघ का सिद्धार्थ पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा । वे इस प्रकार बरसते हुए भी ओसकण की भाँति उनके चीवर को भी भिगो नहीं सके ।

तृतीय आक्रकण पाषाणाभिवर्षण रूप में हुआ । मार-बल से फेंके गये धुंधुआते पर्वत शिखर दूरतः भयंकर रूप प्रदर्शित करते हुए बोधिसत्त्व का स्पर्श पा दिव्य पुष्पगुच्छ हो उठे ।

चतुर्थ आक्रमण आयुधों का हुआ । तीक्ष्ण धार-सम्पन्न तलवार, भाले आदि गगनपथ में दाहक ज्वाला बिखेरते बोधिसत्त्व को प्राप्त कर दिव्य पुष्प बन गये ।

पञ्चम आक्रमण अंगाराभिवर्षण रूप था । रक्तवर्ण के दाहसम्पन्न अंगार विनाशकारी रूप में आते थे, पर बोधिसत्त्व के पार्श्व में आ दिव्य पुष्प में परिणत हो उनके चरणों में बिखर जाते थे ।

षष्ठ आक्रमण उष्ण भस्म का था, जो मार के लिए ज्वालासम्पन्न होते हुए बोधिसत्त्व के चरणों में चन्दन चूर्ण-सा बिखर जाता था ।

सप्तम आक्रमण में मार ने सूक्ष्म बालुका का सहारा ले बोधिसत्त्व को पराजित करना चाहा, पर उससे संचालित प्रज्वलित बालुका कण बोधिसत्त्व के चरणों में दिव्य पुष्प हो विकीर्ण हो उठे ।

पुनः मार ने अपने को उन आक्रमणों में असफल जान कर्दम का सहारा लिया । यह उसका अष्टम आक्रमण था । भीषण ज्वाला सम्पन्न कीचड़ की वर्षा प्रवाहरूप से हो चली । गगनपथ विदग्ध हो उठा पर वे कीचड़-कण बोधिसत्त्व के परिपार्श्व से अपने दाहक धर्मों का परित्याग कर दिव्य चन्दन लेप के रूप में परिणत हो उठे ।

मार का क्रोध और बढ़ चला । उसने नवम बार अन्धकार के योग से बोधिसत्त्व को विचलित करना चाहा । उसके अकुशल प्रयोग के फलस्वरूप समस्त दिशायें अन्धकारपूर्ण हो उठीं । ऐसा प्रतीत होता था कि अन्धकार अपने सम्पूर्ण अंगों में मूर्त्त हो मार का सहचर बनने आया हो । पर यह दशा अधिक क्षणों तक नहीं रही । सूर्य द्वारा अन्धकार विध्वंशन सदृश बोधिसत्त्व के ही परिपार्श्व में आ अन्धकार स्वयं अन्तर्धान हो उठा ।

मार उक्त नव प्रकार के आक्रमणों से बोधिसत्त्व को पराजित नहीं कर सका । अब उसने अपने गणों को बोधिसत्त्व को पकड़ कर मार डालने के लिए ललकारा । उसने स्वयं गिरिमेखला से उतर चक्रायुध ले बोधिसत्त्व के निकट जा, 'यह आसन उसके लिए है' कहते हुए उस आसन को छोड़ने को कहा । बोधिसत्त्व ने उसके निलज्जता भरे वचन को सुन दर्शाया कि वह उस आसन के लिए योग्य नहीं है । कारण उसने न तो दस पारमितायें पूरी की हैं, न उप-पारमितायें, न परमार्थ पारमितायें । उसके द्वारा न पञ्च महात्याग किये गये हैं, न ज्ञान, लोक कल्याण या बुद्धत्त्व के लिए आचरण ही । इन कृत्यों के सम्पादन से अर्जित गुणविशेष-सम्पन्न-पुरुष ही उस आसन का अधिकारी हो सकता है । बोधिसत्त्व के इन वचनों से क्षत हो उसने परम क्रुद्ध हो क्रमशः चक्र,

पर्वतादि का उन पर प्रहार किया। पर वे सभी घातक अस्त्र मालावितान हो बोधिसत्त्व को सुशोभित कर उठे।

मार ने अब प्रभाहीन हो मिथ्या तर्कजाल का सहारा ले अपने दानबल की चर्चा की। 'उसने अपार दान दिया है', इसकी साक्षी के रूप में मारपरिषद् को आमन्त्रित किया। अविद्या एवं दुष्कर्मों के प्रतिमूर्ति रूप मारपरिषद से भयानक मिथ्या ध्वनि गूंज उठी कि 'मार के दान के हम साक्षी हैं'। बोधिसत्त्व ने उसके ऐसे मिथ्याभिमान को भग्न करते हुए दर्शाया कि उसके दान के साक्षी सचेतन प्राणी हैं, पर उनके दान का साक्षी अचेतन भी है। ऐसा कह उन्होंने अचेतन पृथ्वी की ओर पूछते हुए हाथ फैलाया। महापृथ्वी ने इस वचन के उत्तर-स्वरूप—'मैं साक्षिणी हूँ', कह सहस्र वाणी के उद्घोष से मार की सेना को तितर-बितर कर दिया। इस प्रकार सभी कुयत्नों के उपरान्त मार पराजित हो हतप्रभ हो उठा। ऐसा देख उसकी सेना वस्त्राभूषण, आयुधादि को छोड़ दिशा-विदिशा भाग चली। मार भी अन्तर्धान हो गया।

इस क्रम में एक दूसरा आक्रमण मार की तीन कन्याओं-तृष्णा, अरति तथा रागा का देखा जाता है। उन लोगों ने मार को हतप्रभ देख अपने स्त्रीस्वभाव से बुद्ध को पदच्युत कर देने का आश्वासन दिया। कहा जाता है कि उन लोगों ने उनके निकट जा उनके चरणों की सेवा के लिए अभ्यर्थना की। वीतराग तथागत ने न तो उनकी बातें ही सुनी, न उन्हें देखा ही। वे एकान्तसुख के अनुभवन में लीन रहे। पुनः उन लोगों ने संसारी पुरुषों के स्वभावानुसार बोधिसत्त्व के प्रलोभनार्थ अपना बालिका, युवती, वयस्का, वृद्धा आदि अनेक रूपों का प्रदर्शन किया पर इससे उनके चित्त में किसी प्रकार की विकृति न पा हतप्रभ-सा हो उठीं। इस प्रकार मार तथा उसकी कन्याओं के समस्त कुयत्नों को असफल दर्शाते हुए परम कारुणिक तथागत ने मार-कन्याओं को वास्तविकता का निदर्शन कराते हुए कहा—

'यस्स जितं नावजीयति, जितमस्स नो याति कोचि लोके।
तं बुद्धमनन्तगोचरं, अपदं केन पदेन नेस्सथ॥
यस्स जालिनी विसत्तिका, तण्हा नत्थि कुहिञ्चि लोके।
तं बुद्धमनन्तगोचरं, अपदं केन पदेन नेस्सथा'ति।

नि० क० पृ० १९६.

(५४) मार क्या है ?

वस्तुतः यह मार क्या है, इस प्रश्न को लेकर आधुनिक विद्वानों ने बहुत छानबीन की है। उन्होंने उन समस्त परिस्थितियों का सूक्ष्मतया विश्लेषण तथा अध्ययन किया है तथा उनका निष्कर्ष इस तथ्य की ओर उन्मुख-सा है कि मार कोई बाह्य देव या दानव नहीं है, वरन् यह हमारे मन का ही एक अकुशल भाव है। जो बुद्ध के सम्मुख मार को प्रकट होने की बात है, वह किसी बाह्य मार की नहीं, बल्कि मन के अन्तः में अवशिष्ट अकुशल धर्मों का प्रतिबिम्बित होना था। मार के आक्रमण का अर्थ इस पृष्ठभूमि में यह कहा जा सकता है कि बोधि के लिए कटिबद्ध बोधिसत्त्व के निकट उनके मन में बची अकुशल भावनायें एक-एक कर आने लगीं।

पुनः जो यह कहा जाता है कि बुद्ध की वृद्धावस्था में कई बार मारने उनके निकट आ मरने की याचना की, उसका अर्थ यह हो सकता है कि अनवरत विभिन्न विरोधी तत्त्वों से संग्राम करते तथागत को कभी-कभी कायिक थकान हो जाती होगी तथा ऐसे क्षणों में वे शरीर त्याग की बात ही सोचते होंगे। इसी प्रकाश में उस घटना की भी परीक्षा की जा सकती है, जब 'मद्दकुच्छि' में उनका पैर पत्थर फलक से क्षत हो असह्य वेदना का कारण बना था तथा मार वहां उपस्थित था। गोधिक तथा वक्कलि ने दुश्चिन्ता तथा असह्य शारीरिक यन्त्रणा के कारण आत्म हत्यायें की थीं तथा उनकी इस स्थिति में मार की वहां उपस्थिति देखी जाती है। इन सब घटनाओं के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से इस तथ्य पर प्रभूत प्रकाश पड़ सकता है कि मार कोई बाह्य प्राणी नहीं है, वरन् मन के अकुशल भावों का प्रतीक मात्र है।[1]

(५५) निदानकथा में अद्भुद् तत्त्व

धार्मिक साहित्य के अध्ययन से प्रकट होता है कि अवतारिक पुरुषों या अन्य महापुरुषों की जीवन-चर्चाओं के साथ अनेक अद्भुद् घटनायें सामान्य अंग-सी चर्चित हैं। उनके कुछ ऐसे कार्यकलाप देखे जाते हैं, जो सामान्यजन के कार्यकलापों से भिन्न तथा अलौकिक-से हैं। निदानकथा में भी ऐसे अनेक तत्त्व देखे जाते हैं।

सिद्धार्थ गौतम का जन्म लुम्बिनी वन में हुआ था। देवताओं ने उन्हें धारण किया। सिद्धार्थ ने जन्म लेने के कुछ ही क्षण बाद सात पद चल ऐसा उद्घोष किया कि—'मैं लोक में सर्वश्रेष्ठ हूँ—'अग्गोहमस्मि लोकस्स'।

पुनः खेत बोने के मंगल दिन राजा सहित अनेक पुरुष कर्षण-कर्म में व्यस्त थे। बालक सिद्धार्थ एक सघन छाया-सम्पन्न जामुन के वृक्ष के नीचे शय्या पर अपने को अकेला पा ध्यान मग्न हो गये। कुछ समय बाद देखा गया कि सभी

1. The Life of Buddha, pp. 230; Encyclopaedia Britanica—An article on Buddha.

वृक्षों की छाया वहां से हट गयी पर सिद्धार्थ के ऊपर वाले वृक्ष की छाया उनके सिर पर मण्डलाकार हो वहीं स्थित रही—'जम्बुरुक्खस्स छाया परिमण्डला ठिता'।

तथागत के कपिलवत्थु जाने पर अभिमानी शाक्यों का मन ऊँच-नीच-भावना से युक्त था। उनके मन में सिद्धार्थ के छोटे होने की बात उन्हें तथागत की वन्दना से विचलित कर रही थी। तथागत ने उनके मनोभाव को जान आकाश में जा उनके मस्तक पर चरण रज का अभिवर्षण किया। साथ ही ऐसा चमत्कार दर्शाया कि उनके शरीर के एक भाग से अजस्र जलप्रवाह तथा दूसरे भाग से अग्निज्वाला निकल उठी। इनके अतिरिक्त मारपराजय के प्रसंग में आयी घटनायें ऐसे अद्‌भुद् कार्यों के रूप में देखी जा सकती हैं।

(५६) प्रकृतिचित्रण

निदानकथा एक विवरणात्मक पुस्तक है। यहां अति सरल एवं बोधगम्य ढंग से विषय को उपस्थित करना इष्ट है। लेखक की सर्वत्र यही चेष्टा रही है कि वह बुद्धों के चरित को सुबोध बना सके। इस क्रम में कहीं भी पुस्तक को साहित्य के सुशोभक उपकरणों से सुसज्जित करने की चेष्टा नहीं देखी जाती है। पर मानवहृदय स्वभावतः इस प्रकार प्रकृति से आबद्ध है कि उसके कार्यों में अनायास ही प्रकृति का सुकोमल स्पर्श आ जुटता है। इसी ढंग से निदानकथा में यत्र तत्र प्रकृति वर्णन के प्रसंग देखे जा सकते हैं।

महामाया के देवदहनगर जाते हुए लुम्बिनी नामक शालवन की चर्चा है। देवी के वहां पहुँचते ही शालवन की शोभा अपूर्व देखी जाती है। 'सभी वृक्ष मूल से लेकर अग्रशाखा तक फल-फूल से युक्त थे। द्रुमकुञ्जों का अन्तःभाग भ्रमरवृन्द तथा शकुणसंघ के मधुर कलरव से गुञ्जित था। वे मानों स्वागत गान करते हुए विचरण कर रहे थे आदि'।

सुजाता की खीर का आस्वादन कर बोधिमण्ड अभिमुख तथागत की चर्या प्राकृतिक एवं दिव्य शोभा-सम्पन्न है। यहां सन्ध्या के आगमन की सूचना अपने बृन्तों से पुष्पों के गिरने से दी गई है तथा उनका गमन मृगराज के स्वाभाविक गमन-सा सौन्दर्य बिखेरता प्रतीत होता है। इसी क्रम में बोधिवृक्ष के नीचे बैठे तथागत के चीवर पर गिरते बोधि अंकुर लोहित वर्ण के मूंगों के सदृश अत्यधिक सुहावने देखे जाते हैं—'पतमानेहि बोधिरुक्खंकुरेहि रत्तपवालदलेहि'।

तथागत के सर्वज्ञताप्राप्ति-क्षण समस्त ब्रह्माण्ड शोभासम्पन्न उठा। फलवाले वृक्ष सर्वत्र फलभारभारित हो उठे। सर्वत्र लताद्रुम पुष्पसञ्छन्न हो नैसर्गिक गरिमा बिखेरने लगे। स्कन्धों में स्कन्धपद्म, शाखाओं में शाखापद्म, लताओं में लतापद्म, आकाश में अवलम्बकपद्म तथा शिलाओं को भेद दण्डकपद्म प्रस्फुटित हो उठे। समस्त ब्रह्माण्ड सुप्रसारित पुष्पशय्या सा अवभासित हो उठा[1], आदि।

प्रकृतिवर्णन का अन्य रूप उदायि द्वारा भगवान को कपिलवस्तु ले जाने के प्रसंग में वसन्त वर्णन के क्रम में देखा जा सकता है। उनके ये वचन कि—'सम्पूर्ण हेमन्त ऋतु समाप्त हो गया, वसन्त आ पहुँचा। मनुष्यों ने खेतों को काट सामने-सामने मार्ग छोड़ दिया है। पृथ्वी हरित तृणों से आच्छादित हो उठी है, वनखण्ड सुपुष्पित हो उठे हैं, मार्ग अब चलने योग्य हो चले हैं'[2]—लेखक के स्वाभाविक प्रकृतिस्नेह के परिचायक प्रतीत होते हैं। पुनः उदायि के इन वचनों में प्रकृतिगरिमा का निर्बाध प्रस्फुटन अभिदर्शित है, जब वे भगवान के निकट कह उठते हैं—

"अंगारिनो दानि दुमा भदन्ते,
फलेसिनो छदनं विप्पहाय।
ते अच्चिमन्तो व प्रभासयन्ति,
समयो महावीर, भगीरसानं॥
नाति सीतं नाति उण्हं, नाति दुब्भिक्खछातकं।
सद्दला हरिता भूमि, एस कालो महामुनि॥[3]

उदायी के ये शब्द वसन्त के मादक एवं हृदय के सुकोमल तन्तुओं को स्पन्दित करने वाले उस परिवेश का चित्र उपस्थित करते हैं, जो गृही तथा प्रव्रजित दोनों को समान रूप से अह्लादक हैं। जिस प्रकार रक्त-किशलयपरिधान के मध्य से अभिनिःसृत पुष्प मञ्जरियों की भीनी गन्ध सुदूर देशवासी प्रियतम के हृदयतन्तु को झंकृत कर उसे प्रिय मिलन की स्पृहा उत्पन्न करती है, उसी प्रकार शीत-उष्ण-विरहभाव-सम्पन्न तथा पुष्पगन्ध संचालित वासन्ती पवन एक प्रव्रजित को निर्वाणोन्मुख होने के लिए उसकी साधनागति में स्फूर्ति प्रदान करता है। उदायी की यह प्रकृतिवर्णना उभय भाव संपृक्त है।

---

१. फलूपगारुक्खा फलपिण्डिभारभारिता अहेसुं। खन्धेसु खन्धपदुमानि, साखासु साखापदुमानि, लतासु लतापदुमानि, आकासे ओलम्बकपदुमानि··· उट्ठहिंसु। दससहस्सी लोकधातु सुसंथत पुप्फसन्थारो विय च अहोसि।
नि० क० पृ० १८८.

२. × × × हरिततिणसञ्छन्ना पठवी, सुपुप्फित वनसण्डा, पटिपज्जनक्खमा मग्गा······।
नि० क० पृ० २१४.

३. नि० क० पृ० २१४.

विषय-सूची

संकेत-विवरण

अट्ठ. सा.	=	अट्ठसालिनी
अभि. सं.	=	अभिधम्मत्थसङ्गहो
अं. नि.	=	अङ्गुत्तरनिकाय
खु. पा.	=	खुद्दकपाठ
चु. व.	=	चुल्लवग्ग
जा.	=	जातक
दी. नि.	=	दीघनिकाय
न. टी.	=	नवनीतटीका
नि. क.	=	निदानकथा
बु. वं.	=	बुद्धवंस
म. नि.	=	मज्झिमनिकाय
विभा. टी.	=	विभाविनी टीका
सं. नि.	=	संयुत्तनिकाय
स. सं.	=	सद्धम्मसङ्गहो
सु. नि.	=	सुत्तनिपात
सु. वि.	=	सुमंगलविलासिनी
रो.	=	रोमन
म.	=	बर्मी
E. R. E.	=	Encyclopaedia of Religion and Ethics.
D. P. P. N.	=	Dictionary of Pali Proper names.

जातक-अट्ठकथायं

निदान-कथा

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

जातक-अट्ठकथायं

निदानकथा

पणामगाथा

B. 1 जातिकोटिसहस्सेहि, पमाणरहितं हितं ।
R. 1 लोकस्स लोकनाथेन, कतं येन महेसिना ॥ १ ॥
तस्स पादे नमस्सित्वा, कत्वा धम्मस्स चञ्जलिं ।
सङ्घं च पतिमानेत्वा, सब्बसम्मानभाजनं ॥ २ ॥
नमस्सनादितो अस्स, पुञ्ञस्स रतनत्तये ।
पवत्तस्सानुभावेन, भेत्वा[1] सब्बे उपद्दवे ॥ ३ ॥
तं तं कारणमागम्म, देसितानि जुतीमता ।
अपण्णकादीनि पुरा, जातकानि महेसिना ॥ ४ ॥
यानि येसु चिरं सत्था, लोकनित्थरणत्थिको ।
अनन्ते बोधिसम्भारे, परिपाचेसि नायको ॥ ५ ॥
तानि सब्बानि एकज्झं, आरोपेन्तेहि संगहं ।
जातकं नाम सङ्गीतं, धम्मसंगाहकेहि यं ॥ ६ ॥
बुद्धवंसस्स एतस्स,[2] इच्छन्तेन चिरट्ठितिं ।
याचितो अभिगन्त्वान, थेरेन अत्थदस्सिना ॥ ७ ॥
B. 2 असंसट्ठविहारेन, सदा सद्धिविहारिना[3] ।
तथेव बुद्धमित्तेन, सन्तचित्तेन विञ्ञुना ॥ ८ ॥
महिंसासकवंसम्हि, सम्भूतेन नयञ्ञुना ।
बुद्धदेवेन च तथा, भिक्खुना सुद्धबुद्धिना ॥ ९ ॥
महापुरिसचरियानं, आनुभावं अचिन्तियं ।
तस्स विज्जोतयन्तस्स, जातकस्सत्थवण्णनं ॥ १० ॥
महाविहारवासीनं, वाचनामग्गनिस्सितं ।
भासिस्सं भासतो तम्मे, साधु गण्हन्तु साधवो ति[4] ॥ ११ ॥

१. छेत्वा म. । २. एकस्स म. । ३. सुद्धविहारिना म. ।
४. रो. पोत्थके नत्थि ।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

जातक-अर्थकथा में आगत

निदान-कथा

प्रणामगाथा

जिस लोकनाथ महर्षि (भगवान बुद्ध) द्वारा करोड़ों जन्मों में लोक का अपरिमेय हित किया गया; उनके चरणों में नमस्कार कर, धर्म को अञ्जलिबद्ध प्रणाम कर, सर्व-सम्मान-भाजन भिक्षुसंघ की अर्चना कर; इन त्रिरत्नों के नमस्कारादि से उपलब्ध पुण्य प्रताप से सभी उपद्रवों को नष्ट कर; जिस प्रकाशस्वरूप महर्षि द्वारा विविध प्रसंगों में (विविध कारणों को लक्ष्य कर) अपण्णकादि जातक अतीत में कहे गये हैं; तथा लोक के उद्धार के लिए सुदीर्घ काल से लोक नायक (भगवान बुद्ध) ने जिनमें अनन्त ज्ञानसामग्रियों का परिपाचन किया है; तथा धर्मसंग्राहकों द्वारा उन सबको संग्रह के रूपमें एक साथ रखते हुए जातक के नामसे अभिहित कर संगायन किया गया; इस बुद्धवंश अर्थात् बौद्ध-परम्पराकी चिरस्थितिकी कामना करते हुए स्थविर अर्थदर्शी, उनके शान्तचित्त विज्ञ शिष्य बुद्धमित्र; तथा महिशासक वंश में उत्पन्न नयविद शुद्ध बुद्धिवाले भिक्षु बुद्धदेव द्वारा आकर याचित मैं, महापुरुष (भगवान बुद्ध) के अचिन्त्य प्रभाव को प्रकाशित करने वाली जातकअर्थवर्णना को महाविहारवासियों के वाचनाक्रम (संगायनक्रम) पर आश्रित वर्णन करूँगा, जिसे, मुझे वर्णन करते हुए, सज्जन पुरुष सम्यक् रूप से ग्रहण करें ॥ १–११ ॥

निदानकथा

R. 2 १. सा पनायं जातकस्स अत्थवण्णना **दूरेनिदानं अविदूरेनिदानं सन्तिकेनिदानं** ति, इमानि तीणि निदानानि दस्सेत्वा वण्णियमाना, ये नं सुणन्ति तेहि समुदागमतो पट्ठाय विञ्ञातत्ता यस्मा सुट्ठु विञ्ञाता नाम होति, तस्मा तं तीणि निदानानि दस्सेत्वा वण्णयिस्साम। तत्थ आदितो ताव तेसं निदानानं परिच्छेदो वेदितब्बो। दीपंकरपादमूलस्मिं हि कताभिनीहारस्स महासत्तस्स याव वेस्सन्तरत्तभावा[1] चवित्वा तुसितपुरे निब्बत्ति ताव पवत्तो कथामग्गो दूरेनिदानं नाम। तुसितभवनतो पन चवित्वा याव बोधिमण्डे सब्बञ्ञुतप्पत्ति ताव पवत्तो कथामग्गो अविदूरेनिदानं नाम। सन्तिकेनिदानं पन तेसु तेसु ठानेसु विहरतो तस्मिं तस्मिं येव ठाने लब्भतीति।

दूरेनिदानं

सुमेधकथा

२. तत्रिदं दूरेनिदानं नाम। इतो किर कप्पसतसहस्साधिकानं चतुन्नं असंखेय्यानं मत्थके अमरवती नाम नगरं अहोसि। तत्थ
B. 3 सुमेधो नाम ब्राह्मणो पटिवसति, उभतो सुजातो मातितो च पितितो च संसुद्धगहणिको, याव सत्तमा कुलपरिवट्टा अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन, अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो। सो अञ्ञं कम्मं अकत्वा ब्राह्मणसिप्पमेव उग्गण्हि। तस्स दहरकाले येव मातापितरो कालमकंसु। अथस्स रासिवड्ढको अमच्चो आयपोत्थकं आहरित्वा सुवण्णरजतमणिमुत्तादिभरिते गब्भे विवरित्वा "एत्तकं ते कुमार, मातुसन्तकं, एत्तकं पितुसन्तकं, एत्तकं अय्यकपय्यकानं ति याव सत्तमा कुलपरिवट्टा[2] धनं आचिक्खित्वा एतं पटिपज्जाही"ति आह। सुमेधपण्डितो चिन्तेसि—'इमं धनं संहरित्वा मय्हं पितुपितामहादयो परलोकं गच्छन्ता एकं कहापणं पि गहेत्वा न गता, मया पन गहेत्वा गमनकारणं कातुं वट्टती'ति। सो[3] रञ्ञो आरोचेत्वा नगरे भेरिं चरापेत्वा महाजनस्स दानं दत्वा तापसपब्बज्जं पब्बजि।

१. °भावो म.। २. °परिवट्टो म.। ३. रो. पोत्थके नत्थि।

निदानकथा

१. जातक की यह अर्थवर्णना (व्याख्या) 'दूरेनिदान', 'अविदूरेनिदान' तथा 'सन्तिकेनिदान'—इन तीन निदानों को दर्शाकर किये जाने पर जो इसे सुनते हैं वे प्रारम्भ से (अवतरणादि को जानकर) भली प्रकार से समझ लेने के कारण इसे सम्यक् रूप से जान लेते हैं; एतदर्थ इसका वर्णन निदानों को दर्शाते हुए मैं करूँगा। अतः सर्वप्रथम इन निदानों के विभाग (वर्गीकरण) को जान लेना चाहिए। भगवान दीपंकर के चरणों में महासत्त्व द्वारा (बुद्ध होने की अविचल अभिलाषा से) आत्मसमर्पण करने से लेकर वेस्सन्तर राजा के शरीर का परित्याग कर तुसित देवलोक में उत्पत्ति तक की जीवनकथा (कथामार्ग) को दूरेनिदान कहते हैं। (पुनः) तुसितदेवलोक से च्युत हो बोधिमण्ड (उरुवेला के बोधिवृक्ष के नीचे) में बैठ सर्वज्ञता की प्राप्ति तक प्रवृत्त जीवनकथा का नाम अविदूरेनिदान है। विभिन्न स्थानों में विचरते हुए उन-उन स्थानों से सम्बद्ध जो जीवनकथा प्राप्त होती है, उसे सन्तिकेनिदान कहते हैं।

दूरेनिदान

सुमेधकथा

२. दूरेनिदान इस प्रकार है। इस (भद्रकल्प) से चार असंखेय्य एक लाख कल्प पूर्व अमरवती नाम की एक नगरी थी। वहाँ एक सुमेध नामक ब्राह्मण रहते थे, जो माता पिता दोनों पक्ष से सुजात, शुद्ध रूप से जन्म ग्रहण किये हुए, कुल परम्परा में सात पीढ़ी तक कुलदोषों (जातिदोषों) से रहित, अभिरूप, दर्शनीय, मनोहारी, तथा शरीर के उत्तम वर्णसे युक्त थे। उन्होंने अन्य किसी काम को न करके (केवल) ब्राह्मणों की विद्या ही पढ़ी। बालपन में ही उनके माता पिता मर गये। तब उनके कोषाध्यक्ष अर्थात् राशिवर्द्धक आमात्य ने आयपुस्तिका लाकर स्वर्ण, रजत, मुक्ता आदि से पूर्ण कोठियों (गर्भों) को खोल कर—"कुमार, इतना तुम्हारा मातृधन अर्थात् माता की ओर से प्राप्त धन है, इतना पितृधन है, इतना पितामहपरपितामहादि का धन है, इस प्रकार सात पीढ़ियों के धनका विवरण देते हुए, 'इसे (तुम) संभालो', ऐसा कहा। सुमेध पण्डित ने विचार किया—"इस धन का संग्रह कर मेरे पिता-पितामह आदि परलोक जाते हुए एक कार्षापण भी लेकर नहीं गये, पर मुझे (कुछ न कुछ) लेकर जाने का साधन प्राप्त करना चाहिए"। (इसलिए) उन्होंने राजा को सूचना देकर, नगरमें भेरी (ढिंढोरा) बजवाकर जनसमूह को (धन का) दान देकर तपस्वियों के समान प्रव्रज्या ले ली।

इमस्स पनत्थस्स आविभावत्थं इमस्मिं ठाने सुमेधकथा कथेतब्बा। सा पनेसा किञ्चापि बुद्धवंसे निरन्तरं आगता येव, गाथाबन्धनेन पन आगतत्ता न सुट्ठु पाकटा। तस्मा तं अन्तरन्तरा गाथाबन्धदीपकेहि वचनेहि सद्धिं कथेस्साम।

३. कप्पसतसहस्साधिकानं हि चतुन्नं असंखेय्यानं मत्थके दसहि सद्देहि अविवित्तं अमरवतीति च अमरं ति च लद्धनामं नगरं अहोसि; यं सन्धाय बुद्धवंसे वुत्तं[1] :—

R. 3 'कप्पे च सतसहस्से च, चतुरो च असंखिये।
अमरं नाम नगरं, दस्सनेय्यं मनोरमं।
दसहि सद्देहि अविवित्तं, अन्नपानसमायुतं'ति ॥ १२ ॥

तत्थ "दसहि सद्देहि अविवित्तं" ति हत्थिसद्देन अस्ससद्देन रथसद्देन भेरिसद्देन मुतिंगसद्देन वीणासद्देन गीतसद्देन संखसद्देन तालसद्देन 'अस्नाथ पिवथ खादथा'[a] ति दसमेन सद्देनाति, इमेहि दसहि सद्देहि अविवित्तं अहोसि। तेसं पन सद्दानं एकदेसमेव गहेत्वा"[2] :—

B. 4 "हत्थिसद्दं अस्ससद्दं, भेरिसंखरथानि च।
खादथ पिवथा चेव, अन्नपानेन घोसितं ति ॥ १३ ॥

बुद्धवंसे इमं[3] गाथं वत्वा[4] :—

"नगरं सब्बंगसम्पन्नं, सब्बकाममुपागतं[5]।
सत्तरतनसम्पन्नं, नानाजनसमाकुलं ॥ १४ ॥
समिद्धं देवनगरं व, आवासं पुञ्ञकम्मिनं।
नगरे अमरवतिया, सुमेधो नाम ब्राह्मणो ॥ १५ ॥
अनेककोटिसन्निचयो, पहूतधनधञ्ञवा।
अज्झायको मन्तधरो, तिण्णं वेदानपारगू ॥
लक्खणे इतिहासे च, सधम्मे पारमिं गतो[6]"ति ॥१६॥

वुत्तं।

तस्स चिन्तनं

४. अथेकदिवसं सो सुमेधपण्डितो उपरिपासादवरतले रहोगतो हुत्वा पल्लङ्कं आभुजित्वा निसिन्नो चिन्तेसि—"पुनब्भवे

१. बु. वं. ३०५. पृ.। २. बु. वं. ३०५ पृ.। ३. वुत्त रो.। ४. बु. वं. ३०५ पृ.। ५. ० कम्म० म. रो.। ६. बु. वं. ३०५ पृ.।
a. अन्नपानेहि पिवथ खादथा'ति (?)

इस प्रसंग को (अर्थ को) स्पष्ट करने के लिए इस स्थान में सुमेध की कथा कहनी चाहिए। यद्यपि वह कथा पूर्ण रूप से बुद्धवंस में आयी है, पर पद्यमय होनेके कारण अधिक स्पष्ट नहीं है। इसलिए हम उस कथा को उन गाथाओं के अर्थ को दर्शाने वाले वचनों के साथ कहेंगे।

३. चार असंखेय्य एक लाख कल्प पूर्व दस प्रकार के शब्दों से युक्त अमरवती या अमर नाम का एक नगर था, जिसके सम्बन्ध में बुद्धवंस में कहा गया है :—

चार असंखेय्य एक लाख कल्प पूर्व एक दर्शनीय, मनोरम तथा दस शब्दों से युक्त अमर नाम का नगर था ॥ १२ ॥

यहाँ 'दस शब्दों से युक्त' का अर्थ है—हस्तिशब्द; अश्वशब्द, रथशब्द, भेरिशब्द, मृदंगशब्द, वीणाशब्द, गीतशब्द, शंखशब्द, तालशब्द, 'भोजन करें, पियें, खायें'—इन दस शब्दों से अर्थात् इन दस शब्दों से युक्त था। इन शब्दों के कुछ अंश को ग्रहण करें—

हस्तिशब्द, अश्वशब्द, भेरिशब्द, शंखशब्द, रथशब्द, खाओ, पिवो तथा अन्नपान का घोष (कहा गया है) ॥ १३ ॥

बुद्धवंस में इस गाथाको कह कर :—

(वह) नगर सर्वांग सम्पन्न, सभी प्रकार के भोगों से युक्त, सात रत्नों से सम्पन्न तथा विविध प्रकार के मनुष्यों से समाकुल था ॥ १४ ॥

(उस) देवनगर के समान समृद्ध पुण्यात्माओं के निवास-रूप अमरवती नगर में सुमेध नामक ब्राह्मण (रहते थे) ॥ १५ ॥

(जो) करोड़ों का स्वामी, प्रभूत धन-धान्य वाले, अध्यापक (वेदपाठी), मन्त्रधर, तीनों वेदों में पारंगत, लक्षणशास्त्र, इतिहास तथा सद्धर्म में पूर्णता प्राप्त थे ॥ १६ ॥

ऐसा कहा गया है।

उनका चिन्तन

४. एक दिन वह सुमेध पण्डित अपने प्रासाद के ऊपरी भाग में आसन लगाये एकान्त में बैठ सोचने लगे—"पण्डित, जन्म ग्रहण करना दुःख है, उत्पन्न हुए

पण्डित, पटिसन्धिगहणं नाम दुक्खं, तथा निब्बत्तनिब्बत्तट्ठाने सरीरभेदनं। अहं च जातिधम्मो जराधम्मो व्याधिधम्मो मरणधम्मो। एवंभूतेन मया अजातिं अजरं अव्याधिं अदुक्खमसुखं सीतलं अमतमहानिब्बानं परियेसितुं वट्टति। अवस्सं भवतो मुञ्चित्वा निब्बानगामिना एकेन मग्गेन भवितब्बं' ति।

तेन वुत्तं[1] :—

"रहोगतो निसीदित्वा, एवं चिन्तेसहं तदा।
दुक्खो पुनब्भवो नाम, सरीरस्स च भेदनं॥ १७॥
जातिधम्मो जराधम्मो, व्याधिधम्मो चहं तदा।
अजरं अमरं[2] खेमं, परियेसिस्सामि निब्बुतिं॥ १८॥
यन्नूनिमं पूतिकायं, नानाकुणपपूरितं।
छड्डयित्वान गच्छेय्यं, अनपेक्खो अनत्थिको॥ १९॥
R. 4 अत्थि हेहिति सो मग्गो, न सो सक्का न हेतुये।
परियेसिस्सामि तं मग्गं, भवतो परिमुत्तिया" ति॥ २०॥

B. 5 ५. ततो उत्तरिपि एवं चिन्तेसि—"यथा हि लोके दुक्खस्स पटिपक्खभूतं सुखं नाम अत्थि, एवं भवे सति तप्पटिपक्खेन विभवेनापि भवितब्बं। यथा च उण्हे सति तस्स वूपसमभूतं सीतंपि अत्थि; एवं रागादीनं अग्गीनं वूपसमेन निब्बानेनापि भवितब्बं। यथा च पापकस्स लामकस्स धम्मस्स पटिपक्खभूतो कल्याणो अनवज्जधम्मोपि अत्थि येव, एवमेव पापिकाय जातिया सति सब्बजातिक्खेपनतो अजातिसंखातेन निब्बानेनापि भवितब्बमेवा ति।

तेन वुत्तं[3] :—

"यथापि दुक्खे विज्जन्ते, सुखं नामपि विज्जति।
एवं भवे विज्जमाने, विभवोपि इच्छितब्बको॥ २१॥
यथापि उण्हे विज्जन्ते, अपरं विज्जति सीतलं।
एवं तिविधग्गि विज्जन्ते, निब्बानं इच्छितब्बकं॥ २२॥
यथापि पापे विज्जन्ते, कल्याणमपि विज्जति।
एवमेव जाति विज्जन्ते, अजातिं पि इच्छितब्बकं" ति॥२३॥

६. अपरंपि चिन्तेसि :—'यथा नाम गूथरासिम्हि निमुग्गेन पुरिसेन दूरतोव[4] पञ्चवण्णपदुमसञ्छन्नं महातळाकं दिस्वा—

१. बु. वं. ३०५ पृ.। २. अमतं म.। ३. बु. वं. ३०५ पृ.।
४. दूरतो म. रो.।

स्थानों में अर्थात् प्रत्येक जन्म में मृत्यु को प्राप्त करना दुःख है। मैं जन्मजराव्याधि-मरणधर्मा हूँ। इसलिए मेरे द्वारा जन्मजराव्याधिसुखदुःखरहित, शीतल अमृत रूप महानिर्वाण की खोज करनी चहिए। अवश्य ही जन्म-मरण से मुक्त निर्वाण की ओर जाने वाले एक मार्ग को होना चाहिए।

इसलिए कहा गया है :—

"एकान्त में बैठकर मैं ने ऐसा चिन्तन किया कि पुनर्जन्म तथा मृत्यु दोनों दुःख है॥ १७॥

मैं जन्मजराव्याधिधर्मा हूँ। अतः मैं अजर अमर क्षेमस्वरूप निर्वाण की खोज करूँगा॥ १८॥

निश्चय ही मुझे विविध प्रकार के मलों से पूर्ण इस अपवित्र शरीर को छोड़कर अनपेक्षी (स्नेह बन्धन त्यागकर) तथा अनभ्यर्थी हो जाना चाहिए॥

वह मार्ग है और अवश्य है। वह नहीं है, ऐसा हो नहीं सकता है। (इसलिए) संसार से मुक्ति पाने के लिये मैं उस मार्ग की गवेषणा करूँगा॥

५. इसके आगे भी उन्होंने विचार किया—जिस प्रकार संसार में दुःख है, तो उसका प्रतिपक्षी सुख भी है, उसी प्रकार आवागमन (भव) का प्रतिपक्षी विभव अर्थात् आवागमन का अभाव होना चाहिए। (पुनः) यथा उष्णता (गर्मी) के रहनेपर उसे शान्त करनेवाली शीतलता है; उसी प्रकार रागादि अग्नियों का उपशमनभूत निर्वाण भी (अवश्य) होगा। जिस प्रकार पापपूर्ण सदोष (निम्न) धर्म का प्रतिपक्षी कल्याणप्रद (पुण्य रूप) तथा कालुष्य रहित धर्म है, उसी प्रकार पापमय (दुःखमय) जन्म के रहने पर ही समस्त जन्मों की क्षीणता प्राप्त, अजन्म नाम से अभिव्यक्त निर्वाण भी (अवश्य) होना चाहिए।

इसलिए कहा गया है :—

'जिस प्रकार दुःख के रहने पर सुख भी है, उसी प्रकार भव अर्थात् आवागमन के रहने पर उसका (प्रतिपक्षी) विभव को भी होना चाहिए॥

जिस प्रकार उष्णता के विद्यमान रहने पर उसका प्रतिपक्षी शीतलता भी है, उसी प्रकार त्रिविध अग्नियों (राग अग्नि, द्वेष अग्नि तथा मोह अग्नि) के रहने पर निर्वाण का भी होना इच्छितव्य है॥ २२॥

जिस प्रकार पाप के विद्यमान रहने पर पुण्य भी विद्यमान है, उसी प्रकार जन्म के रहने पर अजन्म अर्थात् जन्म रहित निर्वाण भी रहना चाहिए'॥२३॥

६. (उन्होंने) आगे भी विचार किया:—जिस प्रकार मल की राशि में निमग्न पुरुष द्वारा दूर से पाँच रङ्गों के कमलों से आच्छादित एक विशाल

'कतरेन नु खो मग्गेन एत्थ गन्तब्बं ति, तं तळाकं गवेसितुं युत्तं; यं तस्स अगवेसनं, न सो तळाकस्स दोसो; एवं[1] किलेसमलधोवनअमतमहानिब्बानतळाके विज्जन्ते तस्स अगवेसनं न अमतनिब्बानमहातळाकस्स दोसो। यथा च चोरेहि सम्परिवारितो पुरिसो पलायनमग्गे विज्जमानेपि सचे न पलायति, न सो मग्गस्स दोसो, पुरिसस्सेव दोसो; एवमेव किलेसेहि परिवारेत्वा गहितस्स पुरिसस्स विज्जमाने येव निब्बानगामिम्हि सिवे मग्गे, मग्गस्स अगवेसनं नाम न मग्गस्स दोसो, पुग्गलस्सेव दोसो। यथा च व्याधिपीळितो पुरिसो विज्जमाने व्याधितिकिच्छके वेज्जे सचे तं वेज्जं गवेसित्वा व्याधिं न तिकिच्छापेति, न सो वेज्जस्स दोसो; एवमेव यो किलेसव्याधिपीळितो किलेसवूपसममग्गकोविदं विज्जमानमेव आचरियं न गवेसति, तस्सेव दोसो, न किलेसविनासकस्स आचरियस्सा' ति।

तेन वुत्तं[2] :—

यथा गूथगतो पुरिसो, तळाकं दिस्वान पूरितं।
न गवेसति तं तळाकं, न दोसो तळाकस्स सो॥ २४॥
B. 6 एवं किलेसमलधोवे, विज्जन्ते अमतन्तले।
न गवेसति तं तळाकं, न दोसो अमतन्तले॥ २५॥
R. 5 यथा अरीहि परिरुद्धो, विज्जन्ते गमने पथे।
न पलायति सो पुरिसो, न दोसो अञ्जसस्स सो॥ २६॥
एवं किलेसपरिरुद्धो, विज्जमाने सिवे पथे।
न गवेसति तं मग्गं, न दोसो सिवमञ्जसे॥ २७॥
यथापि व्याधितो पुरिसो, विज्जमाने तिकिच्छके।
न तिकिच्छापेति तं व्याधिं, न सो दोसो तिकिच्छके॥२८॥
एवं किलेसव्याधीहि, दुक्खितो परिपीलितो।
न गवेसति तं आचरियं, न सो दोसो विनायके ति॥२९॥

७. अपरं पि चिन्तेसि :—"यथा मण्डनजातिको पुरिसो कण्ठे आसत्तं कुणपं छड्डेत्वा सुखं गच्छति, एवं मयापि इमं पूतिकायं छड्डेत्वा अनपेक्खेन निब्बाननगरं पविसितब्बं। यथा च नरनारियो उक्कारभूमियं उच्चारपस्सावं कत्वा न तं उच्छंगेन वा आदाय दुस्सन्तेन वा वेठेत्वा गच्छन्ति, जिगुच्छमाना[3] पन

१. एवमेव म.। २. बु. वं. ३०६ पृ.। ३. ० मानो म.।

सरोवर को देखकर, 'मुझे किस मार्ग से वहाँ पहुँचना चाहिए', (ऐसा सोच) उस सरोवर को खोजना चाहिए; उस को नहीं खोजना, सरोवर का दोष नहीं है; उसी प्रकार (समस्त) क्लेशमलों को धोने में समर्थ अमृतपदनिर्वाण-स्वरूप महासरोवर के रहते, उसे न खोजना, उस अमृतरूप महान् तड़ाक् का दोष नहीं है। जिस प्रकार चोरों से घिरा हुआ मनुष्य भागने का मार्ग रहने पर भी यदि नहीं भागता है, तो वह उस मार्ग का दोष नहीं है बरन् उस पुरुष का ही दोष है; उसी प्रकार मलों से लिप्त एवं ग्रस्त मनुष्य निर्वाण की ओर ले जाने वाले कल्याणप्रद मार्ग के रहते भी उसे न खोजे तो उस मार्ग का दोष नहीं है, उस मनुष्य का ही दोष है। जिस प्रकार व्याधिपीड़ित मनुष्य रोग की चिकित्सा करने वाले वैद्य के रहते भी उस वैद्य की खोज कर रोग की चिकित्सा नहीं कराता है, तो वह वैद्य का दोष नहीं है; उसी प्रकार चित्त-मलव्याधि से ग्रस्त मनुष्य मल के उपशम के उपाय के ज्ञाता के विद्यमान रहने पर भी उस आचार्य को नहीं ढूढ़ता है, तो यह उसी का दोष है, मल को नष्ट करने वाले आचार्य का नहीं।' इसलिए कहा गया है—

'जिस प्रकार मल से आवृत पुरुष जलपूर्ण तड़ाक् को देखकर भी उस तड़ाक् की खोज नहीं करता है, तो वह उस सरोवर का दोष नहीं है॥ २४॥

उसी प्रकार मलप्रक्षालनसमर्थ अमृत-सरोवर (निर्वाण) के रहते हुए भी (वह मनुष्य) उस सरोवर को नहीं खोजता है, तो उस सरोवरका दोष नहीं है॥

जिस प्रकार शत्रुओं से घिरा हुआ मनुष्य भाग निकलने के मार्ग के रहते भी नहीं निकल भागता है, तो वह उस मार्ग का दोष नहीं है॥ २६॥

उसी प्रकार मलों से परिवारित (मनुष्य) कल्याणप्रद मार्ग के रहते हुए भी उसे नहीं ढूढ़ता है, तो उस मार्ग का दोष नहीं है॥ २७॥

जिस प्रकार रुग्णपुरुष चिकित्सक के विद्यमान रहने पर भी उस रोग की चिकित्सा नहीं कराता है, तो वह उस चिकित्सक का दोष नहीं है॥ २८॥

उसी प्रकार क्लेशरोग से दुःखी एवं प्रपीड़ित मनुष्य यदि उस (मल विनाशक) आचार्य की खोज नहीं करता है, तो वह आचार्यका दोष नहीं है'॥

७. उन्होंने आगे भी विचार करना शुरू किया—'जिस प्रकार मण्डनानुरागी पुरुष (अपने को सजाने वाला) कण्ठ में लगे मल को हटा कर सुखपूर्वक जाता है, उसी प्रकार मुझे भी इस मलिन शरीर को छोड़कर अनपेक्षी अर्थात् ममता को त्याग निर्वाण नगर में प्रवेश करना चाहिए। जिस प्रकार स्त्री पुरुष मलमूत्र त्यागने के स्थान पर मलमूत्र का परित्याग कर न तो उसे अपनी गोदी में लेकर जाते हैं, न उसे अपनी चादर में बाँध कर ले जाते हैं, बल्कि

अनपेक्खाव छड्डेत्वा गच्छन्ति; एवं मयापि इमं पूतिकायं अनपेक्खेन छड्डेत्वा अमतं निब्बाननगरं पविसितुं वट्टति। यथा च नाविका नाम जज्जरं नावं अनपेक्खा छड्डेत्वा गच्छन्ति, एवं अहम्पि इमं नवहि वणमुखेहि पग्घरन्तं कायं छड्डेत्वा अनपेक्खो निब्बाननगरं पविसिस्सामि। यथा च पुरिसो नानारतनानि आदाय चोरेहि सद्धिं मग्गं गच्छन्तो अत्तनो रतननासभयेन ते छड्डेत्वा खेमं मग्गं गण्हाति, एवं अयम्पि करजकायो रतनविलोपक-चोरसदिसो। सचाहं एत्थ तण्हं करिस्सामि, अरियमग्गकुसल-धम्मरतनं मे नस्सिस्सति। तस्मा मया इमं चोरसदिसं कायं छड्डेत्वा निब्बाननगरं पविसितुं वट्टती" ति।

तेन वुत्तं[1] :—

"यथापि कुणपं पुरिसो, कण्ठे बद्धं जिगुच्छिय।
मोचयित्वान गच्छेय्य, सुखी सेरी सयंवसी॥ ३०॥
B. 7 तथेविमं पूतिकायं, नानाकुणपसञ्चयं।
छड्डयित्वान गच्छेय्यं, अनपेक्खो[2] अनत्थिको॥ ३१॥
यथा उच्चारठानम्हि, करीसं नरनारियो।
छड्डयित्वान गच्छन्ति, अनपेक्खा अनत्थिका॥ ३२॥
एवमेव इमं[3] कायं, नानाकुणपपूरितं।
छड्डयित्वान गच्छिस्सं, वच्चं कत्वा यथा कुटिं॥ ३३॥
यथापि जज्जरं नावं, पलुग्गं उदगाहिनिं।
सामी छड्डेत्वा गच्छन्ति, अनपेक्खा अनत्थिका॥ ३४॥
R. 6 एवमेव इमं कायं, नवच्छिद्दं धुवस्सवं।
छड्डयित्वान गच्छिस्सं, जिण्णं नावं व सामिका॥ ३५॥
यथापि पुरिसो चोरेहि, गच्छन्तो भण्डमादिय।
भण्डच्छेदभयं दिस्वा, छड्डयित्वान गच्छति॥ ३६॥
एवमेव अयं कायो, महाचोरसमो विय।
पहायिमं गमिस्सामि, कुसलच्छेदना भया" ति॥ ३७॥

तस्स पब्बज्जा

८. एवं सुमेधपण्डितो नानाविधाहि उपमाहि इमं नेक्खम्मुपसंहितं अत्थं चिन्तेत्वा, सकनिवेसने अपरिमितं

१. बु. वं. ३०६-७ पृ.। २. अनपेखो रो. सब्बत्थ.।
३. एवमेवाहं इमं म.।

उसके प्रति घृणा करते हुए अनपेक्षी हो उसे (वहीं) छोड़कर जाते हैं; उसी प्रकार मुझे भी इस मलिन काय को ममतारहित हो छोड़कर अमृतस्वरूप अर्थात् नाशरहित निर्वाणनगर में प्रवेश करना चाहिए। जिस प्रकार नाविक जीर्ण जर्जर नाव को उपेक्षित छोड़कर चले जाते हैं; उसी प्रकार मैं भी इस नव अशुचि प्रवाही छिद्रों वाले शरीर का परित्याग कर अनपेक्षी हो निर्वाण नगर में प्रवेश करूँगा। जिस प्रकार विविध प्रकार के रत्नों को लेकर चोरों के साथ रास्ते में जाने वाला मनुष्य अपने रत्नों के नाश के भय से उन्हें छोड़कर कल्याण-कारी मार्ग ग्रहण करता है, उसी प्रकार यह अपवित्र शरीर रत्नलूटने वाले चोरों के समान है। यदि मैं इस शरीर के प्रति आसक्ति रखूँगा तो मेरा आर्य-मार्ग, जो पवित्र रत्न के समान है, नष्ट हो जायगा। इसलिए इस चोर सदृश शरीर का परित्याग कर निर्वाण नगर में प्रवेश करना चाहिए।

इसलिए कहा गया है :—

"जिस प्रकार मनुष्य कंठ में बंधे सड़े शव के प्रति घृणा करते हुए उसे स्वेच्छापूर्वक प्रसन्नता से छोड़कर जाय॥ ३०॥

उसी प्रकार इस विविध अशुचियों के समूह अपवित्र काय को छोड़कर अनपेक्षी हो तथा इसे निष्प्रयोजन समझ जाना चाहिए॥ ३१॥

जिस प्रकार स्त्री-पुरुष मलमूत्र त्यागने के स्थान में मल को निष्प्रयोजन समझ उसके प्रति आकांक्षा रहित होकर चले जाते हैं॥ ३२॥

उसी प्रकार इस विविध मलों से पूर्ण शरीर को शौचालय में मल त्याग के समान छोड़कर चला जाऊँगा॥ ३३॥

जिस प्रकार जीर्ण, भग्न एवं जल से भर जाने वाली नाव को छोड़कर नाविक अनपेक्षी हो, चल देता है॥ ३४॥

उसी प्रकार नव छिद्रों से सर्वदा अशुचि प्रवाही शरीर को स्वामी (नाविक) द्वारा जीर्ण नाव के परित्याग के समान छोड़ दूँगा॥ ३५॥

जिस प्रकार सामान लेकर चोरों के साथ जाता हुआ मनुष्य, सामान के अपहरण (नाश) के भय से (उन्हें) छोड़कर चला जाता है॥ ३६॥

उसी प्रकार इस महाचोर के समान शरीर को पुण्य-विनाश के भय से छोड़-कर जाऊँगा॥ ३७॥

उनकी प्रव्रज्या

८. इस प्रकार सुमेधपण्डित विविध प्रकार की उपमाओं के सहारे निष्क्रमण की भावना से युक्त उद्देश्य (अर्थ) का चिन्तन कर पूर्वोक्त ढंग से अपने घर की

भोगक्खन्धं हेट्ठा वुत्तनयेन कपणद्धिकादीनं विस्सज्जेत्वा, महादानं दत्वा, वत्थुकामे च किलेसकामे च पहाय, अमरनगरतो निक्खमित्वा, एककोव हिमवन्ते धम्मकं नाम पब्बतं निस्साय अस्समं कत्वा, पण्णसालं च चंकमं च मापेत्वा, पञ्चहि नीवरणदोसेहि विवज्जितं—"एवं समाहिते चित्ते"[1] ति आदिना नयेन वुत्तेहि अट्ठहि कारणगुणेहि समुपेतं अभिञ्ञासंखातं बलं आहरितुं, तस्मिं अस्समपदे नवदोससमन्नागतं साटकं पजहित्वा, द्वादसगुणसमन्नागतं वाकचीरं निवासेत्वा, इसिपब्बज्जं पब्बजि। एवं पब्बजितो अट्ठदोससमाकिण्णं तं पण्णसालं पहाय, दसगुण-समन्नागतं रुक्खमूलं उपगन्त्वा, सब्बं धञ्ञविकतिं पहाय, पवत्तफलभोजनो हुत्वा, निसज्जट्ठानचंकमवसेनेव पधानं पदहन्तो सत्ताहब्भन्तरे येव अट्ठन्नं समापत्तीनं पञ्चन्नं च अभिञ्ञानं लाभी अहोसि। एवं तं यथापत्थितं अभिञ्ञाबलं पापुणि।

तेन वुत्तं[2] :—

B. 8 "एवाहं चिन्तयित्वान, नेककोटिसतं धनं।
नाथानाथानं दत्वान, हिमवन्तमुपागमिं ॥ ३८ ॥
हिमवन्तस्स अविदूरे, धम्मको नाम पब्बतो।
अस्समो सुकतो मय्हं, पण्णसाला सुमापिता ॥ ३९ ॥
चंकमनं तत्थ मापेसिं, पञ्चदोसविवज्जितं।
अट्ठगुणसमुपेतं, अभिञ्ञाबलमाहरिं ॥ ४० ॥
साटकं पजहिं तत्थ, नवदोसमुपागतं।
वाकचीरं निवासेसिं, द्वादसगुणमुपागतं ॥ ४१ ॥
अट्ठदोससमाकिण्णं, पजहिं पण्णसालकं।
उपागमिं रुक्खमूलं, गुणे दसहुपागतं ॥ ४२ ॥
वापितं रोपितं धञ्ञं, पजहिं निरवसेसतो।
अनेकगुणसम्पन्नं, पवत्तफलमादियिं ॥ ४३ ॥
R. 7 तत्थप्पधानं पदहिं, निसज्जट्ठानचंकमे।
अब्भन्तरम्हि सत्ताहे, अभिञ्ञाबलपापुणिं" ति ॥ ४४ ॥

९. इमाय[3] पन पालिया सुमेधपण्डितेन अस्समपण्णसालचंकमा सहत्था मापिता विय वुत्ता। अयं पनेत्थ अत्थो। महासत्तं

१. दी. नि. १. ६७। २. बु. वं. ३०७ पृ.। ३. तत्थ 'अस्समो सुकतो मय्हं, पण्णसाला सुमापिता' ति म. पोत्थके अधिको पाठो।

अनन्त भोग की वस्तुओं को याचकों तथा पथिकों को देकर, महादान दे, वस्तु-काम तथा क्लेशकाम अर्थात् प्रिय वस्तुओं तथा वासनाजन्य इच्छाओं का परित्याग कर, अमरनगर से निकल कर, अकेले ही हिमालय के धर्मक नामक पर्वत के निकट आश्रम, पर्ण-कुटी, चंक्रमणशाला बनाकर, पाँच नीवरणों (कामछन्द, व्यापाद, थीनमिद्ध उद्धच्चकुकुच्च, विचिकिच्छा) से रहित—'इस प्रकार चित्त के एकाग्र होने पर' आदि ढंग से कहे गये (समाधि के) आठ कारण गुणों (परिशुद्ध, परिअवदात, अंगणरहित, क्लेशवर्जित, मृदुभूत, कर्मनीय, स्थित, कम्पनरहित) से युक्त अभिज्ञा नामक (दिव्य चक्षु, दिव्य श्रोत्र, पूर्व जन्म की स्मृति, ऋद्धिबल, पर चित्ताका ज्ञान) बल की प्राप्ति के लिए, उस आश्रम में नव दोषों से युक्त वस्त्र का परित्याग कर बारह गुण समन्वित वल्कल को धारण कर ऋषियों की प्रव्रज्या विधि से प्रव्रजित हो गये। इस प्रकार प्रव्रजित हो आठ दोषों से युक्त उस पर्णकुटी को छोड़कर, दस गुणों से युक्त वृक्षमूल अर्थात् वृक्षों की छाया में जाकर, अन्न से बनें सभी प्रकार के भोजनों का परित्याग कर, वृक्ष से गिरे फलों का आहार करने वाला होकर, बैठे, खड़े, चलते हुए (सभी अवस्थाओं में) ध्यानाभ्यास करते हुए (तपस्या करते हुए) एक सप्ताह के भीतर ही आठ समापत्तियों (चार रूप-ध्यान तथा चार अरूप-ध्यान) तथा पाँच अभिज्ञाओं को प्राप्त किया। इस प्रकार उन्होंने यथाप्रार्थित अर्थात् इच्छित अभिज्ञाबल की प्राप्ति की।

इसलिये कहा गया है :—

"इस प्रकार विचार कर मैं अनेक अरबों का धन याचकों तथा अनाथों को देकर हिमालय में चला गया ॥ ३८ ॥

हिमालय के निकट धर्मक नामक पर्वत के पार्श्व में मैं ने आश्रम, पर्णकुटी तथा पाँच दोषों से रहित चंक्रमणशाला बनाया तथा आठ गुणों से युक्त हो अभिज्ञाबल को प्राप्त करने के लिए यत्नवान हुआ ॥ ३९–४० ॥

नव दोषों से युक्त वस्त्र का परित्याग किया तथा बारह गुणों से युक्त वल्कल का वस्त्र धारण किया ॥ ४१ ॥

आठ दोषों से युक्त पर्णकुटी को छोड़, दस गुण सम्पन्न वृक्षमूल अर्थात् तरुछाया का आश्रय लिया ॥ ४२ ॥

बो जोतकर प्राप्त किये जाने वाले अन्नों को (खाना) बिल्कुल छोड़कर अनेक गुणों से युक्त वृक्षों से (स्वयं) गिरे हुए फलों को ग्रहण किया ॥ ४३ ॥

वहाँ (रहते हुए) बैठे, खड़े, तथा टहलते हुए (सर्वदा) ध्यानाभ्यास किया (तथा) एक सप्ताह के भीतर ही अभिज्ञाबल को प्राप्त किया" ॥ ४४ ॥

९. इस पालि अर्थात् बुद्धवचन में ऐसा कहा गया है कि सुमेध पण्डित ने आश्रम, पर्णकुटी तथा चंक्रमणशाला अपने हाथों बनायी। इसका अर्थ यह है।

हिमवन्तं अज्झोगाहेत्वा 'अज्ज धम्मकपब्बतं पविसिस्सामी' ति[1] निक्खन्तं[2] दिस्वा सक्को देवानमिन्दो विस्सकम्मं देवपुत्तं आमन्तेत्वा,[3] 'गच्छ[4] तात, अयं सुमेधपण्डितो 'पब्बजिस्सामी' ति निक्खन्तो, एतस्स वसनट्ठानं मापेही" ति। सो तस्स वचनं सम्पटिच्छित्वा रमणीयं अस्समं सुगुत्तं[5] पण्णसालं मनोरमं चंकमं च[6] मापेसि। भगवा पन तदा अत्तनो पुञ्ञानुभावेन निप्फन्नं तं अस्समपदं सन्धाय "सारिपुत्त, तस्मिं धम्मकपब्बते—

'अस्समो सुकतो मय्हं, पण्णसाला सुमापिता।
चंकमं तत्थ मापेसिं, पञ्चदोसविवज्जितं" ति[7] ॥ १ ॥

आह।

१०. तत्थ "सुकतो मय्हं" ति सुकतो मया। "पण्णसाला सुमापिता" ति पण्णच्छदनसाला पि मे सुमापिता अहोसि।
B. 9 "पञ्चदोसविवज्जितं" ति पञ्चिमे चंकमणदोसा नाम थद्धविसमता, अन्तो रुक्खता, गहणच्छन्नता, अतिसम्बाधता, अतिविसालता ति।

थद्धविसमभूमिभागस्मि हि चंकमे चंकमन्तस्स पादा रुजन्ति, फोटा उट्ठहन्ति, चित्तं एकग्गतं न लभति, कम्मट्ठानं विपज्जति। मुदुसमतले पन फासुविहारं आगम्म कम्मट्ठानं सम्पज्जति। तस्मा थद्धविसमभूमिभागता एको दोसोति वेदितब्बो। चंकमस्स अन्तो वा[8] मज्झे वा कोटियं वा रुक्खे सति पमादमागम्म चंकमन्तस्स नलाटं वा सीसं वा पटिहञ्ञतीति, अन्तरुक्खता दुतियो दोसो। तिणलतादिगहणच्छन्ने चंकमे चंकमन्तो अन्धकारवेलायं उरगादिके पाणे अक्कमित्वा वा मारेति, तेहि वा दट्ठो दुक्खं आपज्जतीति, गहणच्छन्नता ततियो दोसो। अतिसम्बाधे चंकमे आयामतो[9] रतनिके वा अड्ढरतनिके वा चंकमन्तस्स परिच्छेदे पक्खलित्वा नखापि अंगुलियोपि भिज्जन्ती ति, अतिसम्बाधता चतुत्थो दोसो। अतिविसाले चंकमे चंकमन्तस्स चित्तं विधावति, एकग्गतं न लभती ति, अतिविसालता पंचमो दोसो। पुथुलतो पन दियड्ढरतनं द्वीसु पस्सेसु रतनमत्तं अनुचंकमनं, दीघतो सट्ठिहत्थं मुदुतलं समविप्पकिण्णवालुकं

१. पिवसिस्सती ति रो.। २. रो. पोत्थके नत्थि। ३. आमन्तेसि म.। ४. म. रो. पोत्थकेसु नत्थि। ५. रो. पोत्थके नत्थि। ६. रो. पोत्थके नत्थि। ७. बु. वं. ३०७ पृ.। ८. रो. पोत्थके नत्थि। ९. वित्थारतो म.।

महासत्त्व को हिमालय में जा, 'आज धर्मपर्वत को जाऊँगा' (ऐसा सोच कर) निकलते देखकर देवताओं के राजा शक्र ने देवपुत्र विश्वकर्मा को बुलाकर कहा—"तात, ये सुमेधपण्डित, 'प्रव्रजित होऊँगा' ऐसा निश्चय कर निकले हैं, जाओ, इनके लिए निवास-स्थान तैयार करो"। उन्होंने उनके वचन को स्वीकार कर रमणीय आश्रम, सुरक्षित पर्णकुटी तथा सुन्दर चंक्रमणशाला का निर्माण किया। भगवान ने उस समय अपने प्रज्ञाबल से (जान कर) उस आश्रम के सम्बन्ध में कहा था—"सारिपुत्र, उस धर्मक पर्वत पर "मेरे लिए (उन्होंने) सुन्दर आश्रम, पर्णकुटी तथा पाँच दोषों से रहित चंक्रमणशाला बनायी" ॥ १ ॥

१०. 'तत्थ सुकतो मय्हं' का अर्थ है मेरे लिए अच्छी तरह की गई। 'पण्णसाला सुमापिता' का अर्थ है पत्तों से आच्छादित कुटी भी मेरे लिए बनायी हुई थी। 'पञ्चदोसविवज्जितं' का अर्थ है—कि चंक्रमणभूमि के ये पाँच दोष होते हैं—कड़ा तथा असमतल होना, बीच में वृक्षों का होना, घने आच्छादनवाला होना, बहुत संकीर्ण होना तथा बहुत विशाल होना।

कड़ी तथा असमतल (ऊँची-नीची) भूमि पर चंक्रमण करते हुए चंक्रमणकारी पुरुष के पैर छिल जाते (घायल हो जाते) हैं, फोड़े उठ आते हैं, चित्त एकाग्र नहीं हो पाता है, कर्मस्थान नष्ट हो जाता है (अर्थात् ध्यानाभ्यास के निमित्त कर्मस्थान पर चित्तकी एकाग्रता नहीं हो पाती है)। मृदु तथा समतल भूमि पर (चंक्रमण) सुखद होने के कारण कर्मस्थान की सिद्धि हो पाती है—इसलिए भूमि की कठोरता एवं विषमता को एक दोष समझना चाहिए। चंक्रमण के किनारे, मध्य या सिरे (कोटि) पर पेड़ के रहने से (कभी-कभी) प्रमाद के साथ टहलते हुए उससे ललाट या सिर टकरा जाता है, इसलिए मध्य में पेड़ का होना दूसरा दोष है। तृण लता आदि से घनीभूत छायासम्पन्न चंक्रमण पर टहलता हुआ (वह) अन्धकार के समय साँप आदि प्राणियों को कुचल कर मार देता है या उनसे दंसित हो दुःख को प्राप्त करता है, इसलिए गहन छाया का होना तीसरा दोष है। अति संकीर्ण चंक्रमण, जो चौड़ाई में एक हाथ (रत्थ) या आधे हाथ का होता है, उस पर टहलते हुए पार्श्व में फिसल कर गिरने से नख तथा अँगुलियाँ टूट जाती हैं, इसलिए चंक्रमण का अति संकीर्ण होना चतुर्थ दोष है। अति विशाल चंक्रमण पर टहलते हुए चित्त यत्र-तत्र दौड़ता है, एकाग्र नहीं होता है, इसलिए (चंक्रमण की, अतिविशालता पंचम दोष है)। चंक्रमण को वस्तुतः दोनों पार्श्व में एक-एक हाथ चौड़े अनुचंक्रमणों से युक्त, डेढ़ हाथ चौड़ा, साठ हाथ लम्बा, बालू से आवृत सम भूमिवाला होना चाहिए। सिंहलदीप को

चंकमणं वट्टति। चेतियगिरिम्हि दीपप्पसादकमहिन्दत्थेरस्स चंकमणं[1] तादिसं अहोसि। तेनाह **"चंकमं तत्थ मापेसिं पञ्चदोसविवज्जितं"** ति।

११. "अट्ठगुणसमुपेतं" ति अट्ठहि समणसुखेहि उपेतं।
अट्ठिमानि समणसुखानि नाम—धनधञ्ञपरिग्गहाभावो, अनव-
ज्जपिण्डपातपरियेसनभावो, निब्बुतपिण्डपातभुञ्जनभावो[2], रट्ठं
पीळेत्वा धनसारं वा सीसकहापणादीनि वा गण्हन्तेसु राजकुलेसु
रट्ठपीळनकिलेसाभावो, उपकरणेसु निच्छन्दरागभावो, चोरविलोपे
R. 8 निब्भयभावो, राजराजमहामत्तेहि असंसट्ठभावो, चतूसु दिसासु
अप्पटिहतभावो ति[3]। इदं वुत्तं होति :—

"यथा तस्मिं अस्समे वसन्तेन सक्का होन्ति इमानि अट्ठ समणसुखानि विन्दितुं, एवं अट्ठगुणसमुपेतं तं अस्समं मापेसिं" ति।

१२. "अभिञ्ञाबलमाहरिं" ति पच्छा तस्मिं अस्समे
वसन्तो कसिणपरिकम्मं कत्वा अभिञ्ञानं च समापत्तीनं च
उप्पादनत्थाय अनिच्चतो दुक्खतो विपस्सनं आरभित्वा थामप्पत्तं
B. 10 विपस्सनाबलं आहरिं। यथा 'तस्मिं वसन्तो तं बलं आहरितुं
सक्कोमि,' एवं तं अस्समं तस्स अभिञ्ञत्थाय विपस्सनाबलस्स
अनुच्छविकं कत्वा मापेसिं ति अत्थो।

१३. "साटकं पजहिं तत्थ नवदोसमुपागतं" ति एत्थायं आनुपुब्बिकथा। तदा किर कुटिलेणचंकमादिपतिमण्डितं, पुप्फूपगफलूपगरुक्खसञ्छन्नं, रमणीयं मधुरसलिलासयं, अपगत-बाळमिगभिंसनकसकुणं, पविवेकक्खमं अस्समं मापेत्वा, अलंकत-चंकमस्स उभोसु अन्तेसु आलम्बनफलकं संविधाय, निसीदनत्थाय चंकमवेमज्झे समतलं मुग्गवण्णसिलं मापेत्वा; अन्तोपण्णसालायं जटामण्डलवाकचीरं तिदण्डकुण्डिकादिके तापसपरिक्खारे; मण्डपे पानीयकुट[4]पानीयसंखपानीयसारावानि; अग्गिसालायं अंगारकपल्लदारुआदीनीति एवं यं यं पब्बजितानं उपकाराय संवत्तति तं सब्बं मापेत्वा पण्णसालाभित्तियं "ये केचि पब्बजितुकामा इमे परिक्खारे गहेत्वा पब्बजन्तु" ति अक्खरा ति

---

१. °विय म. रो.। २. °पिण्डं °रो.। ३. रो. पोत्थके नत्थि।
४. °घर°म.।

(भगवान बुद्ध के प्रति) श्रद्धावान् बनानेवाले स्थविर महेन्द्र का चंक्रमण चेतियगिरि विहार में वैसा ही था। इसलिए कहा गया है कि 'पाँच दोषों से रहित वहाँ चंक्रमण बनाया'।

११. "अट्ठगुणं समुपेतं" का अर्थ है श्रमणों (साधुओं) के आठ सुखों से युक्त। श्रमणों के आठ सुख ये हैं—धन-धान्य के संग्रह का अभाव, निर्दोष भिक्षा को प्राप्त करना, तैयार भिक्षान्न का भोजन करना, राष्ट्र को पीड़ा देकर धन या शीर्षकार्षापण लेते हुए राजकुलों को देख स्वयं राष्ट्र-पीड़ा न देना, वस्तुओं के प्रति निस्पृह तथा अनासक्त होना, चोरों द्वारा लूटे जाने के प्रति निर्भय बने रहना, राजा या राजमन्त्रियों से निकट सम्पर्क न रखना, चारों दिशाओं में अविबाध गति का होना। ऐसा कहा गया है—"यस्मात् इस आश्रम में निवास करते हुए इन आठ श्रमण-सुखों का आनन्द लिया जा सकता है, इसलिए आठ गुणों से उपेत आश्रम को बनाया।"

१२. 'अभिञ्ञाबलमाहरिं' का अर्थ है कि आगे चल कर उस आश्रम में रहते हुए कसिण (ध्यान करनेके निमित्त) के सहारे ध्यान के लिए अभ्यास करते हुए अभिज्ञाओं तथा समापत्तियों की प्राप्ति के लिए 'सब कुछ अनित्य है, सब कुछ दुःख है' इस प्रकार विपश्यना प्रारम्भ कर सुदृढ़ता प्राप्त विपश्यना-बल को प्राप्त किया। 'यस्मात् उस आश्रम में इस बल को प्राप्त कर सकूँगा, इसलिए उस आश्रम को अभिज्ञाप्राप्ति के उद्देश्य से विपश्यनाबल के अनुरूप करके बनाया', ऐसा अर्थ समझना चाहिए।

१३. "साटकं पजहिं तत्थ नवदोसमुपागतं" (यह जो कहा गया है, उसके सम्बन्धमें) यहाँ ऐसी कथा आती है। उस समय कुटी, गुहा, चंक्रमण आदि से युक्त, पुष्प तथा फल वाले वृक्षों से आच्छादित, रमणीय तथा मधुर जलपूर्ण जलाशय सहित, भयानक पशु पक्षियों से रहित, शान्त आश्रम बनाकर, सुन्दर चंक्रमण (चबूतरे) के दोनों पार्श्व में सहारे के लिए काष्ठ-फलक लगवा कर, चंक्रमण के मध्य में बैठने के लिए मूँगे के रंग की समतल शिला बना कर; पर्णकुटी के भीतर जटामण्डल, वल्कल वस्त्र, त्रिदण्ड, कुण्डी आदि तपस्वियों के (आवश्यक) सामान; मण्डप में जल रखने का पात्र, जल भरा शंख, जल पीने के लिए कसोरे (छोटा पात्र); अग्निशाला में अंगीठी तथा सूखे काष्ठादि—इस प्रकार प्रव्रजितों के लिए जो जो उपकारी वस्तुयें हैं, उन सब की वहाँ व्यवस्था कर पर्णकुटी की भीत्ति (दीवार) पर **'जो कोई प्रव्रजित होना चाहते हैं, वे इन सामग्रियों को लेकर प्रव्रजित हों' —इन अक्षरों को खोद कर, देवपुत्र विश्वकर्मा के देवलोक चले जाने पर**

छिन्दित्वा, देवलोकमेव गते विस्सकम्मे देवपुत्तो सुमेधपण्डितो हिमवन्तपादे गिरिकन्दरानुसारेन अत्तनो निवासानुरूपं फासुकट्ठानं ओलोकेन्तो नदीनिवत्तने विस्सकम्मनिम्मितं सक्कदत्तियं रमणीयं अस्समं दिस्वा, चंकमणकोटिं गन्त्वा पदवळञ्जं अपस्सन्तो धुवं पब्बजिता धुरगामे भिक्खं परियेसित्वा, किलन्तरूपा आगन्त्वा पण्णसालं पविसित्वा निसिन्ना भविस्सन्ती ति, चिन्तेत्वा थोकं आगमेत्वा 'अतिविय चिरायं ति जानिस्सामी' ति पण्णसाला-कुटिद्वारं विवरित्वा अन्तो पविसित्वा, इतो चितो च ओलोकेन्तो महाभित्तियं अक्खरानि वाचेत्वा 'मय्हं कप्पियपरिक्खारा एते, इमे गहेत्वा पब्बजिस्सामी' ति अत्तनो[1] निवत्थपारुतं साटकयुगं पजहिं। तेनाह "साटकं पजहिं तत्था" ति। एवं पविट्ठो अहं सारिपुत्त, तस्सं पण्णसालायं साटकं पजहिं।

१४. "नव दोसमुपागतं" ति साटकं पजहन्तो नव दोसे दिस्वा पजहिं ति दीपेति। तापसपब्बज्जं पब्बजितानं हि साटकस्मिं नव दोसा उपट्ठहन्ति। महग्घभावो एको दोसो, परपटिबद्धताय उप्पज्जनभावो एको, परिभोगेन लहुं किलिस्सनभावो एको, किलिट्ठे च धोवितब्बो च रञ्जितब्बो च होति; परिभोगेन जीरणभावो एको, जिण्णस्स हि तुन्नं वा अग्गलदानं वा कातब्बं
B. 11 होति; पुन परियेसनाय दुरभिसम्भवभावो एको, तापसपब्बज्जाय असारुप्पभावो एको, पच्चत्थिकानं साधारणभावो एको, यथा हि नं पच्चत्थिका न गण्हन्ति तथा[2] गोपेतब्बं[3] होति; परिभुञ्जन्तस्स विभूसनट्ठानभावो एको, गहेत्वा चरन्तस्स खन्धभारमहिच्छभावो एको ति।

१५. "वाकचीरं निवासेसिं" ति 'तदाहं सारिपुत्त, इमे नव
R. 9 दोसे दिस्वा साटकं पहाय वाकचीरं निवासेसिं। मुञ्जतिणं हीरहीरं कत्वा गन्थेत्वा कतवाकचीरनिवासनपारुपणत्थाय आदि-यिं' ति अत्थो।

१६. "द्वादसगुणमुपागतं" ति द्वादसहि आनिसंसेहि समन्ना-गतं। वाकचीरस्मिं हि द्वादसानिसंसा। अप्पग्घं सुन्दरं कप्पियं ति अयं ताव एको आनिसंसो, सहत्था कातुं सक्का ति अयं दुतियो, परिभोगेन सणिकं किलिस्सति धोवियमाने पि पपञ्चो नत्थी ति

१. अत्तना रो.। २. एवं म.। ३. गोपेतब्बो म.।

सुमेध पण्डित ने हिमालय के निचले भाग में पर्वत गुहाओं का अनुसरण करते हुए अपने लिए सुखपूर्वक रहने योग्य स्थान की खोज करते हुए नदी के मोड़ पर विश्वकर्मा द्वारा निर्मित तथा इन्द्र द्वारा दिए गये रमणीय आश्रम को देख कर, चंक्रमण की छोर पर जा, वहाँ पदचिन्ह को न देख कर 'अवश्य ही प्रव्रजित लोग समीप के गाँव से भिक्षा माँग कर, थके हुए लौटकर पर्णकुटी में प्रवेश कर बैठे होंगे' (अतः) कुछ समय तक प्रतीक्षा कर 'वे बहुत विलम्ब कर रहे हैं, पता करूँगा' ऐसा विचार कर पर्णकुटी के द्वार को खोल भीतर प्रवेश कर इधर उधर दृष्टिपात करते हुए भीत्ति पर लिखे अक्षरों को पढ़ कर 'ये वस्तुयें मेरे लिए हैं, इन्हें ग्रहण कर साधु बनूँगा,' ऐसा निश्चय कर अपने धारण किये हुए दोनों वस्त्रों (धोती चादर) का परित्याग किया। इसलिए कहा गया है—'वहाँ वस्त्र को छोड़ दिया'। इस प्रकार (आश्रम में) प्रविष्ट हो सारिपुत्र, मैंने उस पर्णकुटी में वस्त्र को छोड़ा।

१४. 'नवदोसमुपागतं' का अर्थ है कि 'वस्त्र का परित्याग करते हुए (उसमें) नव दोषोंको देख कर (उसको) छोड़ा' यह यहाँ दर्शाया जाता है। प्रव्रज्या ग्रहण किये हुए तपस्वियों के लिए वस्त्र में नव दोष देखे जाते हैं। (उनमें) अति मूल्यवान होना प्रथम दोष है, दूसरों के आश्रय से प्राप्त होना एक दोष है, धारण करने से शीघ्र मलिन होना एक दोष है, (कारण) मलिन होने पर उसे धोना तथा रँगना होता है; पहन कर उपभोग करने से जीर्ण होना एक (दोष) है, (क्योंकि) जीर्ण होने पर (फटने पर) सीना या पेबन्द लगाना पड़ता है; पुनः उसे (प्राप्त करने के लिए) ढूढ़ने पर कठिनाई से प्राप्त होना एक (दोष) है, तपस्वियों के लिए अनुरूप न होना एक (दोष) है, चोरों द्वारा चुरा लेने योग्य होना एक (दोष) है, कारण उसे चोर न चुरा सकें, ऐसा छिपाना पड़ता है; उसका उपभोग करने से विभूषण का कारण होना एक (दोष) है, तथा लेकर चलते समय यह कन्धे पर भार रूप है, ऐसा मनोभाव बने रहना एक (दोष) है।

१५. "वाकचीरं निवासेसिं" (का अभिप्राय है) तब मैं सारिपुत्र, इन नव दोषों को जान वस्त्र का परित्याग कर वल्कल वस्त्र धारण किया'। मूंज तृण को चीर कर एक साथ ग्रथित कर (बरकर) बनाये वल्कल वस्त्र को धारण करने पहनने के लिए ग्रहण किया, यही इसका अर्थ है।

१६. 'द्वादसगुणमुपागतं' का अर्थ है बारह कल्याणप्रद गुणों से युक्त। वल्कल वस्त्र में बारह गुण होते हैं। अल्प मूल्य का होना, सुन्दर तथा विहित होना एक गुण है; अपने हाथो इसे बनाया जा सकता है—यह दूसरा; उपयोग करने पर कम मैला होता है तथा धोने में कोई प्रपंच अर्थात् कठिनाई नहीं

अयं ततियो; परिभोगेन जिण्णे पि सिब्बितब्बाभावो चतुत्थो, पुन परियेसन्तस्स सुखेन करणभावो पञ्चमो, तापसपब्बज्जाय सारुप्पभावो छट्ठो, पच्चत्थिकानं निरुपभोगभावो सत्तमो, परिभुञ्जन्तस्स विभूसनट्ठानाभावो अट्ठमो, धारणसल्लहुकभावो नवमो, चीवरपच्चये अप्पिच्छभावो दसमो, वाकुप्पत्तिया धम्मिकअनवज्जभावो एकादसमो, वाकचीरे नट्ठे पि अनपेक्खभावो द्वादसमो ति।

१७. "अट्ठदोससमाकिण्णं पजहिं पण्णसाटकं" ति कथं पजहि? सो किर वरसाटकयुगं ओमुञ्चन्तो चीवरवंसे लग्गितं अनोजपुप्फदामसदिसं रत्तं वाकचीरं गहेत्वा, निवासेत्वा तस्सुपरि अपरं सुवण्णवण्णं वाकचीरं परिदहित्वा, पुन्नागपुप्फसन्थरसदिसं सखुरं अजिनचम्मं एकंसं कत्वा, जटामण्डलं पटिमुञ्चित्वा चूळाय सद्धि निच्चलभावकरणत्थं सारसूचिं[1] पवेसेत्वा, मुत्ताजालसदिसाय सिक्काय पवालवण्णकुण्डिकं ओदहित्वा, तीसु ठानेसु वंककाजं आदाय एकिस्सा काजकोटिया कुण्डिकं, एकिस्सा अंकुसपच्छितिदण्डकादीनि ओलम्बेत्वा, खारिभारं अंसे कत्वा, दक्खिणेन हत्थेन कत्तरदण्डं गहेत्वा, पण्णसालतो निक्खमित्वा, सट्ठिहत्थमहाचंकमे अपरं परं चंकमन्तो अत्तनो वेसं ओलोकेत्वा, 'मय्हं मनोरथो मत्थकं पत्तो, सोभति वत, मे पब्बज्जा; बुद्धादीहि[2]
B. 12 सब्बेहि वीरपुरिसेहि वण्णिता थोमिता अयं पब्बज्जा नाम; पहीणं मे गिहीबन्धनं, निक्खन्तोस्मि नेक्खम्मं, लद्धो मे उत्तमपब्बज्जा, करिस्सामि समणधम्मं, लभिस्सामि मग्गफलसुखं' ति, उस्साहजातो खारिकाजं ओतारेत्वा, चंकमवेमज्झे मुग्गवण्णसिलापट्टे सुवण्णपटिमा विय निसिन्नो दिवसभागं वीतिनामेत्वा, सायण्हसमयं पण्णसालं पविसित्वा बिदळमञ्चकपस्से कट्ठत्थरिकाय निपन्नो सरीरं उतुं गाहापेत्वा, बलवपच्चूसे पबुज्झित्वा अत्तनो आगमनं आवज्जेसि—

१८. "अहं घरावासे आदीनवं दिस्वा अमितभोगं अनन्तं यसं पहाय अरञ्ञं पविसित्वा नेक्खम्मगवेसको हुत्वा पब्बजितो। इतोदानि पट्ठाय पमादचारं चरितुं न वट्टति। पविवेकं हि पहाय विचरन्तं मिच्छावितक्कमक्खिका खादन्ति। इदानि मया

१. सारभूमि. म.। २. बुद्ध पच्चेकबुद्धादीहि म. रो.।

होती है—यह तीसरा; पहनने के कारण फट जाने पर सीने की आवश्यकता न होना—चतुर्थ; (नये) को ढूढ़ने में सुगमता से प्राप्त हो जाना—पाँचवा; तपस्वियों के लिए अनुरूप होना—छट्ठा; चोरों के लिए उपभोग्य वस्तु न होना—सातवाँ; धारण करते हुए विभूषण या मण्डन की भावना का न होना—आठवाँ, पहनने में हल्का होना—नौवाँ; तद्रूप वस्त्र के प्रति अल्पेच्छा का होना—दसवाँ; छाल से उत्पन्न होने के कारण पवित्र एवं निर्दोष होना ग्यारहवाँ; वल्कल के नष्ट हो जाने पर उसके प्रति निस्पृह होना—बारहवाँ गुण है।

१७. 'अट्ठदोससमाकिण्णं पजहि पण्णसाटकं' (जो कहा गया है) सो उन्होंने कैसे छोड़ा ? उन्होंने अपने श्रेष्ठ वस्त्र युग्म (धोती चादर) का परित्याग करते हुए, चीवर रखने वाले बाँस पर रखे हुए अनोजपुष्प के समान लाल रंग के वल्कल को लेकर पहन कर उसके ऊपर दूसरा सुवर्ण वर्ण का वल्कल ले, पुन्नागपुष्प की शय्या के समान खुर सहित मृगचर्म को एक कन्धे से धारण कर, जटामण्डल को सुलझाकर चूड़ा के रूप में स्थिर करने के लिए सारसूची (सरकण्डे की बनी सलाई) को खोंस कर, मुक्ताजाल के समान छीके में प्रवाल वर्ण (मूंगे के रंग वाली) कुण्डिका को रखकर, तीन स्थानों में वक्र बैहँगी को लेकर उसके एक छोर पर कुण्डी दूसरे छोर पर अंकुश की पिटारी त्रिदण्ड आदि को लटका कर, खारिभार को कंधे पर रख, दक्षिण हाथ में सहारे का दण्डा लेकर, पर्णकुटी से निकलकर, साठ हाथ लम्बे चंक्रमण पर एक छोर से अन्य छोर तक टहलते हुए अपने वेश को देख कर, 'मेरा मनोरथ सफल हुआ, प्रव्रज्या मुझे शोभती है; यह प्रव्रज्या बुद्ध आदि सभी वीर पुरुषों द्वारा वर्णित एवं प्रशंसित है; मेरा गृही-बन्धन टूट गया, गृहविहीनभाव के लिए मैं निकल पड़ा, मुझे उत्तम प्रव्रज्या मिल गई, मैं श्रमणधर्म का पालन करूँगा तथा मार्ग सुख को प्राप्त करूँगा', ऐसा उत्साह प्राप्त (वे) खारी तथा बैंहगी को उतार कर (जमीन पर रख) चंक्रमण के मध्य में मूँगे के वर्ण के सिलापट्ट पर सुवर्ण प्रतिमा के समान बैठे दिन बिताकर, सन्ध्या समय पर्णकुटी में प्रवेश कर वांस के बने मंच के पास काठ के फलकों पर लेट कर विश्राम किया, तथा (दूसरे दिन) अति प्रात:काल उठ कर अपने आगमन के उद्देश्य पर (इस प्रकार) विचार किया—

१८. "मैं गृही जीवन में दोष देखकर अपरिमित भोग सामग्री तथा अनन्त यश को छोड़ निष्काम भाव की गवेषणा करते हुए वन में आ प्रव्रजित हुआ। अतः इसके आगे (अब) मेरे लिए आलस्य करना उचित नहीं है। (अपने लक्ष्य की अभिवृद्धि के लिए) एकान्त चिन्तन को छोड़कर (निरुद्देश्य) विचरण करने से (उस मनुष्य को) मिथ्या वितर्क रूपी मक्खियाँ खा लेती हैं।

विवेकं अनुब्रूहेतुं वट्टति। अहं[1] हि घरावासं पळिबोधतो दिस्वा निक्खन्तो। अयं च मनापा पण्णसाला, बेलुवपक्कवण्णा परिमण्डकता भूमि, रजतवण्णा सेतभित्तियो, कपोतपादवण्णं पण्णच्छदनं, विचित्तत्थरकवण्णो विदलमञ्चको, निवासफासुकं वसनट्ठानं; न[2] एत्तो अतिरेकतरा विय मे गेहसम्पदा पञ्ञायती" ति, पण्णसालाय दोसे विचिनन्तो अट्ठ दोसे पस्सि।

१९. पण्णसालापरिभोगस्मिं हि अट्ठ आदीनवा—महासमार-
म्भेन दब्बसम्भारे समोधानेत्वा करणपरियेसनभावो एको
R. 10 आदीनवो। तिणपण्णमत्तिकासु पतितासु तासं पुनप्पुनं ठपेतब्बताय
निबद्धजग्गनभावो दुतियो। सेनासनं नाम महल्लकस्स पापुणाति
अवेलाय वुट्ठापियमानस्स चित्तेकग्गता न होती ति उट्ठापनियभावो
ततियो। सीतुण्हपटिघातेन कायस्स सुखुमालकरणभावो चतुत्थो।
गेहं पविट्ठेन यं किञ्चि पापं सक्का कातुं ति गरहपटिच्छादनभावो
पञ्चमो। मय्हं ति परिग्गहकरणभावो छट्ठो। गेहस्स अत्थिभावो
नाम सदुतियकवासो ति सत्तमो। ऊकामङ्कुणघरगोलिकादीनं
साधारणताय बहुसाधारणभावो अट्ठमो इति। इमे अट्ठ
आदीनवे दिस्वा महासत्तो पण्णसालं पजहि। तेनाह—
"अट्ठदोससमाकिण्णं पजहिं पण्णसालकं" ति।

२०. "उपागमिं रुक्खमूलं गुणे दसहुपागतं" ति छन्नं
पटिक्खिपित्वा दसहि गुणेहि उपेतं रुक्खमूलं उपगतोस्मी ति
वदति। तत्रिमे दस गुणा—अप्पसमारम्भता एको गुणो,
B. 13 उपगमनमत्तकमेव हि तत्थ होतीति। अप्पजग्गनता दुतियो,
तं हि सम्मट्ठम्पि असम्मट्ठम्पि परिभोगफासुकं होति येव।
अनुट्ठापनियभावो ततियो। गरहं न पटिच्छादेति, तत्थ हि
पापं करोन्तो लज्जती ति गरहाय अपटिच्छन्नभावो चतुत्थो।
अब्भोकासवासो विय कायं न सन्थम्भेतीति कायस्स असन्थम्भन-

---

१. अयं म.। २. रो. पोत्थके नत्थि।

इसलिए मुझे एकान्त चिन्तन का अभिवर्द्धन करना चाहिए। मैंने गृही जीवन को बाधाओं से पूर्ण देख गृहत्याग किया है। यह मेरी मनोहर पर्णकुटी, पके बेल के समान पीत वर्ण की सुशोभित भूमि, रजत वर्ण-सी उजली (इसकी) दीवारें, कबूतर के पैर के वर्ण-सी (इसकी) पत्तों की छत, चित्रित बिछावन के वर्ण-सी यह बाँस की खटिया, (से युक्त) रहने योग्य सुखद वासस्थान है; इससे बढ़कर मेरी गृहसम्पदा नहीं दिखाई पड़ रही है," इस प्रकार पर्णकुटी के दोषों पर विचार करते हुए इसमें आठ दोषों को देखा।

१९. पर्णकुटी के उपभोग में आठ दोष होते हैं। अधिक कठिनाई से कुशादि सामग्रियों का संग्रह कर बनाने के लिए यत्न करना पहला दोष है। तृण, पत्ते, मिट्टी आदि के गिर जाने पर उन्हें पुनः-पुनः लगाने के कारण निरन्तर उद्धार में लगे रहना दूसरा दोष है। शयनासन (नियमानुसार) बूढ़ों के लिए है, (अतः उनके आ जाने से) असमय पर उठा दिए जाने के कारण चित्त में एकाग्रता नहीं आ पाती है, इसलिए उठाये जाने की चिन्ता तीसरा दोष है। शीत तथा गर्मी के कारण शरीर का सुकुमार हो जाना चतुर्थ (दोष है)। गृह में प्रवेश कर जो कोई पाप कर्म किया जा सकता है, (ऐसा सोच) पाप को छिपाने का भाव पाँचवां (दोष) है। 'यह मेरी है' (ऐसा सोच) अपनापन का भाव छठाँ दोष है। गृह के होने का अर्थ है, एक दूसरे साथी के साथ रहना, (अर्थात् घर के होने से सहवासप्रिय होने का भाव) सातवाँ (दोष) है। जूँ, दीमक, छिपकिली आदि के बने रहने से इनकी बाढ़ होना आठवाँ दोष है। इन आठ दोषों को देखकर महासत्त्व ने पर्णशाला को छोड़ दिया। इसलिए कहा गया है—"आठ दोषों से युक्त पर्णकुटी का परित्याग किया।"

२०. 'उपागमिं रुक्खमूलं गुणे दसहुपागतं' कहने का अभिप्राय यह है कि छायी कुटी को छोड़कर दस गुणों से युक्त वृक्ष की छाया में आ गया हूँ। वे दस गुण इस प्रकार हैं—सामग्रियों के संग्रह करने में कठिनाई का न होना पहला गुण है, कारण यहाँ तो वृक्ष के निकट जाना भर ही रहता है। उसको ठीक करने में किसी प्रकार के श्रम का न होना दूसरा (गुण) है। क्योंकि झाड़ू दिए रहने पर या न दिए रहने पर दोनों अवस्थाओं में रहने के लिए अनुकूल होता है। (महल्लकों के आने पर उठना होगा) इस प्रकार की चिन्ता का न होना तीसरा गुण है। निन्द्यकर्मों को वह छिपाता नहीं है, वहाँ पाप कर्म करते हुए लज्जा आती है, (इस प्रकार) पाप कर्मों को न छिपाने के भाव को चतुर्थ गुण कहते हैं। खुले आकाश में रहने से जो शरीर का रूक्ष हो जाना है, वह यहाँ नहीं होता है, (अतः) शरीर में रूक्षता का न होना

भावो पञ्चमो । परिग्गहकरणाभावो छट्ठो । गेहालय-पटिक्खेपो सत्तमो । बहुसाधारणगेहे विय पटिजग्गिस्सामि नं निक्खमथा ति नीहरणकाभावो अट्ठमो । वसन्तस्स सप्पीतिकभावो नवमो । रुक्खमूलसेनासनस्स गतगतट्ठाने सुलभताय अनपेक्खभावो दसमो ति । इमे दसगुणे दिस्वा 'रुक्खमूलं उपगतोस्मी' ति वदति ।

२१. इमानि एत्तकानि कारणानि सल्लक्खेत्वा महासत्तो पुनदिवसे भिक्खाय गामं[1] पाविसि । अथस्स सम्पत्तगामे मनुस्सा महन्तेन उस्साहेन भिक्खं अदंसु । सो भत्तकिच्चं निट्ठपेत्वा अस्समं आगम्म निसीदित्वा चिन्तेसि—"नाहं आहारं लभामी[2] ति पब्बजितो, सिनिद्धाहारो नामेस, मानमदपुरिसमदे वड्ढेति; आहारमूलकस्स च दुक्खस्स अन्तो नत्थि । 'यन्नूनाहं वापित-रोपितधञ्ञनिब्बत्तं आहारं पजहित्वा पवत्तफलभोजनो भवेय्यं ति" । सो ततो पट्ठाय तथा कत्वा घटेन्तो वायमन्तो सत्ताहब्भन्तरे येव अट्ठ समापत्तियो, पञ्च च अभिञ्ञा निब्बत्तेसि । तेन वुत्तं[3] :—

"वापितं रोपितं धञ्ञं, पजहिं निरवसेसतो ।
अनेकगुणसम्पन्नं, पवत्तफलमादियिं[4] ॥
तत्थप्पधानं पदहिं, निसज्जट्ठानचङ्कमे, ।
अब्भन्तरम्हि सत्ताहे, अभिञ्ञाबलपापुणिं"ति ।

तस्स अभिनीहारो

२२. एवं अभिञ्ञाबलं पत्वा सुमेधतापसे समापत्तिसुखेन वीतिनामेन्ते दीपङ्करो नाम सत्था लोके उदपादि । तस्स पटिसन्धिजातिसम्बोधिधम्मचक्कप्पवत्तनेसु सकलापि दससहस्सी
R. 11 लोकधातु सङ्कम्पि सम्पकम्पि सम्पवेधि, महाविरवं विरवि । द्वत्तिंसपुब्बनिमित्तानि पातुरहंसु । सुमेधतापसो समापत्तिसुखेन वीतिनामेन्तो नेव तं सद्दमस्सोसि न तानि निमित्तानि अद्दस । तेन वुत्तं[5] :—

B. 14 "एवं मे सिद्धिपत्तस्स, वसीभूतस्स सासने ।
दीपङ्करो नाम जिनो, उपज्जि लोकनायको ॥ ४५ ॥

१. रो. ना. पोत्थकेसु नत्थि । २. न लभामी ति. म. ।
३. बु. वं. ३०७ पृ. । ४. °दिसिं म. । ५. बु. वं. ३०७ पृ. ।

पाँचवां गुण है । वस्तुओं के संग्रह का भाव न होना छठा (गुण) है । गृह के प्रति आसक्ति का होना सातवाँ (गुण) है । सार्वजनिक गृहों में,—'इसकी मरम्मत होगी, इसे छोड़ कर निकल जाओ' (ऐसो जो घटनायें होती हैं) वैसे यहाँ न निकल पड़ना, आठवाँ (गुण) है । वहाँ रहते हुए प्रीति से युक्त रहना नौवाँ (गुण) है । वृक्षमूल शयनासन के जहाँ कहीं जाने से सुगमतया प्राप्त हो जाने से उसके प्रति स्पृहा का न होना दसवाँ (गुण) है । इन्हीं दस गुणों को देखकर 'वृक्ष की छाया में गया' ऐसा कहते हैं ।

२१. इन सब बातों पर विचार कर महासत्त्व ने दूसरे दिन भिक्षा के लिए (गाँवों में) प्रवेश किया । प्रविष्ट गाँव के मनुष्यों ने बहुत उत्साह से भिक्षा दी । उन्होंने भोजन समाप्त कर आश्रम में आ बैठ कर चिन्तन किया—"(अच्छा) आहार न मिल सकेगा, ऐसा सोच मैं प्रव्रजित हुआ था, पर ऐसा स्निग्ध आहार अभिमान तथा पुरुषमद को बढ़ाने वाला है; इस प्रकार के आहार से उत्पन्न दुःख का कोई अन्त नहीं है । क्यों न मैं बो-जोत कर उत्पन्न अन्न से बने आहार का परित्याग कर केवल वृक्षों से (स्वतः) गिरे हुए फलों को खाकर रहूँ ।" उन्होंने इसके बाद से उसी प्रकार का भोजन ग्रहण कर ध्यानाभ्यास के लिए उद्योग करते हुए एक सप्ताह के भीतर ही आठ समापत्तियों तथा पाँच अभिज्ञाओं को प्राप्त किया ।

इसलिए कहा गया है :—

"मैंने बोने जोतने से प्राप्त अन्न का निरवशेष (बिल्कुल) परित्याग कर अनेक गुणों से युक्त (स्वयं) गिरे हुए फलों का आहार किया ।

वहाँ बैठे खड़े तथा टहलते हुए योगाभ्यास किया तथा एक सप्ताह के भीतर ही अभिज्ञाबल को प्राप्त किया" ।

उनका अभिनीहार

२२. इस प्रकार अभिज्ञाबल को प्राप्त कर जब सुमेध तपस्वी का समय समापत्ति सुख से पूर्ण बीत रहा था, उसी समय दीपङ्कर नामक शास्ता (बुद्ध) इस लोक में उत्पन्न हुए । उनके प्रतिसन्धि ग्रहण (माँ के गर्भ में प्रवेश), जन्म, बोधिलाभ, धर्मचक्रप्रवर्तन के समय सम्पूर्ण दस सहस्र लोकधातु (दस हजार ब्रह्माण्ड) प्रकम्पित हो उठे तथा महानाद (महा रव) हुआ । बत्तीस पूर्व-निमित्त प्रकट हुए । तपस्वी सुमेध ने समाधिसुख से परिव्याप्त हो समय व्यतीत करते हुए, न तो उस शब्द (महा रव) को सुना, न उन निमित्तों को देखा ।

इसलिए कहा गया है—

"इस प्रकार सिद्धि प्राप्त कर शासन अर्थात् धर्माचरण में लीन रहते हुए लोकनायक दीपङ्कर बुद्ध उत्पन्न हुए ॥ ४५ ॥

उप्पज्जन्ते च जायन्ते, बुज्झन्ते धम्मदेसने।
चतुरो निमित्ते नाद्दसिं, झानरतिसमप्पितो" ति ॥ ४६ ॥

२३. तस्मिं काले दीपङ्करदसबलो चतूहि खीणासवसतसहस्सेहि परिवुतो अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो रम्मकं नाम नगरं पत्वा सुदस्सनमहाविहारे पटिवसति। रम्मनगरवासिनो 'दीपङ्करो किर समणिस्सरो परमाभिसम्बोधिं पत्वा पवत्तवरधम्मचक्को अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो रम्मनगरं पत्वा सुदस्सनमहाविहारे पटिवसती' ति सुत्वा सप्पिनवनीतादीनि चेव भेसज्जानि वत्थच्छादनानि च गाहापेत्वा गन्धमालादिहत्था येन बुद्धो येन धम्मो येन संघो तन्निन्ना तप्पोणा तप्पब्भारा हुत्वा सत्थारं उपसंकमित्वा वन्दित्वा गन्धादीहि[1] पूजेत्वा एकमन्तं निसिन्ना धम्मदेसनं सुत्वा स्वातनाय निमन्तेत्वा उट्ठायासना पक्कमिंसु। ते पुनदिवसे महादानं सज्जेत्वा नगरं अलंकरित्वा दसबलस्स आगमनमग्गं अलंकरोन्ता उदकभिन्नट्ठानेसु पंसुं पक्खिपित्वा समं भूमितलं कत्वा रजतपट्टवण्णं वालुकं आकिरन्ति, लाजानि चेव पुप्फानि च विकिरन्ति, नानाविरागेहि वत्थेहि धजपताके उस्सापेन्ति, कदलियो चेव पुण्णघटपन्तियो च पतिट्ठापेन्ति। तस्मिं काले सुमेधतापसो अत्तनो अस्समपदा उग्गन्त्वा तेसं मनुस्सानं उपरिभागेन आकासेन गच्छन्तो ते हट्ठतुट्ठे मनुस्से दिस्वा 'किन्नु खो कारणं' ति आकासतो ओरुय्ह एकमन्तं ठितो मनुस्से पुच्छि—"हम्भो, कस्स तुम्हे इमं मग्गं अलंकरोथा" ति ?

तेन वुत्तं:[2]—

"पच्चन्तदेसविसये, निमन्तेत्वा तथागतं।
तस्स आगमनं मग्गं, सोधेन्ति तुट्ठमानसा ॥ ४७ ॥
अहं तेन समयेन, निक्खमित्वा सकस्समा।
धुनन्तो वाकचीरानि, गच्छामि अम्बरे तदा ॥ ४८ ॥
वेदजातं जनं दिस्वा, तुट्ठहट्ठं पमोदितं।
ओरोहित्वान गगना, मनुस्से पुच्छि तावदे ॥ ४९ ॥
B. 15 तुट्ठहट्ठो पमुदितो, वेदजातो महाजनो।
R. 12 कस्स सोधीयति[3] मग्गो, अञ्जसं वटुमायनं" ति ॥ ५० ॥

---

१. गन्धमालादीहि म.। २. बु. वं. ३०७ पृ.। ३. सोधीयती रो.।

ध्यानाभ्यास में रत होने के कारण उनके प्रतिसन्धिग्रहण, जन्म, सम्बोधिलाभ, तथा धर्मचक्रप्रवर्तन के समय घटित चार निमित्तों को मैंने नहीं देखा" ॥ ४६ ॥

२३. उस समय दसबलसम्पन्न भगवान दीपंकर चार लाख अर्हतों के साथ क्रमशः चारिका (धर्मयात्रा) करते हुए रम्यक नामक नगर में पहुँच कर सुदर्शन महाविहार में रहते थे। रम्यक नगरवासियों ने यह सुनकर कि श्रमणेश्वर दीपंकर बुद्ध उत्तम पद सम्बोधि की प्राप्ति कर, श्रेष्ठ धर्मचक्र का प्रवर्तन कर क्रमशः चारिका करते हुए रम्यनगर में आ सुदर्शन महाविहार में निवास कर रहे हैं, घी, मक्खन, औषधियाँ, वस्त्र-विछौने आदि लिवाकर हाथ में सुगन्ध, माला आदि ले बुद्ध धर्म तथा संघ के प्रति श्रद्धा से विनत हो भगवान के निकट जा वन्दना कर गन्धादि से (उनकी) पूजा कर एक ओर बैठे धर्मदेशना सुन अगले दिन के भोजन के लिए निमन्त्रित कर आसन से उठ चले गये। अगले दिन महादान तैयार करा (भोजन तैयार करा) नगर को सजाकर बुद्ध (दशबल) के आने वाले मार्ग को अलंकृत करते हुए जलप्रवाह से छिन्न-भिन्न स्थानों में धूल डालकर समतल कर उस पर रजतधवल दुपट्टे जैसा बालू फैलाते हुए लाजा (धान का लावा) तथा फूलों को विकीर्ण करते हुए, चित्रविचित्र रंग के वस्त्रों से बने ध्वजा पताका पहराते हुए, कदलीस्तम्भ तथा जलपूर्ण घट की पंक्तियाँ सजायीं। उस समय तपस्वी सुमेध अपने आश्रम से उठकर उन मनुष्यों के ऊपर भाग आकाश मार्ग से जाते हुए उन मनुष्यों को हृष्ट-तुष्ट (अति प्रसन्न) देख, 'इसका क्या कारण है' (यह जानने के लिए) आकाश से उतर कर एक स्थान पर खड़े होकर मनुष्यों से पूछा—'हे भाई, तुम लोग इस मार्ग को किसके लिए अलंकृत कर रहे हो ?'

इसलिए कहा गया है—

"सीमान्त प्रदेश में बुद्ध को निमन्त्रित कर सन्तुष्ट चित्त मनुष्य उनके आनेवाले मार्ग को ठीक कर रहे थे ॥४७॥

उस समय मैं अपने आश्रम से निकल कर अपने वल्कल वस्त्र को प्रकम्पित करते हुए आकाश मार्ग से जा रहा था ॥४८॥

(तब) मनुष्यों को प्रमुदित सन्तुष्ट एवं प्रसन्नचित्त देख कर उसी क्षण आकाश से उतर कर मनुष्यों से पूछा ॥४९॥

यह हृष्ट तुष्ट प्रमुदित प्रसन्नचित्त जनसमूह किसके लिए मार्ग को ठीक कर रहा है" ? ॥५०॥

२४. मनुस्सा आहंसु—"भन्ते सुमेध, न त्वं जानासि ? दीपंकरदसबलो सम्मासम्बोधिं पत्वा पवत्तवरधम्मचक्को चारिकं चरमानो अम्हाकं नगरं पत्वा सुदस्सनमहाविहारे पटिवसति। मयं तं भगवन्तं निमन्तयिम्ह। तस्सेतं बुद्धस्स भगवतो आगमनमग्गं अलंकरोमा" ति।

सुमेधतापसो चिन्तेसि—"बुद्धो ति खो घोसमत्तं पि लोके दुल्लभं, पगेव बुद्धुप्पादो। मयापि इमेहि मनुस्सेहि सद्धिं दसबलस्स मग्गं अलंकरितुं वट्टती" ति। सो ते मनुस्से आह—"सचे भो, तुम्हे एतं मग्गं बुद्धस्स, अलंकरोथ, मय्हम्पि एकं ओकासं देथ। अहम्पि तुम्हेहि सद्धिं मग्गं अलंकरिस्सामी ति"।

ते 'साधू' ति सम्पटिच्छित्वा 'सुमेधतापसो इद्धिमा' ति जानन्ता उदकभिन्नोकासं सल्लक्खेत्वा 'त्वं इमं ठानं अलंकरोही' ति अदंसु। सुमेधो बुद्धारम्मणं पीतिं गहेत्वा चिन्तेसि—"अहं इमं ओकासं इद्धिया अलंकरितुं पहोमि[1]। एवं अलंकतो पन मं[2] न[2] परितोसेस्सति। "अज्ज मया कायवेय्यावच्चं कातुं वट्टती ति, पंसुं आहरित्वा तस्मिं पदेसे पक्खिपि"।

२५. तस्स तस्मिं पदेसे अनलंकते येव दीपंकरो दसबलो महानुभावानं छलभिञ्ञानं खीणासवानं चतूहि सतसहस्सेहि परिवुतो, देवतासु दिब्बमालागन्धादीहि पूजयन्तीसु, दिब्बसंगीतेसु पवत्तन्तेसु, मनुस्सेसु[3] मानुसकगन्धेहि चेव मालादीहि च पूजयन्तेसु, अनन्ताय बुद्धलील्हाय मनोसिलातले विजम्हमानो सीहो विय तं अलंकतपटियत्तमग्गं पटिपज्जि।

२६. सुमेधतापसो अक्खीनि उम्मीलेत्वा अलंकतमग्गेन आगच्छन्तस्स दसबलस्स द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणपतिमण्डितं, असीतिया अनुब्यञ्जनेहि अनुब्यञ्जितं, ब्यामप्पभाय सम्परिवारितं, मणिवण्णगगनतले नानप्पकारा विज्जुल्लता विय आवेलावेलभूता चेव युगलयुगलभूता[4] च छब्बण्णघनबुद्धरस्मियो विस्सज्जेन्तं रूपग्गप्पत्तं अत्तभावं ओलोकेत्वा, 'अज्ज मया दसबलस्स जीवितपरिच्चागं कातुं वट्टती ति,[5] मा भगवा कलले[6] अक्कमि,

१. सक्कोमि म.। २-२. मम मनं न म.। ३. मनुस्सेहि. रो.।
४. ° भूतो म.। ५. म. पोत्थके नत्थि। ६. कललं म.।

२४. मनुष्यों ने कहा—"भन्ते, सुमेध क्या आप नहीं जानते हैं ? दशबल दीपङ्कर सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कर, श्रेष्ठ धर्मचक्र का प्रवर्तन कर चारिका करते हुए हम लोगों के नगर में पहुँच सुदर्शन महाविहार में वास करते हैं। हम लोगों ने उस भगवान को निमन्त्रित किया है। उस भगवान बुद्ध के आने के मार्ग को (हम) अलंकृत कर रहे हैं"।

तपस्वी सुमेध सोचने लगे—"बुद्ध-शब्द का घोष भी लोक में दुर्लभ है, बुद्ध के प्रकट होने की तो बात ही क्या ? (अर्थात् उनका जन्म लेना अति दुर्लभ है)। मुझे भी इन मनुष्यों के साथ उस दशबलों से युक्त बुद्ध के लिए मार्ग को अलंकृत करना चाहिए।" उन्होंने उन मनुष्यों से कहा—"हे भाई, यदि, तुम लोग बुद्ध के लिए अलंकृत कर रहे हो, तो मुझे भी (इसके लिए) एक स्थान दो। मैं भी तुम लोगों के साथ (इस) मार्ग को अलंकृत करूँगा।" उन्होंने 'ठीक है' ऐसा कह (अपनी) स्वीकृति दे, यह जानते हुए कि तपस्वी सुमेध ऋद्धिसम्पन्न है, एक जलप्रवाह से छिन्न स्थान को देखकर उन्हें (यह कहते हुए) दिया कि 'आप इस स्थान को अलंकृत करें"। सुमेध ने बुद्ध के ध्यान से प्राप्त प्रीतिपूर्ण (मन से) विचार किया—

"मैं इस स्थान को ऋद्धिबल से अलंकृत कर सकता हूँ। इस प्रकार अलंकृत होने पर भी मेरे मन को तुष्टि नहीं होगी। आज मुझे शरीर से सेवा करनी चाहिए, (ऐसा सोच) बालू लाकर उस स्थान पर डालने लगे।"

२५. उनके उस स्थान को अलंकृत होने के पहले ही दशबल दीपङ्कर चार लाख क्षीणश्रव, छ अभिज्ञा प्राप्त प्रतापवान अर्हन्तों के साथ, देवताओं द्वारा सुगन्ध, माला आदि से पूजित, दिव्य गीतों के सङ्गायन के साथ, मनुष्यों द्वारा लौकिक सुगन्ध तथा पुष्पमाला आदि से पूजित, अनन्त बुद्ध लीलाओं सहित मनोशिला पर अँगड़ाई लेते हुए सिंह के समान, उस अलंकृत मार्ग पर आ निकले।

२६. तपस्वी सुमेध ने आँख खोलकर अलंकृत मार्ग पर आते हुए बुद्ध के बत्तीस महापुरुष लक्षणों से प्रतिमण्डित, अस्सी अनुव्यञ्जनों से सुशोभित, व्याम-प्रभामण्डल से परिवृत तथा मणिवर्ण के आकाश के नीचे नाना प्रकार के विद्युत प्रकाशों-सा प्रकम्पित एवं युग्म युग्म रूप से छ प्रकार की बुद्ध किरणों को बिखेरते हुए परम सौन्दर्यपूर्ण शरीर को देखकर (ऐसा चिन्तन किया कि) आज मुझे भगवान के लिए जीवन का परित्याग करना है। भगवान् कीचड़ में न जाँय, मणिफलकों से बने सेतु से जाने के समान चार

मणिफलकसेतुं पन अक्कमन्तो विय सद्धिं चतूहि खीणासवसत-
B. 16 सहस्सेहि मम पिट्ठिं मद्दमानो गच्छतु; तं मे भविस्सति दीघरत्तं
हिताय सुखाया' ति, केसे मोचेत्वा अजिनजटावाकचीरानि[1]
R. 13 कालवण्णे कलले पत्थरित्वा मणिफलकसेतुं विय कललपिट्ठे
निपज्जि।

तेन वुत्तं[2] :—

"ते मे पुट्ठा व्याकरिंसु, बुद्धो लोके अनुत्तरो।
दीपंकरो नाम जिनो, उप्पज्जि लोकनायको ॥ ५१ ॥
तस्स सोधीयति मग्गो, अञ्जसं वटुमायनं।
बुद्धो ति मम सुत्वान, पीति उप्पज्जि तावदे ॥ ५२ ॥
बुद्धो बुद्धो ति कथयन्तो, सोमनस्सं पवेदयिं।
तत्थ ठत्वा विचिन्तेसिं, तुट्ठो संविग्गमानसो ॥ ५३ ॥
'इध बीजानि रोपिस्सं, खणो वे मा उपच्चगा'।
यदि बुद्धस्स सोधेथ, एकोकासं ददाथ मे ॥ ५४ ॥
अहम्पि सोधयिस्सामि, अञ्जसं वटुमायनं।
अदंसु ते ममोकासं, सोधेतुं अञ्जसं तदा ॥ ५५ ॥
बुद्धो बुद्धो ति चिन्तेन्तो, मग्गं सोधेमहं तदा।
अनिट्ठिते ममोकासे, दीपंकरो महामुनि ॥ ५६ ॥
चत्तारिसतसहस्सेहि, छलभिञ्ञेहि तादिहि।
खीणासवेहि विमलेहि, पटिपज्जि अञ्जसं जिनो ॥ ५७ ॥
पच्चुग्गमना वत्तन्ति. वज्जन्ति भेरियो बहू।
आमोदिता नरमरू, साधुकारं पवत्तयुं ॥ ५८ ॥
देवा मनुस्से पस्सन्ति, मनुस्सापि च देवता।
उभोपि ते पञ्जलिका, अनुयन्ति तथागतं ॥ ५९ ॥
देवा दिब्बेहि तुरियेहि, मनुस्सा मानुसकेहि च।
उभोपि ते वज्जयन्ता, अनुयन्ति तथागतं ॥ ६० ॥
दिब्बं मन्दारवं पुप्फं, पदुमं पारिच्छत्तकं।
दिसोदिसं ओकिरन्ति, आकासनभगता मरू ॥ ६१ ॥
B. 17 चम्पकं सललं नीपं, नागपुन्नागकेतकं।
दिसोदिसं उक्खिपन्ति, भूमितलगता नरा ॥ ६२ ॥
केसे मुञ्चित्वाहं तत्थ, वाकचीरं च चम्मकं।
कलले पत्थरित्वान, अवकुज्जो निपज्जहं ॥ ६३ ॥

१. अजिनचम्मजटामण्डुलवाकचीरानि म.। २. बु. वं. ३०८-९ पृ.।

हजार क्षीणाश्रव अरहन्तों के साथ मेरी पीठ के ऊपर से जाँय जो दीर्घ काल तक मेरे लिए हित एवं सुख के लिए होगा', ऐसा सोचकर केशों को खोल मृगचर्म, जटा, वल्कल आदि को काले रङ्ग के कीचड़ में फैला मणिफलकों से बने सेतु के समान उस काले कीचड़ में पड़ गए।

इसलिए कहा गया है—

'मेरे पूछने पर उन लोगों ने बतलाया कि संसार में अनुपम शास्ता दीपंकर बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ है ॥ ५१ ॥

उन्हीं के लिए यह मार्ग समतल एवं साफ किया जा रहा है। उस समय 'बुद्ध' ऐसा शब्द सुनते ही मेरे मन में प्रीति उत्पन्न हुई ॥ ५२ ॥

'बुद्ध', 'बुद्ध' कहते हुए मुझे सौमनस्य (आह्लाद) हुआ। प्रीतिजन्य उत्साह एवं सन्तोष भरे मन से वहीं खड़े-खड़े मैंने विचार किया ॥ ५३ ॥

'मैं यहाँ बीज (कुशल कर्म बीज) रोपूँगा, यह अवसर मेरे हाथ से न निकले'। (ऐसा सोच मैं ने कहा) यदि बुद्ध के लिए इस मार्ग की सफाई कर रहे हो, तो (साफ करने के लिए) एक स्थान मुझे भी दो ॥ ५४ ॥

मैं भी इस मार्ग की सफाई करूँगा। (इस पर) उन लोगों ने सफाई के लिए मुझे भी एक स्थान दिया ॥ ५५ ॥

'बुद्ध', 'बुद्ध' कहते हुए मैं उस समय मार्ग की सफाई कर रहा था। जब तक मेरे स्थान का काम समाप्त भी नहीं हो पाया था, तबतक महामुनि दीपङ्कर बुद्ध छ अभिज्ञा प्राप्त, क्षीणाश्रव, विगतमल चार लाख भिक्षुओं के साथ उस मार्ग पर आ निकले ॥ ५६–५७ ॥

आगवानी की तैयारी थी, बहुत सी भेरियाँ बज रही थीं। प्रमुदित चित्त देवता तथा मनुष्य साधुकार दे रहे थे ॥ ५८ ॥

देवता मनुष्यों को देखते थे तथा मनुष्य भी देवताओं को देखते थे। वे दोनों अञ्जलिबद्ध हो (हाथ जोड़े) बुद्ध के पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ ५९ ॥

देवता दिव्य तुरही (वाद्य) तथा मनुष्य मानुषिक वाद्य को बजाते हुए तथागत का अनुगमन कर रहे थे ॥ ६० ॥

आकाश में स्थित हो देवगण मन्दार, पद्म, पारिजात आदि दिव्य पुष्पों की वृष्टि सर्वत्र (सभी दिशाओं में) कर रहे थे ॥ ६१ ॥

भूमितल स्थित मनुष्य चम्पक, सलल, नीप, नाग, पुन्नाग, केतक आदि पुष्पों को सभी दिशाओं में बिखेर रहे थे ॥ ६२ ॥

केशों को खोलकर, वल्कल तथा मृगचर्म को कीचड़ पर फैलाकर मैं मुँह के बल वहीं लेट गया ॥ ६३ ॥

अक्कमित्वान मं बुद्धो, सह सिस्सेहि गच्छतु।
मा[1] कलले अक्कमित्थो, हिताय मे भविस्सती"ति ॥ ६३ क ॥

२७. सो कललपिट्ठे निपन्नकोव पुन अक्खीनि उम्मीलेत्वा दीपंकरदसबलस्स बुद्धसिरिं सम्पस्समानो एवं चिन्तेसि—"सचे अहं इच्छेय्यं सब्बकिलेसे झापेत्वा संघनवको हुत्वा रम्मनगरं
R. 14 पविसेय्यं। अञ्ञातकवेसेन पन मे किलेसे झापेत्वा निब्बानपत्तिया किच्चं नत्थि। यन्नूनाहं दीपंकरदसबलो विय परमाभिसम्बोधिं पत्वा धम्मनावं आरोपेत्वा महाजनं संसारसागरा उत्तारेत्वा पच्छा परिनिब्बायेय्यं। इदं मय्हं पतिरूपं" ति। ततो अट्ठ धम्मे समोधानेत्वा बुद्धभावाय अभिनोहारं कत्वा निप्पज्जि।

तेन वुत्तं[2] :—

"पुथुवियं निपन्नस्स, एवं मे आसि चेतसो।
इच्छमानो अहं अज्ज, किलेसे झापये मम ॥ ६४ ॥
किम्मे अञ्ञातवेसेन, धम्मं सच्छिकतेनिध।
सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा, बुद्धो हेस्सं सदेवके ॥ ६५ ॥
किम्मे एकेन तिण्णेन, पुरिसेन थामदस्सिना।
सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा, सन्तारेस्सं सदेवके ॥ ६६ ॥
इमिना मे अधिकारेन, पुरिसेन[3] थामदस्सिना[3]।
सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा[4], तारेमि जनतं बहुं ॥ ६७ ॥
संसारसोतं छिन्दित्वा, विद्धंसित्वा तयो भवे।
धम्मनावं समारुय्ह, सन्तारेस्सं सदेवके"ति ॥ ६८ ॥

२८. यस्मा पन बुद्धत्तं पत्थेन्तस्स[5] :—

'मनुस्सत्तं लिंगसम्पत्ति, हेतु सत्थारदस्सनं।
पब्बज्जा गुणसम्पत्ति, अधिकारो च छन्दता।
अट्ठधम्मसमोधाना, अभिनीहारो समिज्झती"ति ॥ ६९ ॥

B. 18 मनुस्सत्तभावस्मिं येव हि ठत्वा बुद्धत्तं पत्थेन्तस्स पत्थना समिज्झति। नागस्स वा सुपण्णस्स वा देवताय वा पत्थना नो समिज्झति। मनुस्सत्तभावे पि पुरिसलिंगे ठितस्सेव पत्थना समिज्झति। इत्थिया वा पण्डकनपुंसकउभतोब्यञ्जनकानं वा नो समिज्झति। पुरिसस्सपि तस्मिं अत्तभावे पि अरहत्तप्पत्तिया

१. मा नं म.। २. बु. वं. ३०९ पृ.। ३–३. कतेन पुरिसुत्तमे म.।
४. पापुणामि रो.। ५. बु. वं. ३०९ पृ.।

मेरे ऊपर से बुद्ध शिष्यों के सहित चले जाँय, उनके पैरों में कीचड़ न लगे। यह मेरे हित के लिए होगा" ॥ ६३ क ॥

२७. उन्होंने कीचड़ में लेटे-लेटे पुनः आँखों को खोलकर दीपङ्कर बुद्ध की बुद्धश्री को देखते हुए ऐसा विचार किया—'यदि मेरी इच्छा हो तो मैं सभी चित्तमलों को नष्ट कर भिक्षु बनकर रम्यनगर में प्रवेश कर सकता हूँ। (पर) अज्ञात वेष से सभी चित्तमलों को नष्ट कर निर्वाण को प्राप्त करना मेरा ध्येय नहीं है। क्योंकि न मैं दीपङ्कर बुद्ध के समान परम अभिसम्बोधि (बुद्धत्व) की प्राप्ति कर धर्म नौका बना जनसमूह को संसार सागर से पार उतारने के बाद स्वयं निर्वाण प्राप्त करूँ। यही मेरे लिए उचित है।" इसलिए (इसके बाद) आठ धर्मों पर विचार करते हुए बुद्ध होने की कामना से वहीं पड़ गए।

इसलिए कहा गया है—

"पृथ्वी पर लेटे हुए मेरे मन में ऐसा हुआ कि यदि मैं चाहूँ तो आज ही अपने चित्तमलों को नष्ट कर सकता हूँ ॥ ६४ ॥

मुझे इस अज्ञात अर्थात् अप्रसिद्ध वेष से धर्म का साक्षात्कार करने से क्या लाभ? सर्वज्ञता की प्राप्ति कर देवताओं के सहित समस्त लोक का बुद्ध होऊँगा ॥

वीर्यदर्शी पुरुष मेरे द्वारा अकेले (संसार सागर) से पार होने में क्या लाभ? मैं सर्वज्ञता को प्राप्त कर देवता सहित इस लोक को तारूँगा ॥ ६६ ॥

इस वीर्यदर्शी पुरुष मेरे द्वारा इस प्रकार (दीपङ्कर बुद्ध की) जो सेवा की गयी उसके फलस्वरूप मैं सर्वज्ञता (बुद्धत्व) की प्राप्ति कर अपार जन-समूह को तार सकूँगा ॥ ६७ ॥

जन्म-मरण प्रवाह (संसार स्रोत) को छिन्न कर, तीन भवों (काम, रूप, अरूप) को नष्ट कर धर्म नौका पर चढ़ा देवतासहित इस लोक को पार उतारूँगा" ॥ ६८ ॥

२८. (यस्मात्) बुद्धत्व की कामना करनेवाले व्यक्ति को—

मनुष्ययोनि, लिङ्गप्राप्ति, हेतु, शास्ता का दर्शन, प्रव्रज्या, उसके गुण की प्राप्ति, योग्यता तथा उसके लिए प्रबल इच्छा—इन आठ धर्मों के रहने पर ही बुद्धत्व प्राति की इच्छा (अभिनीहार) पूर्ण होती है ॥ ६९ ॥

मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर ही बुद्धत्व को कामना करनेवाले की इच्छा पूरी होती है। नाग, गरुड़ या देवता की योनियों में (वह) पूरी नहीं होती है। मनुष्य योनि में भी पुरुष के रूप में उत्पन्न होने से ही इच्छा पूर्ण होती है। स्त्री, नपुंसक या स्त्री-पुरुष दोनों के लिङ्ग से उपगत पुरुष की भी कामना नहीं सिद्ध हो पाती है। पुरुष होने पर भी उस जन्म में बुद्धत्व की

हेतुसम्पन्नस्सेव पत्थना समिज्झति, नो इतरस्स। हेतुसम्पन्नस्सापि[1] सचे[2] जीवमानकबुद्धस्सेव सन्तिके पत्थेन्तस्स पत्थना समिज्झति। परिनिब्बुते बुद्धे चेतियसन्तिके वा बोधिमूले वा पत्थेन्तस्स न समिज्झति। बुद्धानं सन्तिके पत्थेन्तस्सापि पब्बज्जालिंगे ठितस्सेव समिज्झति नो गिहीलिंगे ठितस्स। पब्बजितस्सापि पञ्चभिञ्ञस्स अट्ठसमापत्तिलाभिनो येव समिज्झति, न इमाय गुणसम्पत्तिया विरहितस्स। गुणसम्पन्नेनापि येन अत्तनो जीवितं बुद्धानं परिच्चत्तं[3] होति, तस्स इमिना अधिकारेन अधिकारसम्पन्नस्सेव समिज्झति, न इतरस्स। अधिकारसम्पन्नस्सापि यस्स बुद्धकारकधम्मानं अत्थाय महन्तो छन्दो च महन्तो[3] उस्साहो च वायामो च परियेट्ठि च तस्सेव समिज्झति, न इतरस्स।

तत्रिदं छन्दमहन्तताय ओपम्मं। सचे हि एवमस्स "यो सकलचक्कवाळगब्भं एकोदकीभूतं अत्तनो बाहुबलेन पतरित्वा
R. 15 पारं गन्तुं समत्थो, सो बुद्धत्तं पापुणाति। यो वा पन सकलचक्कवाळगब्भं वेलुगुम्बसञ्छन्नं वियूहित्वा मद्दित्वा पदसा गच्छन्तो पारं गन्तुं समत्थो, सो बुद्धत्तं पापुणाति। यो वा पन सकलचक्कवालगब्भं सत्तियो आकोटेत्वा निरन्तरं सत्तिथलसमाकिण्णं पदसा अक्कममानो पारं गन्तुं समत्थो, सो बुद्धत्तं पापुणाति। यो वा पन सकलचक्कवालगब्भं वीतच्चिकंगारभरितं पादेहि मद्दमानो पारं गन्तुं समत्थो, सो बुद्धत्तं पापुणाती" ति। यो एतेसु एकम्पि अत्तनो दुक्करं न मञ्ञति, 'अहं एतम्पि तरित्वा वा गन्त्वा वा पारं गहेस्सामी' ति। एवं महन्तेन छन्देन च उस्साहेन च वायामेन च परियेट्ठिया च समन्नागतो होति, तस्स पत्थना समिज्झति, न इतरस्स। सुमेधतापसो पन इमे अट्ठधम्मे समोधानेत्वा बुद्धभावाय अभिनीहारं कत्वा निपज्जि।

B. 19 २९. दीपंकरोपि भगवा आगन्त्वा सुमेधतापसस्स सीसभागे ठत्वा मणिसीहपञ्जरं उग्घाटेन्तो विय पञ्चवण्णप्पसादसम्पन्नानि अक्खीनि उम्मिलेत्वा कललपिट्ठे निपन्नं सुमेधतापसं दिस्वा, 'अयं तापसो बुद्धत्ताय अभिनीहारं कत्वा निपन्नो, इज्झिस्सति

---

१. हेतुसम्पन्नेन पि रो.। २. म. पोत्थके नत्थि। ३. म. पोत्थके नत्थि।

उपलब्धि के लिए हेतु अर्थात् बीज से सम्पन्न होने पर इच्छा पूर्ण होती है, (इससे) अन्य की नहीं। बुद्धत्व के लिए हेतु के रहने पर भी बुद्ध के विद्यमान रहने पर उनके निकट जाकर इच्छा करने वाले की कामना पूरी होती है। बुद्ध के निर्वाण होने पर चैत्य अथवा बोधिवृक्ष के निकट कामना करते हुए की इच्छा पूर्ण नहीं होती है। बुद्ध के निकट उसकी कामना करते हुए भी भिक्षुभाव से युक्त होने पर ही इच्छा पूर्ण होती है, गृहस्थ के रूप में रहने पर नहीं। प्रव्रजित की भी पाँच अभिज्ञा तथा आठ समापत्तिलाभी पुरुष की ही कामना पूर्ण होती है, इन गुणों से विरहित मनुष्य की नहीं। गुण इससे युक्त होने पर भी जिसने अपना जीवन बुद्ध के लिए अर्पित कर दिया है, उसके इस त्यागपूर्ण सेवा से प्राप्त अधिकार से अर्हत्व की कामना सिद्ध होती है, अन्य की नहीं। (उक्त प्रकार के) अधिकार से युक्त रहने पर भी जिसे बुद्धत्व की प्राप्ति में सहायक धर्मों के प्रति प्रबल इच्छा, महान् उत्साह, पर्यत्न तथा पर्येषणा हो, उसी की कामना सिद्ध होती है, अन्य की नहीं।

यहाँ छन्द अर्थात् दृढ़ इच्छा की महानता के सम्बन्ध में एक उपमा है। यदि ऐसा हो कि "कोई मनुष्य जलमय हुए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने बाहुबल से तैर कर पार जा सके, तो वही पुरुष बुद्धत्व की प्राप्ति कर सकता है। जो मनुष्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त बेलु गुम्ब अर्थात् बाँस की झाड़ियों को हटा कर, मर्दन कर अपने पैर से चल कर पार जाने में समर्थ हो सकता है, वही बुद्धत्व की प्राप्ति कर सकता है। अथवा जो मनुष्य भालों से ढके सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के भालों का मर्दन करते हुए पैदल चल कर पार जाने में समर्थ हो सकता है, वही बुद्ध पद को प्राप्त कर सकता है। अथवा जो लहलहाते अंगारों से भरे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड गर्भ को अपने पैरों से मर्दन करते हुए उस पार जा सके, वही बुद्ध पद को प्राप्त कर सकता है।" जो कोई इनमें से किसी एक काम को भी अपने लिए दुष्कर नहीं समझता है, 'मैं इसे तैर कर या पैदल चल कर पार जाऊँगा,' इस प्रकार की महान् इच्छा, उत्साह, यत्न तथा पर्येषणा से युक्त रहता है, उसी की कामना पूर्ण होती है, अन्य की नहीं। तपस्वी सुमेध इन आठ धर्मों (बातों) का चिन्तन कर बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए अभिनीहार (बलवती इच्छा) कर वहीं लेट रहे।

२९. भगवान दीपंकर ने तपस्वी सुमेध के निकट आ, उनके सिर के पार्श्व में खड़े हो मणिनिर्मित द्वार को खोलने के समान पाँच वर्ण के चक्षुप्रसादों से युक्त आँखों को खोलते हुए कर्दम में लेटे तपस्वी सुमेध को देखकर—'यह तपस्वी बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प कर पड़ा है, इसकी यह इच्छा

नुखो इमस्स पत्थना उदाहु नो ति' अनागतं सञ्ञाणं पेसेत्वा उपधारेन्तो इतो कप्पसतसहस्साधिकानि चत्तारि असंखेय्यानि अतिक्कमित्वा गोतमो नाम बुद्धो भविस्सती ति, ञत्वा ठितकोव परिसमज्झे व्याकासि,—"पस्सथ, नो तुम्हे, इमं उग्गतपं तापसं कललपिट्ठे निपन्नं" ति।

"एवं, भन्ते"।

"अयं बुद्धत्ताय अभिनीहारं कत्वा निपन्नो, समिज्झिस्सति इमस्स पत्थना। इतो कप्पसतसहस्साधिकानं चतुन्नं असंखेय्यानं मत्थके गोतमो नाम बुद्धो भविस्सति। तस्मि पनस्स अत्तभावे कपिलवत्थु नाम नगरं निवासो भविस्सति। माया नाम देवी माता, सुद्धोदनो नाम राजा पिता। अग्गसावको उपतिस्सो नाम थेरो। दुतियसावको कोलितो नाम। बुद्धुपट्ठाको आनन्दो नाम। अग्गसाविका खेमा नाम थेरी, दुतियसाविका उप्पलवण्णा नाम थेरी भविस्सति। परिपक्कञाणो महाभिनिक्खमनं कत्वा महापधानं पदहित्वा निग्रोधमूले पायासं पटिग्गहेत्वा नेरञ्जराय तीरे परिभुञ्जित्वा बोधिमण्डं आरुय्ह अस्सत्थरुक्खमूले अभिसम्बुज्झिस्सती" ति।

तेन वुत्तं[1] :—

"दीपङ्करो लोकविदू, आहुतीनं पटिग्गहो।
उस्सीसके मं ठत्वान, इदं वचनमब्रवी ॥ ७० ॥
पस्सथ, इमं तापसं, जटिलं उग्गतापनं।
अपरिमेय्ये इतो कप्पे, बुद्धो लोके भविस्सति ॥ ७१ ॥
R. 16 अहो कपिलव्हया रम्मा, निक्खमित्वा तथागतो।
पधानं पदहित्वान, कत्वा दुक्करकारियं[2] ॥ ७२ ॥
अजपालरुक्खमूले, निसीदित्वा तथागतो।
तत्थ पायासं पग्गय्ह[3], नेरञ्जरमुपेहिति ॥ ७३ ॥
नेरञ्जराय तीरम्हि, पायासं आदाय सो जिनो।
पटियत्तवरमग्गेन, बोधिमूलं हि एहिति ॥ ७४ ॥
B. 20 ततो पदक्खिणं कत्वा, बोधिमण्डं अनुत्तरो।
अस्सत्थरुक्खमूलम्हि, बुज्झिस्सति महायसो ॥ ७५ ॥

---

१. बु. वं. ३०६-१० पृ. २. °कारिकं म.। ३. अग्गय्ह रो.।

पूरी होगी या नहीं, (उनके) भविष्य को विजाननार्थ चित्त को प्रेरित कर, (इस सम्बन्ध में) इस निष्कर्ष पर पहुँचते हुए कि इस समय से चार असंखेय्य एक लाख कल्प बीतने पर ये गौतम नामक बुद्ध होंगे, यह जान (भिक्षु) मंडली में खड़े खड़े (ऐसा वचन) कहा—

"इस कीचड़ में पड़े कठिन तप करने वाले तपस्वी को आप लोग देखते हैं न ?"

"हाँ भन्ते।"

"ये बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प कर पड़े हैं, इनकी यह इच्छा पूर्ण होगी। अब से चार असंखेय्य एक लाख कल्प के व्यतीत होने पर ये गौतम नामक बुद्ध होंगे। उस जन्म में इनका निवास स्थान कपिलवस्तु नामक नगर होगा। माया नामक देवी इनकी माता होगी तथा राजा शुद्धोदन इनके पिता होंगे। उपतिष्य नामक स्थविर इनके अग्रश्रावक होंगे। कोलित (स्थविर) द्वितीय श्रावक होंगे। आनन्द (स्थविर) इनके परिचारक होंगे। क्षेमा नामक भिक्षुणी इनकी प्रधान शिष्या तथा उत्पलवर्णा द्वितीय श्राविका होगी। ज्ञान के परिपक्व हो जाने पर महा अभिनिष्क्रमण (गृहत्याग) कर घोर तपस्या के अनन्तर न्यग्रोध वृक्ष के नीचे खीर ग्रहण कर नेरञ्जरा नदी के तीर पर उसे खा बोधिमण्ड पर आरूढ़ हो अश्वत्थ वृक्ष के नीचे अभिसम्बोधि की प्राप्ति करेंगे"।

इसलिए कहा गया है—

"लोक के ज्ञाता, आहुति अर्थात् आदर के पात्र भगवान दीपंकर मेरे सिर के निकट खड़े होकर यह वचन बोले ॥ ७१ ॥

इस उग्र तपस्या करने वाले जटाधारी तपस्वी को देखते हो ? आज से अपरिमेय्य कल्प में अर्थात् चार असंखेय्य एक लाख कल्प के अनन्तर ये बुद्ध होंगे ॥

तथागत कपिलवस्तु नामक रम्य नगर से निकलकर यत्न एवं दुष्कर कर्मकर; अजपाल वृक्ष के नीचे खीर ग्रहण कर नेरञ्जरा नदी के तीर पर जायेंगे ॥ ७२–७३ ॥

(तदनन्तर) तथागत नेरञ्जरा नदी के तीर पर खीर को खाकर सुसज्जित एवं श्रेष्ठ मार्ग से बोधिवृक्ष के नीचे जायेंगे ॥ ७४ ॥

अलौकिक एवं महा यशस्वी पुरुष (तथागत) बोधिमण्ड की प्रदक्षिणा कर अश्वत्थ वृक्ष के नीचे सम्बोधि को प्राप्त करेंगे ॥ ७५ ॥

इमस्स जनिका माता, माया नाम भविस्सति।
पिता सुद्धोदनो नाम, अयं हेस्सति गोतमो॥ ७६ ॥
अनासवा वीतरागा, सन्तचित्ता समाहिता।
कोलितो[1] उपतिस्सो च, अग्गा हेस्सन्ति सावका॥ ७७ ॥
आनन्दो नामुपट्ठाको, उपट्ठहिस्सति तं जिनं।
खेमा उप्पलवण्णा च, अग्गा हेस्सन्ति साविका॥ ७८ ॥
अनासवा वीतरागा, सन्तचित्ता समाहिता।
बोधि तस्स भगवतो, अस्सत्थो ति पवुच्चती" ति॥ ७९ ॥

३०. सुमेधतापसो 'मय्हं किर पत्थना समिज्झिस्सती' ति सोमनस्सप्पत्तो अहोसि। महाजनो दीपंकरदसबलस्स वचनं सुत्वा—'सुमेधतापसो किर बुद्धबीजं बुद्धंकुरो [2]चाति' हट्ठतुट्ठो अहोसि। एवं नेसं[3] अहोसि—"यथा नाम पुरिसो नदिं तरन्तो उजुकेन तित्थेन उत्तरितुं असक्कोन्तो हेट्ठा तित्थेन उत्तरति, एवमेवं मयंपि दीपंकरदसबलस्स सासने मग्गफलं अलभमाना अनागते यदा त्वं बुद्धो भविस्ससि, तदा तव सम्मुखा मग्गफलं सच्छिकातुं समत्था भवेय्यामा" ति पत्थनं ठपयिंसु। दीपंकरदसबलो पि बोधिसत्तं पसंसित्वा अट्ठहि पुप्फमुट्ठीहि पूजेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। तेपि चतुसतसहस्ससंखा खीणासवा बोधिसत्तं गन्धेहि च मालाहि[4] च पूजेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु। देवमनुस्सा पन तथेव पूजेत्वा वन्दित्वा पक्कन्ता।

३१. बोधिसत्तो सब्बेसं पटिक्कन्तकाले सयना वुट्ठाय 'पारमियो विचिनिस्सामी'ति पुप्फरासिमत्थके पल्लंकं आभुजित्वा निसीदि। एवं निसिन्ने बोधिसत्ते सकलदससहस्सचक्कवाळे देवता सन्निपतित्वा साधुकारं दत्वा, "अय्य सुमेधतापस, पोराणक-बोधिसत्तानं पल्लंकं आभुजित्वा 'पारमियो विचिनिस्सामा'ति निसिन्नकाले यानि पुब्बनिमित्तानि नाम पञ्ञायन्ति, तानि
B. 21 सब्बानि पि अज्ज पातुभूतानि। निस्संसयेन त्वं बुद्धो भविस्ससि;
R. 17 मयमेतं जानाम। यस्सेतानि निमित्तानि पञ्ञायन्ति, एकन्तेन सो बुद्धो होति। त्वं अत्तनो विरियं दळ्हं कत्वा पग्गण्ह।" ति बोधिसत्तं नानप्पकाराहि थुतीहि अभित्थविंसु।

१. कोलिको म.। २. म. रो. पोत्थकेसु नत्थि। ३. चस्स म. रो.।
४. मालेहि म. रो.।

इनको जन्म देनेवाली माता मायादेवी तथा पिता शुद्धोदन होंगे। ये (स्वयं) गौतम होंगे॥ ७६ ॥

क्षीणाश्रव, वीतराग, शान्तचित्त तथा समाधिप्राप्त कोलित तथा उपतिष्य इनके दो अग्रश्रावक होंगे॥ ७७ ॥

आनन्द नामक परिचारक उस बुद्ध की परिचर्या करेंगे। चित्तमल रहित अनासक्त, शान्तचित्त, समाधिप्राप्त क्षेमा तथा उत्पलवर्णा (दो भिक्षुणियाँ) उनकी अग्र श्राविका होगीं। अश्वत्थवृक्ष उस भगवान की बोधि अर्थात् बुद्धत्व प्राप्ति का वृक्ष होगा"॥ ७८–७९ ॥

३०. तपस्वी सुमेध ऐसा सोच कि 'मेरी अभिलाषा पूर्ण होगी' आह्लादित हुए। जन समुदाय दीपङ्कर बुद्ध का यह वचन सुन कि 'तपस्वी सुमेध बुद्ध बीज, बुद्ध अंकुर वाले हैं' प्रसन्न हो उठा। उन लोगों ने मन में ऐसा विचार एवं कामनाएँ की—

"जैसे कोई पुरुष नदी को पार करते हुए सामने के घाट से पार जाने में असमर्थ हो नीचे के घाट से नदी को पार करता है, उसी प्रकार हम लोग भी भगवान दीपङ्कर के शासन काल में यदि मार्ग फल को न पा सकें तो भविष्य में जब आप बुद्ध होंगे तो आपके सम्मुख मार्ग फल को प्राप्त करने में समर्थ होवें।' दीपङ्कर बुद्ध ने भी बोधिसत्त्व की प्रशंसा कर आठ मुट्ठी फूल से उनकी पूजा एवं प्रदक्षिणा की तथा (इसके बाद) वे वहाँ से चले गये। वे चार लाख अर्हन्त भी गन्ध तथा पुष्पमालाओं से बोधिसत्त्व की पूजा कर, प्रदक्षिणा कर वहाँ से आगे बढ़े। देवता तथा मनुष्य भी उसी प्रकार (बोधिसत्त्व की) पूजा वन्दना कर चल दिये।

३१. सभी के चाले जाने पर बोधिसत्त्व (लेटी हुई अवस्था से) उठ कर 'पारमिताओं का चिन्तन करूँगा' (इस विचार से) पुष्पों की ढेर पर पालथी मार बैठ गये। बोधिसत्त्व के ऐसे बैठने पर सम्पूर्ण दस हजार ब्रह्माण्डों के देवताओंने एकत्र हो उन्हें साधुकार दे कहा—"आर्य तपस्वी सुमेध, पुराने बोधिसत्त्वोंके 'पारमिताओं का चिन्तन करूँगा' ऐसा सोच पालथी मार बैठते समय जो पूर्व निमित्त (शुभ शकुन) प्रकट होते रहे हैं, वे सभी आज भी प्रकट हुए हैं। हम लोग इसे जानते हैं—'आप अवश्य बुद्ध होंगे'। जिसके लिये ये निमित्त प्रकट होते हैं, वह अवश्य बुद्ध होता है। इस लिए आप अपने वीर्य को दृढ़ कर यत्न करें" इस प्रकार विभिन्न स्तुतियों से (उन्होंने) बोधिसत्त्व की प्रशंसा की।

तेन वुत्तं[1] :—

"इदं सुत्वान वचनं, असमस्स महेसिनो।
आमोदिता नरमरू, बुद्धबीजंकुरो अयं ॥ ८० ॥
उक्कुट्ठिसद्दा वत्तन्ति, अप्फोठेन्ति हसन्ति च।
कतञ्जली नमस्सन्ति, दससहस्सी सदेवका ॥ ८१ ॥
यदिमस्स लोकनाथस्स, विरज्झिस्साम सासनं।
अनागतम्हि अद्धाने, हेस्साम सम्मुखा इमं ॥ ८२ ॥
यथा मनुस्सा नदिं, तरन्ता पटितित्थं विरज्झिय।
हेट्ठा तित्थे गहेत्वान, उत्तरन्ति महानदिं ॥ ८३ ॥
एवमेव मयं सब्बे, यदि मुञ्चेमिमं जिनं।
अनागतम्हि अद्धाने, हेस्साम सम्मुखा इमं ॥ ८४ ॥
दीपंकरो लोकविदू, आहुतीनं पटिग्गहो।
मम कम्मं पकित्तेत्वा, दक्खिणं पदमुद्धरि ॥ ८५ ॥
ये तत्थासुं जिनपुत्ता, सब्बे पदक्खिणमकंसु मं।
नरा नागा च गन्धब्बा, अभिवादेत्वान पक्कमुं ॥ ८६ ॥
दस्सनं मे अतिक्कन्ते, ससंघे लोकनायके।
तुट्ठहट्ठेन चित्तेन, आसना वुट्ठहिं तदा ॥ ८७ ॥
सुखेन सुखितो होमि, पामोज्जेन पमोदितो।
पीतिया च अभिस्सन्नो, पल्लंकं आभुजिं तदा ॥ ८८ ॥
पल्लंकेन निसीदित्वा, एवं चिन्तेसहं तदा।
'वसीभूतो अहं झाने, अभिञ्ञापारमिं गतो' ॥ ८९ ॥
साहस्सिकम्हि लोकम्हि, इसयो नत्थि मे समा।
असमो इद्धिधम्मेसु, अलभिं ईदिसं सुखं ॥ ९० ॥
B. 21 पल्लंकाभुजने मय्हं, दससहस्साधिवासिनो।
महानादं पवत्तेसुं, 'धुवं बुद्धो भविस्ससि' ॥ ९१ ॥
यं पुब्बे बोधिसत्तानं, पल्लंकवरमाभुजे।
निमित्तानि पदिस्सन्ति, तानि अज्ज पदिस्सरे ॥ ९२ ॥
सीतं व्यपगतं होति, उण्हं च उपसम्मति।
तानि अज्ज पदिस्सन्ति, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥ ९३ ॥
दससहस्सी लोकधातू, निस्सद्दा होन्ति निराकुला।
तानि अज्ज पदिस्सन्ति, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥ ९४ ॥

---

१. बु. वं. ३१०-१३ पृ.।

इस लिए कहा गया है—

"अनुपम महर्षि (दीपंकर बुद्ध) का ऐसा वचन सुन कि 'यह तपस्वी बुद्ध बीज बुद्ध अंकुर' है, सभी देवता तथा मनुष्य प्रसन्न हुए ॥ ८० ॥

उस समय देवता सहित दस हजार ब्रह्माण्ड के प्राणी आनन्दके शब्द उद्घोषित करते थे, ताली बजाते थे, हँसते तथा हाँथ जोड़े (बोधिसत्त्व) को नमस्कार करते थे ॥

यदि हम लोग इस दीपंकर बुद्ध के शासनकाल में (मार्गफल को प्राप्त करने में) असफल रहे तो भविष्य.में इस तपस्वी सुमेध के बुद्ध होने पर (अवश्य) सफल होंगे ॥

जिस प्रकार नदी को पार करने वाले (पार करते हुए) मनुष्य सामने के घाट से पार होने से वंचित हो जाने पर नीचे के घाट से महा नदी को पार कर जाते हैं; उसी प्रकार यदि हम सब से यह दीपंकर बुद्ध छूट जायेंगे (अर्थात् इनके काल में अर्हत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकेगी) तो भविष्य में इनके (तपस्वी सुमेध) सम्मुख (हम) अर्हत् होवेंगे ॥ ८३-८४ ॥

लोक को जानने वाले, सर्व-सम्मान-भाजन भगवान दीपंकर ने मेरे कार्य की प्रशंसा कर दक्षिण पैर उठाया (चल दिये) ॥ ८५ ॥

वहाँ पर जितने भगवान के शिष्य थे, उन्होंने मेरी प्रदक्षिणा की। मनुष्य, नाग तथा गन्धर्व सभी मेरा अभिवादन कर चले गये ॥ ८६ ॥

भिक्षुसंघ सहित लोकनायक (दीपंकर) के मेरी आँखों से ओझल हो जाने पर मैं अति प्रसन्न चित्त हो आसन से उठ बैठा ॥ ८७ ॥

सुख से सुखी, प्रमोद से प्रमुदित, प्रीति से सन्तृप्त हो, मैं पालथी मार कर बैठ गया ॥ ८८ ॥

आसन लगा (पालथी मार) बैठ कर मैं ने ऐसा सोचा—'मुझे ध्यान की प्राप्ति हो चुकी है, अभिज्ञायें मुझे उपलब्ध हो चुकी हैं ॥ ८९ ॥

सहस्र लोक में भी मेरे समान (अन्य) कोई ऋषि नहीं है। ऋद्धियों (दिव्य शक्तियों) को वशीभूत करने में मैं अद्वितीय हूँ। (इस प्रकार विचार करते) मुझे ऐसा सुख प्राप्त हुआ' ॥ ९० ॥

मेरे आसन लगा (पालथी मार) बैठने पर दस सहस्र ब्रह्माण्डों के निवासियों ने महानाद का उद्घोष किया कि—'आप अवश्य बुद्ध होंगे' ॥ ९१ ॥

पूर्व काल में बोधिसत्त्वों के आसन लगाकर बैठने पर जो निमित्त (शकुन चिह्न) दिखायी पड़ते थे, वे आज भी दिखायी दे रहे हैं ॥ ९२ ॥

(उस समय) शीत समाप्त हो जाती है, उष्णता का परिशमन हो जाता है। वे आज भी दिखायी दे रहे हैं, (अतः) आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ ९३ ॥

दस हजार ब्रह्माण्ड निःशब्द, एवं निराकुल (शान्त) हो जाते हैं। उनका ऐसा होना आज भी देखा जाता है; (अतः) आप निश्चय ही बुद्ध होंगे ॥ ९४ ॥

R. 18 महावाता न वायन्ति, न सन्दन्ति सवन्तियो ।
तानि अज्ज पदिस्सन्ति, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥ ९५ ॥
थलजोदकजा पुप्फा, सब्बे पुप्फन्ति तावदे ।
ते पज्ज पुप्फिता सब्बे, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥ ९६ ॥
लता वा यदि वा रुक्खा, फलभारा होन्ति तावदे ।
ते पज्ज फलिता सब्बे, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥ ९७ ॥
आकासट्ठा च भुम्मट्ठा, रतना जोतन्ति तावदे ।
ते पज्ज रतना जोतन्ति, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥ ९८ ॥
मानुसका च दिब्बा, च तुरिया वज्जन्ति तावदे ।
ते पज्जुभो अभिरवन्ति, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥ ९९ ॥
विचित्तपुप्फा गगना, अभिवस्सन्ति तावदे ।
ते पि अज्ज पवस्सन्ति, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१००॥
महासमुद्दो आभुजति, दससहस्सी पकम्पति ।
ते पज्जुभो अभिरवन्ति, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१०१॥
निरयेपि दससहस्सी, अग्गी निब्बन्ति तावदे ।
ते पज्ज निब्बुता अग्गी, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१०२॥
विमलो होति सुरियो, सब्बे दिस्सन्ति तारका ।
ते पि अज्ज पदिस्सन्ति, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१०३॥
B. 23 अनोवट्ठेन उदकेन, महिया उब्भिज्जि तावदे ।
तम्पज्जुब्भिज्जते महिया, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१०४॥
तारागणा विरोचन्ति, नक्खत्ता गगनमण्डले ।
विसाखा चन्दिमा युत्ता, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१०५॥
बिलासया दरीसया, निक्खमन्ति सकासया ।
ते पज्ज आसया छुद्धा, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१०६॥
न होति अरति सत्तानं, सन्तुट्ठा होन्ति तावदे ।
ते पज्ज सब्बे सन्तुट्ठा, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१०७॥
रोगा तदूपसम्मन्ति, जिघच्छा च विनस्सति ।
तानि अज्ज पदिस्सन्ति, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१०८॥
रागो तदा तनु होति, दोसो मोहोपि नस्सति ।
ते पज्ज विगता सब्बे, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१०९॥
भयं तदा न भवति, अज्जपेतं पदिस्सति ।
तेन लिंगेन जानाम, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥११०॥

न बहुत जोरों से हवा चलती है, न नदियाँ ही (तीव्रता से) बहती हैं । ऐसी बातें आज दिखायी दे रही हैं । आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ ९५ ॥

जल तथा स्थल (भूमि) पर प्रस्फुटित होने वाले सभी पुष्प उस समय खिल उठते है । वे सभी आज प्रस्फुटित हैं । आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ ९६ ॥

लतायें तथा वृक्ष उस समय फलभार से लद जाते हैं । वे आज भी फल सम्पन्न हो उठे हैं । आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ ९७ ॥

आकाश तथा पृथ्वी में विद्यमान रत्न उस समय ज्योतिष्मान हो उठते हैं (चमकने लगते हैं) । वे सब आज भी चमक रहे हैं । (अतः) आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥

उस समय मनुष्य एवं देवताओंके तूर्ण (तुरही) बजने लगते हैं । वे दोनों अभी बज रहे हैं । (अतः) आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ ९९ ॥

उस समय आकाश से चित्र विचित्र पुष्पों की वृष्टि होती है । वह पुष्प वर्षा आज भी हो रही है । (अतः) आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ १०० ॥

महासमुद्र संकुचित हो जाता है । दस सहस्र ब्रह्माण्ड काँप उठते हैं । वे दोनों अभी (तज्जन्य शब्द से) निनादित हो रहे हैं । आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ १०१ ॥

उस समय दस हजार ब्रह्माण्ड के नरकों की अग्नियाँ बुझ जाती हैं । वे अग्नियाँ भी आज शान्त हो गई हैं । (अतः) आप निश्चय ही बुद्ध होंगे ॥

(उस समय) सूर्य निर्मल हो जाता है । सभी तारे दिखायी पड़ते हैं । वे भी आज दिखायी दे रहे हैं । आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ १०३ ॥

उस समय बिना वृष्टि हुए ही पृथ्वी से जल निकलने लगता है । वह (जल भी) आज निकल रहा है । (अतः) आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ १०४ ॥

(उस समय) आकाशमण्डल में तारागण तथा नक्षत्र चमकते हैं । चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र से युक्त हो उठता है । (ऐसा आज भी हो रहा है, अतः) आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ १०५ ॥

उस समय बिल तथा पर्वत पर रहने वाले सभी प्राणी अपने-अपने घरों से निकल आते हैं । वे सभी आज (अपने-अपने) आश्रयों को छोड़ चुके हैं । आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ १०६ ॥

उस समय प्राणियों को (किसी प्रकार का) असंतोष नहीं होता है, सभी सन्तुष्ट रहते हैं । वे सब आज सन्तुष्ट हैं । (अतः) आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ १०७ ॥

(उन प्राणियों के) रोग शान्त हो जाते हैं, भूख नष्ट हो जाती है । आज ये सारी बातें देखी जाती हैं । आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ १०८ ॥

उस समय राग (आसक्ति) दुर्बल हो जाती है, द्वेष तथा मोह (अज्ञान) नष्ट हो जाते हैं । आज वे सभी नष्ट हो गये हैं । (अतः) आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥

उस समय किसी को (किसी प्रकार का) भय नहीं होता है, आज भी वैसा ही देखा जाता है । इस निमित्त (चिह्न) से हम लोग जानते हैं कि आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ ११० ॥

रजोनुद्धंसति उद्धं, अज्जपेतं पदिस्सति ।
तेन लिंगेन जानाम, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥१११॥
अनिट्ठगन्धो पक्कमति, दिब्बगन्धो पवायति ।
सोपज्ज वायति गन्धो, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥११२॥
R. 19 सब्बे देवा पदिस्सन्ति, ठपयित्वा अरूपिनो ।
ते पज्ज सब्बे दिस्सन्ति, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥११३॥
यावता निरया नाम, सब्बे दिस्सन्ति तावदे ।
ते पज्ज सब्बे दिस्सन्ति, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥११४॥
कुड्डा कपाटा सेला च, न होन्तावरणं तदा ।
आकासभूता ते पज्ज, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥११५॥
चुती च उप्पत्ति च, खणे तस्मि न विज्जति ।
तानि अज्ज पदिस्सन्ति, धुवं बुद्धो भविस्ससि ॥११६॥
B. 24 दल्हं पग्गण्ह विरियं, मा निवत्त अभिक्कम ।
मयं पेतं विजानाम, धुवं बुद्धो भविस्ससि" ति ॥११७॥

३२. बोधिसत्तो दीपंकरदसबलस्स च दससहस्सचक्कवाळ-देवतानं च वचनं सुत्वा भीयोसोमत्ताय सञ्जातुस्साहो हुत्वा चिन्तेसि—"बुद्धा नाम अमोघवचना । नत्थि बुद्धानं कथाय अञ्ञथत्तं । यथाहि आकासे खित्तलेड्डुस्स पतनं, जातस्स मरणं, अरुणे उग्गते सुरियस्सुट्ठानं, आसया निक्खन्तस्स सीहस्स सीहनादनदनं, गरुगब्भाय इत्थिया भारमोचनं च धुवं अवस्स-भावी; एवमेव बुद्धानं वचनं नाम धुवं अमोघं । अद्धा अहं बुद्धो भविस्सामी" ति ।

तेन वुत्तं[1] :—

"बुद्धस्स वचनं सुत्वा, दससहस्सीन चूभयं ।
तुट्ठहट्ठो पमुदितो, एवं चिन्तेसहं तदा ॥११८॥
अद्वेज्झवचना बुद्धा, अमोघवचना जिना ।
वितथं नत्थि बुद्धानं, धुवं बुद्धो भवामहं ॥११९॥
यथा खित्तं नभे लेड्डु, धुवं पतति भूमियं ।
तथेव बुद्धसेट्ठानं, वचनं धुवसस्सतं ॥१२०॥

---

१. बु. वं. ३१३–१७. पृ. ।

उस समय धूल ऊपर की ओर उड़ जाती है, आज भी वैसा ही देखा जाता है । इस चिह्न से हम जानते हैं कि आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ १११ ॥

अनिष्ट गन्ध अर्थात् दुर्गन्ध हवा से नष्ट हो जाती है, दिव्य गन्ध बहने लगती है । इसी चिह्न से हम लोग जानते हैं कि आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥

अरूपावचर देवों को छोड़कर सभी देवता (उस समय) दिखायी पड़ते हैं । वे सभी आज दिखायी पड़ रहे हैं । (अतः) आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥

जितने नरक हैं, वे सभी उस समय दिखायी पड़ते हैं । वे सभी आज भी दिखायी दे रहे हैं । अतः आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ ११४ ॥

दीवार, द्वार, पर्वत (आदि) उस समय आवरण करने का काम नहीं करते हैं । आज वे सभी आकाश रूप (अर्थात् सभी प्रकार की विबाधा रहित) हो गये हैं । (अतः) आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ ११५ ॥

उस क्षण मृत्यु (च्युति) तथा जन्म का होना अवरुद्ध हो जाता है । वैसा ही आज भी दिखायी दे रहा है । (अतः) आप अवश्य बुद्ध होंगे ॥ ११६ ॥

आप अपने उत्साह को दृढ़ करें; रुकें नहीं, आगे बढ़े । हम लोग इस बात को जानते हैं कि आप बुद्ध होंगे" ॥ ११७ ॥

३२. दीपङ्कर बुद्ध तथा दस हजार ब्रह्माण्डों के देवताओं के वचन को सुनकर बोधिसत्त्व (तपस्वी सुमेध) ने आनन्दातिरेक से उत्साहित हो विचार किया—"बुद्धों के वचन अमोघ होते हैं । बुद्धों के वचन अन्यथा नहीं हो सकते हैं । जिस प्रकार आकाश में फेके हुए ढेले का गिरना, जन्म लेनेवाले के लिए मरना, अरुण अर्थात् लालिमा के आगमन के बाद सूर्य का उदय होना, अपने आश्रय अर्थात् गुहा से निकलते हुए सिंह का सीहनाद करना, गर्भभार भारित स्त्री का भारमोचन (प्रसव, सन्तान जनन) अनिवार्य तथा अवश्यंभावी है; उसी प्रकार बुद्धों के वचन निश्चय रूप से अमोघ होता है (निष्फल नहीं होता है) । मैं निश्चय ही बुद्ध होऊँगा ।"

इसलिए कहा गया है—

"दीपङ्कर बुद्ध तथा दस हजार ब्रह्माण्डों के देवताओं दोनों के वचनों को सुनकर मैंने सन्तुष्ट हो प्रसन्न मन से विचार किया ॥ ११८ ॥

बुद्ध केवल एक वचन बोलनेवाले होते हैं (बुद्धों के वचन द्वैधापथ सम्पन्न नहीं होते हैं), जिनों के वचन अमोघ होते हैं (कभी निष्फल नहीं जाते हैं); बुद्धों के वचन असत्य नहीं होते हैं । (अतः) मैं निश्चय ही बुद्ध होऊँगा ॥

जिस प्रकार आकाश में फेका हुआ ढेला अवश्य ही पृथ्वी पर गिरता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों का वचन ध्रुव एवं शाश्वत होता है अर्थात् अवश्यम्भावी है ॥ १२० ॥

यथापि सब्बसत्तानं, मरणं धुवसस्सतं।
तथेव बुद्धसेट्ठानं, वचनं धुवसस्सतं ॥१२१॥
यथा रत्तिक्खये पत्ते, सुरियस्सुग्गमनं धुवं।
तथेव बुद्धसेट्ठानं, वचनं धुवसस्सतं ॥१२२॥
यथा निक्खन्तसयनस्स, सीहस्स नदनं धुवं।
तथेव बुद्धसेट्ठानं वचनं, धुवसस्सतं ॥१२३॥
यथा आपन्नसत्तानं, भारमोरोपनं धुवं।
तथेन बुद्धसेट्ठानं वचनं धुवसस्सतं" ॥१२४॥

बुद्धकारकधम्मचिन्तनं

१. दानपारमी

३३. सो 'धुवाहं बुद्धो भविस्सामी' ति, एवं कतसन्निट्ठानो
R. 20 बुद्धकारके धम्मे उपधारेतुं 'कहन्नु खो बुद्धकारकधम्मा, किं
उद्धं, उदाहु अधो, दिसासु विदिसासू' ति; अनुक्कमेन सकलं
धम्मधातुं विचिनन्तो पोराणकबोधिसत्तेहि आसेवितनिसेवितं
पठमं दानपारमिं दिस्वा एवं अत्तानं ओवदि—"सुमेध पण्डित,
त्वं इतो पट्ठाय पठमं दानपारमिं पूरेय्यासि। यथा हि निक्कु-
B. 25 ज्जितो उदकुम्भो निस्सेसं कत्वा उदकं वमतियेव, न पच्चाहरति;
एवमेवं धनं वा यसं वा पुत्तदारं वा अंगपच्चंगं वा अनोलोकेत्वा
सम्पत्तयाचकानं सब्बं इच्छितिच्छितं निस्सेसं कत्वा ददमानो
बोधिरुक्खमूले निसीदित्वा बुद्धो भविस्ससी" ति पठमं दानपारमिं
दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि।

तेन वुत्तं[1] :—

"हन्द बुद्धकरे धम्मे, विचिनामि इतो चितो।
उद्धं अधो दसदिसा, यावता धम्मधातुया ॥ १२५ ॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं, पठमं दानपारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि, अनुचिण्णं महापथं ॥ १२६ ॥
इमं त्वं पठमं ताव, दळ्हं कत्वा समादिय।
दानपारमितं गच्छ, यदि बोधिं पत्तुमिच्छसि ॥ १२७ ॥

१. बु. वं. ३१४ पृ.।

जिस प्रकार सभी प्राणियों का मरण ध्रुव है, उसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों का वचन ध्रुव है ॥ १२१ ॥

जिस प्रकार रात के क्षीण होजाने पर सूर्य का उदय होना निश्चित है, उसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों के वचन का पूर्ण होना ध्रुव है ॥ १२२ ॥

जिस प्रकार अपने गुहागृह से निकलते सिंह का गर्जन करना निश्चित है, उसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों का वचन (सत्य होने में) ध्रुव है ॥ १२३ ॥

जिस प्रकार गर्भ में आये प्राणियों का प्रसव निश्चित है, उसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों का वचन (चरितार्थ होने में) निश्चित है" ॥ १२४ ॥

बुद्धकारक धर्मों की चिन्ता

१. दानपारमिता

३३. "मैं निश्चय ही बुद्ध होऊँगा" ऐसा विनिश्चय कर, उन्होंने बुद्धकारक धर्मों का चिन्तन करने के उद्देश्य से, 'बुद्धकारक धर्म कहाँ है ?, क्या ऊपर, या नीचे, या दिशा उपदिशाओं में;' इस क्रम से सभी धर्मों (धर्म धातुओं) पर विचार करते हुए, प्राचीन काल के बोधिसत्त्वों द्वारा सेवित सर्वप्रथम दानपारमिता को देखकर, इस प्रकार अपने को समझाया—"पण्डित सुमेध, तुझे अब से सर्वप्रथम दानपारमिता पूरी करनी चाहिए। जिस प्रकार उलटा हुआ जलपूर्ण घट अपने को पूर्णतः खाली कर जल का वमन (प्रवाहन) करता है, तथा पुनः गिराये जल को वापस नहीं लेता है; उसी प्रकार धन यश पुत्र स्त्री तथा शरीर के अंग-प्रत्यंग के प्रति निरपेक्ष हो आये हुए याचकों को उनकी सभी इच्छित वस्तुओं को स्पृहा विहीन हो देते हुए, बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर बुद्ध होओगे" तथा ऐसा विचार उन्होंने दानपारमिता की पूर्त्ति के लिए दृढ़ सङ्कल्प किया।

इसलिए कहा गया है—

"अहा, मैं बुद्धकारक धर्मों का यहाँ, वहाँ, ऊपर, नीचे, दशों दिशाओं में जहाँ तक धर्मधातु हैं, सञ्चयन करूँगा ॥ १२५ ॥

(जहाँ तहाँ) ढूँढ़ते हुए मैंने पूर्व महर्षियों द्वारा सेवित महान्मार्ग दानपारमिता को देखा ॥ १२६ ॥

(इसे देख मैंने अपने को समझाया) यदि तुम बोधिप्राप्ति की इच्छा रखते हो, तो इसे (दानपारमिता को) दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर दान की पराकाष्ठा तक पहुँच जा ॥ १२७ ॥

यथापि कुम्भो सम्पुण्णो, यस्स कस्सचि अधो कतो।
वमते उदकं निस्सेसं, न तत्थ परिरक्खति ॥ १२८ ॥
तथेव याचके दिस्वा, हीनमुक्कट्ठमज्झिमे,।
ददाहि दानं निस्सेसं, कुम्भो विय अधो कतो"ति ॥ १२९ ॥

२. सीलपारमी

३४. अथस्स 'न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बं' ति, उत्तरिम्पि उपधारयतो दुतियं सीलपारमिं दिस्वा एतदहोसि—"सुमेध पण्डित, त्वं इतो पट्ठाय सीलपारमिं पि पूरेय्यासि। यथा हि चमरीमिगो नाम जीवितम्पि अनोलोकेत्वा अत्तनो वालमेव रक्खति; एवं त्वम्पि इतो पट्ठाय जीवितम्पि अनोलोकेत्वा सीलमेव रक्खन्तो बुद्धो भविस्ससी"ति, दुतियं सीलपारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि।

तेन वुत्तं[1] :—

"न हेते एत्तका येव, बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि, ये धम्मा बोधिपाचना ॥ १३० ॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं, दुतियं सीलपारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि, आसेवितनिसेवितं ॥ १३१ ॥
इमं त्वं दुतियं ताव, दळ्हं कत्वा समादिय।
सीलपारमितं गच्छ, यदि बोधिं पत्तुमिच्छसि ॥ १३२ ॥
यथापि चमरी वालं, किस्मिंचि पटिलग्गितं।
उपेति मरणं तत्थ, न विकोपेति वालधिं ॥ १३३ ॥
B. 26 तथेव चतूसु भूमीसु, सीलानि परिपूरय।
R. 21 परिरक्ख सब्बदा सीलं, चमरी विय वाळधिं" ति ॥ १३४ ॥

३. नेक्खम्मपारमी

३५. अथस्स 'न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बं' ति उत्तरिम्पि उपधारयतो ततियं नेक्खम्मपारमिं दिस्वा एतदहोसि—"सुमेधपण्डित, त्वं इतो पट्ठाय नेक्खम्मपारमिं पि पूरेय्यासि। यथाहि चिरं पि बन्धनागारे वसमानो पुरिसो न तत्थ सिनेहं करोति, अथ खो उक्कण्ठति येव अवसितुकामो होति; एवमेव

---

१. बु. वं. ३१४ पृ.

जिस प्रकार जिस किसी का औंधा हुआ जलपूर्ण घट अपने को पूर्णतः रिक्त कर जल को गिरा देता है, कुछ बचा नहीं रखता है, उसी प्रकार हीन उत्तम तथा मध्यम सभी प्रकार के याचको को देख, तू उलटे हुए घड़े के समान होकर सर्वस्व दान करो" ॥ १२८-२९ ॥

२. शीलपारमिता

३४. तदनन्तर 'इतने ही बुद्धकारक धर्म नहीं हैं, इसके अतिरिक्त (धर्मों) के सम्बन्ध में विचार करते हुए द्वितीय पारमिता शीलपारमिता को देख उन्होंने विचार किया—"पण्डित सुमेध, तुझे अब से शील पारमिता पूरी करनी चाहिए। जिस प्रकार चमरी मृग अपने जीवन की चिन्ता न कर अपनी बालधि की रक्षा करता है; उसी प्रकार तू भी अब से अपने जीवन की चिन्ता न कर शील की रक्षा करते हुए बुद्धत्व की प्राप्ति करोगे"; ऐसा विचार शील-पारिमिता की पूर्ति के लिए दृढ़ संकल्प किया।

इसलिए कहा गया है—

"इतने ही बुद्धकारक धर्म नहीं हैं। अन्य भी जो कोई बोधि की प्राप्ति में सहायक धर्म हैं, उन्हें मैं ढूढ़ूँगा ॥ १३० ॥

ऐसा ढूँढ़ते हुए मैंने पूर्व ऋषियों द्वारा आसेवित द्वितीय (पारमिता) शीलपारमिता को देखा ॥ १३१ ॥

(पुनः अपने को कहा) यदि तू बोधि को प्राप्त करना चाहते हो, तो इस द्वितीय पारमिता शीलपारमिता को दृढ़ता के साथ ग्रहण करो तथा शील की पराकाष्ठा तक पहुँच जाओ ॥ १३२ ॥,

जिस प्रकार चमरी गाय कहीं उलझी हुई अपनी पूँछ (बालधी) की रक्षा के लिए अपना जीवन तक दे डालती है, पर पूँछ को नहीं जाने देती है ॥ १३३ ॥

उसी प्रकार चारो भूमियों में शील की पूर्ति (परिपालन) करते चमरी द्वारा बालधी की रक्षा के समान शील की रक्षा करो ॥ १३४ ॥

३. नैष्क्रम्यपारमिता

३५. तदनन्तर 'इतने ही बुद्धकारक (बुद्ध बनाने वाले) धर्म नहीं हो सकते हैं, इनके अतिरिक्त (धर्मों) की भी चिन्ता करते हुए तृतीय नैष्क्रम्यपारमिता को देख उन्होंने विचार कर (अपने को) कहा—"सुमेध पण्डित, अब से तुम नैष्क्रम्यपारमिता को पूरा करो। जिस प्रकार बहुत दिनों तक कारागार में रहता हुआ मनुष्य उस बन्धनागार के प्रति स्नेह नहीं करता है, वरन् असन्तुष्ट

त्वं पि सब्बभवे बन्धनागारसदिसे कत्वा सब्बभवेहि उक्कण्ठितो मुञ्चितुकामो हुत्वा नेक्खम्माभिमुखोव होहि; एवं बुद्धो भविस्ससी" ति, ततियं नेक्खम्मपारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि।

तेन वुत्तं[1]—

"न हेते एत्तका येव, बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि, ये धम्मा बोधिपाचना ॥ १३५ ॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं, ततियं नेक्खम्मपारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि, आसेवितनिसेवितं ॥ १३६ ॥
इमं त्वं ततियं ताव, दळ्हं कत्वा समादिय।
नेक्खम्मपारमितं गच्छ, यदि बोधिं पत्तुमिच्छसि ॥ १३७ ॥
यथा अन्दुघरे पुरिसो, चिरवुत्थो दुखद्दितो।
न तत्थ रागं जनेति,[2] मुत्तिं येव गवेसति ॥ १३८ ॥
तथेव त्वं सब्बभवे, पस्स अन्दुघरे विय।
नेक्खम्माभिमुखो होहि, भवतो परिमुत्तिया" ति ॥ १३९ ॥

४. पञ्ञापारमी

३६. अथस्स 'न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बं' ति, उत्तरिम्पि उपधारयतो चतुत्थिं पञ्ञापारमिं दिस्वा एतदहोसि— "सुमेधपण्डित, त्वं इतो पट्ठाय पञ्ञापारमिं पि पूरेय्यासि। हीनमज्झिमुक्कट्ठेसु कञ्चि अवज्जेत्वा सब्बेपि पण्डिते उपसंकमित्वा पञ्हं पुच्छेय्यासि। यथाहि पिण्डचारिको भिक्खु हीनादिभेदेसु[3] कुलेसु कञ्चि अवज्जेत्वा पटिपाटिया पिण्डाय चरन्तो खिप्पं यापनं लभति; एवं त्वं पि सब्बपण्डिते उपसंकमित्वा पञ्हं पुच्छन्तो बुद्धो भविस्ससी" ति, चतुत्थं पञ्ञापारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि।

तेन वुत्तं[4]—

B. 27 "न हेते एत्तका येव, बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञे पि विचिनिस्सामी, ये धम्मा बोधिपाचना ॥ १४० ॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं, चतुत्थं पञ्ञापारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि, आसेवितनिसेवितं ॥ १४१ ॥

१. बु. वं. ३१४-१५ पृ. २. अभि जनेति, ना.। ३. हीनादिकेसु म.। ४. बु. वं. ३१५ पृ.

रहता है, वहाँ रहना नहीं चाहता है; उसी प्रकार तू भी सभी भवों अर्थात् योनियों को बन्धनागार के समान समझ, सभी योनियों से मुक्त होने के लिए उत्कण्ठित हो नैष्क्रम्य के अभिमुख होओ; इस प्रकार तुम बुद्ध होओगे", (ऐसा सोच) तृतीय नैष्क्रम्यपारमिता की पूर्ति के लिए दृढ़ संकल्प किया।

इसलिए कहा गया है—

"बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते हैं। अन्य धर्म भी जो बोधि की प्राप्ति में सहायक हैं, उन्हें भी मैं ढूँढ़ूगा ॥ १३५ ॥

ऐसा चिन्तन करते हुए पूर्व ऋषियों द्वारा सेवित तृतीय पारमिता नैष्क्रम्य-पारमिता को (मैंने) देखा ॥ १३६ ॥

(तथा अपने को कहा) यदि तुम बोधि प्राप्त करना चाहते हो तो तृतीय नैष्क्रम्यपारमिता को दृढ़ता के साथ ग्रहण कर नैष्क्रम्य की चरम अवस्था तक पहुँच जाओ ॥ १३७ ॥

जिस प्रकार चिरकाल तक कारागार में रहकर, दुःख को भोगने वाला मनुष्य इस बन्धनागार के प्रति आसक्ति नहीं रखता है, उससे छुटकारा पाना ही चाहता है ॥ १३८ ॥,

उसी प्रकार तुम सभी भवों (योनियों) को बन्धनागार समझ, भव अर्थात् आवागमन से मुक्त होने के लिए नैष्क्रम्य के अभिमुख होओ" ॥ १३९ ॥

४. प्रज्ञापारमिता

३६. इसके बाद—'इतने ही बुद्धकारक धर्म नहीं हो सकते हैं,' औरों के सम्बन्ध में चिन्तन करते हुए चतुर्थ (पारमिता) प्रज्ञापारमिता को देख उन्होंने ऐसा विचार किया—"पण्डित सुमेध, तुम अब से प्रज्ञा पारमिता को ही पूर्ण करो। उत्तम, मध्यम तथा अधम किसी को भी बिना छोड़े सभी पण्डितों के निकट जा तुझे प्रश्न पूछना चाहिए। जिस प्रकार भिक्षाचारी भिक्षु उत्तम, मध्यम हीन सभी कुलों में भेद रहित हो बिना किसी को छोड़े क्रमशः पिण्डाचार करते हुए शीघ्र ही भोजन प्राप्त कर लेता है; उसी प्रकार तू भी सभी पण्डितों के निकट जा प्रश्न पूछते हुए बुद्ध होओगे", ऐसा सोच चतुर्थ पारमिता की पूर्त्ति के लिए दृढ़ता के साथ अधिष्ठान किया।

इसलिए कहा गया है—

(केवल) इतने ही बुद्धकारक धर्म नहीं हो सकते हैं। बोधि प्राप्ति में सहायक अन्य धर्मों का भी मैं संचयन करूँगा ॥ १४० ॥

ऐसा चिन्तन करते हुए पूर्व महर्षियों द्वारा आसेवित चतुर्थ पारमिता प्रज्ञा-पारमिता को देखा ॥ १४१ ॥

इमं त्वं चतुत्थं ताव, दळ्हं कत्वा समादिय ।
पञ्ञापारमितं गच्छ यदि बोधिं पत्तुमिच्छसि ॥ १४२ ॥
R.22 यथापि भिक्खु भिक्खन्तो, हीनमुक्कट्ठमज्झिमे ।
कुलानि न विवज्जेन्तो, एवं लभति यापनं ॥ १४३ ॥
तथेव त्वं सब्बकाले,[1] परिपुच्छन्तो बुधं जनं ।
पञ्ञापारमितं गन्त्वा, सम्बोधिं पापुणिस्ससो" ति ॥ १४४ ॥

५. विरियपारमी

३७. अथस्स 'न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बं' ति, उत्तरिं पि उपधारयतो पञ्चमं विरियपारमिं दिस्वा एतदहोसि—"सुमेधपण्डित, त्वं इतो पट्ठाय विरियपारमिम्पि पूरेय्यासि। यथा हि सीहो मिगराजा सब्बइरियापथेसु दळ्हविरियो होति, एवं त्वम्पि सब्बभवेसु सब्बइरियापथेसु दळ्हविरियो अनोलीनविरियो समानो बुद्धो भविस्ससी" ति, पञ्चमं विरियपारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि।

तेन वुत्तं[2]—

"न हेते एत्तका येव, बुद्धधम्मा भविस्सरे ।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि, ये धम्मा बोधिपाचना ॥ १४५ ॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं, पञ्चमं विरियपारमिं ।
पुब्बकेहि महेसीहि, आसेवितनिसेवितं ॥ १४६ ॥
इमं त्वं पञ्चमं ताव, दळ्हं कत्वा समादिय ।
विरियपारमितं गच्छ, यदि बोधिं पत्तुमिच्छसि ॥ १४७ ॥
यथापि सीहो मिगराजा, निसज्जट्ठानचंकमे ।
अलीनविरियो होति, पग्गहीतमनो सदा ॥ १४८ ॥
तथेव त्वम्पि[3] सब्बभवे, पग्गण्ह विरियं दळ्हं ।
विरियपारमितं गन्त्वा, सम्बोधिं पापुणिस्ससी"ति, ॥ १४९ ॥

६. खन्तिपारमी

३८. अथस्स 'न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बं ति, उत्तरिम्पि उपधारयतो छट्ठं खन्तिपारमिं दिस्वा एतदहोसि-
B.28 "सुमेधपण्डित, त्वं इतो पट्ठाय खन्तिपारमिम्पि पूरेय्यासि; सम्मानेपि अवमानेपि खमोव भवेय्यासि। यथाहि पठविंयं नाम

---

१. ० कालं म. । २. बु. वं. ३१५ पृ. । ३. त्वं म. ।

(पुनः अपने से कहा) यदि तुम बोधि को प्राप्त करना चाहते हो, तो इस चतुर्थ पारमिता को दृढ़ता के साथ ग्रहण करते हुए प्रज्ञा की पराकाष्ठा तक पहुँच जाओ ॥ १४२ ॥

जिस प्रकार भिक्षाचार करता हुआ भिक्षु उत्तम, मध्यम या अधम किसी भी एक कुल को बिना छोड़े पिण्डिपात प्राप्त करता है ॥ १४३ ॥,

उसी प्रकार तू सभी पण्डित जनों से सभी समय प्रश्न पूछते हुए प्रज्ञा की चरम सीमा तक पहुंच बुद्धत्व को प्राप्त करोगे" ॥ १४४ ॥

५. वीर्यपारमिता

३७. पुनः 'बुद्ध कारक धर्म इतने ही नहीं हो सकते हैं, इनके अतिरिक्त भी हैं, जिनकी चिन्ता करते हुए पाँचवी पारमिता वीर्यपारमिता को देख उन्होंने अपने को कहा—"पण्डित सुमेध, तुम अब से वीर्यपारमिता को पूरा करो। जिस प्रकार मृगराज सिंह सभी अवस्थाओं में दृढ़ उत्साह के साथ रहता है, उसी प्रकार तुम भी सभी योनियों तथा अवस्थाओं में दृढ़ उद्योगी, अनासक्त एवं वीर्यवान हो बुद्धत्व को प्राप्त करोगे" ऐसा सोच पाँचवी वीर्यपारमिता की पूर्ति के लिए मैंने दृढ़ संकल्प किया।

इसलिए कहा गया है—

"इतने ही बुद्धकारक धर्म नहीं हो सकते हैं। बोधि प्राप्ति में सहायक जो कोई अन्य धर्म भी हैं, मैं उनकी पर्येषणा करूँगा ॥ १४५ ॥

ऐसा चिन्तन करते हुए पूर्व महर्षियों द्वारा आसेवित पाँचवी वीर्यपारमिता को मैंने देखा ॥ १४६ ॥

यदि तुम बोधि प्राप्त करना चाहते हो, तो इस पाँचवी वीर्य पारमिता को दृढ़ता के साथ ग्रहण कर वीर्य की चरम सीमा तक पहुँच जाओ ॥ १४७ ॥

जिस प्रकार मृगराज सिंह बैठते, खड़ा होते, चलते—सभी अवस्थाओं में सर्वदा आलस्यहीन, उद्योगी तथा दृढ़ मन वाला होता है ॥ १४८ ॥,

उसी प्रकार तुम भी सभी योनियों में दृढ़ उत्साह को धारण करते हुए वीर्य की चरम सीमा तक पहुँच कर सम्बोधि को प्राप्त करोगे" ॥ १४९ ॥

६. क्षान्तिपारमिता

३८. पुनः 'बुद्धकारक धर्म इतने ही नहीं हो सकते हैं,' और भी हैं, ऐसा विचारते हुए षष्ठ पारमिता क्षान्तिपारमिता को देख उन्होंने कहा—"पण्डित सुमेध, तुम्हें अब से क्षान्तिपारमिता की पूर्ति करनी चाहिए, सम्मान या अपमान दोनों के प्रति क्षमाशील होना चाहिए। जिस प्रकार मनुष्य पृथ्वी

सुचिम्पि पक्खिपन्ति, असुचिं पि। न तेन पठवी सिनेहं, न पटिघ करोति, खमति सहति अधिवासेति येव। एवमेव त्वम्पि सम्मान-नावमाननेसु[१] खमोव[१] समानो बुद्धो भविस्ससी" ति, छट्ठं खन्तिपारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि।

तेन वुत्तं[२] :—

"न हेते एत्तका येव, बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि, ये धम्मा बोधिपाचना॥ १५०॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं, छट्ठमं खन्तिपारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि, आसेवितनिसेवितं॥ १५१॥
इमं त्वं छट्ठमं ताव, दळ्हं कत्वा समादिय।
तत्थ अद्वेज्झमानसो, सम्बोधिं पापुणिस्ससि॥ १५२॥
R. 23 यथापि पठवी नाम, सुचिम्पि असुचिम्पि च।
सब्बं सहति निक्खेपं, न करोति पटिघं दयं[३]॥ १५३॥
तथेव त्वम्पि सब्बेसं, सम्मानावमानक्खमो।
खन्तिपारमितं गन्त्वा, सम्बोधिं पापुणिस्ससी"ति॥ १५४॥

७. सच्चपारमी

३६. अथस्स 'न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बं ति, उत्तरिम्पि[४] उपधारयतो सत्तमं सच्चपारमिं दिस्वा एतदहोसि— "सुमेधपण्डित, त्वं इतो पट्ठाय सच्चपारमिं पि पूरेय्यासि। असनिया मत्थके पतमानायपि धनादीनं[५] अत्थाय छन्दादीनं[६] वसेन सम्पजानमुसावादं नाम मा अभासि[७]। यथाहि ओसधि-तारका नाम सब्बउतुसु अत्तनो गमनवीथिं जहित्वा अञ्ञाय वीथिया न गच्छति, सकवीथियाव गच्छति; एवमेवं त्वम्पि सच्चं पहाय मुसावादं नाम अकरोन्तो येव बुद्धो भविस्ससी" ति, सत्तमं सच्चपारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि।

तेन वुत्तं[८]—

"न हेते एत्तका येव, बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि, ये धम्मा बोधिपाचना॥ १५५॥

---

१. सम्माननावमानक्खमो म.। २. बु. वं. ३१६ पृ. ३. तया म.। ४. उत्तरिपि म.। ५. धनादीनि म.। ६. छन्दादि म.। ७. अकासि रो.। ८. बु. वं. ३१६ पृ.।

पर शुद्ध वस्तु को भी फेंकते हैं; अशुद्ध वस्तु को भी। इससे पृथ्वी न तो (शुद्ध वस्तु फेकने वाले से) स्नेह करती है, न (अशुद्ध वस्तु) फेंकने वाले के प्रति हिंसा की भावना रखती है, वह उन्हें क्षमा करती है, सहती है तथा सब को स्वीकार करती है। उसी प्रकार तुम भी सम्मान अपमान दोनों के प्रति सहनशील होते हुए बुद्ध होओगे," ऐसा सोच षष्ठ परमिता की पूर्ति के लिए दृढ़ता पूर्वक अधिष्ठान किया।

इसलिए कहा गया है—

"इतने ही बुद्धकारक धर्म नहीं हो सकते हैं। बोधि प्राप्ति में सहायक जो अन्य धर्म भी हैं, उन्हें भी मैं ढूँढूगा॥ १५०॥

ऐसी पर्येषणा करते हुए मैंने पूर्व महर्षियों द्वारा आसेवित षष्ठ पारमिता क्षान्ति-पारमिता को देखा॥ १५१॥

इस षष्ठ पारमिता को दृढ़ता के साथ धारण करते हुए, स्थिर चित्त हो सम्बोधि को प्राप्त करोगे॥ १५२॥

जिस प्रकार पृथ्वी पवित्र तथा अपवित्र वस्तुओं को फेंके जाने पर सब कुछ सहन करती है, न तो प्रसन्नता या हिंसा की भावना से युक्त होती है॥१५३॥,

उसी प्रकार तू भी सम्मान अपमान के प्रति सहनशील होकर क्षान्ति (सहनशीलता) की चरम अवस्था को प्राप्त कर सम्बोधि (बुद्धत्व) का लाभ करोगे" ॥ १५४॥

७. सत्यपारमिता

३६. पुनः 'इतने ही बुद्धकारक धर्म नहीं हो सकते हैं', और भी हैं, ऐसा विचार करते हुए सातवीं पारमिता सत्यपारमिता को देख उन्होंने ऐसा सोचा—"पण्डित सुमेध, अब से तू सत्य पारमिता का ही पूरण करो। सिर पर बिजली के गिरने पर भी धन आदि के कारण या अन्य किसी इच्छा के वशीभूत हो, जान कर असत्य भाषण न करो। जिस प्रकार शुक्र (औषधि) तारा किसी भी ऋतु में अपने गमन मार्ग को छोड़कर, अन्य मार्ग से नहीं जाता है, अपने ही मार्ग से जाता है; उसी प्रकार तुम भी सिवा सत्य कथन के, असत्य कथन कभी भी न कहते हुए बुद्ध होओगे" ऐसा विचार उन्होंने सातवीं पारमिता के परिपूरण के लिए दृढ़ सङ्कल्प किया।

इसलिए कहा गया है—

"इतने ही बुद्ध कारक धर्म नहीं हो सकते हैं। बोधि की प्राप्ति में सहायक अन्य धर्मों की पर्येषणा करूँगा॥ १५५॥

विचिनन्तो तदा दक्खिं, सत्तमं सच्चपारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि, आसेवितनिसेवितं ॥ १५६ ॥
B. 29 इमं त्वं सत्तमं ताव, दळ्हं कत्वा समादिय।
तत्थ अद्वेज्झवचनो,[1] सम्बोधिं पापुणिस्ससि ॥ १५७ ॥
यथापि ओसधी नाम, तुलाभूता सदेवके।
समये उतुवस्से वा, नातिक्कमति वीथितो ॥ १५८ ॥
तथेव त्वम्पि सच्चेसु, मा वोक्कमि हि[2] वीथितो।
सच्चपारमितं गन्त्वा, सम्बोधिं पापुणिस्ससी"ति ॥ १५९ ॥

८. अधिट्ठानपारमी

४०. अथस्स 'न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बं' ति, उत्तरिम्पि उपधारयतो अट्ठमं अधिट्ठानपारमिं दिस्वा एतदहोसि— "सुमेध पण्डित, त्वं इतो पट्ठाय अधिट्ठानपारमिं पि पूरेय्यासि। यं अधिट्ठासि तस्मिं अधिट्ठाने निच्चलो भवेय्यासि। यथा हि पब्बतो नाम सब्बासु दिसासु वाते पहरन्ते[3]पि न कम्पति, न चलति, अत्तनो ठाने येव तिट्ठति; एवमेवं त्वम्पि अत्तनो अधिट्ठाने निच्चलो होन्तोव बुद्धो भविस्ससी" ति अट्ठमं अधिट्ठानपारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि।

तेन वुत्तं[4]—

"न हेते एत्तका येव, बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि, ये धम्मा बोधिपाचना ॥ १६० ॥
R. 24 विचिनन्तो तदा दक्खिं, अट्ठमं अधिट्ठानपारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि, आसेवितनिसेवितं ॥ १६१ ॥
इमं त्वं अट्ठमं ताव, दळ्हं कत्वा समादिय।
तत्थ त्वं अचलो हुत्वा, सम्बोधिं पापुणिस्ससि ॥ १६२ ॥
यथापि पब्बतो सेलो, अचलो सुप्पतिट्ठितो।
न कम्पति भुसवातेहि, सकट्ठानेव तिट्ठति ॥ १६३ ॥
तत्थेव त्वम्पि अधिट्ठाने, सब्बदा अचलो भव।
अधिट्ठानपारमिं[5] गन्त्वा, सम्बोधिं पापुणिस्ससी"ति ॥ १६४ ॥

---

१. ⁰वचना म.। २. वोक्कमसि म.। ३. पहटो म.।
४. बु. वं. ३१६-१७ पृ.। ५. ⁰पारमितं म.।

इस प्रकार पर्येषणा करते हुए पूर्व महर्षियों द्वारा आसेवित सातवीं सत्य-पारमिता को देखा ॥ १५६ ॥

(तथा अपने को कहा) तुम इस सप्तम पारमिता को दृढ़ता पूर्वक धारण कर कम्पन रहित एक वचन बोलनेवाला होकर सम्बोधि को प्राप्त करोगे ॥ १५७ ॥

जिस प्रकार शुक्रतारा देवलोक में एक समान हो, वर्षा ऋतु या अन्य समय में अपने गमनमार्ग का अतिक्रमण नहीं करता है ॥ १५८ ॥,

उसी प्रकार तुम भी सत्यों के विषय में, सत्यकथन मार्ग से कभी भी विचलित न हो। (इस प्रकार) सत्य कथन में चरमोत्कर्ष प्राप्त कर सम्बोधि का लाभ करोगे" ॥ १५९ ॥

८. अधिष्ठानपारमिता

४०. तदनन्तर 'इतने ही बुद्ध कारक धर्म नहीं हो सकते हैं, अन्यों के सम्बन्ध में चिन्तन करते हुए अष्टम अधिष्ठानपारमिता को देख ऐसा मन में विचार किया—"पण्डित सुमेध, तुम अब से अधिष्ठानपारमिता का पूरण करो। जो कुछ भी तुम निश्चय करो, उसमें अचल बने रहो। जिस प्रकार पर्वत सभी दिशाओं से हवा से झकझोरे जाने पर भी, न काँपता है, न चलायमान होता है, अपने स्थान पर ही स्थित रहता है; उसी प्रकार तुम अपने निश्चय में अचल होते हुए बुद्ध होओगे, ऐसा विचार आठवीं पारमिता अधिष्ठान-पारमिता की पूर्ति के लिए दृढ़ संकल्प किया।

इसलिए कहा गया है—

"बुद्धकारक धर्म इतने ही नहीं हो सकते हैं। जो अन्य धर्म भी बोधि की परिपक्वता में सहायक हैं, उनका सञ्चयन करूँगा ॥ १६० ॥

उनका पर्येषण करते हुए उस समय मैंने पूर्व के महर्षियों द्वारा आसेवित अधिष्ठानपारमिता को देखा ॥ १६१ ॥

तुम इस आठवीं पारमिता को दृढ़ता पूर्वक धारण कर उसमें अचल हो बुद्धत्व को प्राप्त करोगे ॥ १६२ ॥

जिस प्रकार अचल एवं सुप्रतिष्ठित शैलपर्वत प्रचण्ड वायु के झकझोरे से काँपता नहीं है, अपने स्थान पर स्थित रहता है ॥ १६३ ॥

उसी प्रकार तुम भी अपने निश्चय में सर्वदा अडिग होकर अधिष्ठान-पारमिता की पराकाष्ठा को प्राप्त कर बुद्ध पद का लाभ करोगे" ॥ १६४ ॥

९. मेत्तापारमी

४१. अथस्स 'न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बं ति, उत्तरिम्पि उपधारयतो नवमं मेत्तापारमिं दिस्वा एतदहोसि—"सुमेधपण्डित, त्वं इतो पट्ठाय नवमं[1] मेत्तापारमिं पि पूरेय्यासि। हितेसु अहितेसु पि एकचित्तो भवेय्यासि। यथापि उदकं नाम पापजनस्स पि कल्याणजनस्स पि सीतभावं[2] एकसदिसं कत्वा
B. 30 फरति; एवमेवं त्वम्पि सब्बसत्तेसु मेत्तचित्तेन एकचित्तोव होन्तो बुद्धो भविस्ससी" ति नवमं मेत्तापारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि। तेन वुत्तं[3]—

"न हेते एत्तका येव, बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि, ये धम्मा बोधिपाचना ॥ १६५ ॥
विचिनन्तो तदा दक्खिं, नवमं मेत्तापारमिं।
पुब्बकेहि[4] महेसीहि, आसेवितनिसेवितं ॥ १६६ ॥
इमं त्वं नवमं ताव, दळ्हं कत्वा समादिय।
मेत्ताय असमो होहि, यदि बोधिं पत्तुमिच्छसि ॥ १६७ ॥
यथापि उदकं नाम, कल्याणे पापके जने।
समं फरति सीतेन, पवाहेति रजोमलं ॥ १६८ ॥
तथेव त्वम्पि अहितहिते, समं मेत्ताय भावय।
मेत्ताय[5] पारमितं गन्त्वा, सम्बोधिं पापुणिस्ससी"ति ॥१६९॥

१०. उपेक्खापारमी

४२. अथस्स 'न एत्तकेहेव बुद्धकारकधम्मेहि भवितब्बं ति, उत्तरिम्पि उपधारयतो दसमं उपेक्खापारमिं दिस्वा एतदहोसि—सुमेधपण्डित, त्वं इतो पट्ठाय उपेक्खापारमिं पि पूरेय्यासि। सुखे पि दुक्खे पि मज्झत्तोव भवेय्यासि। यथापि[6] पठवी नाम सुचिम्पि असुचिम्पि पक्खिप्पमाने मज्झत्ताव होति; एवमेवं त्वम्पि सुख-दुक्खेसु मज्झत्तोव होन्तो[7] बुद्धो भविस्ससी' ति दसमं उपेक्खापारमिं दळ्हं कत्वा अधिट्ठासि। तेन वुत्तं[8]—

R. 25 "न हेते एत्तका येव, बुद्धधम्मा भविस्सरे।
अञ्ञेपि विचिनिस्सामि, ये धम्मा बोधिपाचना ॥ १७० ॥

१. रो. पोत्थके नत्थि। २. सीतिभाव ० म.। ३. बु. वं. ३१७ पृ.। ४. पुब्बतो हि. म.। ५. मेत्ता रो.। ६. हि. म.। ७. होन्ता म.। ८. बु. वं. ३१७ पृ.।

९. मैत्रीपारमिता

४१. पुनः 'इतने ही बुद्ध कारक धर्म नहीं हो सकते हैं, (इनके अतिरिक्त) अन्यों का चिन्तन करते हुए नवम पारमिता मैत्रीपारमिता को देख उन्होंने ऐसा विचार किया—"पण्डित सुमेध, तुम्हे अब से मैत्रीपारमिता की पूर्ति करनी चाहिए। हित अहित अर्थात् मित्र तथा शत्रु दोनों के प्रति समान भाव रखना चाहिए। जिस प्रकार जल पापी तथा पुण्यात्मा दोनों के लिए एक समान शीतलता धारण करता है, उसी प्रकार तुम भी सभी प्राणियों के प्रति एक समान मैत्री-चित्त से युक्त होते हुए बुद्ध होओगे", ऐसा विचार नवम पारमिता मैत्रीपारमिता की पूर्त्ति के लिए दृढ़ संकल्प किया।

इसलिए कहा गया है—

"केवल इतने ही बुद्ध कारक धर्म नहीं हो सकते हैं। अन्य भी जो बोधि प्राप्ति में सहायक हैं, उनका में सञ्चयन करूँगा ॥ १६५ ॥

ऐसी पर्येषणा करते हुए पूर्व के महर्षियों द्वारा आसेवित नवम पारमिता मैत्रीपारमिता को देखा ॥ १६६ ॥

(तथा अपने को सम्बोधित करते हुए कहा)—तुम इस नवम पारमिता को दृढ़ता पूर्वक धारण कर मैत्री में अद्वितीय बनो, यदि तुम बुद्धपद को प्राप्त करना चाहते हो ॥ १६७ ॥

जिस प्रकार जल पापी तथा पुण्यात्मा दोनों को समान रूप से शीतलता प्रदान करता है तथा दोनों के मल को धो डालता है ॥ १६८ ॥,

उसी प्रकार तुम भी शत्रु मित्र दोनों के प्रति समान भाव से मैत्री की भावना करते हुए मैत्री की पराकाष्ठा तक पहुँच सम्बोधि प्राप्त करोगे" ॥१६९॥

१०. उपेक्षापारमिता

४२, तदनन्तर 'इतने ही बुद्ध कारक धर्म नहीं हो सकते हैं", और भी हैं, ऐसा चिन्तन करते हुए दसम उपेक्षापारमिता को देख मन में ऐसा विचार किया—"पण्डित सुमेध, तुम अब से उपेक्षा पारमिता को भी पूरण करने में लगो। सुख दुःख में तटस्थ बने रहो। जिस प्रकार पृथ्वी शुचि, अशुचियों (शुद्ध तथा अशुद्ध वस्तुओं) के उस पर फेंके जाने पर मध्यस्थ ही बनी रहती है, उसी प्रकार तुम भी सुख दुःख दोनों अवस्थाओं में मध्यस्थ होकर बुद्ध-पद प्राप्त करोगे", ऐसा विचार दसवीं पारमिता उपेक्षापारमिता की पूर्त्ति करने के लिए दृढ़ संकल्प किया।

इसलिए कहा गया है—

"केवल इतने ही बुद्ध कारक धर्म नहीं हो सकते हैं। अन्य भी जो सम्बोधि की परिपक्वता में सहायक धर्म हैं, मैं 'उनकी पर्येषणा करूँगा ॥१७०॥

विचिनन्तो तदा दक्खिं, दसमं उपेक्खापारमिं।
पुब्बकेहि महेसीहि, आसेवितनिसेवितं ॥ १७१ ॥
इमं त्वं दसमं ताव, दळ्हं कत्वा समादिय।
तुलाभूतो दळ्हो हुत्वा, सम्बोधिं पापुणिस्ससि ॥ १७२ ॥
यथा पि पठवी नाम, निक्खित्तं असुचिं सुचिं।
उपेक्खति उभोपेते, कोपानुनयवज्जिता ॥ १७३ ॥
तथेव त्वम्पि सुखदुक्खे, तुलाभूतो सदा भव।
उपेक्खापारमितं गन्त्वा, सम्बोधिं पापुणिस्ससी" ति ॥१७४॥

B. 31 ४३. ततो चिन्तेसि—"इमस्मिं लोके बोधिसत्तेहि पूरेतब्बा बोधिपरिपाचना बुद्धकारकधम्मा एत्तका येव। दसपारमियो ठपेत्वा अञ्ञे नत्थि। इमापि दसपारमियो उद्धं आकासे पि नत्थि, हेट्ठा पठवियं पि, पुरत्थिमादिसु दिसासु पि नत्थि; मय्हं येव पन हदयब्भन्तरे पतिट्ठिता" ति। एवं तासं हदये पतिट्ठितभावं दिस्वा सब्बा पि दळ्हं कत्वा अधिट्ठाय पुनप्पुनं सम्मसन्तो अनुलोमपटिलोमं सम्मसति। परियन्ते गहेत्वा आदिं पापेति, आदिम्हि गहेत्वा परियन्ते ठपेति, मज्झे गहेत्वा उभतो ओसापेति, उभतो कोटिसु गहेत्वा मज्झे ओसापेति। अंगपरिच्चागो पारमियो नाम, बाहिरभण्डपरिच्चागो उपपारमियो नाम, जीवितपरिच्चागो परमत्थपारमियो नामाति। दस पारमियो, दस उपपारमियो, दस परमत्थपारमियो ति यन्ततेलं विनिवट्टेन्तो विय महासिनेरुं मन्थं कत्वा चक्कवाळमहासमुद्दं[1] आलोळेन्तो विय च सम्मसि।

तस्स दस पारमियो सम्मसन्तस्स धम्मतेजेन चतुनहुताधिकद्वियोजनसतसहस्सबहळा अयं महापठवी हत्थिना अक्कन्तनळकलापो विय पीळियमानं उच्छुयन्तं विय च महाविरवं विरवमाना[2] सङ्कम्पि सम्पकम्पि सम्पवेधि; कुलाळचक्कं विय तेलयन्तचक्कं विय च परिब्भमि।

तेन वुत्तं[3]—
"एत्तका येव ते लोके, ये धम्मा बोधिपाचना।
ततुद्धं नत्थि अञ्ञत्र, दळ्हं तत्थ पतिट्ठह ॥ १ ५ ॥
इमे धम्मे सम्मसतो, सभावसरसलक्खणे।
धम्मतेजेन वसुधा, दससहस्सी पकम्पथ ॥ १७६ ॥

१. °सह समुद्दं म.। २. °मानो म.। ३. बु. वं. ३१७—१८ पृ.।

ऐसी खोज करते हुए पूर्व के महर्षियों (बोधिसत्त्वों) द्वारा आसेवित दसवीं उपेक्षापारमिता को देखा ॥ १७१ ॥

तुम इस दसवीं पारमिता को दृढ़ता के साथ धारण कर, तुलाभूत अर्थात् समान भाव सम्पन्न एवं दृढ़ होकर बुद्धत्व की प्राप्ति करोगे ॥१७२॥

जिस प्रकार पृथ्वी अपने ऊपर पवित्र एवं अपवित्र वस्तुओं के फेंके जाने पर दोनों के प्रति क्रोध एवं प्रसन्नता रहित उपेक्षा भाव रखती है ॥१७३॥,

उसी प्रकार तुम भी सुख दुःख के प्रति सर्वदा समानदर्शी बने हुए उपेक्षा की पराकाष्ठा तक पहुँच बुद्धपद प्राप्त करोगे" ॥१७४॥

४३. तदनन्तर उन्होंने विचार किया—"इस लोक में बोधिसत्वों द्वारा पूरे किए जाने वाले, बोधि को परिपक्व करने वाले तथा बुद्धकारक धर्म इतने ही हैं। इन दस पारमिताओं को छोड़कर अन्य कुछ नहीं है। ये दस पारमितायें भी न ऊपर आकाश में हैं, न नीचे पृथ्वी पर, न पूर्व आदि दिशाओं में हैं, वरन् मेरे हृदयगर्भ में ही प्रतिष्ठित हैं"। इस प्रकार उनके हृदय में ही प्रतिष्ठित होने की बात को जान, सब का दृढ़ता के साथ अधिष्ठान करते हुए पुनः पुनः सम्मसन कर अनुलोम प्रतिलोम क्रम से उनके ज्ञान को दृढ़ किया। वे अन्त से प्रारम्भ कर आदि तक पहुँचाते थे, आदि से लेकर अन्त तक पहुँचाते थे, मध्य से प्रारम्भ कर दोनों ओर छोरों तक ले जाते थे, तथा दोनों छोरों से प्रारम्भ कर मध्य तक ला समाप्त करते थे। अपने अंग का परित्याग पारमितायें हैं, बाह्य वस्तुओं का परित्याग उपपारमितायें हैं, जीवन का परित्याग परमार्थपारमितायें हैं। (इस प्रकार) दस पारमितायें, दस उपपारमितायें दस परमार्थपारमितायें हैं, इन पर कोल्हू के चलने के समान महा सुमेरु पर्वत को मथनी बना चक्रवाल (समस्त ब्रह्माण्ड) रूपी महासमुद्र को मथने के समान विचार किया।

उन दस पारमिताओं पर विचार करते समय धर्मतेज से चार नहुत दो लाख योजन घनी यह महापृथ्वी हाथी से आक्रान्त कमल नाल के समान या पेरे जाते हुए ऊख यन्त्र के समान भयंकर रव करती हुई, पुनः पुनः कांपी तथा कुम्हार के चक्र या कोल्हू के समान परिभ्रमित हुई।

इसलिए कहा गया है—

"बोधि अर्थात् परमज्ञान के परिपाक के लिए लोक में इतने ही धर्म हैं। इनसे अधिक अन्य कुछ नहीं है। इसलिए उनमें दृढ़ता के साथ प्रतिष्ठित हो ॥१७५॥

स्वभाव, कार्य तथा लक्षण सहित उन धर्मों पर विचार करते हुए धर्मतेज से दस हजार ब्रह्माण्ड वाली पृथ्वी काँप उठी ॥१७६॥

चलति रवति पुथवी, उच्छुयन्तं व पीळितं।
तेलयन्ते यथा चक्कं, एवं कम्पति मेदिनी" ति ॥ १७७ ॥

R. 26 ४४. महापठविया कम्पमानाय रम्मनगरवासिनो सण्ठातु
असक्कोन्ता युगन्तवातब्भाहता महासाला विय मुच्छितमुच्छिता
B. 32 पपतिंसु। घटादीनि कुलाळभाजनानि पवट्टन्तानि अञ्ञमञ्ञं
पहरन्तानि चुण्णविचुण्णानि अहेसुं। महाजनो भीततसितो
सत्थारं उपसंकमित्वा "किन्नु खो, भगवा, नागावट्टो अयं,
भूतयक्खदेवतासु अञ्ञतरावट्टो ति न हि मयं एतं जानाम,
अपिच खो सब्बो पि अयं महाजनो उपद्दुतो। किन्नु खो, इमस्स
लोकस्स पापकं भविस्सति, उदाहु कल्याणं? कथेथ नो एतं
कारणं" ति आह।

सत्था तेसं कथं सुत्वा "तुम्हे मा भायथ, मा चिन्तयित्थ, नत्थि वो इतो निदाना भयं। यो सो मया अज्ज 'सुमेधपण्डितो अनागते गोतमो नाम बुद्धो भविस्सती' ति व्याकतो, सो इदानि[1] पारमियो सम्मसति। तस्स पारमियो सम्मसन्तस्स विलोळेन्तस्स धम्मतेजेन सकलदससहस्सी लोकधातु एकप्पहारेन कम्पति चेव रवति चा" ति आह।

तेन वुत्तं[2]—

"यावता परिसा आसि, बुद्धस्स परिवेसने।
पवेधमाना सा तत्थ, मुच्छिता सेति भूमियं ॥ १७८ ॥
घटानेकसहस्सानि, कुम्भीनं च सता बहू।
सञ्चुण्णा मथिता तत्थ, अञ्ञमञ्ञं पघट्टिता ॥ १७९ ॥
उब्बिग्गा तसिता भीता, भन्ता व्याधितमानसा।
महाजना[3] समागम्म, दीपंकरमुपागमुं ॥ १८० ॥
किं भविस्सति लोकस्स, कल्याणं अथ पापकं।
सब्बो उपद्दुतो लोको, तं विनोदेहि चक्खुम ॥ १८१ ॥
तेसं तदा सञ्ञापेसि, दीपंकरो महामुनि।
विस्सत्था होथ मा भाथ, इमस्मिं पुथविकम्पने ॥ १८२ ॥
यमहं अज्ज व्याकासिं, बुद्धो लोके भविस्सति।
एसो सम्मसती धम्मं, पुब्बकं जिनसेवितं ॥ १८३ ॥
तस्स सम्मसतो धम्मं, बुद्धभूमिं असेसतो।
तेनायं कम्पिता पुथवी, दससहस्सी सदेवके" ति ॥ १८४ ॥

१. °दस म.। २. बु. वं. ३१८ पृ.। ३. महाजनो म.।

ऊख पेरे जाने वाले चलायमान ईखयन्त्र के समान या तेल के कोल्हूचक्र के समान यह पृथ्वी चलायमान हुई, काँपी तथा इससे भयंकर शब्द हुआ" ॥१७७॥

४४. महापृथ्वी के प्रकम्पित होने के कारण रम्य नगरवासी खड़े न रह सके, प्रलय वायु से प्रताड़ित महासालवृक्ष के समान मूर्छित हो गिर पड़े। घड़े आदि तथा कुम्हार के बनते हुए बर्तन आपस में टकराकर चूर्ण विचूर्ण हो गये। जनसमुदाय ने भयभीत एवं त्रसित हो भगवान के निकट जा पूछा—"भगवान, क्या यह नागों का विप्लव (आवर्त) है या भूत, यक्ष देवताओं में से किसी का यह उपद्रव है? इसे हमलोग नहीं जानते हैं, पर समस्त जनता भयभीत है। क्या इस लोक का कुछ अनिष्ट होगा अथवा भला? हमें इसका कारण बतलावें।"

शास्ता ने उनकी बातों को सुनकर ऐसा कहा—"आप लोग डरें नहीं, चिन्ता न करें, इससे कोई भय का कारण नहीं है। आज जो मेरे द्वारा यह कहा गया कि 'पण्डित सुमेध भविष्य में गौतम नामक बुद्ध होंगे', वे अभी पारमिताओं पर विचार कर रहे हैं। उनके पारमिताओं पर विचार करते हुए तथा उनके मन्थन करते समय धर्मतेज से दस हजार ब्रह्माण्ड एक झटका लगने सा काँपते हैं तथा घोर शब्द करते हैं।"

इसलिए कहा गया है:—

"बुद्ध के भोजन करने के स्थान पर जो मण्डली थी, वह वहाँ कम्पित मूर्छित हो पृथ्वी पर पड़ गई ॥१७८॥

अनेक सहस्र घट, सैकड़ों मटके एक दूसरे से टकरा कर चूर्ण विचूर्ण हो गये ॥

जन समुदाय ने उद्विग्न, त्रसित, भयभीत भ्रान्त तथा उत्पीड़ित हो एक साथ तथागत के निकट आ (पूछा) ॥१८०॥

हे चक्षुमान, इस लोक को कुछ अनिष्ट होने जा रहा है अथवा कुछ भलाई होने जा रही है? समस्त लोक उपद्रव आपन्न हो उठा है, इस कष्ट को आप दूर करें ॥१८१॥

तब महामुनि दीपंकर ने उन्हें समझाया कि आप लोग इस पृथ्वीकम्पन से डरें नहीं, आस्वस्त होवें ॥१८२॥

आज मैं ने जो यह कहा कि (यह तपस्वी सुमेध) लोक में बुद्ध होंगे, वे (अभी) पूर्व के जिनों से सेवित धर्म पर विचार कर रहे हैं ॥१८३॥

उनके बुद्धभूमि विषयक धर्मों पर पूर्ण रूप से विचार करने से यह देवलोक सहित दस हजार ब्रह्माण्डों वाली पृथ्वी काँप उठी" ॥१८४॥

४५. महाजनो ति तथागतस्स वचनं सुत्वा हट्ठतुट्ठो माला-गन्धविलेपनं आदाय रम्मनगरा निक्खमित्वा बोधिसत्तं उपसंक-
B. 33 मित्वा मालादीहि पूजेत्वा वन्दित्वा पदक्खिणं कत्वा रम्मनगरमेव पाविसि। बोधिसत्तो पि दस पारमियो सम्मसित्वा विरियं दळ्हं कत्वा अधिट्ठाय निसिन्नासना वुट्ठासि।

तेन वुत्तं[1]—

R. 27 "बुद्धस्स वचनं सुत्वा, मनो निब्बायि तावदे।
सब्बे मं उपसंकम्म, पुन पि मं अभिवन्दियुं ॥ १८५ ॥
समादियित्वा बुद्धगुणं, दळ्हं कत्वान मानसं।
दीपंकरं नमस्सित्वा, आसना वुट्ठहिं तदा" ति ॥ १८६ ॥

४६. अथ बोधिसत्तं आसना वुट्ठहन्तं सकलदससहस्स-चक्कवाळदेवता सन्निपतित्वा दिब्बेहि मालागन्धेहि पूजेत्वा[2], "अय्य सुमेधतापस, तया अज्ज दीपंकरदसबलस्स पादमूले महती पत्थना पत्थिता। सा ते अनन्तरायेन समिज्झतु। मा ते भयं वा छम्भितत्तं वा अहोसि। सरीरे अप्पमत्तको पि रोगो मा उप्पज्जि। खिप्पं पारमियो पूरेत्वा सम्मासम्बोधिं पटिबुज्झ[3]। यथा पुप्फूपगफलूपगा रुक्खा समये पुप्फन्ति चेव फलन्ति च, तथेव त्वम्पि समयं अनतिक्कमित्वा खिप्पं बोधिमुत्तमं[4] फुसस्सू' ति," आदीनि थुतिमंगलानि पयिरुदाहरिंसु। एवं पयिरुदाहरित्वा अत्तनो अत्तनो देवट्ठानमेव अगमंसु। बोधिसत्तो पि देवताहि अभित्थुतो 'अहं दसपारमियो पूरेत्वा कप्पसतसहस्सा-धिकानं चतुन्नं असंखेय्यानं मत्थके बुद्धो भविस्सामी' ति विरियं दळ्हं कत्वा अधिट्ठाय नभं अब्भुग्गन्त्वा हिमवन्तमेव अगमासि।

तेन वुत्तं[5]—

"दिब्बं मानुसकं पुप्फं, देवा मानुसका उभो।
समोकिरन्ति पुप्फेहि, वुट्ठहन्तस्स आसना ॥ १८७ ॥
वेदयन्ति च ते सोत्थिं, देवा मानुसका उभो।
'महन्तं पत्थितं तुय्हं, तं लभस्सु यथिच्छितं ॥ १८८ ॥

---

१. बु. वं. ३१८ पृष्ठ। २. ० वन्दित्वा म.। ३. पटिविज्झ म. रो.।
४. सम्बोधि ० म.। ५. बु. वं. ३१८-१९ पृ.।

४५. जन समुदाय तथागत के वचन को सुन सन्तुष्ट हो, माला गन्ध विलेपनादि ले रम्य नगर से निकल बोधिसत्त्व के निकट जा मालादि से पूजा वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर रम्य नगर में लौट आये। बोधिसत्त्व भी दस पारमिताओं पर विचार करते हुए वीर्य के साथ दृढ़ संकल्प कर बैठे हुए आसन से उठे।

इसलिए कहा गया है:—

"बुद्ध के वचन को सुनकर तत्क्षण ही उनका मन शान्त हो गया। सबों ने मेरे निकट आ पुनः मेरी वन्दना की ॥१८५॥

तब मैं बुद्ध गुणों का ध्यान कर, चित्त को दृढ़ बना दीपंकर को नमस्कार कर आसन से उठा" ॥१८६॥

४६. तदनन्तर बोधिसत्त्व के आसन से उठते समय दस हजार ब्रह्माण्डों के देवताओं ने एकत्र हो दिव्य माला-गन्धों से उनकी पूजा कर इस प्रकार स्तुति मंगलादि व्यक्त किया, 'आर्य तपस्वी सुमेध, आज आपने भगवान दीपंकर के चरणों में महती अभिलाषा व्यक्त की। आपकी वह अभिलाषा (प्रार्थना) निर्विघ्न पूरी हो। आपको भय या (भय जन्य) रोमांच न हो। शरीर में किसी प्रकार के रोग न हों। शीघ्र ही आप पारमिताओं को पूरा कर उत्तम बुद्धपद को प्राप्त करें। जिस प्रकार फूल एवं फल वाले वृक्ष समय पर ही फूलते फलते हैं; उसी प्रकार आप भी समय का अतिक्रमण किये बिना ही शीघ्र उत्तम बोधिपद का लाभ करें।' इस प्रकार स्तुति कर वे अपने अपने देवलोक चले गये। बोधिसत्त्व भी इस प्रकार देवताओं से प्रशंसित "मैं दस पारमिताओं को पूरा कर चार असंखेय्य एक लाख कल्प के व्यतीत होने पर बुद्ध होऊँगा," उत्साह के साथ दृढ़ संकल्प कर आकाश पथ से हिमालय को चले गये।

इसलिए कहा गया है :—

"(बोधिसत्त्व के) आसन से उठते समय देवता तथा मनुष्यों ने दिव्य तथा मानुषिक-दोनों प्रकार के पुष्पों की (उन पर) वर्षा की ॥१८७॥

देवता तथा मनुष्य दोनों (बोधिसत्त्व के लिए) मंगल कामना व्यक्त कर रहे थे। 'आप ने महती अभिलाषा की है। यथा प्रार्थित आपकी अभिलाषा पूरी हो ॥१८८॥

सब्बीतियो विवज्जन्तु, सोको[1] रोगो विनस्सतु।
मा ते भवत्वन्तरायो, फुस खिप्पं **बोधिमुत्तमं** ॥ १८९ ॥
यथा पि समये पत्ते, पुप्फन्ति पुप्फिनो दुमा।
तथेव त्वं महावीर, बुद्धञाणेन पुप्फसु[2] ॥ १९० ॥
B. 34 यथा ये केचि सम्बुद्धा, पूरयुं दसपारमिं।
तथेव त्वं महावीर, पूरय दसपारमिं ॥ १९१ ॥
यथा ये केचि सम्बुद्धा, बोधिमण्डम्हि बुज्झरे।
तथेव त्वं महावीर, बुज्झस्सु जिनबोधियं ॥ १९२ ॥
यथा ये केचि सम्बुद्धा, धम्मचक्कं पवत्तयुं।
तथेव त्वं महावीर, धम्मचक्कं पवत्तय ॥ १९३ ॥
पुण्णमायं[3] यथा चन्दो, परिसुद्धो विरोचति।
तथेव त्वं पुण्णमनो, विरोच दससहस्सियं ॥ १९४ ॥
R. 28 राहुमुत्तो यथा सुरियो, तापेन अतिरोचति।
तथेव लोका मुच्चित्वा, विरोच सिरिया तुवं ॥ १९५ ॥
यथा या काचि नदियो, ओसरन्ति महोदधिं।
एवं सदेवका लोका, ओसरन्तु तवन्तिके ॥ १९६ ॥
तेहि थुतप्पसत्थो सो, दसधम्मे समादिय।
ते धम्मे परिपूरेन्तो, पवनं पाविसी तदा" ति ॥ १९७ ॥

॥ सुमेधकथा निट्ठिता ॥

भगवा दीपङ्करो

४७. रम्मनगरवासिनो पि खो नगरं पविसित्वा बुद्धपमुखस्स भिक्खुसंघस्स महादानं अदंसु। सत्था तेसं धम्मं देसेत्वा महाजनं सरणादिसु पतिट्ठापेत्वा रम्मनगरम्हा निक्खमित्वा ततो उद्धम्पि यावतायुकं तिट्ठन्तो सब्बं बुद्धकिच्चं कत्वा अनुक्कमेन अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बायि। तत्थ यं वत्तब्बं, तं सब्बं बुद्धवंसे वुत्तनयेनेव वेदितब्बं।

वुत्तं हि तत्थ[4]—

"तदा ते भोजयित्वान, ससंघं लोकनायकं।
उपगच्छुं सरणं तस्स, दीपंकरस्स सत्थुनो ॥ १९८ ॥

१. सब्ब. रो.। २. पुप्फसि रो.। ३. पुण्णमासे रो., पुण्णमाये म.।
४. बु. वं. ३१९-२१ पृ.।

सभी प्रकार के उपद्रव दूर रहें, रोग शोक का विनाश हो। आपको किसी प्रकार के विघ्न न हों। उत्तम पद बुद्धत्व को आप शीघ्र प्राप्त करें ॥१८९॥

जिस प्रकार पुष्प वाले वृक्ष समय पर ही पुष्पित होते हैं; उसी प्रकार हे महावीर, आप बुद्धज्ञान (पुष्प) से पुष्पित होवें ॥१९०॥

जिस प्रकार जो कोई बुद्ध हुए, उन लोगों ने दस पारमिताओं को पूरा किया; उसी प्रकार हे महावीर, आप भी दस पारमिताओं को पूरा करें ॥१९१॥

जिस प्रकार जो कोई बुद्ध हुए उन्होंने बोधिमण्ड में बुद्धत्व को प्राप्त किया; उसी प्रकार हे महावीर, आप भी जिनों (बुद्धों) द्वारा प्राप्त बोधि का लाभ करें ॥१९२॥

जिस प्रकार अन्य बुद्धों ने धर्मचक्र प्रवर्तन किया; उसी प्रकार हे महावीर, आप भी धर्मचक्र प्रवर्तन करें ॥१९३॥

जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा निर्मल हो चमकता है; उसी प्रकार आप भी पूर्णमन हो (अभिलाषा को पूर्ण कर) दस सहस्र ब्रह्माण्डों में प्रकाशित होवें ॥१९४॥

जिस प्रकार राहुमुक्त सूर्य अपने तेज से अत्यन्त प्रकाशमान होता है; उसी प्रकार आप लोक से मुक्त हो अपनी श्री से प्रकाशित हों ॥१९५॥

जिस प्रकार जो कोई भी नदियाँ हैं, वे सभी महासमुद्र की ओर प्रवाहित होती हैं; उसी प्रकार देवता सहित सारा लोक आपके निकट आवे' ॥१९६॥

इस प्रकार (उन देवताओं से) प्रशंसित तपस्वी सुमेध ने दस धर्मों को ग्रहण कर उनकी परिपूर्त्ति करते हुए वन में प्रवेश किया" ॥१९७॥

सुमेधकथा समाप्त

भगवान दीपंकर

४७. रम्यनगर वासियों ने भी नगर में प्रवेश कर बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को महादान (भोजन) दिया। शास्ता उनको धर्मोपदेश दे जनसमूह को त्रिशरणादि में प्रतिष्ठापित कर रम्य नगर से निकल उसके आगे भी अवशेष आयु भर रहते हुए समस्त बुद्ध-कृत्यों को पूरा कर क्रमानुसार अनुपाधिशेष निर्वाण को प्राप्त किये। यहाँ जो अन्य बातें कहनी चाहिए, उन्हें बुद्धवंस में आये हुए के अनुसार समझ लेना चाहिए।

वहाँ कहा गया है :—

"तदनन्तर उन लोगों ने भिक्षुसंघ सहित लोकनायक (बुद्ध) को भोजन करवा भगवान दीपङ्कर की शरण गये ॥१९८॥

सरणागमने कञ्चि, निवेसेति[1] तथागतो।
कञ्चि पञ्चसु सीलेसु, सीले दसविधे परं॥ १९९॥
B. 35 कस्सचि देति सामञ्ञं, चतुरो फलमुत्तमे।
कस्सचि असमे धम्मे, देति सो पटिसम्भिदा॥ २००॥
कस्सचि वरसमापत्तियो, अट्ठ देति नरासभो।
तिस्सो कस्सचि विज्जायो, छळभिञ्ञा पवेच्छति॥ २०१॥
तेन योगेन जनकायं, अोवदति महामुनि।
तेन वित्थारिकं आसि, लोकनाथस्स सासनं॥ २०२॥
महाहनु उसभक्खन्धो, दीपंकरसनामको।
बहू जने तारयति, परिमोचेति दुग्गतिं॥ २०३॥
बोधनेय्यं जनं दिस्वा, सतसहस्से पि योजने।
खणेन उपगन्त्वान, बोधेति तं महामुनि॥ २०४॥
पठमाभिसमये बुद्धो, कोटिसतमबोधयि।
दुतियाभिसमये नाथो, सतसहस्सं अबोधयि॥ २०५॥
यदा देवभवनम्हि, बुद्धो धम्ममदेसयि।
नवुतिकोटिसहस्सानं, ततियाभिसमयो अहु॥ २०६॥
B. 29 सन्निपाता तयो आसुं, दीपंकरस्स सत्थुनो।
कोटिसतसहस्सानं, पठमो आसि समागमो॥ २०७॥
पुन नारदकूटम्हि, पविवेकगते जिने।
खीणासवा वातमला, समिंसु सतकोटियो॥ २०८॥
यदा[2] वसी[2] महावीरो, सुदस्सनसिलुच्चये।
नवुतिकोटिसहस्सेहि, परिवारेसि[3] तदा[4] मुनि॥ २०९॥
अहं तेन समयेन, जटिलो उग्गतापनो।
अन्तळिक्खम्हि चरणो, पञ्चाभिञ्ञासु पारगू॥ २१०॥
दसवीससहस्सानं, धम्माभिसमयो अहु।
एकद्विन्नं अभिसमयो, गणनातो असंखिया॥ २११॥
वित्थारिकं बाहुजञ्ञं, इद्धं फीतं अहु तदा।
दीपंकरस्स भगवतो, सासनं सुविसोधितं॥ २१२॥
B. 36 चत्तारि सतसहस्सानि, छळभिञ्ञा महिद्धिका।
दीपंकरं लोकविदुं, परिवारेन्ति सब्बदा॥ २१३॥

---

१. निबेसेसि रो. २-२. यम्हि काले म.। ३. पवारेसि म. रो.। ४. महा म.।

तथागत ने कुछ को शरणगमन में, कुछ को पञ्चशील में, कुछ को दस शील में दीक्षित किया॥१९९॥

तथागत ने किसी को चार उत्तम फलों (स्रोतापत्तिफल, सकृदागामिफल, अनागामिफल तथा अर्हत्फल) से युक्त साधुता (श्रामण्य) प्रदान की, तो किसी को अनुपम धर्म प्रतिसम्भिदा (अर्थ प्रतिसम्भिदा, धर्म प्रतिसम्भिदा, निरूक्ति प्रतिसम्भिदा, प्रतिभान-प्रतिसम्भिदा) प्रदान किया॥२००॥

उस पुरुष श्रेष्ठ ने किसी को आठ श्रेष्ठ समापत्तियाँ (चार रूपसमापत्ति, चार अरूपसमापत्ति) दी। किसी को तीन विद्यायें, तथा किसी को छ अभिज्ञायें प्रदान की॥२०१॥

महामुनि दीपंकर इस प्रकार जन समुदाय को उपदेश देते थे। इस कारण ही उस लोकनाथ अर्थात् भगवान दीपंकर के शासन का बहुत विस्तार हुआ॥२०२॥

महाहनु अर्थात् बड़ी ठुड्डी वाले, वृषभकन्ध दीपंकर नामक बुद्ध ने बहुत से मनुष्यों को संसार सागर से तार दुर्गति से मुक्त किया॥२०३॥

महामुनि दीपंकर एक लाख योजन की दूरी पर भी बोधनेय्य अर्थात् ज्ञान तत्त्व को समझाये जाने योग्य मनुष्य को देख एक क्षण में ही वहाँ जाकर उसको (तत्त्व का) बोध कराते थे॥२०४॥

प्रथम अभिसमय में तथागत ने एक अरब मनुष्यों को ज्ञान दिया। दूसरे अभिसमय (सम्मेलन) में नाथ ने दस खरब मनुष्यों को ज्ञान दिया॥२०५॥

जब बुद्ध ने देव लोक में धर्मोपदेश किया तो उस समय नव खरब (देवताओं) को ज्ञान हुआ॥२०६॥

दीपंकर बुद्ध के तीन सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में दस खरब (मनुष्य) सम्मिलित हुए॥२०७॥

पुनः नारद कूट (पर्वत शिखर) पर शास्ता के एकान्त वास करते समय एक अरब मनुष्य क्षीणाश्रव, मलरहित हो शान्त पद (निर्वाण) प्राप्त किये॥२०८॥

जिस समय महावीर दीपंकर सुदर्शन नामक उच्च पर्वत पर निवास करते थे, उस समय वे वहाँ नव खरब मनुष्यों से परिवारित थे॥२०९॥

उस समय मैं जटाधारी उग्र तपस्वी था। आकाश में विचरण करता था और पाँच अभिज्ञाओं में पारंगत था॥२१०॥

एक एक समय दस बीस हजार मनुष्यों को धर्म का साक्षात्कार हुआ। एक दो करके जिन्हें धर्म का साक्षात्कार हुआ, उनकी संख्या गणनातीत है॥२११॥

उस समय भगवान दीपंकर का सुपरिशुद्ध शासन विस्तृत, व्यापक, समुन्नत एवं वैभव प्राप्त था॥२१२॥

चार लाख छ अभिज्ञा प्राप्त ऋद्धिमान मनुष्य लोक के ज्ञाता दीपंकर के निकट सर्वदा रहा करते थे॥२१३॥

ये केचि तेन समयेन, जहन्ति मानुसं भवं।
अप्पत्तमानसा सेखा, गरहिता व भवन्ति ते ॥ २१४ ॥
सुपुप्फितं पावचनं, अरहन्तेहि तादिहि।
खीणासवेहि विमलेहि, उपसोभति सदेवके ॥ २१५ ॥
नगरं रम्मवती नाम, सुदेवो[1] नाम खत्तियो।
सुमेधा नाम जनिका[2], दीपंकरस्स सत्थुनो ॥ २१६ ॥
सुमंगलो च तिस्सो च, अहेसुं अग्गसावका।
सागतो नामुपट्ठाको, दीपंकरस्स सत्थुनो ॥ २१७ ॥
नन्दा चेव सुनन्दा च, अहेसुं अग्गसाविका।
बोधि तस्स भगवतो, पिप्फलीति पवुच्चति ॥ २१८ ॥
असीतिहत्थमुब्बेधो, दीपंकरो महामुनि।
सोभति दीपरुक्खो व, सालराजा व फुल्लितो ॥ २१९ ॥
सतसहस्सवस्सानि, आयु[3] तस्स महेसिनो।
तावता तिट्ठमानो सो, तारेसि जनतं बहुं ॥ २२० ॥
जोतयित्वान सद्धम्मं, सन्तारेत्वा महाजनं।
जलित्वा अग्गिक्खन्धो व, निब्बुतो सो ससावको ॥ २२१ ॥
सा च इद्धि सो च यसो, तानि च पादेसु चक्करतनानि।
सब्बं समन्तरहितं, ननु रित्ता सब्बसंखारा'ति[4]" ॥ २२२ ॥

२. भगवा कोण्डञ्ञो

R. 30 ४८. दीपंकरस्स पन भगवतो अपरभागे एकं असंखेय्यं अतिक्कमित्वा कोण्डञ्ञो नाम सत्था उदपादि। तस्सापि तयो सावकसन्निपाता अहेसुं। पठमसन्निपाते कोटिसतसहस्सं, दुतिये कोटिसहस्सं, ततिये नवुतिकोटियो। तदा बोधिसत्तो विजितावी नाम चक्कवत्ती हुत्वा कोटिसतसहस्ससंख्यस्स बुद्धपमुखस्स भिक्खुसंघस्स महादानं अदासि। सत्था बोधिसत्तं 'बुद्धो भविस्सती', ति ब्याकरित्वा धम्मं देसेसि। सो सत्थु
B. 37 धम्मकथं सुत्वा रज्जं पटियादेत्वा[5] पब्बजि। सो तीणि पिटकानि उग्गहेत्वा अट्ठसमापत्तियो, पञ्च च अभिञ्ञायो उप्पादेत्वा अपरिहीनज्झानो ब्रह्मलोके निब्बत्ति।

---

१. सुमेधो रो.। २. जनिया रो.। ३. आयुं रो.। ४. बु. वं. ३२२. पृ.।
५. निय्यादेत्वा रो. म.।

उस समय जो कोई मनुष्य अप्राप्त मन शैक्ष रहते हुए मनुष्यजीवन को छोड़ते थे, वे निन्दित होते थे (कारण उन्हें जीवन छोड़ने के पूर्व अर्हत् होना चाहिए) ॥२१४॥

तथागत का सुपुष्पित प्रवचन देवलोक सहित इस लोक में क्षीणाश्रव परम परिशुद्ध अर्हन्तों से सुशोभित था ॥२१५॥

शास्ता दीपंकर की जन्मभूमि रम्यवती नगरी थी। सुदेव क्षत्रिय उनके पिता तथा सुमेधा उनकी माता थी ॥२१६॥

शास्ता दीपंकर के सुमंगल तथा तिष्य अग्रश्रावक थे तथा सागत उनके उपस्थापक (सेवक) थे ॥२१७॥

नन्दा तथा सुनन्दा उस भगवान की दो अग्रश्राविकायें थीं और उनका बोधिवृक्ष पीपल वृक्ष था ॥२१८॥

महामुनि दीपंकर का शरीर अस्सी हाथ ऊँचा (लम्बा) था जो दीपवृक्ष एवं प्रफुल्लित सालराज के समान शोभमान होता था ॥२१९॥

उस महर्षि की आयु एक लाख वर्षों की थी। उतने समय तक जीवित रहकर उन्होंने एक बड़े जनसमूह को (संसार सागर से) तार दिया ॥ २२० ॥

सद्धर्म को प्रकाशित कर, एक बड़े जन समूह को (संसार सागर से) पारकर, उस भगवान दीपंकर ने अपने शिष्यों के साथ प्रज्वलित अग्निराशि के (बुझ जाने के) समान निर्वाण को प्राप्त किया ॥ २२१ ॥

वह ऋद्धि, वह यश और वे चरणों में अङ्कित चक्ररत्न—सभी अन्तर्हित हो गए। सचमुच में सभी संस्कार (उत्पन्न वस्तुएँ) सार रहित रिक्त अर्थात् विनाशधर्मी हैं" ॥ २२२ ॥

२. भगवान कौण्डिन्य

४८. भगवान दीपंकर के बाद एक असंखेय्य बीतने पर कौण्डिन्य नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनकी भी तीन धर्म सभाएँ हुईं। पहली सभा में दस खरब, दूसरी में दस अरब तथा तीसरी में नब्बे करोड़ प्राणी (भिक्षु) सम्मिलित थे। उस समय बोधिसत्त्व ने विजितावी नामक चक्रवर्ती राजा के रूप में उत्पन्न होकर बुद्ध प्रमुख दस खरब भिक्षुओं को महादान (भोजन) दिया। शास्ता ने 'बोधिसत्त्व बुद्ध होंगे' ऐसा कहकर धर्मोपदेश किया। उन्होंने शास्ता के धर्म प्रवचन सुनकर, राज्य का परित्याग कर प्रव्रज्या ली। वे तीन पिटकों को पढ़कर आठ समापत्तियाँ तथा पाँच अभिज्ञाओं को प्राप्तकर किसी भी ध्यान को बिना छोड़े (मरकर) ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुए।

कोण्डञ्ञस्स बुद्धस्स पन रम्मवती नाम नगरं। आनन्दो[1] नाम खत्तियो पिता। सुजाता नाम देवी माता। भद्दो च सुभद्दो च द्वे अग्गसावका। अनुरुद्धो नामुपट्ठाको। तिस्सा च उपतिस्सा च द्वे[2] अग्गसाविका। सालकल्याणी बोधि। अट्ठासीतिहत्थुब्बेधं सरीरं। वस्ससतसहस्सं आयुप्पमाणं अहोसि।

"दीपंकरस्स अपरेन, कोण्डञ्ञो नाम नायको।
अनन्ततेजो अमितयसो, अप्पमेय्यो दुरासदो" ति[3]॥ २२३॥

३. भगवा मङ्गलो

४८. तस्स अपरभागे एकं असंखेय्यं अतिक्कमित्वा एकस्मि येव कप्पे चत्तारो बुद्धा निब्बत्तिसु—मंगलो, सुमनो, रेवतो, सोभितो ति। मंगलस्स भगवतो तयो सावकसन्निपाता अहेसुं। तेसु पठमसन्निपाते कोटिसतसहस्सं भिक्खू अहेसुं, दुतिये कोटिसहस्सं, ततिये नवुति कोटियो। वेमातिकभाता किरस्स आनन्दकुमारो नवुतिकोटिसंखाय परिसाय सद्धि धम्मसवणत्थाय सत्थुसन्तिकं अगमासि। सत्था तस्स आनुपुब्बिकथं कथेसि। सो सद्धि परिसाय सह पटिसम्भिदाहि अरहत्तं पापुणि। सत्था तेसं कुलपुत्तानं पुब्बचरितं ओलोकेन्तो इद्धिमयपत्तचीवरस्स उपनिस्सयं दिस्वा दक्खिणहत्थं पसारेत्वा, 'एथ भिक्खवो'ति आह। सब्बे तं खणं येव इद्धिमयपत्तचीवरधरा सट्ठिवस्सथेरा विय आकप्पसम्पन्ना हुत्वा सत्थारं वन्दित्वा परिवारयिंसु। अयमस्स ततियो सावकसन्निपातो अहोसि।

५०. यथा पन अञ्ञेसं बुद्धानं समन्ता असीतिहत्थप्पमाणा येव सरीरप्पभा अहोसि, न तस्स एवं। तस्स पन भगवतो सरीरप्पभा निच्चकालं दससहस्सीलोकधातुं फरित्वा अट्ठासि। रुक्खपठवीपब्बतसमुद्दादयो अन्तमसो उक्खलियादीनि उपादाय सुवण्णपट्टपरियोनद्धा विय अहेसुं। आयुप्पमाणं पनस्स नवुतिवस्ससहस्सानि अहोसि। एत्तकं कालं चन्दसुरियादयो अत्तनो पभाय विरोचितुं नासक्खिसु। रत्तिन्दिवपरिच्छेदो
R. 31 न पञ्ञायित्थ। दिवा सुरियालोकेन विय सत्ता निच्चं
B. 38 बुद्धालोकेनेव विचरिंसु। सायं पुप्फनकुसुमानं, पातो व रवन-
सकुणादीनं च वसेन लोको रत्तिन्दिवपरिच्छेदं सल्लक्खेसि।

---

१. सुनन्दो. रो. म.। २. रो. पोत्थके नत्थि। ३. बु. वं. ३२२. पृ.।

कौण्डिन्य बुद्ध की जन्मभूमि रम्यवती नामक नगरी थी। आनन्द नामक क्षत्रिय उनके पिता थे। सुजाता नामक देवी माता थी। भद्र तथा सुभद्र (उनके) दो अग्र श्रावक थे। अनुरुद्ध (उनके) सेवक थे। तिष्या तथा उप-तिष्या दो अग्रसाविकायें थीं। मंगलमय शाल वृक्ष उनकी बोधि थी। उनका शरीर अट्ठासी हाथ लम्बा तथा एक लाख वर्ष (उनकी) आयु थी।

"भगवान दीपंकर के बाद कौण्डिन्य नामक लोक नायक बुद्ध हुए जो अनन्त तेज, अमित यश वाले तथा अप्रमेय एवं अनुपम थे" ॥ २२३ ॥

३. भगवान मङ्गल

४९. उसके बाद एक असंखेय्य (कल्प) बीतनेपर एक ही कल्प में चार बुद्ध उत्पन्न हुए—मंगल, सुमन, रेवत तथा शोभित। भगवान मंगल के तीन श्रावक सम्मेलन हुए। उनमें प्रथम सम्मेलन में दस खरब भिक्षु सम्मिलित थे, दूसरे में दस अरब तथा तीसरे में नब्बे करोड़। विमाता से उत्पन्न भाई आनन्द कुमार नब्बे करोड़ की मण्डली के साथ धर्मोपदेश सुनने के लिये बुद्ध के निकट आये। भगवान ने उन्हें क्रमबद्ध धर्म कथाएँ सुनायी। उन्होंने अपनी मण्डली के साथ प्रतिसम्भिदा सहित अर्हत्व की प्राप्ति की। भगवान ने उन कुलपुत्रों के पूर्वचरित्र जानते हुए कि इन्हें योगबल से ही पात्रचीवर मिलना है, दाहिना हाथ फैलाकर कहा—'आओ भिक्षुओं'। वे सभी उसी क्षण ऋद्धि बल से प्राप्त पात्र एवं चीवर को धारण कर साठ वर्ष के भिक्षुओं की आकृतिसम्पन्न हो भगवान की वन्दना कर उनके चारों ओर बैठ गए। यही उनका तृतीय श्रावक सम्मेलन हुआ।

५०. जिस प्रकार दूसरे बुद्धों की अस्सी हाथ की शरीरप्रभा होती है, वैसी इनकी नहीं थी। इस भगवान की शरीरप्रभा सदैव दस सहस्र ब्रह्माण्डों में व्याप्त रहती थी। (जिससे) वृक्ष, पृथ्वी, पर्वत, समुद्रादि, यहाँ तक कि ऊखल आदि भी सुवर्ण वस्त्र से आच्छादित सा जान पड़ते थे। इनकी आयु नब्बे हजार वर्ष की हुई। इस काल तक चन्द्र सूर्यादि अपने प्रकाश से (जगत् को) प्रकाशित नहीं कर सकते थे। (उस समय) रात दिन का भेद नहीं मालूम पड़ता था। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से प्राणी आलोकित हो विचरते थे, उसी प्रकार वे सर्वदा बुद्धप्रकाश से विचरते थे। सन्ध्या समय फूलों के फूलने से तथा प्रातःकाल पक्षियों के कलरव आदि से (मनुष्य)

किं पन अञ्ञेसं बुद्धानं अयमनुभावो नत्थीति ? नो नत्थि । ते हि पि आकंखमाना दससहस्सिं वा लोकधातुं ततो वा भिय्यो आभाय फरेय्युं । मंगलस्स पन भगवतो पुब्बपत्थनावसेन अञ्ञेसं व्यामप्पभा विय सरीरप्पभा निच्चमेव दससहस्सीलोकधातुं फरित्वा अट्ठासि ।

५१. सो किर बोधिसत्तचरियकाले वेस्सन्तरसदिसे अत्तभावे ठितो सपुत्तदारो वंकपब्बतसदिसे पब्बते वसि । अथेको खरदाठिको नाम यक्खो महापुरिसस्स दानज्झासयतं सुत्वा ब्राह्मणवण्णेन उपसंकमित्वा महासत्तं द्वे दारके याचि । महासत्तो "ददामि ब्राह्मणस्स पुत्तके"ति हट्ठपहट्ठो उदकपरियन्तं पठविं कम्पेन्तो द्वे पि दारके अदासि । यक्खो चंकमणकोटियं आलम्बनफलकं निस्साय ठत्वा पस्सन्तस्सेव महासत्तस्स मूलकलापे[1] विय द्वे दारके खादि । महापुरिसस्स यक्खं ओलोकेत्वा मुखे[2] विवटमत्ते अग्गिजालं[3] विय लोहितधारं उग्गिरमानं तस्स मुखं दिस्वापि केसग्गमत्तम्पि दोमनस्सं न उप्पज्जि । 'सुदिन्नं वत मे दानं' ति चिन्तयतो पनस्स सरीरे महन्तं पीतिसोमनस्सं उदपादि । सो 'इमस्स मे निस्सन्देन अनागते इमिनाव नीहारेन रस्मियो निक्खमन्तू'ति पत्थनं अकासि । तस्स तं पत्थनं निस्साय बुद्धभूतस्स सरीरतो रस्मियो निक्खमित्वा एत्तकं ठानं फरिंसु ।

५२. अपरम्पिस्स पुब्बचरितं अत्थि । सो किर बोधिसत्तकाले एकस्स बुद्धस्स चेतियं दिस्वा 'इमस्स बुद्धस्स मया जीवितं परिच्चजितुं वट्टती'ति, चिन्तेत्वा[4] दण्डदीपकवेठननियामेन सकलसरीरं वेठापेत्वा रतनमकुलं सतसहस्सग्घनिकं सुवण्णपातिं सप्पिस्स पूरापेत्वा तत्थ सहस्सवट्टियो जालापेत्वा[5] तं सीसेनादाय सकलसरीरे जालापेत्वा चेतियं पदक्खिणं करोन्तो सकलरत्तिं वीतिनामेसि । एवं याव अरुणुग्गमना वायमन्तस्सापिस्स लोमकूपमत्तम्पि उसुमं न गण्हि । पदुमगब्भं पविट्ठकालो विय अहोसि । धम्मो हि नामेस अत्तानं रक्खन्तं रक्खति ।

१. मूलकलापं रो. । २. मुखं रो. । ३. ० जाला रो. ।
४. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि । ५. जालेत्वा रो. ।

रातदिन का भेद समझते थे । तो क्या अन्य बुद्धों में ऐसा प्रभाव नहीं था ? नहीं था, ऐसा नहीं कहा जा सकता है । वे भी चाहने पर दस हजार ब्रह्माण्ड या उससे अधिक को भी अपने प्रकाश से व्याप्त कर सकते थे । पूर्व प्रार्थना के अनुसार मंगल भगवान की शरीरप्रभा दूसरे बुद्धों की व्यामप्रभा के समान सर्वदा दस हजार ब्रह्माण्डों को व्याप्त किए रहती थी ।

५१. भगवान मंगल जब बोधिसत्त्व थे, तब वेस्सन्तर राजा के समान उत्पन्न हो अपनी स्त्री एवं पुत्रों के साथ वङ्कपर्वत के सदृश एक पर्वत पर रहते थे । तब खरदाठिक नामक एक यक्ष महापुरुष के दान देने की बात सुनकर ब्राह्मण वेष में महासत्त्व के निकट आ उनसे दो बच्चों को माँगा । महासत्त्व ने (ऐसा विचार कर) कि 'ब्राह्मण को पुत्रों को दूँगा', प्रसन्न चित्त से जल सहित पृथ्वी को कँपाते हुए दोनों लड़कों को दे दिया । वह यक्ष चंक्रमण के छोर पर अवलम्बन के लिये लगे काष्ठ फलकों के सहारे खड़े हो महासत्त्व के देखते देखते ही मूली के समान दोनों बच्चों को खा लिया । यक्ष के मुँह खोलने पर उसके मुख से अग्नि ज्वाला सदृश रक्तधारा निकलते देख महासत्त्व के मन में केशाग्रमात्र भी दौर्मनस्य नहीं उत्पन्न हुआ । (वरन्) यह सोचते हुए कि 'मेरे द्वारा उचित ही दान दिया गया' उनके शरीर में बहुत प्रीति एवं सौमनस्य (आह्लाद) उत्पन्न हुआ । उन्होंने ऐसी कामना की कि भविष्य में इसके फलस्वरूप इसके प्रभाव से किरणें निकलें । उनकी इस कामना के फलस्वरूप बुद्ध होनेपर शरीर से किरणें निकल कर इतने स्थान को व्याप्त कर स्थित हुईं ।

५२. उनके और भी पूर्व चरित्र हैं । जब वे बोधिसत्त्व थे, तो उन्होंने एक बुद्ध के चैत्य को देखकर 'इस बुद्ध के लिये मुझे जीवन का परित्याग करना चाहिए' ऐसा सोच दण्डदीप (मशाल) में (कपड़ा लपेटने) के समान सम्पूर्ण शरीर को (कपड़े से) लिपटवा, रत्नजटित लाख रुपयों के मूल्य की सुवर्ण थाली में घी भरवा, उसमें हजारों बत्तियाँ जलवा, उसे सिर पर रख समूचे शरीर में आग प्रज्वलित कर, चैत्य की प्रदक्षिणा करते हुए सारी रात बिता दी । इस प्रकार सूर्योदय तक यत्न करते हुए भी, उनका शरीर लोमछिद्र मात्र भी उष्णता को प्राप्त नहीं हुआ । (गर्म नहीं हुआ) । पद्मगर्भ (कमल से पूर्ण सरोवर) में प्रविष्ट होने के सदृश रहा । धर्म ही उसकी रक्षा करने वालों की रक्षा करता है ।

इसलिए भगवान ने कहा है—

B. 39 तेनाह भगवा—

"धम्मो हवे रक्खति धम्मचारिं
धम्मो सुचिण्णो सुखमावहाति ।
एसानिसंसो धम्मे सुचिण्णे
न दुग्गतिं गच्छति धम्मचारी" ति ॥२२४॥

R. 32 इमस्सापि कम्मस्स निस्सन्देन तस्स भगवतो सरीरोभासो दससहस्सीलोकधातुं फरित्वा अट्ठासि ।

५३. तदा अम्हाकं बोधिसत्तो सुरुचि नाम ब्राह्मणो हुत्वा 'सत्थारं निमन्तेस्सामी'ति उपसंकमित्वा मधुरधम्मकथं सुत्वा 'स्वे मय्हं भिक्खं गण्हथ, भन्ते', ति आह ।

"ब्राह्मण, कित्तकेहि ते भिक्खूहि अत्थो" ति ?

"कित्तका पन वो भन्ते, परिवारभिक्खू" ति आह ।

तदा सत्थु पठमसन्निपातो येव होति, तस्मा "कोटिसतसहस्सं" ति आह ।

"भन्ते, सब्बेहि पि सद्धिं मय्हं गेहे भिक्खं गण्हथा" ति ।

सत्था अधिवासेसि ।

ब्राह्मणो स्वातनाय निमन्तेत्वा गेहं गच्छन्तो चिन्तेसि—"अहं एत्तकानं भिक्खूनं यागुभत्तवत्थादीनि दातुं नो न[1] सक्कोमि, निसीदनट्ठानं पन कथं भविस्सती" ति । तस्स सा चिन्ता चतुरासीतियोजनसहस्समत्थके ठितस्स देवरञ्ञो पण्डुकम्बलसिलासनस्स उण्हभावं जनेसि । सक्को 'को नु खो मं इमस्मा ठाना चावेतुकामो'ति दिब्बचक्खुना ओलोकेन्तो महापुरिसं दिस्वा 'सुरुचिब्राह्मणो बुद्धपमुखं भिक्खुसंघं निमन्तेत्वा निसीदनट्ठानत्थाय चिन्तेति[2]', 'मयापि तत्थ गन्त्वा पुञ्ञकोट्ठासं गहेतुं वट्टती'ति, वड्ढकीवण्णं निम्मिनित्वा वासिफरसुहत्थो महासत्तस्स पुरतो पातुरहोसि ।

सो[3] 'अत्थि नु खो कस्सचि भतिया कत्तब्बं' ति आह ।

महापुरिसो दिस्वा—'किं कम्मं करिस्ससी'ति आह ।

'मम अजाननसिप्पं नाम नत्थि, गेहं वा मण्डपं वा यो यं कारेति तस्स तं कातुं जानामी'ति ।

१. म.पोत्थके नत्थि । २. चिन्तेसि रो. म. । ३. रो. पोत्थके नत्थि ।

"धर्माचरण करने वाले की रक्षा निश्चय ही धर्म करता है । उचित ढंग से धर्माचरण करने पर धर्म सुख की ओर ले जाता है । धर्माचरण का यही फल है कि धर्मचारी दुर्गति को नहीं प्राप्त होता है" ॥ २२४ ॥

इस कर्म के फलस्वरूप भगवान मंगल की शरीरप्रभा दस हजार ब्रह्माण्डों में व्याप्त हो स्थित थी ।

५३. उस समय हमलोगों के बोधिसत्त्व ने सुरुचि नामक ब्राह्मण होकर 'भगवान को निमन्त्रित करूँगा,' इस विचार से उनके निकट जा मधुर धर्मकथा सुन, 'कल भन्ते, मेरी भिक्षा ग्रहण करें,' ऐसा कहा ।

'ब्राह्मण, तुम्हें कितने भिक्षु चाहिए' ?

'भन्ते, कितने आपके परिवार भिक्षु हैं' ?

उस समय भगवान का प्रथम सम्मेलन ही हुआ था, अतः 'दस अरब हैं' ऐसा (उन्होंने) बतलाया ।

'भन्ते, सभी के साथ ही मेरे घर भिक्षा ग्रहण करें' ।

भगवान ने स्वीकार किया ।

ब्राह्मण ने दूसरे दिन के लिए (भिक्षुसंघ सहित भगवान को) निमन्त्रित कर घर जाते समय विचार किया—'मैं इतने भिक्षुओं को यागु, भात, वस्त्रादि तो अवश्य दे सकता हूँ, पर उनके बैठने के लिए स्थान कहाँ से हो सकेगा ? उसकी इस चिन्ता ने चौरासी हजार योजन की दूरी पर स्थित देवराज इन्द्र की पण्डुकम्बल शिलासन में उष्णता ला दी । शक्र ने ऐसा सोच कि 'कौन मुझे इस स्थान से च्युत करना चाहता है,' दिव्य चक्षु से अवलोकन करते हुए महापुरुष को देख 'यह सुरुचि नामक ब्राह्मण बुद्धप्रमुख भिक्षुसंघ को निमन्त्रित कर उनलोगों के लिए बैठने के स्थान के सम्बन्ध में चिन्ता कर रहा है;' 'मुझे भी वहाँ जाकर पुण्य का भागी होना चाहिए,' (ऐसा सोच) बढ़ई का वेष बना बसूला तथा फरसु हाथ में लेकर महासत्त्व के आगे प्रकट हुए ।

उन्होंने पूछा—'क्या किसी को कोई मजदूरी करानी है' ?

महापुरुष ने (उसे) देखकर पूछा—'आप क्या काम कर सकेंगे' ?

(उसने उत्तर दिया) 'मेरे लिए कोई भी विद्या (शिल्प) अज्ञात नहीं है, घर हो अथवा मण्डप, या जिसको जो कुछ बनवाना हो, उसे मैं बनाना जानता हूँ' ।

'तेन हि मय्हं कम्मं अत्थी'ति।

'किं अय्या,'ति ?

'स्वातनाय मे कोटिसतसहस्सभिक्खू निमन्तिता। तेसं निसीदनमण्डपं करिस्ससी'ति ?

'अहं नाम करेय्यं, सचे मे भतिं दातुं सक्खिस्सथा'ति।

'सक्खिस्सामी ताता', ति।

'साधु, करिस्सामी'ति, गन्त्वा एकं पदेसं ओलोकेसि।

५४. द्वादसतेरसयोजनप्पमाणो पदेसो कसिणमण्डलं विय समतलो अहोसि। सो—'एत्तके ठाने सत्तरतनमयो मण्डपो उट्ठहतू'ति चिन्तेत्वा ओलोकेसि। तावदेव पुथविं भिन्दित्वा मण्डपो उट्ठहि। तस्स सोवण्णमयेसु थम्भेसु रजतमया घटका अहेसुं, रजतमयेसु सोवण्णमया। मणित्थम्भेसु मणिमया[1], सत्तरतनमयेसु सत्तरतनमया व घटका अहेसुं। ततो 'मण्डपस्स अन्तरन्तरे किंकिणिकजालं ओलम्बतू'ति, ओलोकेसि। सह ओलोकनेनेव जालं[2] ओलम्बि; यस्स मन्दवातेरितस्स पञ्चंगिकस्सेव तुरियस्स मधुरसद्दो निग्गच्छति, दिब्बसंगीतवत्तनकालो विय होति। 'अन्तरन्तरा गन्धदाममालादामानि ओलम्बन्तू' ति, चिन्तेसि। दामानि
R. 33 ओलम्बिंसु। 'कोटिसतसहस्ससंखानं भिक्खूनं आसनानि च आधारकानि च पठविं भिन्दित्वा उठहन्तू'ति, चिन्तेसि। तावदेव उट्ठहिंसु। 'कोणे कोणे एकेका उदकचाटियो उट्ठहन्तू'ति, चिन्तेसि। उदकचाटियो उट्ठहिंसु। एत्तकं मापेत्वा ब्राह्मणस्स सन्तिकं गन्त्वा—'एहि अय्य, तव मण्डपं ओलोकेत्वा मय्हं भतिं देही'ति आह।

५५. महापुरिसो गन्त्वा मण्डपं ओलोकेसि। ओलोकेन्तस्सेव सकलसरीरं पञ्चवण्णाय पीतिया निरन्तरं फुटं अहोसि। अथस्स मण्डपं ओलोकेत्वा एतदहोसि—'नायं मण्डपो मनुस्सभूतेन कतो। मय्हं पन अज्झासयं मय्हं गुणं आगम्म अद्धा सक्कभवनं उण्हं अहोसि। ततो सक्केन देवरञ्ञा अयं मण्डपो

१. पवालमया, पवालत्थम्भेसु मणिमया रो. म.। २. किंकिणिक° म.।

'तब मेरे पास काम है'।

'आर्य, वह क्या काम है' ?

'मैंने कल दस अरब भिक्षुओं को (भोजनादि) के लिए निमन्त्रित किया है। क्या उनके बैठने के लिए (आप) मण्डप बना सकते हैं' ?

'मैं बना सकता हूँ, यदि आप मेरी मजदूरी दे सकें।'

'तात, मैं दे सकूँगा'।

'अच्छा मैं बनाऊँगा', (ऐसा विचार) उन्होंने एक स्थान का अवलोकन किया।

५४. वह बारह योजन चौड़ा तथा तेरह योजन लम्बा भूभाग कसिण-मण्डल के समान समतल हो उठा। उन्होंने—'इतने स्थान में सात रत्नमय मण्डप बनें' ऐसा चिन्तन कर अवलोकन किया। उसी समय पृथ्वी भेद कर एक मण्डप निकल आया। उसके स्वर्णमय स्तम्भों पर चाँदी के घट (स्थापित) थे तथा रजतमय स्तम्भों पर सुवर्णमय घट। मणि स्तम्भों पर मणिमय घट तथा सप्तरत्नमय स्तम्भों पर सप्तरत्नमयघट स्थापित थे। तदनन्तर उन्होंने (ऐसा सोच) अवलोकन किया कि 'मण्डप के भीतर बीच बीच में (छोटी छोटी) घंटियों की झालरें लटक जाँय'। उनके देखते देखते ही ऐसी झालर लटक आयी; जिनसे मन्द वायु प्रकम्पित होने पर पाँच अंगवाली तूर्य की मधुर ध्वनि निकलती थी, और दिव्य संगीत बजने के सदृश हो उठता था। पुनः उन्होंने विचार किया—'बीच बीच में सुगन्धों एवं मालाओं की लरें लटकें'। (तत्क्षण) मालायें लटक गईं। 'दस खरब भिक्षुओं के लिए आसन तथा (पात्र रखने के लिए) आधार (फलक) पृथ्वी भेद कर निकल आवें'। उसी क्षण वे सब निकल आये। 'एक एक कोने में एक एक उदक घट निकल आवें', ऐसा उन्होंने सोचा। (तत्क्षण) उदकघट निकल आये। इतना बनाकर वे ब्राह्मण के निकट जाकर बोले—" 'आर्य, आवें अपना मण्डप देख कर मेरी मजदूरी दें।

५५. महापुरुष (बोधिसत्त्व) ने जाकर मण्डप को देखा। देखने के साथ ही उनका सम्पूर्ण शरीर पाँच प्रकार की प्रीति (आनन्द) से भर गया। इसके बाद मण्डप को देख कर उनके मन में हुआ—'यह मण्डप किसी मनुष्य द्वारा निर्मित नहीं है। मेरे विचार तथा मेरे गुणों को लेकर निश्चय ही इन्द्र का भवन उष्ण (गर्म) हो उठा होगा। उसके बाद देवराज शक्र द्वारा यह

कारितो भविस्सति। न खो पन मे युत्तं, एवरूपे मण्डपे एकदिवसं येव दानं दातुं। सत्ताहं दस्सामी'ति चिन्तेसि। बाहिरकदानं हि कित्तकम्पि समानं बोधिसत्तानं तुट्ठिं कातुं न सक्कोति। अलंकतसीसं पन छिन्दित्वा, अञ्जितअक्खीनि उप्पाटेत्वा, हृदयमंसं वा उब्बत्तेत्वा दिन्नकाले बोधिसत्तानं चागं निस्साय तुट्ठि नाम होति।

अम्हाकम्पि हि बोधिसत्तस्स सिविजातके देवसिकं पञ्चकहापणम्मणानि[1] विस्सज्जेत्वा, चतूसु द्वारेसु मज्झे नगरे[2] च[3] दानं देन्तस्स, तं दानं चागतुट्ठिं उप्पादेतुं नासक्खि। यदा पनस्स ब्राह्मणवण्णेन आगन्त्वा सक्को देवराजा अक्खीनि याचि, तदा तानि उप्पाटेत्वा ददमानस्सेव हासो उप्पज्जि। केसग्गमत्तम्पि चित्तं अञ्ञथत्तं नाम नाहोसि। एवं दानं निस्साय बोधिसत्तानं तित्ति नाम नत्थि। तस्मा सोपि महापुरिसो—'सत्ताहं मया कोटिसतसहस्ससंखानं भिक्खूनं दानं दातुं वट्टती'ति चिन्तेत्वा तस्मिं मण्डपे निसीदापेत्वा सत्ताहं गवपानं नाम दानं अदासि। गवपानं ति महन्ते महन्ते कोलम्बे खीरस्स पूरेत्वा उद्धने[4] आरोपेत्वा घनपाकपक्के खीरे थोके तण्डुले पक्खिपित्वा, पक्कमधुसक्करचुण्णसप्पीहि अभिसंखतं भोजनं वुच्चति। मनुस्सा येव पन परिविसितुं नासक्खिंसु। देवापि एकन्तरिका हुत्वा परिविसिंसु। बारसतेरसयोजनप्पमाणं ठानम्पि भिक्खू गण्हितुं नप्पहोसि येव। ते पन भिक्खू अत्तनो अत्तनो आनुभावेन निसीदिंसु।

५६. परियोसानदिवसे सब्बभिक्खूनं पत्तानि धोवापेत्वा भेसज्जत्थाय सप्पिनवनीतमधुफाणितादीनि पूरेत्वा तिचीवरेहि सद्धिं अदासि। संघनवकभिक्खुना लद्धचीवरसाटका सतसहस्सग्घनका अहेसुं। सत्था अनुमोदनं करोन्तो—'अयं पुरिसो एव रूपं महादानं अदासि, को नु खो, भविस्सती' ति उपधारेन्तो 'अनागते कप्पसतसहस्साधिकानं द्विन्नं असंखेय्यानं मत्थके गोतमो नाम बुद्धो भविस्सती' ति, दिस्वा महापुरिसं आमन्तेत्वा
R. 34 'त्वं एत्तकं नाम कालं अतिक्कमित्वा गोतमो नाम बुद्धो भविस्ससी' ति ब्याकासि।

१. पञ्चकहापणसतसहस्सानि म.। २. नगरमज्झे म.। ३. रो. पोत्थके नत्थि। ४. उद्धनेसु म.।

मण्डप बनवाया गया होगा। यह मेरे लिए उचित नहीं है कि ऐसे सुन्दर मण्डपमें एक दिन ही दान दूँ। मैं एक सप्ताह तक दान दूँगा' ऐसा उन्होंने विचार किया। बाह्यपदार्थों का कितना भी दान देने से बोधिसत्त्व को सन्तोष नहीं हो सकता है। अलंकृत सिर को काट कर, अंजन लगी आँखों को निकाल कर, हृदय के मांस को फाड़ कर देते समय ही बोधिसत्वों को त्याग के सम्बन्ध में तुष्टि होती है।

शिविजातक में हम लोगों के बोधिसत्त्व को भी प्रतिदिन पाँच अम्मण कार्षापण देकर, नगर के चार द्वारों पर दान देते हुए भी त्यागजनित तुष्टि नहीं प्राप्त हो सकी। जब देवराज इन्द्र ने ब्राह्मणवेष में आकर उनकी दो आँखों की याचना की, तब उन्हें निकाल कर देते समय ही उन्हें प्रसन्नता हुई। केशाग्र मात्र के समान भी (ऐसा करते हुए) उनका चित्त विकृत नहीं हुआ। इस प्रकार के (बाहरी) दानों से बोधिसत्त्वों को तृप्ति नहीं होती है। इसलिए उस महापुरुष ने भी 'एक सप्ताह तक मुझे दस खरब भिक्षुओं को दान देना चाहिए' ऐसा विचार उस मण्डप में उन्हें बिठा एक सप्वाह तक 'गवपान' नामक दान दिया।

बड़े-बड़े कड़ाहों को दूध से भरकर उन्हें आग के चूल्हे पर चढ़ा, दूध के पक कर गाढ़े हो जाने पर (उसमें) थोड़ा चावल डालकर, मधु, शक्करचूर्ण, घी आदि से पकाये हुए भोजन को गवपान कहते हैं। (केवल) मनुष्य ही वहाँ परोस नहीं सकते थे। देवताओं ने भी एकत्र हो परोसने का काम किया। वह बारह तेरह योजन का (चौड़ा एवं लम्बा) स्थान सभी भिक्षुओं के बैठने के लिए यथेष्ठ नहीं था। वे भिक्षु अपने-अपने (योग) प्रभाव से बैठ गये।

५६. अन्तिम दिन सभी भिक्षुओं के (भिक्षा) पात्रों को धोकर भैषज्य के लिए घी, मक्खन, मधु, खांड आदि उसमें भर कर तीन चीवरों के साथ (उन्होंने) दिया। नव प्रव्रजित भिक्षुओं द्वारा प्राप्त चीवर के वस्त्र एक लाख (रुपये) के मूल्य के होंगे। शास्ता ने इस दान का अनुमोदन करते हुए—'इस महापुरुष ने इस प्रकार का दान दिया है, (भविष्य) में ये क्या होंगे, (ऐसा विचारते हुए, दो असंखेय एक लाख कल्प के व्यतीत हो जाने पर भविष्य में ये गौतम नामक बुद्ध होंगे' ऐसा देख महापुरुष को सम्बोधित कर कहा—'इतने समय के व्यतीत हो जाने पर आप गौतम बुद्ध होंगे'।

महापुरिसो व्याकरणं सुत्वा—"ग्रहं किर बुद्धो भविस्सामि, को मे घरावासेन ग्रत्थो, पब्बजिस्सामी" ति चिन्तेत्वा तथारूपं सम्पत्तिं खेलपिण्डं विय पहाय सत्थुसन्तिके[1] पब्बजित्वा बुद्धवचनं उग्गण्हित्वा ग्रभिञ्ञा च समापत्तियो च निब्बत्तेत्वा ग्रायुपरियोसाने ब्रह्मलोके निब्बत्ति।

५७. मंगलस्स पन भगवतो नगरं उत्तरं नाम ग्रहोसि। पितापि उत्तरो नाम खत्तियो, मातापि उत्तरा नाम देवी। सुदेवो च धम्मसेनो च द्वे ग्रग्गसावका। पालितो नाम उपट्ठाको। सीवली च ग्रसोका च द्वे ग्रग्गसाविका। नागरुक्खो बोधि। ग्रट्ठासीतिहत्थुब्बेधं सरीरं ग्रहोसि। नवुतिवस्ससहस्सानि ठत्वा परिनिब्बुते पन तस्मिं[2] एकप्पहारेनेव दसचक्कवाळसहस्सानि एकन्धकारानि ग्रहेसुं। सब्बचक्कवाळेसु मनुस्सानं महन्तं ग्रारोदनपरिदेवनं ग्रहोसि।

B. 42 "कोण्डञ्ञस्स ग्रपरेन, मंगलो नाम नायको।
तमं लोके निहन्त्वान, धम्मोक्कमभिधारयी"[3] ति॥ २२५॥

४. भगवा सुमनो

५८. एवं दससहस्सीलोकधातुं ग्रन्धकारं कत्वा परिनिब्बुतस्स तस्स भगवतो ग्रपरभागे सुमनो नाम सत्था उदपादि। तस्सापि तयो सावकसन्निपाता। पठमसन्निपाते कोटिसतसहस्सं भिक्खू ग्रहेसुं। दुतिये कञ्चनपब्बतम्हि नवुतिकोटिसहस्सानि, ततिये ग्रसीतिकोटिसहस्सानि।

तदा महासत्तो ग्रतुलो नाम नागराजा ग्रहोसि, महिद्धिको महानुभावो। सो 'बुद्धो उप्पन्नो' ति सुत्वा ञातिसंघपरिवुतो नागभवना निक्खमित्वा कोटिसतसहस्सभिक्खुपरिवारस्स तस्स भगवतो दिब्बतुरियेहि उपहारं कत्वा महादानं दत्वा[4] पच्चेकं दुस्सयुगानि दत्वा सरणेसु पतिट्ठासि। सोपि नं सत्था 'ग्रनागते बुद्धो भविस्ससी,' ति व्याकासि।

तस्स भगवतो नगरं खेमं नाम ग्रहोसि। सुदत्तो नाम राजा पिता, सिरिमा नाम माता। सरणो च भावितत्तो च ग्रग्गसावका। उदेनो नामुपट्ठाको। सोणा च उपसोणा च ग्रग्ग-

---

१. ० पब्बजि, रो.। २. ० भगवति म.। ३. बु. वं. ३२५. पृ.। ४. पवत्तेत्वा म.।

महापुरुष ने इस कथन को सुन—"मैं बुद्ध बनूँगा, मुझे गृहीजीवन से क्या प्रयोजन है, मैं प्रव्रजित होऊँगा," आदि प्रकार से चिन्तन कर अपनी उस (अपार) सम्पत्ति को थूक के समान छोड़कर शास्ता के निकट प्रव्रजित हो, बुद्ध वचन को सीखकर, अभिज्ञा तथा समापत्तियों को प्राप्त कर, आयु के समाप्त होने पर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुए।

५७. भगवान मंगल के नगर का नाम उत्तर था। उनके पिता भी उत्तर नामक क्षत्रिय थे तथा माता का नाम उत्तरादेवी था। सुदेव तथा धर्मसेन दो अग्रश्रावक थे। पालित उनके उपस्थ्याक (सेवक) थे। सीवली तथा अशोका दो अग्रश्राविकायें थीं। नागवृक्ष उनका बोधिवृक्ष (ज्ञान प्राप्ति का वृक्ष) था। अठासी हाथ ऊँचा उनका शरीर था। नब्बे हजार वर्षों तक जीवित रहकर जब उन्होंने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया तो दस हजार ब्रह्माण्डों में तत्क्षण अन्धकार छा गया। सभी चक्रवालों (ब्रह्माण्डों) के मनुष्यों के बीच जोरों का रोना पीटना प्रारंभ हुआ।

"भगवान कौण्डिन्य के बाद मंगल नामक लोक नायक (बुद्ध) ने लोक के अन्धकार को नष्ट कर धर्म रूपी उल्का (प्रकाश दीप) धारण किया" ॥२२५॥

४. भगवान सुमन

५८. इस प्रकार दस हजार ब्राह्माण्डों को तमसाच्छन्न कर भगवान मंगल के महापरिनिर्वाण प्राप्त करने पर सुमन नामक शास्ता (बुद्ध) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन श्रावक सन्निपात (शिष्य सम्मेलन) हुए। प्रथम सम्मेलन में दस अरब भिक्षु एकत्र हुए। कञ्चन पर्वत पर हुए द्वितीय सम्मेलन में नव खरब तथा तृतीय सम्मेलन में आठ अरब भिक्षु सम्मिलित थे।

उस समय महासत्त्व अतुल नामक महर्द्धि सम्पन्न, बहुत प्रभावयुक्त नागराजा थे। उन्होंने यह सुना कि 'बुद्ध उत्पन्न हुए हैं' अपने जाति कुल के सदस्यों के साथ नागभवन से निकलकर, दस अरब भिक्षुओं से घिरे उस भगवान का दिव्य वाद्यों (तूर्यों) से सत्कार कर, महादान (भोजन) दे (भोजनोपरान्त) प्रत्येक भिक्षु को एक-एक जोड़ा दुशाला दे, तिरत्नों की शरण ग्रहण की। उन्होंने (सुमन बुद्ध ने) "आप भविष्य में बुद्ध होंगे" ऐसी भविष्य वाणी की।

उस भगवान के नगर का नाम क्षेम था। सुदत्त उनके पिता तथा सिरिमा उनकी माता थी। शरण तथा भावितात्मा उनके अग्रश्रावक थे। उदेन (उनके) परिचारक थे। सोणा तथा उपसोणा दो प्रधान शिष्यायें थी। नाग

साविका। नागरुक्खो[1] बोधि। नवुतिहत्थुब्बेधं सरीरं, नवुति येव वस्ससहस्सानि आयुप्पमाणं अहोसि।

"मंगलस्स अपरेन, सुमनो नाम नायको।
सब्बधम्मेहि असमो, सब्बसत्तानमुत्तमो"[2] ति॥ २२६॥

५. भगवा रेवतो

R. 35 ५९. तस्स अपरभागे रेवतो नाम सत्था उदपादि। तस्सापि तयो सावकसन्निपाता।[3] पठमसन्निपाते गणना नाम नत्थि। दुतिये कोटिसतसहस्सभिक्खु अहेसुं, तथा ततिये।

तदा बोधिसत्तो अतिदेवो नाम ब्राह्मणो हुत्वा सत्थु धम्मदेसनं सुत्वा सरणेसु पतिट्ठाय सिरसि अञ्जलिं ठपेत्वा तस्स सत्थुनो किलेसप्पहाने वण्णं वत्वा उत्तरासंगेन पूजं अकासि। सोपि नं 'बुद्धो भविस्ससी' ति, व्याकासि।

तस्स पन भगवतो नगरं धञ्ञवती[4] नाम अहोसि। पिता विपुलो नाम खत्तियो, मातापि विपुला नाम। वरुणो च ब्रह्मदेवो च अग्गसावका। सम्भवो नाम उपट्ठाको। भद्दा च सुभद्दा च अग्गसाविका। नागरुक्खो व[5] बोधि। सरीरं असीतिहत्थुब्बेधं अहोसि, आयु[6] सट्ठिवस्ससहस्सानीति।

B. 43 "सुमनस्स अपरेन, रेवतो नाम नायको।
अनुपमो असदिसो, अतुलो उत्तमो जिनो"[7] ति॥ २२७॥

६. भगवा सोभितो

६०. तस्स अपरभागे सोभितो नाम सत्था उदपादि। तस्सापि तयो सावकसन्निपाता[8]। पठमसन्निपाते कोटिसतं भिक्खू अहेसुं। दुतिये नवुति कोटियो, ततियं असीति कोटियो।

तदा बोधिसत्तो अजितो नाम ब्राह्मणो हुत्वा सत्थुधम्मदेसनं सुत्वा सरणेसु पतिट्ठाय बुद्धपमुखस्स भिक्खुसंघस्स महादानं अदासि। सोपि 'नं बुद्धो भविस्ससी' ति व्याकासि।

तस्स पन भगवतो नगरं सुधम्मं नाम अहोसि। पिता सुधम्मो नाम राजा, मातापि सुधम्मा नाम। असमो च सुनेत्तो

---

१. ० च. रो.। २. बु. वं. ३२८ पृ.। ३. ० अहेसुं म.।
४. सुधञ्ञवती रो.। ५. च. रो.। ६. आयुं रो.। ७. बु. वं. ३३० पृ.।
८. ० अहेसुं म. (सब्बत्थ)।

वृक्ष (उनका) बोधि वृक्ष था। उनका शरीर नब्बे हाथ ऊँचा था तथा नब्बे हजार वर्ष उनकी आयु थी।

"भगवान मंगल के अनन्तर सुमन नामक लोक नायक (बुद्ध) हुए जो सभी धर्मों में अनुपम तथा सभी प्राणियों में श्रेष्ठ थे" ॥२२६॥

५. भगवान रेवत

५९. उनके (सुमन भगवान के) बाद रेवत नामक बुद्ध हुए। उनके तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन के भिक्षुओं की तो गणना नहीं है। द्वितीय सम्मेलन में दस खरब भिक्षुसम्मिलित थे तथा तृतीय में भी उतने ही थे।

उस समय बोधिसत्त्व ने अतिदेव नामक ब्राह्मण होकर शास्ता की धर्म देशना सुन (त्रिरत्नों की) शरण में प्रतिष्ठित हो, सिर पर बद्ध अंजली रख चित्तमल के प्रहाण के लिए उस शास्ता की स्तुति कर, उत्तरासंग को एक कन्धे पर रख उनकी पूजा की। उन्होंने भी कहा कि 'आप बुद्ध होंगे'।

उस भगवान (रेवत) के नगर का नाम धान्यवती था। विपुल नामक क्षत्रिय उनके पिता तथा विपुला उनकी माता थी। वरुणा तथा ब्रह्मदेव (उनके) आग्रश्रावक (प्रधान शिष्य) थे। संभव नामका (उनका) परिचारक था। भद्रा और सुभद्रा दो प्रधान शिष्यायें थीं। नागवृक्ष ही बोधिवृक्ष था। (उनकी) शरीर अस्सी हाँथ ऊँचा था तथा साठ हजार वर्ष आयु थी।

"भगवान सुमन के बाद रेवत नामक बुद्ध (नायक) हुए, जो अनुपम, अद्वितीय, अतुल तथा उत्तम जिन (बुद्ध) थे" ॥२२७॥

६. भगवान शोभित

६०. उनके (भगवान रेवत के) बाद शोभित नामक शास्ता (बुद्ध) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन श्रावक-सन्निपात (शिष्य सम्मेलन) हुए। प्रथम सम्मेलन में एक अरब भिक्षु थे। द्वितीय (सम्मेलन) में नब्बे करोड़ तथा तृतीय (सम्मेलन) में अस्सी करोड़ भिक्षु थे।

उस समय बोधिसत्त्व ने अजित नामक ब्राह्मण होकर, शास्ता का धर्मोपदेश सुन (त्रिरत्नों) की शरण में प्रतिष्ठित हो बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को भोजन कराया। उन्होंने भी कहा कि "आप बुद्ध होंगे"।

उस समय भगवान का नगर सुधर्म नामक था। पिता सुधर्म नामक राजा थे तथा सुधर्मा (उनकी) माता थी। असम और सुनेत्र दो अग्रश्रावक थे।

च अग्गसावका। अनोमो नाम उपट्ठाको। नकुला च सुजाता च अग्गसाविका। नागरुक्खोव[1] बोधि। अट्ठपण्णासहत्थुब्बेधं सरीरं अहोसि, नवुतिवस्ससहस्सानि आयुप्पमाणं ति।

"रेवतस्स अपरेन, सोभितो नाम नायको।
समाहितो सन्तचित्तो, असमो अप्पटिपुग्गलो"[2] ति॥ २२८॥

७. भगवा अनोमदस्सी

६१. तस्स अपरभागे एकं असंखेय्यं अतिक्कमित्वा एकस्मिं[3] कप्पे तयो बुद्धा निब्बत्तिसु—अनोमदस्सी, पदुमो, नारदो ति।

अनोमदस्सिस्स भगवतो तयो सावकसन्निपाता। पठमे अट्ठभिक्खुसतसहस्सानि अहेसुं, दुतिये सत्त, ततिये छ। तदा बोधिसत्तो एको यक्खसेनापति अहोसि, महिद्धिको महानुभावो,
R. 36 अनेककोटि सतसहस्सानं यक्खानं अधिपति। सो 'बुद्धो उप्पन्नो' ति, सुत्वा आगन्त्वा बुद्धपमुखस्स भिक्खुसंघस्स[4] महादानं अदासि। सत्थापि नं 'अनागते बुद्धो भविस्ससी' ति ब्याकासि।

अनोमदस्सिस्स पन भगवतो चन्दवती नाम नगरं अहोसि। यसवा नाम राजा पिता, यसोधरा नाम माता। निसभो च अनोमो च अग्गसावका। वरुणो नाम उपट्ठाको। सुन्दरी च सुमना च अग्गसाविका। अज्जुनरुक्खो बोधि। सरीरं अट्ठपञ्ञासहत्थुब्बेधं अहोसि, वस्ससतसहस्सं आयू ति।

"सोभितस्स अपरेन, सम्बुद्धो द्विपदुत्तमो।
अनोमदस्सी अमितयसो, तेजस्सी दुरतिक्कमो"[5] ति॥ २२९॥

८. भगवा पदुमो

B. 44 ६२. तस्स अपरभागे पदुमो नाम सत्था उदपादि। तस्सापि तयो सावकसन्निपाता। पठमसन्निपाते कोटिसतसहस्सं भिक्खू अहेसुं। दुतिये तीणि सतसहस्सानि, ततिये अगामके अरञ्ञे महावनसण्डवासीनं भिक्खूनं द्वे सतसहस्सानि।

तदा तथागते तस्मिं वनसण्डे वसन्ते बोधिसत्तो सीहो हुत्वा सत्थारं निरोधसमापत्तिं समापन्नं दिस्वा पसन्नचित्तो वन्दित्वा पदक्खिणं कत्वा पीतिसोमनस्सजातो। तिक्खत्तुं सीहनादं नदित्वा

१. च, रो.। २. बु. वं ३३३ पृ.। ३. ० येव म.।
४. संघस्स रो., महासंघस्स म.। ५. बु. वं. ३३५ पृ.।

अनोम नामक (उनका) परिचारक था। नकुला और सुजाता दो प्रमुख शिष्यायें थीं। नागवृक्ष ही बोधिवृक्ष था। अन्ठावन हाथ ऊँचा उनका शरीर तथा नब्बे हजार वर्ष (उनकी) आयु थी।

"भगवान रेवत के बाद शोभित नामक बुद्ध हुए, जो समाधिप्राप्त-शान्त, अतुलनीय तथा अद्वितीय पुरुष थे" ॥२२८॥

७. भगवान अनोमदर्शी

६१. उस (शोभित भगवान) के बाद एक असंखेय्य (कल्प) व्यतीत होने पर, एक कल्प में अनोमदर्शी, पद्म तथा नारद नामक तीन बुद्ध हुए।

भगवान अनोमदर्शी के तीन शिष्य सम्मेलन (श्रावक सन्निपात) हुए। प्रथम (सम्मेलन) में आठ लाख भिक्षु, दूसरे में सात लाख, तथा तीसरे में छ लाख भिक्षु सम्मिलित थे। उस समय बोधिसत्त्व महा ऋद्धिसम्पन्न बड़े प्रतापी करोड़ों (अनेक लाख करोड़) यक्षों के स्वामी, एक यक्ष सेनापति थे। उन्होंने यह सुना कि 'बुद्ध उत्पन्न हुए हैं,' वहाँ जा बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को भोजन कराया। शास्ता ने ऐसा कहा कि 'आप भविष्य में बुद्ध होंगे'।

अनोमदर्शी भगवान के नगर का नाम चद्रवती था। यशवान् नामक राजा इनके पिता तथा यशोधरा इनकी माता थी। निसभ एवं अनोम इनके दो प्रधान शिष्य थे। वरुण नामक परिचारक था। सुन्दरी तथा सुमना दो प्रधान शिष्यायें (अग्र श्राविका) थीं। अर्जुनवृक्ष इनका बोधिवृक्ष था। इनके शरीर की ऊँचाई अट्ठावन हाँथ थी तथा एक लाख वर्ष की इनकी आयु थी।

"भगवान शोभित के बाद नर श्रेष्ठ भगवान अनोमदर्शी उत्पन्न हुए, जो अपार यशसम्पन्न, तेजस्वी तथा दुर्जेय थे" ॥२२९॥

८. भगवान पद्म

६२. उनके (अनोमदर्शी भगवान के) बाद पद्म नामक भगवान उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलनमें दस खरब भिक्षु सम्मिलित थे। द्वितीय (सम्मेलन) में तीन लाख भिक्षु तथा तृतीय सम्मेलन, जो ग्रामसे दूर जंगलमें हुआ था, उसमें महावनखण्डवासी भिक्षुओं में दो लाख भिक्षु सम्मिलित थे।

तथागत के उस समय उस वनखण्ड में रहते हुए बोधिसत्त्व ने सिंह होकर शास्ता को निरोध संमापन्न देख प्रसन्न चित्त हो उनकी वन्दना एवं प्रदक्षिण कर प्रीति एवं सौमनस्य को प्राप्त किया। पुनः तीन बार सिंहनाद कर, एक

सत्ताहं बुद्धारम्मणपीतिं अविजहित्वा पीतिसुखेनेव गोचराय अपक्कमित्वा जीवितपरिच्चागं कत्वा पयिरुपासमानो अट्ठासि।

सत्था सत्ताहच्चयेन निरोधा वुट्ठितो सीहं ओलोकेत्वा—'भिक्खुसंघो पि चित्तं पसादेत्वा संघं वन्दिस्सती ति, भिक्खुसंघो आगच्छतूति' चिन्तेसि। भिक्खू तावदेव आगमिंसु। सीहो संघे चित्तं पसादेसि। सत्था तस्स मनं ओलोकेत्वा 'अनागते बुद्धो भविस्ससी ति' ब्याकासि।

पदुमस्स पन भगवतो चम्पकं नाम नगरं अहोसि। असमो नाम राजा पिता, मातापि असमा नाम। सालो च उपसालो च अग्गसावका। वरुणो नामुपट्ठाको। रामा च सुरामा च अग्गसाविका। सोणरुक्खो नाम बोधि। अट्ठपण्णासहत्थुब्बेधं सरीरं अहोसि, आयु वस्ससतसहस्सं ति।

"अनोमदस्सिस्स उपरेन, सम्बुद्धो दिपदुत्तमो।
पदुमो नाम नामेन, असमो अप्पटिपुग्गलो"[1] ति॥ २३०॥

९. भगवा नारदो

६३. तस्स अपरभागे नारदो नाम सत्था उदपादि। तस्सापि तयो सावकसन्निपाता। पठमसन्निपाते कोटिसतसहस्स-
R. 37 भिक्खू अहेसुं। दुतिये नवुतिकोटिसहस्सानि, ततिये असीतिकोटि-
सहस्सानि।

तदा बोधिसत्तो इसिपब्बज्जं पब्बजित्वा पञ्चसु अभिञ्ञासु अट्ठसु च समापत्तीसु वसी हुत्वा बुद्धपमुखस्स संघस्स महादानं दत्वा चन्दनेन पूजं अकासि। सोपि नं 'अनागते बुद्धो भविस्ससी ति,' ब्याकासि।

तस्स भगवतो धञ्ञवती नाम नगरं अहोसि। सुदेवो[2] नाम खत्तियो पिता, अनोमा नाम माता। भद्दसालो च जितमित्तो
B. 45 च[3] अग्गसावका। वासेट्ठो नामुपट्ठाको। उत्तरा च फग्गुणी च अग्गसाविका। महासोणरुक्खो नाम बोधि। सरीरं अट्ठासीति-
हत्थुब्बेधं अहोसि, नवुतिवस्ससहस्सानि आयू ति।

'पदुमस्स अपरेन, सम्बुद्धो दिपदुत्तमो।
नारदो नाम नामेन, असमो अप्पटिपुग्गलो'[4] ति॥ २३१॥

---

१. बु. व. ३५७ पृ. २. सुमेधो रो. म.। ३. °द्दे म.। ४. बु. वं. ३७० पृ.।

सप्ताह तक बुद्धारम्मण पर ध्यान करते हुए (उपलब्ध) प्रीति को बिना छोड़े, उस प्रीति जनित आनन्द में निमग्न हो, जीवन का मोह त्याग, शिकार के लिए न जाकर ध्यान करते रहे।

एक सप्ताह बीतने पर निरोध समापत्ति से उठ कर शास्ता ने सिंह को देख ऐसा विचार किया—'यह सिंह भिक्षु संघ के प्रति श्रद्धा सम्पन्न हो भिक्षुसंघ की वन्दना करेगा, भिक्षुसंघ (यहाँ) आवे'। भिक्षु तत्क्षण वहाँ आ गये। सिंह को संघ के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो उठी। शास्ता ने उसके मन को देखते हुए ऐसी भविष्यवाणी की कि 'तू भविष्य में बुद्ध बनोगे।'

भगवान पद्म का चम्पक नामक नगर था। असम नामक राजा उनके पिता तथा असमा माता थी। साल तथा उपसाल दो प्रमुख शिष्य थे। वरुण (उनका) परिचारक था। रामा तथा सुरामा दो प्रधान शिष्यायें थीं। सोणवृक्ष उनका बोधिवृक्ष था। अट्ठावन हाथ ऊँचा उनका शरीर था तथा एक लाख वर्ष की उनकी आयु थी।

"भगवान अनोमदर्शी के बाद नरश्रेष्ठ पद्म नामक बुद्ध हुए, जो अनुपम एवं अद्वितीय थे"॥ २३०॥

९. भगवान नारद

६३. उनके (भगवान पद्म के) बाद नारद नामक शास्ता उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में दस खरब भिक्षु सम्मिलित थे। द्वितीय सम्मेलन में नव अरब तथा तृतीय में आठ खरब भिक्षु एकत्र थे।

उस समय बोधिसत्त्व ऋषि परम्परानुसार प्रव्रजित होकर पाँच अभिज्ञायें तथा आठ समापत्तियों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को भोजन (महादान) करा, चन्दन से उनकी पूजा की। उन्होंने भी भविष्य में उनके बुद्ध होने की भविष्य वाणी की।

उस भगवान के नगर का नाम धान्यवती था। सुदेव नामक क्षत्रिय उनके पिता तथा अनोमा माता थी। भद्रशाल तथा जितमित्र दो प्रधान शिष्य थे। वशिष्ठ (उनके) परिचारक थे। उत्तरा तथा फाल्गुणी दो प्रधान शिष्यायें थीं। महासोण वृक्ष उनका बोधिवृक्ष था। अट्ठासी हाथ उँचा उनका शरीर था तथा नब्बे हज़ार वर्ष उनकी आयु थी।

"भगवान पद्म के बाद नरश्रेष्ठ नारद नामक बुद्ध हुए, जो अनुपम एवं अद्वितीय पुरुष थे"॥ २३१॥

१०. भगवा पदुमुत्तरो

६४. नारदबुद्धस्स अपरभागे इतो सतसहस्सकप्पमत्थके एकस्मिं कप्पे एकोव पदुमुत्तरबुद्धो नाम उदपादि। तस्सापि तयो सावकसन्निपाता। पठमे कोटिसतसहस्सभिक्खू अहेसुं। दुतिये वेभारपब्बते नवुतिकोटिसहस्सानि, ततिये असीतिकोटि-सहस्सानि।

तदा बोधिसत्तो जटिलो नाम महारट्ठियो हुत्वा बुद्धपमुखस्स संघस्स तिचीवरदानं अदासि। सोपि नं 'अनागते बुद्धो भविस्ससी'ति व्याकासि।

पदुमुत्तरस्स पन भगवतो काले तित्थिया नाम नाहेसुं। सब्बे देवमनुस्सा बुद्धमेव सरणं अगमंसु। तस्स नगरं हंसवतो नाम अहोसि। पिता आनन्दो नाम खत्तियो, माता सुजाता नाम। देवलो च सुजातो च अग्गसावका। सुमनो नाम उपट्ठाको। अमिता च असमा च अग्गसाविका। सालरुक्खो च बोधि। सरीरं अट्ठासी ति हत्थुब्बेधं अहोसि। सरीरप्पभा समन्ततो द्वादसयोजनानि गण्हि। वस्ससतसहस्सं आयू ति।

'नारदस्स अपरेन, सम्बुद्धो द्विपदुत्तमो।
पदुमुत्तरो नाम जिनो, अक्खोभो सागरुपमो'' [1]ति, ॥२३२॥

११. भगवा सुमेधो

६५. तस्स अपरभागे तिंसकप्पसतसहस्सानि[2] अतिक्कमित्वा सुमेधो च सुजातो चाति एकस्मि कप्पे द्वे बुद्धा निब्बत्तिसु।

सुमेधस्सापि तयो सावकसन्निपाता। पठमसन्निपाते सुदस्सननगरे कोटिसतं खीणासवा अहेसुं। दुतिये नवुति कोटियो, ततिये असीति कोटियो।

R. 38 तदा बोधिसत्तो उत्तरो नाम माणवो हुत्वा निदहित्वा ठपितं येव असीतिकोटिधनं विस्सज्जेत्वा बुद्धप्पमुखस्स संघस्स
B. 46 महादानं दत्वा धम्मं सुत्वा सरणेसु पतिट्ठाय निक्खमित्वा पब्बजि। सोपि 'नं अनागते बुद्धो भविस्ससी'ति व्याकासि।

---

१. बु. वं. ३४२ पृ.। २. सत्तति भ.।

१०. भगवान पद्मोत्तर

६४. भगवान नारद के बाद, एक लाख कल्प बीत जाने पर एक कल्प में एक ही पद्मोत्तर नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में दस लाख भिक्षु उपस्थित थे। वैभार पर्वत पर हुए द्वितीय सम्मेलन में नव खरब तथा तृतीय में आठ खरब भिक्षु सम्मिलित थे।

उस समय बोधिसत्त्व ने जटिल नामक महाराष्ट्रिय (महा नागरिक) हो बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को तीन चीवरों (अन्तरवासक, उत्तरासंग, संघाटी) का दान दिया। उन्होंने भी उनके सम्बन्ध में कहा कि 'आप भविष्य में बुद्ध होंगे'।

भगवान पद्मोत्तर के समय अन्य तीर्थिक नहीं थे। सभी देवता एवं मनुष्य बुद्ध की ही शरण में प्रतिष्ठित थे। उनके नगर का नाम हंसवती था। आनन्द नामक क्षत्रिय उनके पिता तथा सुजाता उनकी माता थी। देवल एवं सुजात उनके दो प्रधान शिष्य थे। सुमन नामक परिचारक थे। अमिता तथा असमा दो प्रधाद शिष्यायें थी। सालवृक्ष उनका बोधिवृक्ष था। उनका शरीर अट्ठासी हाथ ऊँचा था। (उनके) शरीर की प्रभा चारो ओर बारह योजन तक फैली रहती थी। एक लाख वर्ष उनकी आयु थी।

"भगवाम नारद के बाद पुरुषश्रेष्ठ पद्मोत्तर नामक बुद्ध हुए, जो समुद्र के समान चांचल्य रहित थे" ॥ २३२ ॥

११. भगवान सुमेध

६५. उस पद्मोत्तर भगवान के बाद तीस लाख कल्प व्यतीत होने पर एक ही कल्प में सुमेध एवं सुजात नामक दो बुद्ध उत्पन्न हुए। भगवान सुमेध के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन सुदर्शन नगरमें हुआ जिसमें एक अरब क्षीणाश्रव अर्हत् सम्मिलित थे। द्वितीय में नब्बे करोड़ तथा तृतीय में अस्सी करोड़ थे।

उस समय बोधिसत्त्व उत्तर नामक माणव होकर पृथ्वी में गाड़कर रखे हुए अस्सी करोड़ धन को वितरित कर (त्याग) बुद्धप्रमुख भिक्षुसंघ को भोजन करा, धर्मोपदेश सुन, (त्रिरत्नों की शरण में प्रविष्टित हो) घर से निकल कर प्रव्रजित हो गये। उन्होंने भी उनके सम्बन्ध में कहा कि 'आप भविष्य में बुद्ध होंगे'।

भगवान सुमेध के नगर का नाम सुदर्शन था। सुदत्त नामक राजा इनके पिता तथा सुदर्शना इनकी माता थी। शरण तथा सर्वकाम नामक दो अग्र-श्रावक थे। सागर उनके परिचारक थे। रामा तथा सुरामा दो प्रधान शिष्यायें

सुमेधस्स भगवतो सुदस्सनं नाम नगरं अहोसि। सुदत्तो नाम राजा पिता, मातापि सुदस्सना नाम। सरणो च सब्बकामो च द्वे अग्गसावका। सागरो नाम उपट्ठाको। रामा च सुरामा च द्वे अग्गसाविका। महानीपरुक्खो बोधि। सरीरं अट्ठासीतिहत्थुब्बेधं अहोसि, आयु नवुतिवस्ससहस्सानी ति।

"पदुमुत्तरस्स अपरेन, सुमेधो नाम नायको।
दुरासदो उग्गतेजो, सब्बलोकुत्तमो मुनी" ति[1] ॥२३३॥

१२. भगवा सुजातो

६६. तस्स अपरभागे सुजातो नाम सत्था उदपादि। तस्सापि तयो सावकसन्निपाता। पठमसन्निपाते सट्ठिभिक्खुसहस्सानि अहेसुं। दुतिये पञ्ञासं, ततिये चत्तारीसं।

तदा बोधिसत्तो चक्कवत्ती राजा हुत्वा 'बुद्धो उप्पन्नोति' सुत्वा उपसंकमित्वा धम्मं सुत्वा बुद्धपमुखस्स संघस्स[2] सद्धिं सत्तहि रतनेहि चतुमहादीपरज्जं दत्वा[3] सत्थुसन्तिके पब्बजि। सकलरट्ठवासिनो रट्ठुप्पादं गहेत्वा आरामिककिच्चं साधेन्ता बुद्धपमुखस्स संघस्स निच्चं महादानं अदंसु। सोपि नं 'अनागते बुद्धो भविस्ससी' ति व्याकासि[4]।

तस्स भगवतो नगरं सुमंगलं नाम अहोसि। उग्गतो नाम राजा पिता, पभावती नाम माता। सुदस्सनो च देवो च अग्गसावका। नारदो नाम उपट्ठाको। नागा चा नागसमाला च अग्गसाविका। महावेणुरुक्खो बोधि। सो किर मन्दच्छिद्दो घनक्खन्धो उपरि महासाखाहि मोरपिञ्छकलापो विय विरोचित्थ। तस्स भगवतो सरीरं पण्णासहत्थुब्बेधं अहोसि, आयु नवुतिवस्ससहस्सानी ति।

"तत्थेव मण्डकप्पम्हि, सुजातो नाम नायको।
सीहहनुसभक्खन्धो, अप्पमेय्यो दुरासदो"[5] ति ॥२३४॥

१३. भगवा पियदस्सी

६७. तस्स अपरभागे इतो अट्ठारसकप्पसतमत्थके एकस्मिं कप्पे पियदस्सी, अत्थदस्सी, धम्मदस्सी ति तयो बुद्धा निब्बत्तिसुं। पियदस्सिस्स पि तयो सावकसन्निपाता। पठमे कोठिसतसहस्सं

---

१. बु वं० ३४५ पृ०। २. भिक्खु० म०। ३. कत्वा म०।
४. सो पि नं सत्था व्याकासि. रो०। ५. बु. वं. ३४७ पृ०।

थीं। महा कदम्बवृक्ष उनका बोधिवृक्ष था। उनका शरीर अट्ठासी हाथ ऊँचा था, तथा नब्बे हजार वर्ष की उनकी आयु भी।

"भगवान पद्मोत्तरके बाद सुमेध नामक बुद्ध हुए, जो दुराक्रमणीय उग्रतेज तथा समस्त लोकों में उत्तम मुनि थे" ॥ २३३ ॥

१२. भगवान सुजात

६६. उनके (भगवान सुमेध) बाद सुजात नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में साठ हजार भिक्षु सम्मिलित थे। द्वितीय में पचास हजार तथा तृतीय में चालिस हाजार भिक्षु थे।

उस समय बोधिसत्त्व ने चक्रवर्ती राजा हो, यह सुन कि 'बुद्ध उत्पन्न हुए हैं,' उनके निकट जा, धर्मोपदेश सुन बुद्धप्रमुख भिक्षुसंघ को सात रत्नों के साथ चार महाद्वीपों का राज्य दान कर, शास्ता के निकट प्रव्रजित हो गये। सभी देशवासी देश में उत्पन्न पदार्थों को ले भिक्षुसंघ के लिए आरामिक कृत्यों को करते हुए बुद्धप्रमुख भिक्षुसंघ को प्रति दिन भोजन दिया करते थे। उन्होंने भी कहा कि 'आप भविष्य में बुद्ध होंगे'।

उस भगवान के नगर का नाम सुमंगल था। उग्रत नामक राजा उनके पिता तथा प्रभावती नामक माता थी। सुदर्शन तथा देव नामक (दो) प्रधान शिष्य थे। नारद नामक परिचारक थे। नागा तथा नागसमाला (दो) प्रधान शिष्यायें थीं। महावेणुवृक्ष ही (उनका) बोधिवृक्ष था। वह छिद्र रहित घने स्कन्ध वाला वृक्ष (अपनी) बड़ी-बड़ी शाखाओं के साथ मोर के पंख के समान शोभता था। उस भगवान का शरीर पचास हाथ ऊँचा तथा उनकी आयु नब्बे हजार वर्ष की थी।

"वहाँ उस मण्डकल्प में सुजात नामक लोक नायक (बुद्ध) हुए, जो सिंह के समान ठुड्डी वाले, वृषभस्कन्ध, अप्रमेय एवं दुराक्रमणीय थे" ॥ २३४ ॥

१३. भगवान प्रियदर्शी

६७. उनके (भगवान सुजात) बाद अट्ठारह सौ कल्प बीत जाने पर एक कल्प में प्रियदर्शी, अर्थदर्शी, धर्मदर्शी नामक तीन बुद्ध उत्पन्न हुए। भगवान प्रिययर्शी के तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में दस खरब भिक्षु उपस्थित थे। द्वितीय सम्मेलन में नब्बे करोड़ तथा तृतीय में अस्सी करोड़ भिक्षु सम्मिलित थे।

भिक्खू अहेसुं। दुतिये नवुतिकोटियो, ततिये असीतिकोटियो ति।

तदा बोधिसत्तो कस्सपो नाम माणवो तिण्णं वेदानं पारं
B.47 गतो व हुत्वा सत्थुधम्मदेसनं सुत्वा कोटिसतसहस्सधनपरिच्चागेन
R.39 संघारामं कारेत्वा सरणेसु च सीलेसु च पतिट्ठासि। अथ 'नं
सत्था अट्ठारसकप्पसतच्चयेन बुद्धो भविस्ससी' ति ब्याकासि।

तस्स भगवतो अनोमं नाम नगरं अहोसि। पिता सुदिन्नो नाम राजा, माता चन्दा नाम। पालितो च सब्बदस्सी च अग्गसावका। सोभितो नामुपट्ठाको। सुजाता च धम्मदिन्ना च अग्गसाविका। पियंगुरुक्खो[1] बोधि। सरीरं असीतिहत्थुब्बेधं अहोसि, नवुतिवस्ससहस्सानि आयू ति।

"सुजातस्स अपरेन, सयम्भू लोकनायको।
दुरासदो असमसमो, पियदस्सी महायसो" ति ॥२३५॥

१४. भगवा अत्थदस्सी

६८. तस्स अपर भागे अत्थदस्सी नाम सत्था उदपादि। तस्सा पि तयो सावकसन्निपाता। पठमे अट्ठनवुति भिक्खुसतसहस्सानि अहेसुं। दुतिये अट्ठासीतिसतसहस्सानि तथा ततिये।

तदा बोधिसत्तो सुसीमो नाम महिद्धिकतापसो हुत्वा देवलोकतो मन्दारवपुप्फछत्तं आहरित्वा सत्थारं पूजेसि। सोपि 'नं[1] बुद्धो भविस्ससी' ति[1] ब्याकासि।

तस्स भगवतो सोभितं नाम नगरं अहोसि। सागरो नाम राजा पिता, सुदस्सना नाम माता। सन्तो च उपसन्तो च अग्गसावका। अभयो नामुपट्ठाको। धम्मा च सुधम्मा च अग्गसाविका। चम्पकरुक्खो बोधि। सरीरं असीतिहत्थुब्बेधं अहोसि। सरीरप्पभा समन्ततो सब्बकालं योजनमत्तं फरित्वा अट्ठासि। आयु वस्ससतसहस्सं ति।

"तत्थेव मण्डकप्पम्हि, अत्थदस्सी नरासभो।
महातमं निहन्त्वान, पत्तो सम्बोधिमुत्तमं"[2] ॥ २३६ ॥

१—१. नं ब्याकासि रो., नं अनागते बुद्धो भविस्ससी ति ब्याकासि म.।
२. बु. वं. ३५२ पृ०।

उस समय बोधिसत्त्व तीन वेदों में पारंगत काश्यप नामक माणवक होकर शास्ता के धर्मोपदेश को सुन दस खरब धन के व्यय से संघाराम (विहार) बनवा कर, (त्रिरत्नों की) शरण तथा शील में प्रतिष्ठित हुए। तब शास्ता ने कहा कि 'अठारह सौ कल्पोंके व्यतीत होने पर आप बुद्ध होंगे।'

उस भगवान के नगर का नाम अनोम था। सुदिन्न नामक राजा उनके पिता तथा चन्द्रा उनकी माता थी। पालित तथा सर्वदर्शी (उनके) अग्रश्रावक थे। शोभित परिचारक थे। सुजाता तथा धर्मदिन्ना (दो) प्रधान शिष्यायें थी। प्रियंगुवृक्ष (उनका) बोधिवृक्ष था। उनका शरीर अस्सी हाथ ऊँचा था तथा वे नब्बे हजार वर्षों तक जीवित रहे।

"भगवान सुजात के बाद लोक नायक प्रियदर्शी बुद्ध हुए, जो स्वयंभू, दुराक्रमणीय, अनुपम, तथा महा यशस्वी थे" ॥ २३५ ॥

१४. भगवान अर्थदर्शी

६८. उनके (भगवान प्रियदर्शी के) बाद अर्थदर्शी नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में अट्ठानबे लाख भिक्षु सम्मिलित थे। द्वितीय तथा तृतीय सम्मेलन में अट्ठासी लाख भिक्षु थे।

उस समय बोधिसत्त्व सुसीम नामक ऋद्धि सम्पन्न तपस्वी हो देवलोक से मन्दार पुष्प का छत्र ला शास्ता की पूजा की। उन्होंने भी उनको बतलाया कि 'आप बुद्ध होंगे।'

उस भगवान के नगर का नाम शोभित था। राजा सागर उनके पिता तथा सुदर्शना माता थी। शान्त तथा उपशान्त उनके अग्रश्रावक थे। अभय नामक उनके परिचारक थे। धर्मा तथा सुधर्मा (दोनों) प्रधान शिष्ययें थीं। चम्पकवृक्ष (उनका) बोधिवृक्ष था। अस्सी हाथ ऊँचा उनका शरीर था। शरीर प्रभा सर्वदा चारो ओर एक योजन तक व्याप्त होकर स्थित थी। एक लाख वर्ष तक उनकी आयु थी।

"उस मण्डकल्प में नर श्रेष्ठ अर्थदर्शी भगवान ने घोर अन्धकार को विनष्ट कर उत्तम पद सम्बोधि (बुद्धत्व) को प्राप्त किया" ॥ २३६ ॥

१५. भगवा धम्मदस्सी

६९. तस्स अपरभागे धम्मदस्सी नाम सत्था उदपादि। तस्सा पि तयो सावकसन्निपाता। पठमे कोटिसतं भिक्खू अहेसुं। दुतिये सत्तति कोटियो, ततिये असीति कोटियो। तदा बोधिसत्तो सक्को देवराजा हुत्वा दिब्बगन्धपुप्फे हि च दिब्बतुरियेहि पूजं अकासि। सोपि नं 'अनागते बुद्धो भविस्ससी' ति व्याकासि।

तस्स भगवतो सरणं नाम नगरं अहोसि। पिता सरणो नाम राजा, माता सुनन्दा नाम। पदुमो च फुस्सदेवो च
B. 48 अग्गसावका। सुनेत्तो नामुपट्ठाको। खेमा च सब्बनामा च अग्गसाविका। रत्तकुरवकरुक्खो बोधि, बिम्बिजालो ति पि वुच्चति। सरीरं पनस्स असीति हत्थुब्बेधं अहोसि; वस्ससतसहस्सं आयू ति।

"तत्थेव मण्डकप्पम्हि, धम्मदस्सी महायसो।
तमन्धकारं विधमेत्वा, अतिरोचति सदेवके" ति[1] ॥ २३७ ॥

१६. भगवा सिद्धत्थो

R. 40 ७०. तस्स अपरभागे इतो चतुनवुतिकप्पमत्थके एकस्मिं कप्पे एकोव सिद्धत्थो नाम बुद्धो उदपादि। तस्सा पि तयो सावकसन्निपाता। पठमसन्निपाते कोटिसतसहस्सं भिक्खू अहेसुं। दुतिये नवुति कोटियो, ततिये असीति कोटियो।

तदा बोधिसत्तो उग्गतेजो अभिञ्ञाबलसम्पन्नो मंगलो नाम तापसो हुत्वा महाजम्बुफलं आहरित्वा तथागतस्स अदासि। सत्था तं फलं परिभुञ्जित्वा 'चतुनवुतिकप्पमत्थके बुद्धो भविस्ससी' ति बोधिसत्तं व्याकासि।

तस्स भगवतो नगरं वेभारं नाम अहोसि। पिता जयसेनो नाम राजा, माता सुफस्सा नाम। सम्बलो च सुमित्तो च अग्गसावका। रेवतो नामुपट्ठाको। सीवली च सुरामा च अग्गसाविका। कणिकाररुक्खो बोधि। सरीरं सट्ठिहत्थुब्बेधं अहोसि, वस्ससतसहस्सं आयू ति।

"धम्मदस्सिस्स अपरेन, सिद्धत्थो नाम नायको।
निहनित्वा तमं सब्बं, सुरियोवब्भुगतो यथा" ति[2] ॥ २३८ ॥

---

१. बु. वं. ३४५ पृ.। २. बु. वं. ३४६ पृ.।

१५. भगवान धर्मदर्शी

६९. उनके (अर्थदर्शी भगवान के) बाद धर्मदर्शी नामक शास्ता उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में एक अरब भिक्षु थे। द्वितीय सम्मेलन में सत्तर करोड़ तथा तृतीय में अस्सी करोड़ भिक्षु थे। उस समय बोधिसत्त्व ने देवताओं के राजा शक्र होकर दिव्य गन्ध एवं पुष्पों से तथा दिव्य बाद्यों से (भगवान की) पूजा की। उन्होंने भी उनके सम्बन्ध में 'भविष्य में बुद्ध होने की भविष्य वाणी की'।

उस भगवान के नगर का नाम शरण था। शरण नामक राजा उनके पिता तथा सुनन्दा माता थी। पद्म तथा स्पर्शदेव प्रधान शिष्य थे। सुनेत्र उपचारक थे। क्षेमा तथा सर्वनामा (दोनों) प्रधान शिष्यायें थी। रक्तकुरवकवृक्ष (उनका) बोधिवृक्ष था, जिसे बिम्बिजाल भी कहा जाता है। उनका शरीर अस्सी हाथ ऊँचा था तथा एक लाख वर्ष तक वे जीवित रहे।

"उसी मण्डकल्प में महायशस्वी धर्मदर्शी बुद्ध हुए, जो उस अन्धकार को विनष्ट कर देवता सहित इस लोक में प्रकाशित हुए" ॥२३७॥

१६. भगवान सिद्धार्थ

७०. उनके (भगवान धर्मदर्शी) के बाद इस कल्प से चौरानबे कल्प (पहले) सिद्धार्थ नामक एक ही बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में दस अरब भिक्षु थे। द्वितीय सम्मेलन में नव खरब तथा तृतीय में आठ खरब भिक्षु सम्मिलित थे।

उस समय बोधिसत्त्व उग्रतेज अभिज्ञा (ऋद्धि) प्राप्त मंगल नामक तपस्वी हो महा जम्बुफल लाकर तथागत को दिया। शास्ता ने उस फल को खाकर 'चौरान्नबे कल्प के व्यतीत होने पर आप बुद्ध होंगे, ऐसा बोधिसत्त्व को कहा।

उस भगवान के नगर का नाम बैभार था। (उनके) पिता जयसेन नामक राजा थे तथा माता का नाम सुस्पर्शा था। सम्बहुल तथा सुमित्र (दोनों) अग्र श्रावक थे। रेवत परिचारक थे। सीवली तथा सुरामा (दो) अग्र श्राविकायें थीं। कर्णिकारवृक्ष उनका बोधिवृक्ष था। साठ हाथ ऊँचा उनका शरीर था तथा एक लाख वर्ष की आयु थी।

"धर्मदर्शी के बाद सिद्धार्थ नामक बुद्ध सर्व अन्धकार को नष्ट कर सूर्य के समान उदित हुए" ॥ २३८ ॥

१७. भगवा तिस्सो

७१. तस्स अपरभागे इतो द्वानवुतिकप्पमत्थके तिस्सो, फुस्सो ति एकस्मिं कप्पे द्वे बुद्धा निब्बत्तिंसु। तिस्सस्स भगवतो तयो सावकसन्निपाता। पठम सन्निपाते भिक्खूनं कोटिसतं अहोसि। दुतिये नवुति कोटियो, ततिये असीति कोटियो।

तदा बोधिसत्तो महाभोगो महायसो सुजातो नाम खत्तियो हुत्वा इसिपब्बज्जं पब्बजित्वा महिद्धिकभावं पत्वा 'बुद्धो उप्पन्नो' ति सुत्वा, दिब्बं मन्दारवपदुमं पारिच्छत्तकपुप्फानि च[1] आदाय चतुपरिसमज्झे गच्छन्तं तथागतं पूजेसि; आकासे पुप्फवितानं अकासि। सोपि 'नं सत्था इतो द्वे नवुतिकप्पे बुद्धो भविस्ससी' ती ब्याकासि।

तस्स भगवतो खेमं नाम नगरं अहोसि। पिता जनसन्धो नाम खत्तियो, माता पदुमा नाम। ब्रह्मदेवो च उदयो च अग्गसावका। सम्भवो नामुपट्ठाको। फुस्सा च सुदत्ता च अग्गसाविका। असनरुक्खो बोधि। सरीरं सट्ठिहत्थुब्बेधं अहोसि, वस्ससतसहस्सं आयू ति। :—

"सिद्धत्थस्स अपरेन, असमो अप्पटिपुग्गलो।
अनन्तसीलो अमितयसो, तिस्सो लोकग्गनायको।"[2] ति ॥ २३९ ॥

१८. भगवा फुस्सो

७२. तस्स अपरभागे फुस्सो नाम सत्था उदपादि। तस्सा पि तयो सावकसन्निपाता। पठमसन्निपाते सट्ठिभिक्खुसतसहस्सानि अहेसुं, दुतिये पण्णास; ततिये द्वत्तिंस।

तदा बोधिसत्तो विजितावी नाम खत्तियो हुत्वा महारज्जं
R. 41 पहाय सत्थुसन्तिके पब्बजित्वा तीणि पिटकानि उग्गहेत्वा महाजनस्स धम्मकथं कथेसि। सीलपारमिं च पूरेसि। सोपि नं बुद्धो तथेव ब्याकासि।

तस्स भगवतो कासी नाम नगरं अहोसि। जयसेनो नाम राजा पिता, सिरिमा नाम माता। सुरक्खितो च धम्मसेनो च अग्गसावका। सभियो नामुपट्ठाको। चाला च उपचाला च अग्गसाविका। आमलकरुक्खो बोधि। सरीरं अट्ठपण्णासहत्थुब्बेधं अहोसि, नवुतिवस्ससहस्सानि आयू ति।

---

१. री. पोत्थके कत्थि। २. बु. वं. ३५८ पृ.।

१७. भगवान तिष्य

७१. उनके बाद इस कल्प से ब्यानबे कल्प पूर्व, एक कल्प में तिस्स तथा फुस्स नामक दो बुद्ध उत्पन्न हुए। भगवान तिस्स के तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में एक अरब भिक्षु सम्मिलित थे। द्वितीय सम्मेलन में नब्बे करोड़ तथा तृतीय में अस्सी करोड़ भिक्षु थे।

उस समय बोधिसत्त्व ने महा ऐश्वर्य तथा यश सम्पन्न सुजात नामक क्षत्रिय होकर ऋषि परम्परा के अनुसार प्रव्रजित हो, महान् ऋद्धिबल को प्राप्त कर, 'बुद्ध उत्पन्न हुए हैं' ऐसा सुन दिव्य मन्दार, पद्म, तथा पारिजात पुष्प लाकर चार प्रकार की परिषद् के बीच जाकर तथागत की पूजा की तथा आकाश में फूलों की चान्दनी लगा दी। उस शास्ता ने भी कहा—'इस कल्प से बानब्बे कल्प ब्यतीत होने पर आप बुद्ध होंगे'।

उस भगवान के नगर का नाम क्षेम था। उनके पिता जनसन्ध नामक क्षत्रिय थे तथा माता का नाम पद्मा था। ब्रह्मदेव तथा उदय (दो) अग्र श्रावक थे। संभव नामक (उनके) परिचारक थे। फुस्स तथा सुदत्ता (दो) प्रधान शिष्यायें थीं। असनवृक्ष उनका बोधिवृक्ष था। उनका शरीर साठ हाथ उँचा था तथा एक लाख वर्षों तक उन्होंने जीवन का परिभोग किया।

"भगवान सिद्धार्थ के बाद अनन्त शील-सम्पन्न, अमित यशवाले, अनुपम, अद्वितीय पुरुष तिष्य नामक बुद्ध हुए" ॥ २३९ ॥

१८. भगवान पुष्य

७२. उनके (भगवान तिष्य के) बाद पुष्य नामक शास्ता उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में साठ लाख भिक्षु सम्मिलित थे तथा द्वितीय में पचास लाख एवं तृतीय में बत्तीस लाख भिक्षु थे।

उस समय बोधिसत्त्व विजतावी नामक क्षत्रिय हो (अपने) विशाल राज्य का परित्याग कर, शास्ता के निकट प्रव्रजित हो तीन पिटकों को पढ़कर जन समुदायको धर्मकथा कहते थे। (उन्होंने) शील पारमिता की भी पूर्त्ति की। उस बुद्ध ने भी उनके सम्बन्ध में उसी प्रकार की भविष्य वाणी की।

उस भगवान का नगर काशी था। जयसेन नामक राजा उनके पिता तथा सिरिमा माता थी। सुरक्षित तथा धर्मसेन (दो) अग्रश्रावक थे। सभिय नामक (उनके) परिचारक थे। चाला तथा उपचाला (दो) अग्रश्राविका थीं। आँवला का वृक्ष बोधि वृक्ष था। उनका शरीर अट्ठावन हाथ ऊँचा तथा नब्बे हजार वर्ष उनकी आयु थी।

"तत्थेव मण्डकप्पम्हि, अहु सत्था अनुत्तरो ।
अनुपमो असमसमो, पुस्सो लोकग्गनायको ।"[1] ति ॥२४०॥

१९. भगवा विपस्सी

७३. तस्स अपरभागे इतो एकनवुतिकप्पे विपस्सी नाम भगवा उदपादि। तस्सापि तयो सावकसन्निपाता। पठमसन्निपाते अट्ठसट्ठि भिक्खुसतसहस्सं अहोसि। दुतिये एकसतसहस्सं, ततिये असीति सहस्सानि।

तदा बोधिसत्तो महिद्धिको महानुभावो अतुलो नाम नागराजा हुत्वा सत्तरतनखचितं सोवण्णमयं पीठं भगवतो अदासि। सोपि 'नं इतो एकनवुतिकप्पे बुद्धो भविस्ससी' ति व्याकासि।

तस्स भगवतो बन्धुमती नाम नगरं अहोसि। बन्धुमा नाम राजा पिता, बन्धुमती नाम माता। खण्डो च तिस्सो च अग्गसावका। असोको नामुपट्ठाको। चन्दा च चन्दमित्ता च
B. 50 अग्गसाविका। पाटलिरुक्खो बोधि। सरीरं असीतिहत्थुब्बेधं अहोसि। सरीरप्पभा सदा सत्तयोजनानि फरित्वा अट्ठासि। असीतिवस्ससहस्सानि आयू ति।

"फुस्सस्स अपरेन, सम्बुद्धो द्विपदुत्तमो।
विपस्सी नाम नामेन, लोके उप्पज्जि चक्खुमा"ति[2]॥ २४१ ॥

२०. भगवा सिखी

७४. तस्स अपरभागे इतो एकतिंसे कप्पे सिखी च वेस्सभू चा ति द्वे बुद्धा अहेसुं। सिखिस्सा पि तयो सावकसन्निपाता। पठमसन्निपाते भिक्खुसतसहस्सं अहोसि। दुतिये असीति सहस्सानि, ततिये सत्तति।

तदा बोधिसतो अरिन्दमो नाम राजा हुत्वा बुद्धपमुखस्स संघस्स सचीवरं महादानं पवत्तेत्वा सत्तरतनपतिमण्डितं हत्थिरतनं दत्वा हत्थिप्पमाणं कत्वा कप्पियभण्डं अदासि। सोपि 'नं इतो एकतिंसे कप्पे बुद्धो भविस्ससी'ति व्याकासि।

तस्स पन भगवतो अरुणावती नाम नगरं अहोसि। अरुणो नाम खत्तियो पिता, पभावती नाम माता। अभिभू च सम्भवो

१. बु. वं. ३६० पृ.। २. बु. वं. ३६३ पृ.।

'उस मण्डकल्प में अलौकिक शास्ता पुष्य नामक बुद्ध हुए, जो अनुपम अद्वितीय लोक नायक थे ॥२४०॥

१९. भगवान विपश्यी

७३. उनके बाद, इस कल्प से एकानबे कल्प पूर्व भगवान विपश्यी उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलनमें अड़सठ लाख भिक्षु सम्मिलित थे। द्वितीय सम्मेलन में एक लाख तथा तृतीय में अस्सी हजार भिक्षु थे।

उस समय बोधिसत्त्व ने बड़े ऋद्धिमान, महाप्रतापी अतुल नामक नाग राजा होकर सप्त रत्न जटित एक सोने का आसन (सिंहासन) भगवान को दिया। उन्होंने भी भविष्यवाणी की कि 'इस कल्प से एकानबे कल्प बीतने पर आप बुद्ध होंगे।'

उस भगवान के नगर का नाम बन्धुमती था। बन्धुमान् नामक राजा उनके पिता तथा बन्धुमती माता थी। खण्ड तथा तिष्य दो प्रधान शिष्य थे। अशोक परिचारक थे। चन्द्रा तथा चन्द्रमित्रा (दो) प्रधान शिष्यायें थीं। पाटलिवृक्ष (उनका) बोधवृक्ष था। अस्सी हाथ ऊँचा उनका शरीर था। शरीर प्रभा सर्वदा सात योजन तक व्याप्त कर स्थित थी। अस्सी हजार वर्ष उनकी आयु थी।

'भगवान पुष्य के बाद नर श्रेष्ठ, चक्षुमान विपश्यी नामक बुद्ध लोक में उत्पन्न हुए' ॥२४१॥

२०. भगवान शिखी

७४. उनके बाद इस कल्प से एकत्तीस कल्प पूर्व शिखी तथा विश्वभू नामक दो बुद्ध उत्पन्न हुए। भगवान सिखी के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में एक लाख भिक्षु सम्मिलित थे। द्वितीय सम्मेलन में अस्सी हजार तथा तृतीय में सत्तर हजार भिक्षु थे।

उस समय बोधिसत्त्व ने अरिन्दम नामक राजा होकर बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघ को चीवर सहित भोजन प्रदान कर, सप्त रत्नों से सुसज्जित हस्तिरत्न का दान दे, पुनः हाथी के बराबर विहित वस्तुयें प्रदान की। उन्होंने भी भविष्यवाणी की कि 'इस कल्प से एकतीस कल्प के व्यतीत होने पर आप बुद्ध होंगे।'

उस भगवान का अरुणवती नामक नगर था। अरुण नामक क्षत्रिय राजा (इनके) पिता तथा प्रभावती माता थी। अभिभू तथा संभव दो प्रमुख शिष्य

च अग्गसावका। खेमंकरो नामुपट्ठाको। मखिला[1] च पदुमा च
R. 42 अग्गसाविका। पुण्डरीकरुक्खो बोधि। सरीरं सत्ततिसहत्थुब्बेधं
अहोसि। सरीरप्पभा योजनत्तयं फरित्वा अट्ठासि। सत्ततिस-
वस्ससहस्सानि आयू ति।

"विपस्सिस्स अपरेन, सम्बुद्धो द्विपदुत्तमो।
सिखिव्हयो नाम जिनो, असमो अप्पटिपुग्गलो" ति॥ २४२॥

२१. भगवा वेस्सभू

७५. तस्स अपरभागे वेस्सभू नाम सत्था उदपादि। तस्सापि तयो सावकसन्निपाता। पठमसन्निपाते असीतिभिक्खुसतसहस्सानि अहेसुं। दुतिये सत्तति, ततिये सट्ठि।

तदा बोधिसत्तो सुदस्सनो नाम राजा हुत्वा बुद्धपमुखस्स संघस्स[2] सचीवरं महादानं दत्वा तस्स सन्तिके पब्बजित्वा आचारगुणसम्पन्नो बुद्धरतने चित्तिकारपीतिबहुलो अहोसि। सोपि 'नं भगवा इतो एकतिंसे कप्पे बुद्धो भविस्ससी'ति ब्याकासि।

तस्स पन भगवतो अनोपमं[4] नाम नगरं अहोसि। सुप्पतीतो
B. 51 नाम राजा पिता, यसवती नाम माता। सोणो च उत्तरो च
अग्गसावका। उपसन्तो नाम उपट्ठाको। दामा च सुमाला च
अग्गसाविका। सालरुक्खो बोधि। सरीरं सट्ठिहत्थुब्बेधं अहोसि,
सट्ठिवस्ससहस्सानि आयू ति।

"तत्थेव मण्डकप्पम्हि, असमो अप्पटिपुग्गलो।
वेस्सभू नाम नामेन, लोके उप्पज्जि सो जिनो"[5] ति॥ २४३॥

२२. भगवा ककुसन्धो

७६. तस्स अपरभागे इमस्मिं कप्पे चत्तारो बुद्धा निब्बत्ता— ककुसन्धो, कोणागमनो, कस्सपो अम्हाकं भगवा ति। ककुसन्धस्स भगवतो एकोव सन्निपातो। तत्थ चत्तालीसं भिक्खूसहस्सानि अहेसुं।

तदा बोधिसत्तो खेमो नाम राजा हुत्वा बुद्धपमुखस्स संघस्स सपत्तचीवरं महादानञ्चेव अञ्जनादि भेसज्जानि च दत्वा सत्थुधम्मदेसनं सुत्वा पब्बजि। सोपि नं सत्था ब्याकासि।

---

१. सखिला म.। २. बु. वं. ३६६ पृ.। ३. भिक्खु० म.। ४. अनोमं म.। ५. बु. वं. ३६८ पृ.।

थे। क्षेमंकर परिचारक थे। मखिला और पद्मा दो प्रधान शिष्यायें थीं। पुण्डरीक वृक्ष (उनका) बोधि वृक्ष था। सैंतीस हाथ ऊँचा उनका शरीर था। उनकी शरीर प्रभा तीन योजन तक व्याप्त कर स्थित थी। सैंतीस हजार वर्ष उनकी आयु थी।

"भगवान विपश्यी के बाद नरश्रेष्ठ शिखी नामक बुद्ध हुए, जो अनुपम तथा अद्वितीय (पुरुष) थे' ॥२४२॥

२१. भगवान विश्वभू

७५. उनके (भगवान शिखी के) बाद वेस्सभू (विश्वभू) नामक शास्ता उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में अस्सी लाख भिक्षु थे। द्वितीय (सम्मेलन) में सत्तर हजार तथा तृतीय में साठ हजार भिक्षु थे।

उस समय बोधिसत्त्व सुदर्शन नामक राजा होकर, बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघ को चीवर सहित भोजन (महादान) दे, उनके (बुद्ध के) निकट प्रव्रजित हो, आचरण सम्बन्धी गुणों से सम्पन्न हो, बुद्धरत्न में अपार श्रद्धा एवं प्रीति को प्राप्त किया। उन्होंने भी ऐसी भविष्यवाणी की कि 'अब से एकत्तीस कल्प व्यतीत होने पर आप बुद्ध होंगे।'

उस भगवान के नगर का नाम अनूपम था। राजा सुप्रतीत उनके पिता तथा यशवती उनकी माता थी। सोण तथा उत्तर उनके दो प्रधान शिष्य थे। उपशान्त उनके परिचारक थे। दामा तथा सुमाला दो प्रधान शिष्यायें थीं। शाल वृक्ष (उनका) बोधिवृक्ष था। (उनका) शरीर साठ हाथ ऊँचा था तथा साठ हजार वर्ष उनकी आयु थी।

'उसी मण्ड कल्प में अतुलनीय एवं अद्वितीय वेस्सभू नामक बुद्ध लोक में उत्पन्न हुए' ॥२४३॥

२२. भगवान ककुसन्ध

७६. उनके बाद इस कल्प में ककुसन्ध, कोणागम, काश्यप, तथा हमलोगों के (गौतम) बुद्ध नामक चार बुद्ध उत्पन्न हुए। ककुसन्ध भगवान का एक ही शिष्य सम्मेलन हुआ। उसमें चालीस हजार भिक्षु सम्मिलित थे।

उस समय बोधिसत्त्व क्षेम नामक राजा होकर, बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघ को पात्र चीवर सहित महादान (भोजन) तथा अञ्जन भैषज्यादि दे, शास्ता के धर्मोपदेश सुन प्रव्रजित हो गये। उस सास्ता ने भी उनके सम्बन्ध में बुद्ध होने की बात कही।

ककुसन्धस्स पन भगवतो खेमं नाम नगरं अहोसि। अग्गिदत्तो नाम ब्राह्मणो पिता, विसाखा नाम ब्राह्मणी माता। विधुरो च संजीवो च अग्गसावका। बुद्धिजो नाम उपट्ठाको। सामा च चम्पका च अग्गसाविका। महासिरीसरुक्खो बोधि। सरीरं चत्ताळीसं हत्थुब्बेधं अहोसि, चत्ताळीसं वस्ससहस्सानि आयू ति।

"वेस्सभूस्स अपरेन, सम्बुद्धो द्विपदुत्तमो।
ककुसन्धो नाम नामेन, अप्पमेय्यो दुरासदो"[1] ति॥ २४४॥

२३. भगवा कोणागमनो

R. 43 ७७. तस्स अपरभागे कोणागमनो नाम सत्था उदपादि। तस्सापि एको सावकसन्निपातो। तत्थ तिंस भिक्खुसहस्सानि अहेसुं।

तदा बोधिसत्तो पब्बतो नाम राजा हुत्वा अमच्चगणपरिवुतो सत्थुसन्तिकं गन्त्वा धम्मदेसनं सुत्वा बुद्धपमुखं भिक्खुसंघं निमन्तेत्वा महादानं पवत्तेत्वा पत्तुण्णं चीनपट्टं कोसेय्यं कम्बलं दुकूलानि चेव सुवण्णपट्टकं दत्वा सत्थुसन्तिके पब्बजि। सोपि नं व्याकासि।

तस्स भगवतो सोभवती नाम नगरं अहोसि। यञ्ञदत्तो नाम ब्राह्मणो पिता, उत्तरा नाम ब्राह्मणी माता। भीयसो च उत्तरो च अग्गसावका। सोत्थिजो नामुपट्ठाको। समुद्दा च उत्तरा च अग्गसाविका। उदुम्बररुक्खो बोधि। सरीर तिसंतिहत्थुब्बेधं[2] अहोसि, तिंसवस्ससहस्सानि आयू' ति।

B. 52 "ककुसन्धस्स अपरेन, सम्बुद्धो द्विपदुत्तमो।
कोणागमनो नाम, जिनो लोकजेट्ठो नरासभो"[3] ति॥ १४५॥

२४. भगवा कस्सपो

७८. तस्स अपरभागे कस्सपो नाम सत्था लोके उदपादि। तस्सापि एको सावकसन्निपातो। तत्थ वीसतिभिक्खुसहस्सानि अहेसुं।

तदा बोधिसत्तो जोतिपालो नाम माणवो हुत्वा तिण्णं वेदानं पारगू भूमियं च अन्तलिक्खे च पाकटो घटीकारस्स कुम्भकारस्स मित्तो अहोसि। सो तेन सद्धिं सत्थारं उपसंकमित्वा धम्मकथं सुत्वा पब्बजित्वा आरद्धविरियो तीणि पिटकानि उग्गहेत्वा वत्तावत्तसम्पत्तिया बुद्धसासनं सोभेसि। सोपि नं सत्था व्याकासि।

---

१. बु. वं. ३७० पृ.। २. वीसति० रो.। ३. बु. वं. ३७३ पृ.।

भगवान ककुसन्ध के नगर का नाम क्षेम था। अग्निदत्त नामक ब्राह्मण उनके पिता तथा विशाखा नामक ब्राह्मणी माता थी। विधुर तथा संजीव अग्रश्रावक थे। बुद्धिज परिचारक थे। श्यामा तथा चम्पका दो अग्रश्राविका थीं। महाशिरीष वृक्ष उनका बोधि वृक्ष था। चालीस हाथ ऊँचा (उनका) शरीर था तथा चालिस हजार वर्षों तक वे जीवित रहे।

'भगवान विश्वभू के बाद पुरुषश्रेष्ठ अप्रमेय दुराक्रमणीय ककुसन्ध नामक बुद्ध हुए' ॥२४४॥

२३. भगवान कोणागमन

७७. उनके (ककुसन्ध के) बाद कोणागमन नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनका भी एक ही शिष्य सम्मेलन हुआ। उसमें तीस हजार भिक्षु सम्मिलित थे।

उस समय बोधिसत्व ने पर्वत नामक राजा होकर, आमात्यगण से परिवृत शास्ता के निकट जा, धर्मोपदेश सुन, बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को निमन्त्रित कर भोजन करा, प्रतूर्ण, चीनवस्त्र, रेशम, कम्बल, दुकूल तथा स्वर्ण वस्त्र दे उनसे प्रव्रज्या ग्रहण की। उन्होंने भी उनको कहा (कि आप बुद्ध होंगे)।

उस भगवान के नगर का नाम था शोभावती। यज्ञदत्त ब्राह्मण उनके पिता तथा उत्तरा नामक ब्राह्मणी माता थी। भीयस तथा उत्तर (दो) प्रमुख शिष्य थे। स्वस्तिज नामक परिचारक थे। सुभद्रा तथा उत्तरा (दो) प्रधान शिष्यायें थीं। उदुम्बर वृक्ष उनका बोधिवृक्ष था। तीस हाथ ऊँचा (उनका) शरीर था तथा तीस हजार वर्ष की उनकी आयु थी।

'भगवान ककुसन्ध के बाद नरश्रेष्ठ कोणागमन नामक बुद्ध हुए जो लोक ज्येष्ठ नरपुंगव थे' ॥२४५॥

२४. भगवान काश्यप

७८. उनके बाद काश्यप नामक बुद्ध लोक में उत्पन्न हुए। उनका भी एक शिष्य सम्मेलन हुआ। उसमें बीस हजार भिक्षु सम्मिलित थे।

उस समय बोधिसत्त्व तीनों वेदोंमें पारंगत पृथ्वी तथा आकाश सर्वत्र प्रसिद्ध (गति वाला) ज्योतिपाल नामक ब्राह्मण हो घटीकार नामक कुम्भकार के मित्र थे। उन्होंने अपने मित्र के साथ शास्ता के निकट जाकर धर्मकथा सुन प्रव्रजित हो प्रयत्न के साथ तीनों पिटकों को पढ़कर संघ के प्रति व्रतों (कर्त्तव्यों) को करते हुए बुद्ध शासन की शोभा बढ़ायी। उस शास्ता (भगवान काश्यप) ने भी उनके बुद्ध होने की भविष्य वाणी की।

तस्स भगवतो जातनगरं वाराणसी नाम अहोसि। ब्रह्मदत्तो नाम ब्राह्मणो पिता, धनवती नाम ब्राह्मणी माता। तिस्सो च भारद्वाजो च अग्गसावका। सब्बमित्तो नाम उपट्ठाको। अनुला च उरुवेला च अग्गसाविका। निग्रोधरुक्खो बोधि। सरीरं वीसति हत्थुब्बेधं अहोसि, वीसति वस्ससहस्सानि आयू ति।

"कोणागमनस्स अपरेन, सम्बुद्धो दिपदुत्तमो।
कस्सपो नाम सो[1] जिनो[1], धम्मराजा पभंकरो" ति ॥२४६॥

सब्बे बुद्धा

७९. यस्मिं पन कप्पे दीपंकरदसबलो उदपादि, तस्मिं अञ्ञे पि तयो बुद्धा अहेसुं। तेसं सन्तिका बोधिसत्तस्स ब्याकरणं
R. 44 नत्थि। तस्मा ते इध न दस्सिता। अट्ठकथायं पन तम्हा कप्पा पट्ठाय सब्बेपि[3] बुद्धे दस्सेतुं इदं वुत्तं:—

"तण्हंकरो मेधंकरो, अथो पि सरणंकरो।
दीपंकरो च सम्बुद्धो; कोण्डञ्ञो दिपदुत्तमो ॥ २४७ ॥
मंगलो च सुमनो च, रेवतो सोभितो मुनि।
अनोमदस्सी पदुमो, नारदो पदुमुत्तरो ॥ २४८ ॥
सुमेधो च सुजातो च, पियदस्सी महायसो।
अत्थदस्सी धम्मदस्सी, सिद्धत्थो लोकनायको ॥ २४९ ॥
तिस्सो फुस्सो च सम्बुद्धो, विपस्सी सिखी वेस्सभू।
ककुसन्धो कोणागमनो, कस्सपो चापि नायको ॥ २५० ॥
B. 53 एवे अहेसुं सम्बुद्धा, वीतरागा समाहिता।
सतरंसीव उप्पन्ना, महातमविनोदना।
जलित्वा अग्गिक्खन्धाव, निब्बुता ते ससावका" ति ॥ २५१ ॥

धम्माचरणानिसंसा

८०. तत्थ अम्हाकं बोधिसत्तो दीपंकरादीनं चतुवीसतिया बुद्धानं सन्तिके अधिकारं करोन्तो कप्पसतसहस्साधिकानि चत्तारि असंखेय्यानि आगतो। कस्सपस्स पन भगवतो ओरभागे ठपेत्वा इमं सम्मासम्बुद्धं, अञ्ञो बुद्धो नाम नत्थि। इति दीपंकरादीनं चतुवीसतिया बुद्धानं सन्तिके लद्धब्याकरणो पन बोधिसत्तो।

१-१. गोत्तेन म.। २. बु. वं. ३७५ पृ.। ३. रो. पोत्थके नत्थि।

उस भगवान की जन्म भूमि वाराणसी नगरी थी। ब्रह्मदत्त ब्राह्मण उनके पिता तथा धनवती उनकी माता थी। तिष्य और भारद्वाज (दो) प्रमुख शिष्य थे। सर्वमित्र (उनके) परिचारक थे। अनुला और उरुवेला (दो) प्रधान शिष्यायें थीं। न्यग्रोध वृक्ष (उनका) बोधिवृक्ष था। बीस हाथ ऊँचा उनका शरीर था तथा बीस हजार वर्ष की आयु से वे युक्त थे।

'भगवान कोणागमन के बाद नर श्रेष्ठ, धर्मराज प्रभंकर काश्यप नामक बुद्ध हुए' ॥२४६॥

सभी बुद्ध

७९. जिस कल्प में भगवान दीपंकार उत्पन्न हुए, उस कल्पमें अन्य तीन बुद्ध भी हुए। उनके द्वारा (निकट) बोधि सत्त्व के बुद्ध होने की भविष्य वाणी नहीं की गई है, इसलिए वे यहां नहीं दर्शाये गये हैं। अर्थकथा में उस कल्प से प्रारम्भ कर सभी बुद्धों को दर्शाने के लिए ऐसा कहा गया है—

'तण्हंकर, मेधंकर, शरणंकर, दीपंकर नरश्रेष्ठ कौण्डिन्य नामक सम्बुद्ध हुए ॥२४७॥

(पुनः) मंगल, सुमन, रेवत, शोभित, अनोमदर्शी, पद्म, पद्मोत्तर बुद्ध हुए ॥२४८॥

(पुनः) सुमेध, सुजात, महायशस्वी प्रियदर्शी, अर्थदर्शी, धर्मदर्शी तथा सिद्धार्थ लोकनायक हुए ॥२४९॥

(पुनः) तिष्य, पुष्य, विपश्यी, शिखी वेस्सभू, ककुसन्ध, कोणागमन, काश्यप बुद्ध हुए ॥२५०॥

ये सभी वीतराग, एकाग्रचित्त बुद्ध महाअन्धकार को सूर्य की किरणों के समान विध्वंस करते हुए उत्पन्न हुए तथा अग्निपुञ्ज के समान प्रज्वलित हो शिष्यों सहित निर्वाण को प्राप्त किये ॥२५१॥

धर्माचरण के फल

८०. इस प्रकार हमारे बोधिसत्त्व दीपंकरादि चौबीस बुद्धों के निकट सेवा व्रत का सम्पादन करते हुए चार असंखेय्य एक लाख कल्प व्यतीत कर (यहाँ) पहुँचे। भगवान काश्यप के बाद इस सम्यक् सम्बुद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई बुद्ध नहीं हुए। इस प्रकार दीपंकर आदि चौबीस बुद्धों के निकट इस बोधिसत्त्व के सम्बन्ध में (बुद्ध होने की) भविष्य वाणी की गई है।

येन पन तेन—

"मनुस्सत्तं लिंगसम्पत्ति, हेतु सत्थारदस्सनं।
पब्बजा गुणसम्पत्ति, अधिकारो च छन्दता।[1]
अट्ठधम्मसमोधाना, अभिनीहारो समिज्झती" ती ॥२५१क॥

इमे अट्ठ धम्मे समोधानेत्वा दीपंकरपादमूले कताभिनीहारेन— "हन्द बुद्धकरे धम्मे विचिनामि इतोचितो" ति उस्साहं कत्वा "विचिनन्तो तदा दक्खि पठमं दानपारमिं" ति दानपारमितादयो बुद्धकारकधम्मा दिट्ठा। ते[2] पूरेन्तो याव वेस्सन्तरत्तभावा आगमि। आगच्छन्तो च ये ते कताभिनीहारानं बोधिसत्तानं आनिसंसा संवण्णिता :—

एवं सब्बंगसम्पन्ना, बोधिया नियता नरा।
संसरं दीघमद्धानं, कप्पकोटिसतेहिपि ॥ २५२ ॥

अवीचिम्हि न उप्पज्जन्ति, तथा लोकन्तरेसु च।
निज्झामतण्हा खुप्पिपासा, न होन्ति कालकञ्जका।
न होन्ति खुद्दका पाणा, न उप्पज्जन्तापि दुग्गतिं ॥ २५३ ॥

R. 45 जायमाना मनुस्सेसु, जच्चन्धा न भवन्ति ते।
सोतवेकल्लता नत्थि, न भवन्ति मूगपक्खिका ॥ २५४ ॥

इत्थिभावं न गच्छन्ति, उभतोब्यञ्जनपण्डका।
न भवन्ति परियापन्ना, बोधिया नियता नरा ॥ २५५ ॥

मुत्ता आनन्तरिकेहि, सब्बत्थ सुद्धगोचरा।
B. 54 मिच्छादिट्ठिं न सेवन्ति, कम्मकिरियदस्सना ॥ २५६ ॥

वसमानापि सग्गेसु, असञ्ञं न उपपज्जरे।
सुद्धावासेसु देवेसु, हेतु, नाम न विज्जति ॥ २५७ ॥

नेक्खम्मनिन्ना सप्पुरिसा, विसंयुत्ता भवाभवे।
चरन्ति लोकत्थचरियायो, पूरेन्ता सब्बपारमी" ति ॥ २५८ ॥

---

१. बु वं. ३०९ पृ.। २. नै. टी.।

उनके द्वारा—

मनुष्यत्व जाति, (पुरुष) लिंग, हेतु, शास्ता के दर्शन, प्रव्रज्या, गुणों की प्राप्ति, अधिकार, इच्छा—इन आठ धर्मों से युक्त होने पर अभिनीहार (मुक्ति की कामना) की पूर्ति होती है (ऐसा कहा गया है)।

इन आठ धर्मों का संग्रह कर भगवान दीपंकर के चरणों में जिन्होंने इस प्रकार मुक्ति की कामना की तथा "अब मैं जहाँ तहाँ से बुद्धकारक धर्मों को पर्येषणा करूँगा', ऐसा सोच उत्साह के साथ "गवेषण करते हुए तब मैंने सर्व प्रथम दानपारमिता को देखा" इस क्रम से दानपारमिता आदि बुद्धकारक धर्म जिनसे देखे गये, उनको (बुद्धकारक धर्मों को) पूरा करते हुए वे वेस्सन्तर के जन्म तक आये। इस प्रकार आते हुए जिस किसी बोधिसत्वों के अभिनीहार के गुणों के सम्बन्ध में कहा गया है—

"इस प्रकार जो सर्वांग सम्पन्न पुरुष हैं, तथा जिनका बुद्ध होना निश्चित है, वे एक अरब कल्प तक की लम्बी अवधि तक (एक भव से दूसरे भव में) संसरण करते हुए भी अवीचि नामक नरक में उत्पन्न नहीं होते हैं; वे लोकान्तरों (तीन चक्रवालों के बीच स्थित शीत प्रधान नरक) में भी नहीं उत्पन्न होते हैं; वे निज्झामतृष्ण क्षुधापिपासा (से व्याकुल) प्रेत योनि या कालकञ्जक नामक असुर योनि में उत्पन्न नहीं होते हैं; न वे अति क्षुद्र जन्तु के रूप में उत्पन्न होते हैं, न दुर्गति को प्राप्त करते हैं ॥२५२-५३॥

मनुष्य की योनि में उत्पन्न होने पर वे जन्मान्ध नहीं होते हैं। न वे कान के बहरे होते हैं, न गूँगे होते हैं ॥२५४॥

न तो वे स्त्री के रूप में उत्पन्न होते हैं, न दोनों लिंग वाले नपुंसक ही होते हैं। जिन मनुष्यों को बुद्ध होना निश्चित है, वे लोकिय (लोक प्रपंचों से युक्त) नहीं होते हैं ।।२५५।।

वे आनन्तर्य कर्म (मातृघात, पितृघात, अर्हत् की हत्या, बुद्ध को क्षत करना, संघभेद) से मुक्त तथा सभी प्रकार से शुद्ध होते हैं। वे मिथ्या दृष्टियों को नहीं अपनाते हैं, तथा कर्म तथा कर्मफल के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं ।२५६।

स्वर्ग में उत्पन्न होने पर वे असंज्ञीसत्त्व (चेतना रहित देव) के रूप में उत्पन्न नहीं होते हैं। शुद्धावास नामक देवों में उत्पन्न होने के लिए कोई कारण नहीं रहता है ॥२५७॥

वे सत्पुरुष भवाभव से विसंयुक्त हो नैष्क्रम्य की ओर झुके (प्रवृत्त) रहते हैं। वे सभी पारमिताओं को पूरा कर लोक कल्याण के लिए विचरण करते हैं ॥२५८॥

जातकेसु पारमिपूरणकथा

१. दानपारमी

८१. ते आनिसंसे अधिगन्त्वा व आगतो। पारमियो पूरेन्तस्स चस्स अकित्तिब्राह्मणकाले, संखब्राह्मणकाले धनञ्जयराजकाले, महासुदस्सनकाले, महागोविन्दकाले, निमिमहाराजकाले, चन्दकुमारकाले, विसय्हसेट्ठिकाले, सिविराजकाले, वेस्सन्तर काले ति दानपारमिताय पूरितत्तभावानं परिमाणं नाम नत्थि। एकन्तेन पनस्स ससपण्डितजातके :—

"भिक्खाय उपगतं दिस्वा, सकत्तानं परिच्चजिं।
दानेन मे समो नत्थी, एसा मे दानपारमी" ति॥ २५६॥

एवं अत्तपरिच्चागं करोन्तस्स दानपारमिता परमत्थपारमिता नाम जाता।

२. सीलपारमी

८२. तथा सीलवनागराजकाले, चम्पेय्यनागराजकाले, भूरिदत्तनागराजकाले, छद्दन्तनागराजकाले, जयद्दिसराजस्स[1] पुत्तअलीनसत्तुकुमारकालेति[1] सीलपारमिताय परिपूरितत्तभावानं परिमाणं नाम नत्थि। एकन्तेन पनस्स संखपालजातके :—

"सूलेहि विज्झयन्तेपि, कोट्टयन्तेपि सत्तिहि।
भोजपुत्ते न कुप्पामि, एसा मे सीलपारमी"ति[2]॥ २६०॥

एवं अत्तपरिच्चागं करोन्तस्स सीलपारमिता परमत्थपारमी नाम जाता।

३. नेक्खम्मपारमी

८३. तथा सोमनस्सकुमारकाले, हत्थिपालकुमारकाले, अयोधरपण्डितकाले ति महारज्जं पहाय नेक्खम्मपारमिताय पूरितत्तभावानं परिमाणं नाम नत्थि। एकन्तेन पनस्स चूलसुतसोमजातके—

R. 46 महारज्जं हत्थगतं, खेलपिण्डं च छड्डयिं।
चजतो न होति लगनं[3], एसा मे नेक्खम्मपारमी"ति॥२६१॥

B. 55 एवं निस्संगताय रज्जं छड्डेत्वा निक्खमन्तस्स नेक्खम्मपारमी परमत्थपारमी नाम जाता।

---

१. जयद्दिसराजपुत्तकाले म.। २. च. पि. ४०८ पृ.। ३. लग्गं म.।

जातकों में पारमिताओं की पूर्त्ति

१. दानपारमिता

८१. बोधिसत्त्व इन धर्माचरणों के फलों को प्राप्त करते हुए (यहाँ तक) आये। पारमिताओं को पूर्ण करते हुए उन्होंने आकीर्ति ब्राह्मण, शंख ब्राह्मण, धनञ्जयराजा, महासुदर्शन, महागोविन्द, निमि महाराज, चन्द्रकुमार, विसह्य श्रेष्ठी, शिविराजा, तथा वेस्सन्तर के कालों में दानपारमिता पूरा करने की कोई सीमा न रखी। एक शशपण्डितजातक में—

'भिक्षा के लिए आये हुए याचक को देख अपने शरीर तक को दे दिया। दान देने में मेरे समान कोई नहीं है। यह मेरी दानपारमिता है' ॥२५६॥

इस प्रकार अपने शरीर का परित्याग करते हुए उनकी दानपारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

२. शीलपारमिता

८२. उसी प्रकार शीलव नागराज, चम्पेय्य नागराज, भूरिदत्त नागराज, छद्दन्त नागराज, जयद्दिस राजा के पुत्र अलीन शत्रुकुमार के जन्मों में शीलपारमिता की पूर्ति की सीमा नहीं। शंखपालक जातक में तो इसकी (पराकाष्ठा दर्शाते हुए)—

'शूल से बेधे जाने तथा शक्ति से प्रहार किये जाने पर भी मुझे भोजपुत्र पर क्रोध नहीं होता है। यह मेरी शील पारमिता है' ॥२६०॥

इस प्रकार आत्म उत्सर्ग करते हुए यह शीलपारमिता परमार्थ पारमिता कहलाई।

३. नैष्क्रम्यपारमिता

८३. उसी प्रकार सौमनस्य कुमार, हस्तिपाल कुमार, अयोधरपण्डित के समयों में महान् राज्य का परित्याग कर नैष्क्रम्यपारमिता की पूर्त्ति की सीमा नहीं है। चूलसुतसोम जातक में तो निश्चय रूप से—

'मैं ने हस्तगत महान् राज्य को थूक की तरह त्याग दिया। उसका परित्याग करते हुए तनिक भी आसक्ति नहीं हुई। यह मेरी नैष्क्रम्य पारमिता हुई' ॥२६१॥

इस प्रकार निर्लिप्त हो राज्य का परित्याग करते हुए यह नैष्क्रम्यपारमिता परमार्थ पारमिता कहलाई।

४. पञ्ञापारमी

८४. तथा विधुरपण्डितकाले, महागोविन्दपण्डितकाले, कुद्दालपण्डितकाले, अरकपण्डितकाले, बोधिपरिब्बाजककाले, महोसधपण्डितकाले ति, पञ्ञापारमिया पूरितत्तभावानं परिमाणं नाम नत्थि। एकन्तेन पनस्स सत्तुभत्तजातके सेनकपण्डितकाले—

"पञ्ञाय विचिनन्तोहं, ब्राह्मणं मोचयिं दुखा।
पञ्ञाय मे समो नत्थि, एसा मे पञ्ञापारमी", ति ॥२६२॥

अन्तोभस्तगतं सप्पं, दस्सेन्तस्स पञ्ञापारमी परमत्थपारमी नाम जाता।

५. विरियपारमी

८५. तथा विरियपारमितादीनं पि पूरितत्तभावानं परिमाणं नाम नत्थि। एकन्तेन पनस्स महाजनक जातके—

"अतीरदस्सी जलमज्झे, हता सब्बेव मानुसा।
चित्तस्स अञ्ञथा नत्थि, एसा मे विरियपारमी"ति ॥२६३॥

एवं महासमुद्दं तरन्तस्स विरियपारमी परमत्थपारमी नाम जाता।

६. खन्तिपारमी

८६. खन्तिवादजातके :—

"अचेतनं व कोट्टेन्ते, तिण्हेन फरसुना ममं।
कासिराजे न कुप्पामि, एसा मे खन्तिपारमी"ति ॥२६४॥

एवं अचेतनभावेन विय महादुक्खं अधिवासेन्तस्स खन्तिपारमी परमत्थपारमी नाम जाता।

७. सच्चपारमी

८७. महासुतसोमजातके—

"सच्चवाचं अनुरक्खन्तो, चजित्वा मम जीवितं।
मोचयिं एकसतं खत्तिये, परमत्थं[1] सच्चपारमी" ति ॥ २६५ ॥

एवं जीवितं चजित्वा सच्चमनुरक्खन्तस्स सच्चपारमी परमत्थपारमी नाम जाता।

---

१. एसा मे म.।

४. प्रज्ञापारमिता

८४. उसी प्रकार विधुरपण्डित, महागोविन्दपण्डित, कुद्दालपण्डित, अरकपण्डित, बोधिपरिव्राजक, महौषधिपण्डित के जन्मों में प्रज्ञापारमिता की पूर्ति की सीमा नहीं रही। पर सत्तुभत्तजातक में सेनकपण्डित के समय निश्चय रूप से—

'प्रज्ञा की गवेषणा करते हुए मैं ने ब्राह्मण को दुःख से मुक्त किया। प्रज्ञा-पूर्ति में मेरे सदृश कोई नहीं है। यह मेरी प्रज्ञा पारमिता है' ॥२६५॥

(इस प्रकार) थैली के भीतर के सर्प को दर्शाते हुए प्रज्ञा-पारमिता परमार्थ पारमिता कहलायी।

५. वीर्यपारमिता

८५. इसी प्रकार वीर्यपारमिता आदि पारमिताओं को पूर्ति की सीमा नहीं है। महाजनकजातक में तो निश्चय रूप से (इसकी पराकाष्ठा तक पहुँचाते हुए)—

'किनारे को न देख जल के बीच सभी मनुष्य डूब मरे। पर मेरा मन तनिक भी विकृत नहीं हुआ। यह मेरी वीर्यपारमिता है ॥२६३॥

इस प्रकार महासमुद्र का सन्तरण करते हुए यह वीर्यपारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

६ क्षान्तिपारमिता

८६. क्षान्तिवाद-जातक में—

'अचेतन (जड़) वस्तु के समान तेज फरसे से मुझे काटने पर भी काशी राज के प्रति मुझे क्रोध नहीं हुआ। यह मेरी क्षान्तिपारमिता है' ॥१६४॥

इस प्रकार जड़ वस्तु की तरह महादुःख (असह्य कटु वेदना) को सहते क्षान्तिपारमिता परमार्थ पारमिता कहलाई।

७. सत्यपारमिता

८७. महासुतसोम-जातक में—

'सत्य वचन की रक्षा करते हुए, अपने जीवन का परित्याग कर, मैं ने एक सौ क्षत्रियों को मुक्त किया। यह मेरी परमार्थतः सत्यपारमिता है' ॥२६५॥

इस प्रकार जीवन का परित्याग कर, सत्य की रक्षा करते हुए, सत्य-पारमिता परमार्थ पारमिता कहलाई।

८. अधिट्ठानपारमी

८८. मूगपक्खजातके :—

"माता पिता न मे देस्सा, न पि मे देस्सं महायसं ।
सब्बञ्ञुतं पियं मय्हं, तस्मा वतमधिट्ठहिं" ति ॥ २६६ ॥

R. 47 एवं जीवितं पि चजित्वा वतं अधिट्ठहन्तस्स अधिट्ठानपारमी परमत्थपारमी नाम जाता ।

९. मेत्तापारमी

८९. एकराजजातके :—

B. 56 "न मं कोचि उत्तसति, नपिहं भायामि कस्सचि ।
मेत्ताबलेनुपत्थद्धो, रमामि पवने सदा" ति ॥ २६७ ॥

एवं जीवितं पि अनवलोकेत्वा मेत्तायन्तस्स मेत्तापारमी परमत्थपारमी नाम जाता ।

१०. उपेक्खापारमी

९०. लोमहंसजातके :—

सुसाने सेय्यं कप्पेमि, छवट्ठिकं उपधायहं ।
गोमण्डला उपगन्त्वा, रूपं दस्सेन्तनप्पकं" ति ॥ २६८ ॥

एवं गामदारकेसु निट्ठुभनादीहि चेव मालागन्धुपहारादीहि च सुखदुक्खं उप्पादेन्तेसुपि उपेक्खं अनतिवत्तन्तस्स उपेक्खापारमी परमत्थपारमी नाम जाता । अयमेत्थ संखेपो । वित्थारतो पनेस अत्थो चरियापिटकतो गहेतब्बो । एवं पारमियो पूरेत्वा वेस्सन्तरत्तभावे ठितो ।

"अचेतनायं पठवी, अविञ्ञाय सुखं दुखं ।
सापि दानबला मय्हं, सत्तक्खत्तुं पकम्पथा" ति ॥ २६९ ॥

एवं महापठविकम्पनानि महापुञ्ञानि करित्वा आयुपरियोसाने ततो चुतो तुसितभवने निब्बत्ति । इति दीपंकरपादमूलतो पट्ठाय याव अयं तुसितपुरे निब्बत्ति, एत्तकं ठानं दूरे निदानं नामा ति वेदितब्बं ।

अविदूरे निदानं

९१. तुसितपुरे वसन्ते येव पन बोधिसत्ते बुद्धकोलाहलं[1] नाम उदपादि । लोकस्मिं हि तीणि कोलाहलानि उप्पज्जन्ति—कप्पकोलाहलं, बुद्धकोलाहलं, चक्कवत्तिकोलाहलं ति ।

---

[1] बुद्धहलाहलं रो.—(सब्बत्थ कोलाहलट्ठाने हलाहलं)

८. अधिष्ठान पारमिता

८८. मूकपक्षजातक में—

'न मुझे माता पिता से द्वेष है, न महायश से ही । मुझे सर्वज्ञता प्रिय है । इसलिए मैं ने इस व्रत का अधिष्ठान किया है' ॥२६६॥

इस प्रकार जीवन का परित्याग करते हुए यह अधिष्ठानपारमिता परमार्थ पारमिता कहलाई ।

९. मैत्रीपारमिता

८९. एकराजजातक में—

'न मुझे कोई डराता है, न मैं किसी से डरता हूँ । मैं मैत्री बल में आश्रित हो, सर्वदा बन में विचरण करता हूँ' ॥२६७॥

इस प्रकार जीवन तक की चिन्ता न कर मैत्री का अभ्यास करते हुए अधिष्ठानपारमिता परमार्थ पारमिता कहलाई ।

१०. उपेक्षापारमिता

९०. लोमहंसजातक में—

'मैं श्मशान में शवों (मुर्दों) तथा हड्डियों को सिर के नीचे रखकर सोता हूँ । गोपाल मण्डली मेरे निकट आकर अनेक प्रकार के रूप दर्शाती है' ॥१६७॥

इस प्रकार ग्रामीण बालकों द्वारा थूक फेंकने आदि से पीड़ा देने तथा माला गन्ध का उपहार आदि द्वारा सुख देने से भी समभाव का उलंघन नहीं किया । इस प्रकार की उपेक्षापरमिता परमार्थ पारमिता हुई । यह यहाँ संक्षेप में कहा गया । विस्तार से इसका अर्थ चरियापिटिक के अनुसार जानना चाहिए । इस प्रकार पारमिताओं को पूरा करते हुए वे (बोधिसत्त्व) वेस्सन्तर के जन्म तक आये ।

'यह पृथ्वी अचेतन है, सुख, दुःख का अनुभव नहीं करती है । वह भी मेरे दान के बल से सात बार काँप उठी' ॥२६९॥

इस प्रकार पृथ्वी को कम्पित कर देनेवाले महापुण्य कर के आयु को व्यतीत कर तुषित देव लोक में उत्पन्न हुए । भगवान दीपंकर के चरणों से आरंभ कर तुषित नामक देवलोक में उत्पन्न होने तक के इस भाग (जीवन कथा) को दूरे-निदान जानना चाहिए ।

अविदूरे निदान

९१. बोधिसत्त्व के तुषितपुर नामक देवलोक में रहते बुद्धकोलाहल उत्पन्न हुआ । लोक में तीन प्रकार के कोलाहल उत्पन्न होते हैं—कल्पकोलाहल, बुद्धकोलाहल तथा चक्रवर्तीकोलाहल ।

९२. तत्थ 'वस्ससतसहस्सस्स अच्चयेन कप्पुट्ठानं भविस्सती' ति, लोकब्यूहा नाम कामावचरदेवा मुत्तसिरा विकिण्णकेसा रुदम्मुखा अस्सूनि हत्थेहि पुञ्छमाना रत्तवत्थनिवत्था अतिविय विरूपवेसधारिनो हुत्वा मनुस्सपथे विचरन्ता एवं आरोचेन्ति—
B 57. "मारिसा, इतो वस्ससतसहस्सस्स अच्चयेन कप्पुट्ठानं भविस्सति।
R 48. अयं लोको विनस्सिस्सति। महासमुद्दोपि सुस्सिस्सति। अयं च महापठवी सिनेरु च पब्बतराजा उड्ढय्हिस्सन्ति विनस्सिस्सन्ति। याव ब्रह्मलोका लोकविनासो भविस्सति। मेत्तं, मारिसा, भावेथ। करुणं, मुदितं, उपेक्खं, मारिसा, भावेथ। मातरं उपट्ठहथ, पितरं उपट्ठहथ, कुले जेट्ठापचायिनो होथा" ति। इदं कप्पकोलाहलं नाम।

९३. 'वस्ससहस्सस्स अच्चयेन पन सब्बञ्ञू बुद्धो लोके उप्पज्जिस्सती' ति, लोकपालदेवता—'इतो मारिसा, वस्ससहस्सस्स अच्चयेन बुद्धो लोके उप्पज्जिस्सती' ति उग्घोसेन्ता आहिण्डन्ति। इदं बुद्धकोलाहलं नाम।

९४. 'वस्ससतस्स पन अच्चयेन चक्कवत्ती राजा उप्पज्जिस्सती' ति, देवता येव—'इतो मारिसा, वस्ससतच्चयेन चक्कवत्ती राजा लोके उप्पज्जिस्सती' ति—उग्घोसेन्तियो आहिण्डन्ति। इदं चक्कवत्तिकोलाहलं नाम।

देवतायाचनं

९५. इमानि तीणि कोलाहलानि महन्तानि होन्ति। तेसु बुद्धकोलाहलसद्दं सुत्वा सकलदससहस्सचक्कवाले देवता एकतो सन्निपतित्वा 'असुको नाम सत्तो बुद्धो भविस्सती' ति ञत्वा, तं उपसंकमित्वा आयाचन्ति। आयाचमाना च पुब्बनिमित्तेसु उप्पन्नेसु आयाचन्ति। तदा पन सब्बा पि ता एकेकचक्कवाले चातुम्महाराजसक्कसुयामसन्तुसितनिम्मानरतिपरनिम्मितवसवत्ति-महाब्रह्मेहि सद्धिं एकचक्कवाले सन्निपतित्वा तुसितभवने बोधिसत्तस्स सन्तिकं गन्त्वा—'मारिसा, तुम्हेहि दसपारमियो पूरेन्तेहि न सक्कसम्पत्तिं, न मारब्रह्मचक्कवत्तिसम्पत्तिं पत्थेन्तेहि पूरिता। लोकनित्थरणत्थाय पन सब्बञ्ञुतं पत्थेन्तेहि पूरिता। सो वो इदानि कालो, मारिस, बुद्धत्ताय। समयो मारिस, बुद्धत्ताया' ति—याचिंसु।

९२. 'एक लाख वर्ष व्यतीत हो जाने पर कल्प-उत्थान होगा', यह सोच लोकब्यूह नामक कामावचर देवता खुले सिर, बिखरे केश, रोते मुख, हाथों से आँसू पोछते हुए, लालवस्त्र पहने, अत्यन्त कुरूप वेष धारण किये मनुष्य लोक में विचरते हुए इस प्रकार कहा करते थे—मनुष्यों, आज से एक लाख वर्ष बीत जाने पर कल्प उत्थान (प्रलय) होगा। यह लोक नष्ट हो जायगा। महासमुद्र सूख जायगा। यह महापृथ्वी तथा पर्वतराज सुमेरु उड़ जायेंगे। ब्रह्मलोक तक सभी ब्रह्माण्ड नष्ट हो जायेंगे। (इसलिए) मित्रों, मैत्री की भावना करो। करुणा मुदिता उपेक्षा की भावना करो। माता की सेवा करो, पिता की सेवा करो, कुल में जो ज्येष्ठ हो, उनकी सेवा करो।" इसे कल्पकोलाहल कहते हैं।

९३. 'एक हजार वर्ष बीत जाने पर सर्वज्ञ बुद्ध उत्पन्न होंगे', ऐसा सोच लोकपाल देवता इस प्रकार का सद्घोष करते हुए विचरण करते हैं—'कि मित्रों, आज से एक हजार वर्ष व्यतीत होने पर लोक में बुद्ध उत्पन्न होंगे।' इसे बुद्धकोलाहल (उद्घोष) कहते हैं।

९४. 'एक सौ वर्ष बीत जाने पर चक्रवर्ती राजा उत्पन्न होंगे', यह सोच देवगण लोक में उद्घोष करते हुए विचरते हैं कि 'एक सो वर्ष बीतने पर चक्रवर्ती राजा लोक में उत्पन्न होंगे'। इसका नाम चक्रवर्तीकोलाहल है।

देवताओं की याचना

९५. ये तीनों महान् उद्घोष (कोलाहल) होते है। इनमें बुद्धकोलाहल के शब्दों को सुन कर दस हजार ब्रह्माण्डों के देवता एक स्थान पर एकत्र हो, 'अमुक सत्त्व बुद्ध होगा' ऐसा जान, उसके निकट जा प्रार्थना करते हैं। ऐसी याचना वे पूर्व-निमित्तों के उत्पन्न हो जाने पर ही करते हैं। तब सभी देवताओं ने चातुर्महाराजिक, शक्र, सुयाम, सन्तुषित, निर्माणरति, परनिर्मित वसवर्ती-महाब्रह्माओं के साथ एक चक्रवाल में एकत्र हो (निश्चय कर) तुषित लोक में बोधिसत्त्व के निकट जा इस प्रकार की याचना की—'हे मारिस, आपके द्वारा जो दस पारमिताओं की पूर्त्ति की गयी, वह न इन्द्र सम्पत्ति (इन्द्रासन), न मार या ब्रह्मा या चक्रवर्ती के पद को प्राप्त करने के लिए की गयी। लोक के उद्धार के लिये सर्वज्ञता (बुद्धत्व) की कामना करते हुए आपने उन्हें पूरा किया। हे मारिस, अब यह बुद्ध होने का काल है। यह बुद्ध होने का समय है।'

पञ्च महाविलोकनं

९६. अथ महासत्तो देवतानं पटिञ्ञं अदत्वा व कालदीप-देसकुलजनेत्तिआयुपरिच्छेदवसेन पञ्च महाविलोकनं नाम विलोकेसि।

कालो

९७. तत्थ 'कालो नु खो[1], अकालो नु खो' ति पठमं कालं विलोकेसि। तत्थ वस्ससतसहस्सतो उद्धं वड्ढितआयुकालो कालो नाम न होति। कस्मा? तदा हि सत्तानं जातिजरामरणानि न पञ्ञायन्ति। बुद्धानं च धम्मदेसना तिलक्खणविनिमुत्ता नाम नत्थि। तेसं "अनिच्चं दुक्खमनत्ता" ति, कथेन्तानं 'किं
B. 58 नामेतं कथेन्ती' ति नेव सोतब्बं, न सद्धातब्बं, मञ्ञन्ति। ततो अभिसमयो न होति। तस्मिं असति अनिय्यानिकं सासनं होति। तस्मा सो अकालो।

वस्ससततो ऊनआयुकालोपि कालो न होति। कस्मा? तदा सत्ता उस्सन्नकिलेसा होन्ति। उस्सन्नकिलेसानं च दिन्नोवादो
R. 49 ओवादट्ठाने न तिट्ठति, उदके दण्डराजि विय खिप्पं विगच्छति। तस्मा सोपि अकालो। वस्ससतसहस्सतो पन पट्ठाय हेट्ठा, वस्ससततो पट्ठाय उद्धं, आयुकालो कालो नाम। तदा च वस्ससतकालो। अथ महासत्तो निब्बत्तितब्बकालो ति कालं[2] पस्सि।

दीपं

९८. ततो दीपं विलोकेन्तो सपरिवारे चत्तारो दीपे ओलोकेत्वा, तीसु दीपेसु बुद्धा न निब्बत्तन्ति, जम्बुदीपे येव निब्बत्तन्ती ति, दीपं च पस्सि।

देसो

९९. ततो जम्बुदीपो नाम महा दसयोजनसहस्सपरिमाणो।[3] 'कतरस्मिं नु खो पदेसे बुद्धा निब्बत्तन्ती' ति ओकासं पि[4] विलोकेन्तो मज्झिमं देसं पस्सि। मज्झिमदेसो नाम पुरत्थिम-

---

१. ० ति रो.। २. रो. पोत्थेके नत्थि। ३. ० पसिमाणं रो.।
४. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि।

पाँच महा अवलोकन

९६. इसके बाद बोधिसत्त्व ने देवताओं को (अपने जन्म के सम्बन्ध में) वचन दिये बिना ही काल, द्वीप, देश, कुल, तथा माता एवं उनकी आयु-प्रमाण-इन पाँच विलोकनों पर विचार किया।

समय

९७. उनमें सर्वप्रथम (उत्पन्न होने का) 'उचित समय है या नहीं है', इस प्रकार उन्होंने समय का विचार किया। एक लाख वर्ष से अधिक आयु-प्रमाण (आयु का समय) उचित नहीं होता है। क्यों? उस समय प्राणियों को जन्म, जरा, मरण का ज्ञान नहीं होता है। बुद्धों की धर्म देशनायें तीन लक्षणों (अनित्य, अनात्म, दुःख) से रहित नहीं होती हैं। 'अनित्य दुःख, अनात्म' सम्बन्धी बातें कहने पर, 'यह क्या कहते हैं', (इन्हें) न सुनना चाहिए, (इन पर) श्रद्धा न करनी चाहिए, ऐसा (मनुष्य) सोचते है। इस लिये उन्हें धर्म का ज्ञान नहीं हो पाता है। धर्म के ज्ञान के न होने के कारण बुद्ध-शासन (संसार सन्तरण में उनके लिये) सहायक नहीं हो पाता है। इसलिए वह समय अनुकूल नहीं है।

एक सौ वर्ष से कम आयु प्रमाण भी उपर्युक्त समय नहीं है। क्यों? उस समय प्राणी चित्तमलों से जकड़े रहते हैं। चित्तमलों (क्लेशों) से आवृत मनुष्य को दिये गये उपदेश, उपदेश के रूप में सुग्रहीत नहीं होते हैं, जल में लकड़ी से खींची हुई रेखा के समान शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इसलिये वह भी असमय है। (इस प्रकार) एक लाख वर्ष से नीचे तथा सौ वर्ष से लेकर उससे ऊपर का आयुकाल युक्त समय है। और वह समय एक सौ वर्ष का है। अतः महासत्त्व के उत्पन्न होने का उचित समय है, (ऐसा) उन्होंने देखा।

द्वीप

९८. इसके बाद द्वीप के सम्बन्ध में अवलोकन करते हुए, उपद्वीपों के साथ चार द्वीपों को देख, तीन द्वीपों में बुद्ध उत्पन्न नहीं होते हैं, जम्बूद्वीप में ही उत्पन्न होते हैं, (इस प्रकार) द्वीप को देखा।

देश

९९. पुनः जम्बूद्वीप तो दस हजार योजन बड़ा है। किस प्रदेश में बुद्ध जन्म लेते हैं, (जन्म) स्थान का अवलोकन करते हुए मध्य देश को देखा। मध्यदेश की पूर्व दिशा में कजंगल नामक निगम है। उसके बाद महासाल

दिसाय कजंगलं नाम निगमो। तस्स अपरेन महासालो, ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झे। पुब्बदक्खिणाय दिसाय सललवती नाम नदी। ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झे। दक्खिणाय दिसाय सेतकण्णिकं नाम निगमो। ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झे। पच्छिमाय दिसाय थूणं नाम ब्राह्मणगामो। ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झे। उत्तराय दिसाय उसीरद्धजो नाम पब्बतो। ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झेति। एवं विनये वुत्तो पदेसो। सो आयामतो तीणि योजनसतानि, वित्थारतो अड्ढतिय योजनानि, परिक्खेपतो नवयोजनसतानी ति। एतस्मिं पदेसे बुद्धा, पच्चेकबुद्धा, अग्गसावका, असीति महासावका, चक्कवत्ति-राजानो, अञ्ञे च महेसक्खा खत्तियब्राह्मणगहपतिमहासाला उप्पज्जन्ति। इदं चेत्थ कपिलवत्थुकं नाम नगरं। तत्थ मया निब्बत्तितब्बं ति निट्ठं अगमासि।

कुलं

१००. ततो कुलं विलोकेन्तो 'बुद्धा नाम वेस्सकुले वा सुद्दकुले वा न निब्बत्तन्ति। लोकसम्मते पन खत्तियकुले वा ब्राह्मणकुले वा ति द्वीसु येव कुलेसु निब्बत्तन्ति। इदानि च खत्तिय-
B. 59 कुलं लोक सम्मतं। तत्थ निब्बत्तिस्सामि। सुद्धोदनो नाम राजा मे पिता भविस्सती' ति कुलं पस्सि।

जनेत्तिआयु

१०१. ततो मातरं विलोकेन्तो 'बुद्धमाता नाम लोला सुराधुत्ता न होति। कप्पसतसहस्सं पन पूरितपारमी, जातितो पट्ठाय अखण्डपञ्चसीला येव होति। अयं च महामाया नाम देवी एदिसी, अयं च मे माता भविस्सती' ति। कित्तकं पनस्सा आयू[1] ति ? दसन्नं मासानं सत्तदिवसानी ति पस्सि।

पटिसन्धिगहणं

१०२. इति इमं पञ्च महाविलोकनं विलोकेत्वा,—'कालो, मे मारिसा, बुद्धभावाया' ति,—देवतानं संगहं करोन्तो पटिञ्ञं दत्वा, 'गच्छथ तुम्हे' ति, ता देवता उय्योजेत्वा तुसितदेवताहि

१. आयुं रो.।

तथा उसके बाद सीमान्त जन पद हैं, इनसे मध्य में (वह मध्य देश है)। पूर्व दक्षिण दिशा में सललवती नदी है। उसके बाद सीमान्त जनपद हैं, उनसे मध्य में (मध्य देश है)। दक्षिण दिशा में स्वेतकर्णिक नामक निगम है। उसके बाद सीमान्त जनपद हैं, उनसे मध्य (मध्य देश) है। पश्चिम दिशा में थूण नामक ब्राह्मण ग्राम है। उसके बाद सीमान्त जनपद हैं, उससे मध्य में (मध्यदेश) है। उत्तर दिशा में उशीरध्वज नामक पर्वत है। उसके बाद सीमान्त जनपद हैं, उनसे मध्य (वह देश) है। इस प्रकार विनयपिटक में इस प्रदेश का वर्णन है। यह तीन सौ योजन लम्बा, ढाई सौ योजन चौड़ा तथा नव सौ योजन के घेरेवाला है। इसी प्रदेश में बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध, अग्र-श्रावक, अस्सी महाश्रावक, चक्रवर्ती राजा तथा अन्य महा प्रतापी, ऐश्वर्य सम्पन्न क्षत्रिय, ब्राह्मण, तथा गृहपति उत्पन्न होते हैं। यहीं यह कपिलवस्तु नामक नगर है। वहीं मुझे जन्म लेना है, ऐसा (उन्होंने) निश्चय किया।

कुल

१००. पुनः (उत्पन्न होने योग्य) कुल का अवलोकन करते हुए 'बुद्ध वैश्य कुल, या शूद्र कुल में नहीं उत्पन्न होते हैं। लोक सम्मानित क्षत्रियकुल या ब्राह्मणकुल-इन दो कुलों में ही जन्म लेते हैं। इस समय क्षत्रियकुल लोकमान्य है। (इसलिये) वहीं जन्म लूँगा। शुद्धोदन मेरे पिता होंगे,' ऐसा सोच उन्होंने कुल का अवलोकन किया।

माता तथा उनकी आयु

१०१. इसके बाद माता का विचार करते हुए—'बुद्ध की माता चंचल तथा मद्यपान करनेवाली नहीं होती है। एक लाख कल्प से पारमिताओं को पूरा करनेवाली तथा जन्म से पञ्चशीलों का अखण्ड पालन करनेवाली होती है। यह महामाया नामक देवी ऐसी ही है। यह मेरी माता होगी। (पुनः) इसकी आयु कितनी होगी ? दस महीने सात दिन, ऐसा उन्होंने देखा।

प्रतिसन्धि ग्रहण

१०२. इस प्रकार इन पाँच महाविलोकनों का अवलोकन कर, 'हे देवों, मेरे बुद्ध होने का यह समय है', ऐसे वचनों से देवताओं को आस्वस्त कर, वचन दे, 'आप लोग जाँय', (इस प्रकार) उन देवताओं को भेजकर तुषित लोक के

परिवुतो तुसितपुरे नन्दनवनं पाविसि। सब्बदेवलोकेसु हि नन्दनवनं अत्थि येव। तत्र[1] नं देवता—"इतो चुतो सुगतिं गच्छ, इतो चुतो सुगतिं गच्छा" ति पुब्बे कतकुसलकम्मोकासं
R. 50 सारयमाना विचरन्ति। सो एवं देवताहि कुसलं सारयमानाहि परिवुतो तत्थ विचरन्तो चवित्वा महामायाय देविया कुच्छिस्मिं पटिसन्धिं गण्हि। तस्साविभावत्थं अयं आनुपुब्बी कथा।

महामायादेविसुपिनं

१०३. तदा किर कपिलवत्थुनगरे असाळ्हि-नक्खत्तं घुट्ठं अहोसि। महाजनो नक्खत्तं कीळति। महामायादेवी पुरे पुण्णमाय सत्तमदिवसतो पट्ठाय विगत सुरापानं मालागन्धविभूति-सम्पन्नं नक्खत्तकीळं अनुभवमाना, सत्तमदिवसे पातोव उट्ठाय गन्धोदकेन नहायित्वा चत्तारि सतसहस्सानि विस्सज्जेत्वा महादानं दत्वा सब्बालंकारविभूसिता वरभोजनं भुञ्जित्वा उपोसथंगानि अधिट्ठाय अलंकतपटियत्तं सिरिगब्भं पविसित्वा सिरिसयने निपन्ना निद्दं ओक्कममाना, इमं सुपिनं अद्दस।

१०४. चत्तारो किर नं महाराजानो सयनेनेव सद्धिं उक्खिपित्वा हिमवन्तं नेत्वा सट्ठियोजनिके मनोसिलातले सत्त योजनिकस्स महासालरुक्खस्स हेट्ठा ठपेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। अथ नेसं देवियो आगन्त्वा देविं अनोतत्तदहं नेत्वा मनुस्समल-हरणत्थं नहापेत्वा दिब्बवत्थं निवासापेत्वा गन्धेहि विलिम्पापेत्वा दिब्बपुप्फानि पिलन्धापेत्वा ततो अविदूरे[2] रजतपब्बतो, तस्स
B. 60 अन्तो कनकविमानं अत्थि; तत्थ पाचीनसीसकं दिब्बसयनं पञ्ञापेत्वा निपज्जापेसुं।

१०५. अथ बोधिसत्तो सेतवरवारणो हुत्वा, ततो अविदूरे एको सुवण्णपब्बतो, तत्थ चरित्वा; ततो ओरुय्ह रजतपब्बतं अभिरुहित्वा उत्तरदिसतो आगम्म, रजतदामवण्णाय सोण्डाय सेतपदुमं गहेत्वा, कुञ्चनादं नदित्वा कनकविमानं पविसित्वा, मातुसयनं तिक्खत्तुं पदक्खिणं कत्वा, दक्खिणपस्सं फालेत्वा कुच्छिं पविट्ठसदिसो अहोसि। एवं उत्तरासाळ्हनक्खत्तेन पटिसन्धिं गण्हि।

---

१. तत्थ म.। २. ० एको म.।

देवताओं से परिवृत तुषितलोक के नन्दनवन में (उन्होंने) प्रवेश किया। सभी देवलोकों में नन्दनवन होते हैं। वहाँ देवगण उन्हें "यहाँ से च्यूत हो सुगति को प्राप्त करें, यहाँ से च्यून हो सुगति को प्राप्त करें"—इस प्रकार (बोधिसत्त्व के) पूर्व में किये कर्यों के फलस्वरूप प्राप्तव्य स्थानों का स्मरण कराते हुए विचरण करते थे। इस प्रकार देवताओं द्वारा पुण्य का स्मरण कराते हुए उनसे परिवृत हो वहाँ विचरण कर, वहाँ से च्यूत हो महामाया देवी के पेट में प्रतिसन्धि ग्रहण किया। उसे स्पष्ट करने के लिए क्रमानुसार कथा इस प्रकार है।

महामाया देवी का स्वप्न

१०३. उस समय कपिलवस्तु नगर में आसाढ़ो नक्षत्र (आसाढ़ उत्सव) की घोषणा की गयी थी। जनसमूह उत्सव मना रहा था। महामाया देवी ने पूर्णिमा के सात दिन पहले से मद्यपान से रहित हो, (केवल) माला गन्ध सुशोभित हो उत्सव का आनन्द लेते हुए, सातवें दिन प्रातःकाल उठकर सुगन्धित जल से स्नान कर, चार लाख (मुद्राओं के) परित्याग पूर्वक महादान दे, सभी आभूषणों से सुसज्जित हो, सुन्दर भोजन ग्रहण कर, उपोसथ अंगों का अधिष्ठान कर, अलंकृत शयनागार में प्रवेश कर श्री शय्या पर लेटे निद्रापन्न हो, इस स्वप्न को देखा।

१०४. चारो दिक्पाल (महाराजा) उसे शय्या सहित उठा कर, हिमवन्त प्रदेश में ले जाकर साठ योजन की मनोशिला नामक शिला के ऊपर सात योजन वाले महान् शालवृक्ष के नीचे रख कर एक ओर खड़े हो गये। इसके बाद उनकी देवियों ने आकर, (महामाया) देवी को अनोतत्तदह मे ले जाकर, मनुष्यमल प्रक्षालनार्थं स्नान करवा, दिव्य वस्त्र पहनवा, सुगन्ध का लेप लगवा, दिव्य फूलों से सजा, उसके निकट जो रजत पर्वत है, उसके भीतर जो कनक विमान है, वहीं पर पूर्व दिशा में सिर करके दिव्य शय्या बिछवा उन्हें लेटा दिया।

१०५. इसके बाद बोधिसत्त्व स्वेत वर्ण का श्रेष्ठ हाथी बन, वहाँ से निकट जो सुवर्ण पर्वत है, वहाँ विचरण कर, पुनः वहाँ से उतर रजतपर्वत पर चढ़, उत्तरदिशा से आकर, रजतदाम वर्ण के सुण्ड में स्वेत पद्म लेकर क्रौञ्चनाद कर कनक विमाग में प्रवेश कर, माता की शय्या का तीन बार प्रदक्षिण कर, दक्षिण पार्श्व (दाहिने बगल) को फाड़कर, कुक्षिमें प्रविष्ट सा हो गये। इस प्रकार उत्तराषाढ़ नक्षत्र में उन्होंने गर्भ में प्रवेश किया।

सुपिनविचारो

१०६. पुन दिवसे पबुद्धा देवो नं सुपिनं रञ्ञो आरोचेसि। राजा चतुसट्ठिमत्ते ब्राह्मणपामोक्खे पक्कोसापेत्वा, हरितुपलित्ताय[1] लाजादीहि कतमंगलसक्काराय भूमिया महारहानि आसनानि पञ्ञापेत्वा, तत्थ निसिन्नानं ब्राह्मणानं सप्पिमधुसक्कराभिसंखतस्स वरपायासस्स सुवण्णरजतपातियो पूरेत्वा सुवण्णरजतपातीहि येव पटिकुज्जेत्वा अदासि। अञ्ञेहि च अहतवत्थकपिलगाविदानादीहि ते संतप्पेसि। अथ नेसं[2] सब्बकामेहि संतप्पितानं सुपिनं आरोचापेत्वा किं भविस्सती ति पुच्छि।

१०७. ब्राह्मणा आहंसु—"मा चिन्तयि महाराज, देविया
R. 51 ते कुच्छिम्हि गब्भो पतिट्ठितो। सो च खो पुरिसगब्भो, न इत्थिगब्भो। पुत्तो ते भविस्सति। सो सचे अगारं अज्झावसिस्सति राजा भविस्सति चक्कवत्ती। सचे अगारा निक्खम्म पब्बजिस्सति, बुद्धो भविस्सति लोके विवट्टच्छद्दो" ति।

द्वत्तिंसपुब्बनिमित्तानि

१०८. बोधिसत्तस्स पन मातुकुच्छिम्हि पटिसन्धिगहणक्खणे एकप्पहारेनेव सकलदससहस्सी लोकधातु संकम्पि सम्पकम्पि सम्पवेधि। द्वत्तिंसपुब्बनिमित्तानि पातुरहेंसु। दससु चक्कवालसहस्सेसु अप्पमाणो ओभासो फरि।[3] तस्स तं सिरिं दट्ठुकामा विय अन्धा चक्खूनि पटिलभिंसु। बधिरा सद्दं सुणिंसु। मूगा समालपिंसु। खुज्जा उजुगत्ता अहेसुं। पंगुला पदसा गमनं पटिलभिंसु। बन्धनगता सब्बसत्ता अन्दुबन्धनादीहि मुच्चिंसु। सब्बनरकेसु अग्गि निब्बायि। पेत्तिविसये खुप्पिपासा वूपसमि। तिरच्छानानं भयं नाहोसि। सब्बसत्तानं रोगो वूपसमि। सब्बसत्ता पियंवदा अहेसुं। मधुरेनाकारेन अस्सा हसिंसु। वारणा गज्जिंसु। सब्बतुरियानि सकसकनिन्नादं मुञ्चिंसु। अघट्टितानि येव मनुस्सानं हत्थूपगादीनि आभरणानि विरविंसु। सब्बदिसा
B. 61 विप्पसन्ना अहेसुं। सत्तानं सुखं उप्पादयमानो मुदुसीतलो वातो

---

१. हरितुपत्ताय रो.। २. तेसं रो.। ३. फरि रो. म.।

स्वप्नविचार

१०६. दूसरे दिन जगने पर महामाया देवी ने उस स्वप्न को राजा से कह सुनाया। राजा ने चौसठ प्रमुख ब्राह्मणों को बुलवाकर, गोबर से लिपी हुई तथा धान के लावा आदि से मंगलमय बनाई हुई भूमि पर मूल्यवान आसनों को बिछवा कर, उन पर बैठे हुए ब्राह्मणों को सोने चान्दी की थालियों में घी, मधु, शक्कर से बनी खीर भर कर तथा उन्हें सोने चान्दी की थालियों से ढक कर प्रदान किया। अन्य नये वस्त्र तथा कपिला गाय के दान आदि से उन्हें संतृप्त किया। इस प्रकार उनकी सभी इच्छाओं की परिपूर्त्ति हो जाने पर (उन्होंने) स्वप्न को कह कर, इसका क्या फल होगा, (ऐसा) पूछा।

१०७. ब्राह्मणों ने कहा—"महाराज, आप भय न करें, आपकी देवी की कुक्षि (पेट) में गर्भ प्रतिष्ठित हुआ है। वह पुरुष-गर्भ है, स्त्री गर्भ नहीं। आपको पुत्र होगा। वह यदि घर में रहेगा तो चक्रवर्ती राजा होगा। यदि घर से निकलकर प्रव्रजित होगा तो लोक में सभी आवरणों से रहित अर्थात् परम ज्ञानी बुद्ध होगा।

बत्तीस पूर्वशकुन

१०८. बोधिसत्त्व के माता के गर्भ में प्रवेश करने के क्षण, दस हजार ब्रह्माण्ड एक प्रहार से कांपने के सदृश कम्पित, संप्रकम्पित हो एक दूसरे से प्रतिघातित हुए। बत्तीस पूर्वनिमित्त (शकुन) प्रकट हुए। दस हजार चक्रवाल अनन्त प्रकाश से भर गये, मानो उनकी (प्रकाश की) प्रभा को देखने के लिए अन्धों को आंखे मिल गई। बधिर लोगों ने शब्द सुना। गूंगे वार्तालाप किये। कुबड़े सीधे हो गये। पंगु पैर से चलने की शक्ति प्राप्त किये। बन्धन (कारागार) में पड़े सभी प्राणी बेड़ियों से मुक्त हो गये। सभी नरकों में आग बुझ गयी। प्रेतों की भूख प्यास मिट गयीं। पशु पक्षियों का भय जाता रहा। सभी प्राणियों के रोग शान्त हो गये। सभी प्राणी मधुरभाषी हो गये। घोड़े मधुर स्वर से हिनहिनाने लगे। हाथी चिघाड़ने लगे। सभी वाद्ययन्त्र अपने-अपने स्वर में बजने लगे। मनुष्यों के हाथ के आभरण, बिना आपस के संघर्षण के शब्द करने लगें। सभी दिशायें शान्त हो गईं। प्राणियों को सुख देती हुई मधुर एवं शीतल हवा बहने लगी। अकाल मेघ (असमय की वर्षा) बरस पड़े। पृथ्वी से पानी निकल कर बहने लगा। पक्षिों ने आकाश में उड़ना छोड़ दिया। नदियां प्रवहन विरहित हो उठीं (नदियों ने बहना छोड़ दिया)। महासमुद्र का जल मधुर हो

वायि। अकालमेघो पवस्सि।[1] पठवितो पि उदकं उब्भिज्जित्वा विस्सन्दि। पक्खिनो आकासगमनं विजहिंसु। नदियो असन्दमाना अट्ठंसु। महासमुद्दे मधुरं उदकं अहोसि। सब्बत्थकमेव पञ्चवण्णेहि पदुमेहि सच्छन्नं तलं अहोसि। थलजजलजादीनि सब्बपुप्फानि पुप्फिंसु। रुक्खानं खन्धेसु खन्धपदुमानि, साखासु साखापदुमानि, लतासु लतापदुमानि पुप्फिंसु। थले सिलातलानि भिन्दित्वा उपरुपरि सत्तसत्त हुत्वा दण्डपदुमानि नाम निक्खमिंसु। आकासे ओलम्बकपदुमानि नाम निब्बत्तिंसु। समन्ततो पुप्फवस्सानि वस्सिंसु। आकासे दिब्बतुरियानि वज्जिंसु। सकलदससहस्सी लोकधातु वट्टेत्वा विस्सट्ठमालागुलं विय, उप्पीलेत्वा बद्धमालाकलापो विय, अलंकतपटियत्तं मालासनं विय च, एकमालामालिनी, विप्फुरन्तवालवीजनी पुप्फधूपगन्धपरिवासिता परमसोभग्गप्पत्ता अहोसि।

१०९. एवं गहितपटिसन्धिकस्स बोधिसत्तस्स पटिसन्धितो पट्ठाय बोधिसत्तस्स चेव बोधिसत्तमातुया च उपद्दवनिवारणत्थं खग्गहत्था चत्तारो देवपुत्ता आरक्खं गण्हिंसु। बोधिसत्तमातु[2] पुरिसेसु रागचित्तं नुप्पज्जि। लाभग्गयसग्गप्पत्ता च अहोसि,
R 52 सुखिनी अकिलन्तकाया। बोधिसत्तञ्च अन्तोकुच्छिगतं विप्पसन्ने मणिरतने आवुतपण्डुसुत्तं विय पस्सति। यस्मा च बोधिसत्तेन वसितकुच्छिनाम चेतियगब्भसदिसा, न सक्का होति अञ्ञेन सत्तेन[3] आवसितुं वा परिभुञ्जितुं वा, तस्मा बोधिसत्तमाता सत्ताहजाते बोधिसत्ते कालं कत्वा तुसितपुरे निब्बत्तति। यथा च अञ्ञा इत्थियो दसमासे अप्पत्वापि, अतिक्कमित्वापि, निसिन्नापि, निपन्नापि विजायन्ति; न एवं बोधिसत्तमाता। सा पन बोधिसत्तं दसमासे कुच्छिना परिहरित्वा ठिताव विजायति। अयं बोधिसत्तमातुधम्मता।

बोधिसत्तस्स पातुभावो

११०. महामाया पि देवी पत्तेन तेलं विय दसमासे कुच्छिया बोधिसत्तं परिहरित्वा परिपुण्णगब्भा ञातिघरं गन्तुकामा सुद्धोदनमहाराजस्स आरोचेसि—'इच्छामहं देव, कुलसन्तकं देवदहनगरं गन्तुं'ति। राजा 'साधू' ति सम्पटिच्छित्वा कपिल-

१. वस्सि रो. म.। २. ० पन म.। ३. रो. पोत्थके नत्थि।

गया। सर्वत्र पृथ्वी तल पांच वर्ण के कमलों से आच्छादित हो उठा। जल या स्थल में होने वाले सभी फूल पुष्पित हो उठे। वृक्षों के स्कन्धों में स्कन्ध कमल, शाखाओं में शाखा कमल तथा लताओं में लता-कमल पुष्पित हुए। स्थल पर शिला तलों को भेद कर, ऊपर-ऊपर सात-सात (का गुच्छ) होकर दण्डपद्म निकल आये। आकाश में लटकने वाले कमल उत्पन्न हुए। सर्वत्र पुष्प वृष्टि हुई। आकाश में दिव्य तुर्य बजने लगे। समस्त दस हजार ब्रह्माण्ड (लोक धातु) वेष्ठित माला गुच्छ के समान, कसकर बंधे माला समूह के समान, अलंकृत एवं सुशोभित माला के आसन के समान, एक माला पंक्ति, या पुष्प धूप गन्ध से वासित प्रस्फुटित चंवर के समान परम सौन्दर्य को प्राप्त हुए।

१०९. इस प्रकार प्रतिसन्धि ग्रहण के क्षण से मां के गर्भ में प्रविष्ट बोधिसत्त्व तथा बोधिसत्त्व की मां के उपद्रवों के निवारणार्थ हाथ में तलवार लिये हुए चार देव पुत्र पहरा देने लगे। बोधिसत्त्व की माता को (तब से) पुरुष के प्रति आसक्ति नहीं उत्पन्न हुई। वे बहुत लाभ और यश को प्राप्त हो सुखी तथा अक्लान्त रही। वह अपने कुक्षिगत बोधिसत्त्व को शुभ्र मणिरत्न में आवृत पीत वर्ण के सूते के समान देखती थी। यस्मात् बोधिसत्त्व द्वारा वास की गयी कुक्षि में, चैत्यगर्भ के सदृश, अन्य प्राणियों का आवास या परिभोग असक्य होता है, अतः बोधिसत्त्व की माता बोधिसत्त्व के जन्म के एक सप्ताह बाद ही मर कर तुषित नामक देव लोक में जन्म ग्रहण करती है। जिस प्रकार अन्य स्त्रियां दस महीने के पूर्व भी, या उससे अधिक समय लेकर भी, बैठी या लेटी हुई भी प्रसव करती हैं; ऐसा बोधिसत्त्व की माता नही करती है। वह दस महीनों तक बोधिसत्त्व को कुक्षि में रख कर, खड़ी हो प्रसव करती है। यही बोधिसत्त्व की माता की धर्मता (विशिष्टता) है।

बोधिसत्त्व का जन्म

११०. महामाया देवी भी पात्र में तेल (धारण करने के सदृश) दस मास तक अपनी कुक्षि में बोधिसत्त्व को धारण कर, गर्भ के परिपूर्ण होने पर नैहर जाने की इच्छा से शुद्धोदन महाराज से बोली—" हे देव, मैं (अपने पिता) कुल देवदह नगर जाना चाहती हूँ"। राजा ने 'अच्छा' कह' कपिलवस्तु से

वत्थुतो याव देवदहनगरा मग्गं समं कारेत्वा, कदलीपुण्ण-
घटधजपताकादीहि अलंकारापेत्वा देविं सोवण्णसिविकाय
B. 62 निसीदापेत्वा, अमच्चसहस्सेन उक्खिपापेत्वा महन्तेन परिवारेन
पेसेसि।

१११. छिन्नं पन नगरानं अन्तरे उभयनगरवासीनं पि
लुम्बिनीवनं नाम मंगलसालवनं अत्थि। तस्मि समये मूलतो
पट्ठाय याव अग्गसाखा सब्बं एकफालिफुल्लं अहोसि। साखन्तरेहि
चेव पुप्फन्तरेहि च पञ्चवण्णभमरगणा नानप्पकारा च
सकुणसंघा मधुरसरेन विकूजन्ता विचरन्ति। सकलं लुम्बिनीवनं
चित्तलतावनसदिसं महानुभावस्स रञ्ञो सुसज्जितआपणमण्डलं
विय अहोसि। देविया तं दिस्वा सालवनकीळं कीळितुकामता
उदपादि। अमच्चा देविं गहेत्वा सालवनं पविसिंसु। सा
मंगलं सालमूलं गन्त्वा सालसाखायं गण्हितुकामा अहोसि।
सालसाखा सुसेदितवेत्तग्गं विय ओनमित्वा देविया हत्थपथं
उपगच्छि। सा हत्थं पसारेत्वा साखं अग्गहेसि। तावदेव चस्सा
कम्मजवाता चलिंसु। अथस्सा साणिं परिक्खिपित्वा महाजनो
परिक्कमि। सालसाखं गहेत्वा तिट्ठमानाय एव चस्सा[1]
गब्भवुट्ठानं अहोसि। तं खणं येव चत्तारोपि सुद्धचित्ता महाब्रह्मानो
सुवण्णजालं आदाय सम्पत्ता। तेन सुवण्णजालेन बोधिसत्तं
सम्पटिच्छित्वा मातु पुरतो ठपेत्वा 'अत्तमना देवि, होहि;
महेसक्खो ते पुत्तो उप्पनो' ति आहंसु।

११२. यथा पन अञ्ञे सत्ता मातुकुच्छितो निक्खमन्ता
पटिक्कूलेन असुचिना मक्खिता निक्खमन्ति, न एवं बोधिसत्तो।
R. 53 बोधिसत्तो पन धम्मासनतो ओतरन्तो धम्मकथिको विय,
निस्सेणितो ओतरन्तो पुरिसो विय च, द्वे च हत्थे द्वे च पादे
पसारेत्वा ठितको मातुकुच्छि सम्भवेन केनचि असुचिना
अमक्खितो सुद्धो विसदो कासिकवत्थे निक्खत्तमणिरतनं विय
जोतन्तो मातुकुच्छितो निक्खमि। एवं सन्तेपि बोधिसत्तस्स च
बोधिसत्तमातुया च सक्कारत्थं आकासतो द्वे उदकधारा
निक्खमित्वा बोधिसत्तस्स च मातुया चस्स सरीरे उतुं गाहापेसुं।

---

१. एवस्सा म.।

देवदहनगर तक के मार्ग को समतल करा, कदलीस्तंभ, पूर्णघट, ध्वजपताकादि से अलंकृत करवा देवी को सुवर्ण पालकी पर बैठा, एक हजार अमात्य (अधिकारी) तथा एक बड़ी सेवक मण्डली (परिवार) से संरक्षित कर भेजा।

१११. दोनों नगरों के बीच में, दोनों ही नगर वालों का लुम्बिनो वन नामक एक मंगल शालवन था। उस समय वह मूल से लेकर अन्तिम शाखाओं तक पूर्ण रूप से पुष्पित था। शाखाओं तथा पुष्पों के बीच पांच वर्ण के भ्रमरगण तथा नानाप्रकार के पक्षी गण मधुर स्वर से बोलते हुए विचरण करते थे। सम्पूर्ण लुम्बिनीवन चित्रतलतावन के समान किसी महाप्रतापी राजा के सुसज्जित आपणपंक्ति (बाजार की दूकानों की पंक्ति) वत् हो उठा था। उसे देख देवी के मन में शालवन में क्रीड़ा करने की इच्छा उत्पन्न हुई। अमात्य देवी को लेकर शालवन में गये। उन्होंने मंगलशाल के नीचे जा, शाल की शाखा पकड़ना चाहा। शालाशाखा अच्छी तरह बनायी गयी बेत की छड़ी के अग्रभाग (नोक) के समान झुक कर देवी के हाथ के निकट आ गई। उन्होंने हाथ फैला कर शाखा को पकड़ लिया। उसी क्षण उन्हें प्रसव बेदना उत्पन्न हुई। अत: पर्दे का घेरा बना लोग वहां से हट गये। शाल की शाखा को पकड़ कर खड़े होते ही उन्हें गर्भ उत्थान हो गया। तत्क्षण ही शुद्ध चित्त चार महाब्रह्मा सुवर्ण जाल लेकर वहां उपस्थित हुए। उस सुवर्णजाल में बोधिसत्त्व को ग्रहण कर, माता के सम्मुख रख बोले " हे देवी, प्रसन्न होवें, आपको महा प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ है"।

११२. जिस प्रकार अन्य प्राणी माँ की कोख से निकलते समय अपवित्र मल से लिप्त होकर निकते है. उस प्रकार बोधिसत्त्व नहीं निकते हैं। बोधिसत्त्व धर्मासन से उतरते धर्मकथिक के सदृश, सीढ़ी से उतरते पुरुष के समान, दोनों हाथ तथा पैर पसारे खड़े हुए के समान मातृकुक्षि संभूत किसी प्रकार के भी मल से निर्लिप्त शुद्ध तथा विशद काशी में बने वस्त्र में रखे मणिरत्न सदृश प्रकाशमान होते हुए माता की कुक्षि से निकले। ऐसा होने पर भी बोधिसत्त्व तथा उनकी माता के सत्कारार्थ, आकाश से दो जलधारायें निकल कर बोधिसत्त्व तथा उनकी माता के शरीर को शीतल बनायीं।

११३. अथ नं सुवण्णजालेन पटिग्गहेत्वा ठितानं ब्रह्मानं
हत्थतो चत्तारो महाराजानो मंगलसम्मताय सुखसम्फस्साय
अजिनप्पवेणिया गण्हिसु। तेसं हत्थतो मनुस्सा दुकूलचुम्बटकेन
पटिग्गण्हिसु[1]। मनुस्सानं हत्थतो मुञ्चित्वा पठवियं पतिट्ठाय
पुरत्थिमदिसं ओलोकेसि। अनेकानि चक्कवालसहस्सानि
B. 63 एकंगणानि अहेसुं। तत्थ देवमनुस्सा गन्धमालादीहि पूजयमाना,—
"महापुरिस, इध तुम्हेहि सदिसो अञ्ञो नत्थि, कुतेत्थ उत्तरितरो"
ति आहंसु। एवं चतस्सो दिसा चतस्सो अनुदिसा च हेट्ठा
उपरी ति, दसपि दिसा अनुविलोकेत्वा अत्तनो सदिसं अदिस्वा,
'अयं उत्तरा दिसा' ति सत्तपदवीतिहारेन अगमासि। महाब्रह्मुना
सेतच्छत्तं धारयमानो[2] सुयामेन देवपुत्तेन[3] बालबीजनि,
अञ्ञाहि च देवताहि सेसराजककुधभण्डहत्थाहि अनुगम्ममानो
ततो सत्तमपदे ठितो "अग्गोहमस्मि लोकस्सा" ति आदिकं
आसभिं वाचं निच्छारेन्तो सीहनादं नदि।

११४. बोधिसत्तो हि तीसु अत्तभावेसु मातुकुच्छितो
निक्खन्तमत्तो एवं वाचं निच्छारेसि—महोसधत्तभावे, वेस्सन्तरत्त
भावे, इमस्मिं अत्तभावे ति। महोसधत्तभावे किरस्स मातु
कुच्छितो निक्खमन्तस्सेव सक्को देवराजा आगन्त्वा चन्दनसारं
हत्थे ठपेत्वा गतो। सो नं मुट्ठियं कत्वाव निक्खन्तो। अथ नं
माता—'तात, किं गहेत्वा आगतोसी'ति पुच्छि। 'ओसधं
अम्मा'ति। इति ओसधं गहेत्वा आगतत्ता ओसधदारको त्वेवस्स
नामं अकंसु। तं ओसधं गहेत्वा चाटियं पक्खिपिंसु। आगतागतानं
अन्धबधिरादीनं तदेव सब्बरोगवूपसमाय भेसज्जं अहोसि।
ततो 'महन्तं इदं ओसधं, महन्तं इदं ओसधं ति उप्पन्नवचनं
उपादाय महोसधोत्वेवस्स नामं जातं। वेस्सन्तरत्तभावे पन
मातुकुच्छितो निक्खमन्तो दक्खिणहत्थं पसारेत्वाव "अत्थि
नु खो अम्म, किञ्चि धनं गेहस्मिं, दानं दस्सामी" ति वदन्तो
निक्खमि। अथस्स माता—"सधने कुले निब्बत्तोसि ताता"
R. 54 ति पुत्तस्स हत्थं अत्तनो हत्थतले कत्वा सहस्सत्थविकं ठपापेसि।
इमस्मिं पन अत्तभावे इमं सीहनादं नदी ति। एवं बोधिसत्तो
तीसु अत्तभावेसु मातुकुच्छितो निक्खन्तमत्तो व वाचं निच्छारेसि।

---

१. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि। २. धारियमानो रो., धारयमानेन ना. १.
३. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि।

११३. इसके बाद उन्हें स्वर्णजाल में लेकर खड़े ब्रह्माओं के हाथ से चार महाराजाओं ने बोधिसत्त्व को मंगलमय समझे जाने वाले सुख स्पर्श युक्त (सुकोमल) मृग चर्म में ग्रहण किया। उनके हाथ से मनुष्यों ने दुकूल चुम्बट (दोशाले से बने गद्दे) में ग्रहण किया। मनुष्यों के हाथ से निकलकर बोधिसत्त्व ने पृथ्वी पर खड़े हो पूर्व दिशा को ओर देखा। अनेक सहस्र चक्रवाल एक आंगन से हो गये। देवता तथा मनुष्य गन्धमाला आदि से पूजा करते हुए बोले—" महापुरुष, यहाँ आपके समान कोई नहीं है, बड़ा कहां होगा"। इसप्रकार चार दिशायें, चार अनुदिशायें, ऊपर नीचे–दसों दिशाओं का अवलोकन कर अपने समान किसी को न देखकर, यह उत्तर दिशा है, (कह) उन्होंने सात पग गमन किया। महाब्रह्मा द्वारा स्वेत छत्र, सुयाम नामक देवता द्वारा चंवर, तथा अन्य देवताओं द्वारा अवशेष राजकीय ककुध सामग्रियां (खड्ग, छत्र, पगड़ी, पादुका, पंखा हाथ में धारण कर अनुगमन किये जाते हुए सातवें पदतक चलकर स्थित हो "मैं लोक में सर्वश्रेष्ठ हूँ' इस प्रकार आर्य वचन बोलते हुए सिंहनाद किया।

११४. बोधिसत्त्व ने महोसधजन्म में वेस्सन्तरजन्म में तथा इस जन्म—इन तीन जन्मों में माता के गर्भ से निकलते समय इस प्रकार का आर्ष वचन कहा था। महोसध-जन्म में बोधिसत्त्व की माता की कुक्षि से निकलते समय ही देवराज शक्र वहाँ आकर उनके हाथ में चन्दनसार रखकर चले गये। वे उसे मुट्ठी में लेकर ही निकले। अतः उनकी माता ने पूछा—'तात, क्या लेकर आये हो ?' 'औषध है, अम्मा', (उन्होंने उत्तर दिया)। औषध लेकर आये होने के कारण उनका नाम औषधदारक रखा गया। उस औषध को लेकर घड़े में डाल दिया गया। आये गये अन्धे बहरे आदि रोगियों के रोग की शान्ति के लिए वही औषध हुआ। 'यह महान् औषध है', इस प्रकार की चर्चा के आधार पर उनका नाम महौषध (महोसध) पड़ा। वेस्सन्तर जन्म में माता की कुक्षि से निकलते हुए दाहिने हाँथ को फैलाये यह पूछते हुए निकले कि 'माँ घर में कुछ है, मैं दान दूँगा।' अतः माता ने यह कहते हुए कि 'तात, तू धनी कुल में उत्पन्न हुए हो,' उनके हाथ को अपने हाथ पर रखते हुए एक हजार की थैली रखवाया। इस जन्म में इस प्रकार का सिंहनाद उन्होंने किया। इस प्रकार बोधिसत्त्व ने तीन जन्मों में माता की कुक्षि से निकलते समय शब्द का उच्चारण किया है।

११५. यथा च पटिसन्धिक्खणे एवं[1] जातक्खणे पिस्स द्वत्तिंसपुब्बनिमित्तानि पातुरहेसुं। यस्मिं पन समये अम्हाकं बोधिसत्तो लुम्बिनीवने जातो, तस्मिं येव समये राहुलमातादेवी, छन्नो अमच्चो, कालुदायी अमच्चो, आनन्दो[2] राजकुमारो[2], आजानीय्यो[3] हत्थिराजा[3], कन्थको अस्सराजा, महाबोधि
B. 64 रुक्खो, चतस्सो[4] निधिकुम्भियो च जाता। तत्थ एका गावुतप्पमाणा, एका अड्ढयोजनप्पमाणा, एका तिगावुतप्पमाणा, एका योजनप्पमाणा[5] अहोसी ति। इमे सत्त सहजाता नाम। उभयनगरवासिनो बोधिसत्तं गहेत्वा कपिलवत्थुनगरमेव अगमंसु।

तापसो कालदेवलो

११६. 'तं दिवसं येव च कपिलवत्थुनगरे सुद्धोदनमहाराजस्स पुत्तो जातो, अयं कुमारो बोधितले निसीदित्वा बुद्धो भविस्सती'ति, तावतिंसभवने हट्ठतुट्ठा देवसंघा चेलुक्खेपादीनि पवत्तेन्ता कीळिंसु। तस्मिं समये सुद्धोदनमहाराजस्स कुलूपगो अट्ठसमापत्तिलाभी कालदेवलो नाम तापसो भत्तकिच्चं कत्वा दिवाविहारत्थाय तावतिंसभवनं गन्त्वा तत्थ दिवाविहारं निसिन्नो ता देवता दिस्वा, 'किं कारणा तुम्हे एवं तुट्ठमानसा कीळथ ? मय्हं पेतं कारणं कथेथा'ति पुच्छि :

देवता आहंसु—'मारिस, सुद्धोदनरञ्ञो पुत्तो जातो। सो बोधितले निसीदित्वा बुद्धो हुत्वा धम्मचक्कं पवत्तेस्सति। तस्स अनन्तं बुद्धलीळ्हं दट्ठुं धम्मं च सोतुं लच्छामा ति, इमिना कारणेन तुट्ठम्हा'ति।

११७. तापसो तासं वचनं सुत्वा खिप्पं देवलोकतो ओरुय्ह राजनिवेसनं पविसित्वा पञ्ञत्तासने निसिन्नो त्तो किर, ते महाराज, जातो, पस्सिसामि नं" ति आह। राजा अलंकतपटियत्तं कुमारं आनापेत्वा तापसं वन्दापेतुं अभिहरि। बोधिसत्तस्स पादा परिवत्तित्वा तापसस्स जटासु पतिट्ठहिंसु। बोधिसत्तस्स हि तेनत्तभावेन वन्दितब्बयुत्तको अञ्ञो नाम नत्थि। सचे हि अजानन्ता बोधिसत्तस्स सीसं तापसस्स पादमूले ठपेय्युं, सत्तधा

१. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि। २-२. रो. पोत्थके नत्थि, आनन्दत्थेरो म.।
३-३. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि। ४. चत्तारो रो.।
५. गम्भीरतो पठवीपरियन्ता एव ना. पृ० ६६.।

११५. प्रतिसन्धि के समय के समान ही जन्म के समय भी बत्तीस पूर्व निमित्त उत्पन्न हुए। जिस समय हमलोगों के बोधिसत्त्व ने लुम्बिनी वन में जन्म लिया, उसी समय राहुलमाता देवी (यशोधरा), छन्न अमात्य, कालुदायी अमात्य, आनन्द राजकुमार, हस्तिराज आजानीय, अश्वराज कन्थक, महाबोधि वृक्ष, तथा चार निधिकुंभ (खजाने से भरे घड़े) उत्पन्न हुए। उनमें एक-एक गव्यूति (दो मील) प्रमाण का, अन्य आधे योजन (चार मील का), एक (तीसरा) तीन गव्यूति प्रमाण का तथा एक (चतुर्थ) एक योजन प्रमाण का था। ये सातो एक साथ ही उत्पन्न हुए। दोनों नगरों के निवासी बोधिसत्त्व को लेकर कपिलवस्तु नगर आये।

तपस्वी कालदेवल

११६. 'उस दिन कपिलवस्तु नगर में शुद्धोदन-महाराज को पुत्र उत्पन्न हुआ है, यह कुमार बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर बुद्ध होगा, ऐसा कह तावतिंस देव लोक के देवतागण सन्तुष्ट हो वस्त्रों को उछाल-उछाल कीड़ा कर रहे थे। उसी समय महाराज शुद्धोदन का कुलमान्य, आठ समापत्तियों का लाभी कालदेवल नामक तपस्वी भोजन कर के दिवा विहार के लिए तावतिंस भवन जाकर वहाँ दिवा विहार के लिए बैठे, उन्होंने उन देवताओं से (वैसा करते हुए देख कर) पूछा—"क्या कारण है कि आप लोग इस प्रकार सन्तुष्ट हो क्रीड़ा कर रहे हैं ? मुझे भी इसका कारण बतावें।

देवताओं ने उत्तर दिया—'मारिस, राजा शुद्धोदन को पुत्र उत्पन्न हुआ है। वह बोधिवृद्ध के नीचे बैठ कर बुद्ध हो धर्मचक्र प्रवर्तित करेगा। हमलोग उनकी अनन्त बुद्धलीला देखेंगे तथा धर्मोपदेश सुन सकेंगे, इस कारण हम प्रसन्न मन हैं।

११७. उनके वचन को सुन तपस्वो कालदेवल ने देवलोक से उतर, राजभवन में प्रवेश कर बिछे हुए आसन पर बैठ—'महाराज, आपको, पुत्र हुआ है, उसे मैं देखूंगा,' ऐसा कहा। राजा ने सुअलंकृत कुमार को मंगवा, तपस्वी की बन्दना कराने के लिए बढ़ाया। बोधिसत्त्व के चरण उठकर तपस्वी की जटा से जा लगे। बोधिसत्त्व के विद्यमान रहने पर, उनके लिए दूसरा कोई वन्दनीय नहीं है। यदि न जानने के कारण बोधिसत्त्व का सिर तपस्वो के चरणों पर रखा जाता तो उसके सात टुकड़े हो जाते। तपस्वी ने मुझे

अस्स मुद्धं फलेय्य। तापसो—'न मे अत्तानं नासेतुं युत्तं'ति उट्ठायासना बोधिसत्तस्स अञ्जलिं पग्गहेसि। राजा तं अच्छरियं दिस्वा अत्तनो पुत्तं वन्दि।

तापसो अतीते चत्तालीसकप्पे, अनागते चत्तालीसा ति, असीति कप्पे अनुस्सरति। बोधिसत्तस्स लक्खणसम्पत्तिं दिस्वा 'भविस्सति नु खो बुद्धो उदाहु नो ति, आवज्जित्वा उपधारेन्तो निस्संसयं बुद्धो भविस्सती'ति ञत्वा अच्छरियपुरिसो अयं ति सितं
R.55 अकासि। ततो 'अहं इमं बुद्धभूतं दट्ठुं लभिस्सामि नु खो, नो ति,
B.65 उपधारेन्तो; न लभिस्सामि' अन्तरायेव कालं कत्वा बुद्धसतेनपि बुद्धसहस्सेनपि गन्त्वा बोधेतुं असक्कुणेय्ये अरूपभवे निब्बत्तिस्सामी ति; दिस्वा एवरूपं नाम अच्छरियपुरिसं बुद्धभूतं दट्ठुं न लभिस्सामि, महती वत[1] मे जानि भविस्सती'ति परोदि। मनुस्सा दिस्वा-'अम्हाकं अय्यो इदानेव हसित्वा पुन रोदितुं उपट्ठितो; किन्नु खो भन्ते, अम्हाकं अय्यपुत्तस्स कोचि अन्तरायो भविस्सती'ति, पुच्छिंसु।

'नत्थेतस्स अन्तरायो, निस्संसयेन बुद्धो भविस्सती'ति।

'अथ कस्मा परोदित्था' ति?

'एवरूपं महापुरिसं बुद्धभूतं दट्ठुं न लभिस्सामि, महती वत जानि भविस्सती'ति, अत्तानं अनुसोचन्तो रोदामी'ति आह।

ततो 'किन्नु खो, मे ञातकेसु कोचि एतं बुद्धभूतं दट्ठुं लभिस्सति, न लभिस्सती'ति, उपधारेन्तो भागिनेय्यं नालकदारकं अद्दस। सो भगिनिया गेहं गन्त्वा 'कहं ते पुत्तो नालको'ति?

'गेहे[2], अय्या' ति।

'पक्कोसाहि नं'ति।

अत्तनो सन्तिकं आगतं आह, 'तात, सुद्धोदनमहाराजस्स कुले पुत्तो जातो। बुद्धंकुरो एस, पञ्चतिंस वस्सानि अतिक्कमित्वा बुद्धो भविस्सति[3]। त्वं एतं दट्ठुं लभिस्ससि। अज्जेव पब्बज्जाही' ति।

'सत्तासीतिकोटिधने कुले निब्बत्तो दारको, न मं मातुलो अनत्थे नियोजेस्सती'ति, चिन्तेत्वा तावदेव अन्तरापणतो कासायानि चेव मत्तिकापत्तं च आहरापेत्वा, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा, यो लोके उत्तमपुग्गलो तं

१. म. पोत्थके नत्थि। २. अत्थि ° म.। ३. °तीति रो.।

अपने आपको नष्ट करना उचित नहीं,' यह सोच आसन से उठ बोधिसत्त्व की अञ्जलिबद्ध प्रणाम किया। राजा ने उस आश्चर्य को देख अपने पुत्र की वन्दना की।

११८. तपस्वी को अतीत के चालीस कल्प तथा भविष्यत् के चालीस कल्प, अस्सी कल्पों को बातें याद थीं। उन्होंने बोधिसत्त्व के शरीर के लक्षणों को देख, यह बुद्ध होगा या नहीं' इस प्रकार आवर्जन कर, ऐसा निश्चय करते हुए कि 'यह अवश्य बुद्ध होगा' तथा ऐसा जान कि यह अद्भुत पुरुष है, मन्द मुस्कान किया। पुनः ऐसा विचार करते हुए कि "इसके बुद्ध होने पर मैं देख सकूँगा अथवा नहीं; नहीं देख सकूँगा, बीच में ही मर कर अरूपलोक में उत्पन्न होऊँगा, जहाँ सौ या हजार बुद्धों द्वारा जाकर ज्ञान प्राप्त कराना असक्य है; मैं ऐसे अद्भुत पुरुष को बुद्ध होने पर नहीं देख सकूँगा, इससे मुझे बड़ी हानि होगी, "ऐसा विचार वे रो पड़े। मनुष्यों ने यह देख कि 'हमारे आर्य अभी हँसकर पुनः रोने लगे; क्या भन्ते, हमारे आर्य पुत्र को कोई संकट होगा'—ऐसा पूछा।

'इन्हें कोई संकट नहीं है, ये निस्संशय बुद्ध होंगे'।

'तब आप रोते क्यों हैं'?

'इस प्रकार के अद्भुत पुरुष को बुद्ध हुए नहीं देख पाऊँगा, यह मेरे लिए बड़ी हानि होगी, अपने सम्बन्ध में विचार करते हुए रो रहा हूँ, ऐसा उन्होंने उत्तर दिया।

पुनः मेरे सम्बन्धियोंमें 'कोई इन्हें बुद्ध हुए देख सकेगा या नहीं,' ऐसा विचार करते हुए अपने भागिनेय्य नालक नामक लड़के को देखा। उन्होंने अपनी बहन के घर जाकर पूछा—'तुम्हारा पुत्र नालक कहाँ है'?

'घर में है आर्य।'

'उसे बुलाओ।'

अपने निकट आने पर उन्होंने कहा—'तात, महाराज शुद्धोदन को पुत्र हुआ है। यह बुद्धअंकुर प्राप्त है, पैंतीस वर्ष बाद बुद्ध होगा। तुम उनका दर्शन कर पाओगे। (अतः) आज ही प्रव्रजित हो जा'।

'मैं सत्तासी करोड़ धनवाले कुल में उत्पन्न बालक हूँ, मुझे मामा अनर्थ में नहीं लगा रहे हैं, ऐसा सोच, उसी समय हाट से काषायवस्त्र तथा मृतिका-पात्र मंगवा, केश दाढ़ी मुड़वा, काषाय वस्त्र पहन, 'लोक में जो उत्तम पुरुष

उद्दिस्स मय्हं पब्बज्जा'ति बोधिसत्ताभिमुखं अञ्जलिं पग्गय्ह पञ्चपतिट्ठितेन वन्दित्वा पत्तं थविकाय पक्खिपित्वा अंसकूटे ओलग्गेत्वा[1] हिमवन्तं पविसित्वा समणधम्मं अकासि ।

सो परमाभिसम्बोधिप्पत्तं तथागतं उपसंकमित्वा नालकपटिपदं कथापेत्वा पुन हिमवन्तं पविसित्वा अरहत्तं पत्वा उक्कट्ठपटिपदं पटिपन्नो सत्तेव मासे आयुं पालेत्वा एकं सुवण्णपब्बतं निस्साय ठितकोव अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बायि ।

लक्खणकथनं

११९. बोधिसत्तं पि खो पञ्चमदिवसे सीसं नहापेत्वा 'नाम गहणं गण्हिस्सामा'ति, राजभवनं चतुजातिकगन्धेहि विलिम्पित्वा लाजापञ्चमकानि पुप्फानि विकिरित्वा असम्भिन्नपायासं पचापेत्वा
B. 66 तिण्णं वेदानं पारगे अट्ठुत्तरसतं[2] ब्राह्मणे निमन्तेत्वा राजभवने
R 57. निसीदापेत्वा सुभोजनं भोजेत्वा महासक्कारं कत्वा किन्नु खो भविस्सती'ति लक्खणानि पटिग्गहापेसुं ।

तेसु :—

रामो धजो लक्खणो चापि मन्ती,
कोण्डञ्ञो च भोजो सुयामो सुदत्तो ।
एते तदा अट्ठ अहेसुं ब्राह्मणा,
छळंगवा मन्तं व्याकरिंसू" ति ॥ २७० ॥

१२०. इमे अट्ठेव ब्राह्मणा लक्खणपटिग्गाहका अहेसुं । पटिसन्धिगहणदिवसे सुपिनोपि एतहेव पटिग्गहितो । तेसु सत्त जना द्वे अंगुलियो उक्खिपित्वा द्वेधा व्याकरिंसु । "इमेहि लक्खणेहि समन्नागतो अगारं अज्झावसमानो राजा होति चक्कवत्ती, पब्बजमानो बुद्धो" ति । सब्बं चक्कवत्तिरञ्ञो सिरिविभवं आचिक्खिसु । तेसं पन सब्बदहरो गोतत्तो[3] कोण्डञ्ञो नाम माणवो बोधिसत्तस्स लक्खणवरनिप्फत्तिं ओलोकेत्वा "एतस्स[4] अगारमज्झे ठानकारणं नत्थि, एकन्तेनेव[5] विवट्टच्छदो

---

१. ओलम्बेत्वा रो., लग्गेत्वा म. । २. अट्ठुसतं रो. म. । ३. गोतको म. । ४. इमस्स म. । ५. एकन्तेनस्स न. ।

है, उन्हीं को लक्ष्य कर मेरी प्रव्रज्या है' ऐसा कह, बोधिसत्त्व की ओर अञ्जलि जोड़, पाँचों अंगों से वन्दना कर, भिक्षा-पात्र को झोले में रख कंधे पर लटका, हिमालयमें प्रवेश कर श्रमण धर्म के पालनमें लग गया ।

परम पद बुद्धत्व प्राप्त तथागत के निकट जा' 'नालकपटिपदा' के कहे जाने पर (उसे सुन) पुनः हिमालय में प्रवेश कर, अर्हत्व की प्राप्ति कर, उत्कृष्ट मार्ग पर प्रतिपन्न हो, सात महीनों तक आयु का संरक्षण कर (जीवित रह), एक स्वर्ण पर्वत के निकट रहते हुए, (उसने) खड़े-खड़े अनुपाधिशेष निर्वाण को प्राप्त किया ।

लक्षण-कथन

११९. पाँचवें दिन बोधिसत्त्व को शिर से स्नान करवा 'नाम करण संस्कार किया जायगा', राजभवन को चार प्रकार के गन्धों से लिपवा, लावा सहित पाँच प्रकार के फूलों को बिखेर, जलरहित (केवल दूध में) खीर पकवा, तीनों वेदों के पारंगत एक सौ आठ ब्राह्मणों को निमन्त्रित कर, राजभवन में बैठाकर सुभोजन करा, परम सत्कार करते हुए लक्षणों के सम्बन्ध में पूछा 'कि (इस कुमार को) क्या होगा' ।

उनमें—

राम, ध्वज, लक्ष्मण, मन्त्री, कौडिण्य, भोज, सुयाम तथा सुदत्त-नामक आठ ब्राह्मण उस समय छ अंगों (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, व्याकरण, छन्द) को जानने वाले थे, जिन्होंने मन्त्र की व्याख्या की ।

१२०. ये ही आठ ब्राह्मण लक्षण को जानने वाले थे । प्रतिसन्धिग्रहण के दिन स्वप्न का भी विचार इन्होंने ही किया था । उनमें सात ब्राह्मणों ने दो अंगुलियों को उठाकर दो प्रकार से (विकल्पों के साथ) भविष्य कथन किया । इन लक्षणों से युक्त पुरुष घर में वास करता हुआ चक्रवर्ती राजा होवा है तथा गृह त्याग प्रव्रजित होने पर बुद्ध । इस प्रकार चक्रवर्ती राजा के श्री सम्पन्न वैभव का वर्णन किया । उनमें सबसे छोटा (कम उम्रवाला) कौण्डिन्य गोत्रीय ब्राह्मण माणव ने बोधिसत्त्व के श्रेष्ठ लक्षणों को देख कर— "इनके घर में रहने की संभावना नहीं है, ये निश्चय ही आवरण रहित बुद्ध

बुद्धो भविस्सती' ति, एकमेव अंगुलिं उक्खिपित्वा एकंसव्याकरणं व्याकासि। अयं हि कताधिकारो पच्छिमभविकसत्तो पञ्ञाय इतरे सत्ताजने अभिभवित्वा–'इमेहि लक्खणेहि समन्नागतस्स अगारमज्झे ठानं नाम नत्थि; असंसयं बुद्धो भविस्सती ति, एकमेव गतिं अद्दस, तस्मा एकंगुलिं उक्खिपित्वा एवं व्याकासि।'[1] अथस्स नामं गण्हन्ता सब्बस्स[2] अत्थसिद्धिकरत्ता सिद्धत्थो ति नामं अकंसु[3]।

पञ्चवग्गिया थेरा

१२१. अथ ते ब्राह्मणा अत्तानो घरानि गन्त्वा पुत्ते आमन्तयिंसु—"ताता, अम्हे महल्लका, सुद्धोदनमहाराजस्स पुत्तं सब्बञ्ञुतप्पत्तं मयं लभेय्याम वा नो वा; तुम्हे तस्मिं कुमारे सब्बञ्ञुतं पत्ते तस्स सासने पब्बजेय्याथा" ति।

ते सत्तापि जना यावतायुकं ठत्वा यथाकम्मं गता। कोण्डञ्ञमाणवो[4] अरोगो अहोसि। सो महासत्ते बुद्धिमन्वाय महाभिनिक्खमनं अभिनिक्खमित्वा अनुक्कमेन उरुवेलं गन्त्वा,
B. 67 'रमणीयो वत,[5] अयं[5] भूमिभागो, अलं वतिदं कुलपुत्तस्स पधानत्थिकस्स पधानाया' ति चित्तं उप्पादेत्वा, तत्थ वासं उपगते[6] 'महापुरिसो पब्बजितो' ति सुत्वा तेसं ब्राह्मणानं पुत्ते उपसंकमित्वा एवमाह—"सिद्धत्थकुमारो किर पब्बजितो, सो निस्संसयं बुद्धो भविस्सति, सचे तुम्हाकं पितरो अरोगा अस्सुं, अज्ज निक्खमित्वा पब्बजेय्युं। सचे तुम्हेपि इच्छेय्याथ, एथ; अहं तं पुरिसं अनुपब्बजिस्सामी"ति। ते सब्बे एकच्छन्दा
R. 57 भवितुं नासक्खिंसु। तयो जना न पब्बजिंसु। कोण्डञ्ञब्राह्मणं जेट्ठकं कत्वा इतरे चत्तारो पब्बजिंसु। ते पञ्चपि जना पञ्चवग्गिया थेरा नाम जाता।

चत्तारि पुब्बनिमित्तानि

१२२. तदा पन राजा-'किं दिस्वा मय्हं पुत्तो पब्बजिस्सती'ति पुच्छि। "चत्तारि पुब्बनिमित्तानी"ति।[7] "कतरं च

१–१. रो. पोत्थके नत्थि। २. सब्बलोकस्य म.। ३. संभबेय्याम म.। ४. ० व रो. म.। ५–५. ते म.। ६. उपयतो रो.। ७. अम्हाकं म.।
१. म. पोत्थके नत्थि।

होंगे, ऐसा जान एक ही अंगुलि उठा कर, एक ही प्रकार से भविष्य का कथन किया। उस कृत अधिकार, अन्तिम शरीर धारण करने वाला तथा ज्ञान में अन्य सात जनों से बड़ा हुआ पुरुष ने उनमें केवल एक गति को ही देखा, कि 'इन लक्षणों से सम्पन्न पुरुष के घर में रहने की संभावना नहीं है, निस्संशय वे बुद्ध होंगे'। इसलिए उन्होंने एक ही अंगुलि उठाकर भविष्य कथन किया। इस प्रकार नाम करण करते हुए सबों के अर्थ की सिद्धि हो जाने के कारण 'सिद्धार्थ' उनका नाम रखा गया।

पंचवर्गीय भिक्षु

१२१. इसके बाद उन ब्राह्मणों ने अपने-अपने घर जा अपने पुत्रों से कहा—"तात, हमलोग बूढ़े हो गये हैं, महाराजा शुद्धोदन के पुत्र को बुद्ध होने पर हम देख सकेंगे या न भी; तुम लोग उस कुमार के बुद्ध होने पर, उनके धर्म में प्रव्रजित हो जाना"।

वे सातो मनुष्य आयु पर्यन्त यहाँ रह कर धर्मानुसार लोकलीला समाप्त किये। कौण्डिन्य माणव जीवित रहा। उसने महासत्त्व की आयु वृद्धि के अनुसार गृह त्याग कर, क्रमशः उरुबेला जा, 'यह भूमिभाग रमणीय है, ध्यानाभ्यासार्थी कुल पुत्र के ध्यानाभ्यास के लिए यह उपयुक्त स्थान है', ऐसा विचार, वहीं रहते हुए, 'महापुरुष प्रव्रजित हो गये' (ऐसा) सुन उन ब्राह्मणों के पुत्रों के पास जा इस प्रकार कहा—"शिद्धार्थ कुमार प्रव्रजित हो गये हैं वे अवश्य बुद्ध होंगे, यदि आप लोगों के पिता जीवित होते, आज गृह त्याग प्रव्रजित होते। यदि आप लोग भी चाहते हैं, तो आवें, मैं उस पुरुष के पीछे प्रव्रजित होऊँ"। वे सभी एक मत नहीं हो सके। तीन प्रव्रजित नहीं हुए। कौण्डिन्य ब्राह्मण को अपने में ज्येष्ठ मान अन्य चार प्रव्रजित हो गये। वे पाँच जन पञ्चवर्गीय भिक्षु कहलाये।

चार पूर्वंनिमित्त

१२२. तब राजा ने पूछा—"क्या देख कर मेरा पुत्र प्रव्रजित होगा"। "चार पूर्वनिमित्तो (लक्षणों) को" (देखकर)।

कतरं चा"ति ? "जराजिण्णं, व्याधितं, मतं,[१] पब्बजितं"ति। राजा—"इतो पट्ठाय एवरूपानं मम पुत्तस्स सन्तिकं उपसंकमितुं मा अदत्थ। मय्हं पुत्तस्स बुद्धभावेन कम्मं नत्थि। अहं मम पुत्तं द्विसहस्सदीपपरिवारानं चतुन्नं महादीपानं इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेन्तं, छत्तिसयोजनपरिमण्डलाय परिसाय परिवुतं गगनतले विचरमानं पस्सितुकामोम्ही"ति।[२] एवं च पन वत्वा इमेसं चतुप्पकारानं पुरिसानं[३] कुमारस्स चक्खुपथे आगमननिवारणत्थं चतूसु दिसासु गावुते गावुते आरक्खं ठपेसि।

तं दिवसं च पन मंगलट्ठाने सन्निपतितेसु असीतिया ञातिकुलसहस्सेसु एकेको एकमेकं पुत्तं पटिजानि। 'अयं बुद्धो वा होतु, राजा, वा, मयं एकमेकं पुत्तं दस्साम। सचे पि बुद्धो भविस्सति, खत्तियसमणेहेव पुरक्खतपरिवारितो विचरिस्सति। सचे पि राजा भविस्सति, खत्तियकुमारेहेव पुरक्खतपरिवारितो विचरिस्सती' ति। राजापि बोधिसत्तस्स उत्तमरूपसम्पन्ना विगतसब्बदोसा धातियो पच्चुपट्ठापेसि। बोधिसत्तो अनन्तेन परिवारेन महन्तेन सिरिसोभग्गेन वड्ढति।

वप्पमंगलं

१२३. अथेकदिवसं रञ्ञो वप्पमंगलं नाम अहोसि। तं दिवसं सकलनगरं देवविमानं विय अलंकरोन्ति। सब्बे दासकम्मकरादयो अहतवत्थनिवत्था गन्धमालादिपतिमण्डिता राजकुले सन्निपतन्ति। रञ्ञो कम्मन्ते नंगलसहस्सं योजीयति।[४] तस्मिं पन दिवसे एकेन ऊनं अट्ठसतं नंगलानि सद्धिं बलिवद्दरस्मियोत्तेहि रजतपरिक्खतानि होन्ति। रञ्ञो आलम्बननंगलं पन
B. 68 रत्तसुवण्णपरिक्खतं होति। बलिवद्दानं सिंगानि रस्मियोत्तपतोदानि सुवण्णपरिक्खतानेव[५] होन्ति।

राजा महापरिवारेन नगरा निक्खमन्तो पुत्तं गहेत्वा अगमासि। कम्मन्तट्ठाने एको जम्बुरुक्खो बहलपलासो सन्दच्छायो अहोसि। तस्स हेट्ठा कुमारस्स सयनं पञ्ञपापेत्वा[६] उपरि सुवण्णतारकखचितं वितानं बन्धापेत्वा साणिपाकारेन परिक्खिपापेत्वा आरक्खं ठपापेत्वा राजा सब्बालंकारेन[७] अलंकारित्वा अमच्चगणपरिवुतो नंगलकरणट्ठानं अगमासि।

---

१. कालकतं म.। २. कासो ति रो. म.। ३. निमित्तानं न.। ४. योजयति म.। ५. ० ताव रो. म.। ६. पञ्ञापेत्वा रो. म.। ७. सब्बालंकारं रो. म.।

"वे कौन कौन हैं" ?

"(वे हैं)—बृद्ध, रोगी, मृतक एवं प्रव्रजित"। राजा ने (कहा कि) "आज से इस प्रकार के पुरुषों को मेरे पुत्र के निकट न आने दिया जाय। मुझे अपने पुत्र को बुद्ध बनने की आवश्यकता नहीं है। मैं अपने पुत्र को दो हजार द्वीपों से घिरे चारों महादीपों पर आधिपत्य एवं ऐश्वर्य के साथ राज्य करते हुए, छत्तीस योजन मण्डलाकार परिषद् के बीच, आकाश के नीचे विचरण करते देखना चाहता हूँ"। ऐसा कह कर उन्होंने इन चार प्रकार के पुरुषों को कुमार की दृष्टिपथ से निवारण करने के लिए चारों दिशाओं में तीन-तीन कोश की दूरी पर पहरा लगा दिया।

उस दिन उस मंगलमय स्थान में एकत्र अस्सि हजार जाति-सम्बन्धियों में प्रत्येक ने एक-एक पुत्र देने को प्रतिज्ञा की। 'यह बुद्ध हो अथवा राजा' हमलोग अपना एक-एक पुत्र देंगे। यदि यह (कुमार) बुद्ध होगा तो क्षत्रिय श्रमणों से हो पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा। यदि राजा होगा तो क्षत्रिय कुमारों से पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरण करेगा।' राजा ने बोधिसत्त्व के (परिपालन) के लिए उत्तम रूप सम्पन्न तथा सभी दोषों से रहित धाइयों को नियुक्त किया। बोधिसत्त्व (अपने) अनन्त परिवार तथा महती श्री एवं शोभा के साथ बढ़ने लगे।

खेत बोने का मंगल दिवस

१२३. एक दिन राजा के यहाँ खेत बोने का मंगल दिन (उत्सव) आया। उस दिन (मनुष्य) सम्पूर्ण नगर को देव विमान के समान सुशोभित कर रहे थे। सभी दास नौकर आदि नवीन वस्त्र पहने, सुगन्ध एवं माला आदि धारण किये राज कुल में एकत्र थे। राजा के (कृषि) कर्म में एक हजार हल लगे थे। उस दिन बैल, तथा रस्सी की जोत सहित एक कम आठ सौ रजतमय हल उपस्थित थे। राजा का हल प्रभा सहित सुवर्ण जटित था। बैलों के सींग, रस्सी, जोत, चाबुक आदि सुवर्ण जटित थे।

राजा अपने विशाल परिवार के साथ नगर से निकलते हुए, पुत्र को लेकर निकले। खेत कर्षण स्थान में बहुत पत्रों एवं घनी छाया वाला एक जामुन का पेड़ था। उसी के नीचे कुमार की शय्या बिछवा, उपर सुवर्ण (तार) खचित चान्दनी तनवा, कनात से घेरा करवा, वहाँ पहरा रखवा, राजा ने सभी प्रकार के आभूषणों से अलंकृत हो अमात्यगण से घिरे हल जोतने के स्थान पर गये।

तत्थ राजा सुवण्णनंगलं गण्हाति। अमच्चा एकऊनट्ठसतं रजतनंगलानि, कस्सका सेसनंगलानि। ते तानि गहेत्वा इतोचितो च कस्सन्ति। राजा पन ओरतो वा पारं गच्छति, पारतो वा ओरं आगच्छति। एतस्मिं ठाने महा सम्पत्ति अहोसि। बोधिसत्तं
R. 58 परिवारेत्व निसिन्ना धातियो 'रञ्ञो सम्पत्तिं पस्सिसामा'ति अन्तोसाणितो बहि निक्खन्ता। बोधिसत्तो[1] इतोचितो च ओलोकेन्तो कञ्चि अदिस्वा वेगेन उट्ठाय पल्लंकं आभुजित्वा आनापाने परिग्गहेत्वा पठमज्झानं निब्बत्तेसि।

१२४. धातियो खज्जभोज्जन्तरे विचरमाना[2] थोकं चिरायिंसु। सेसरुक्खानं छाया निवत्ता, तस्स पन रुक्खस्स परिमण्डला हुत्वा अट्ठासि। धातियो 'अय्यपुत्तो एकको'ति वेगेन साणिं उक्खिपित्वा अन्तो पविसमाना बोधिसत्तं सयने पल्लंकेन निसिन्नं तं च पाटिहारियं दिस्वा गन्त्वा रञ्ञो आरोचेसुं—'देव, कुमारो एवं निसिन्नो। अञ्ञेसं रुक्खानं छाया निवत्ता,[3] जम्बुरुक्खस्स छाया परिमण्डला ठिता'ति। राजा वेगेनागन्त्वा पाटिहारियं दिस्वा-'इदं ते तात, दुतियं वन्दनं'ति पुत्तं वन्दि।

सिप्पपदस्सनं

१२५. अथ अनुक्कमेन बोधिसत्तो सोलसवस्सपदेसिको[4] जातो। राजा बोधिसत्तस्स तिण्णं उतूनं अनुच्छविके तयो पासादे कारेसि,—एकं नवभूमकं, एकं सत्तभूमकं, एकं पञ्चभूमकं। चत्तालीस सहस्सा च नाटकित्थियो उपट्ठापेसि। बोधिसत्तो देवो विय अच्छरासंघपरिवुतो अलंकतनाटकपरिवुतो निप्पुरिसेहि तुरियेहि परिचारियमानो महासम्पत्तिं अनुभवन्तो उतुवारेन[5] तेसु तेसु[6] पासादेसु विहरति। राहुलमाता पनस्स देवी अग्गमहेसी अहोसि।

B. 69 तस्स एवं महासम्पत्तिं अनुभवन्तस्स एकं दिवसं ञातिसंघस्स अब्भन्तरे अयं कथा उपपादि—'सिद्धत्थो कीळापसुतोव विचरति, न किञ्च सिप्पं सिक्खति, संगामे पच्चुपट्ठिते किं करिस्सती'ति?

---

१. °च. म. । २. °मानो म. । १. अतिवत्ता रो. । २. °वस्सुद्देसिको म. ।
३. °उतुवारेन रो. । ४. म. पोत्थके नत्थि ।

वहाँ राजा ने सुवर्णमय हल को ग्रहण किया। अमात्यों ने एक कम आठ सौ रजतमय हलों को तथा कृषकों ने अवशेष हलों को (धारण किया)। वे उन हलों को पकड़ कर इधर-उधर जोतने लगे। राजा (खेत के) इस पार से उस पार तक जाते थे तथा उस पार से इस पार तक आते थे। उस स्थान पर अपार शोभा थी। बोधिसत्त्व को घेर कर बैठी धाइया 'राजा की शोभा देखूँगी' ऐसा सोच घेरे से बाहर चली आयीं। बोधिसत्त्व ने इधर-उधर देखकर किसी को नहीं पा, शीघ्रता से उठ पलथी मार आनापान का अभ्यास कर प्रथम ध्यान प्राप्त किया।

१२४. धाइयों ने खाद्य भोज्य (के प्रबन्धादि) में विचरण करती हुई कुछ देर कर दी। सभी वृक्षों की छाया (अपनी पूर्व स्थिति से) लौट चली पर उस (बोधिसत्त्व वाले) वृक्ष की छाया मण्डलाकार होकर वहीं स्थित रही। धाइयों ने—'आर्यपुत्र अकेले हैं', शीघ्रता से पट को हटा कर अन्दर प्रवेश करते हुए बोधिसत्त्व को शय्या पर पलथी मार बैठे तथा उस चमत्कार को देख, जाकर राजा से कहा—'देव, कुमार इस प्रकार बैठे हैं। अन्य वृक्षों की छाया हट गयी है पर जामुन वृक्ष की छाया मण्डलाकार होकर वहीं स्थित है'। राजा ने शीघ्रता से वहाँ आकर इस चमत्कार को देख 'तात, यह दूसरी बार तेरी बन्दना है', कह पुत्र की वन्दना की।

शिल्प-प्रदर्शन

१२५. क्रमशः बोधिसत्त्व सोलह वर्ष के हो गये। राजा ने बोधिसत्त्व के लिए तीन ऋतुओं के अनुकूल तीन प्रासाद बनवा दिया (जिनमें) एक नव मञ्जिल का, दूसरा सात मञ्जिल का तथा तीसरा पाँच मञ्जिल का था। चालीस हजार नर्तकियाँ नियुक्त थीं। बोधिसत्त्व अप्सराओंके समुदाय से घिरे देवताओं के समान, अलंकृत नर्तकियों से परिवृत स्त्रियों द्वारा तूर्यों से सेवित, महान् सम्पत्ति का उपभोग करते हुए, ऋतुओं के क्रम से उन भवनों में विहार करते थे। राहुलमाता देवी इनको अग्रमहिषी थी।

उनके इस प्रकार महान् सम्पत्ति का अनुभव करते हुए एक दिन जाति-संघ में ऐसी कथा उत्पन्न हुई—"सिद्धार्थ (केवल) क्रीड़ा में रत रहता है, कोई शिल्प नहीं सीखता है, युद्ध उपस्थित होने पर क्या करेगा"? राजा ने

राजा बोधिसत्तं पक्कोसापेत्वा—"तात, तव ञातका 'सिद्धत्थो किञ्चि सिप्पं असिक्खित्वा कीलापसुतोव विचरती'ति वदन्ति। एत्थ किं पत्तकाले मञ्ञसी"ति ? 'देव, मम सिप्पसिक्खनकिच्चं नत्थि। नगरे मम सिप्पं दस्सनत्थं भेरिं चरापेथ। इतो सत्तमे दिवसे ञातकानं सिप्पं दस्सेस्सामी'ति। राजा तथा अकासि। बोधिसत्तो अक्खणवेधि-बाळवेधि-सरवेधि[1]-सद्दवेधि-पुंकानुपुंक[1]-धनुग्गहे सन्निपातापेत्वा महाजनस्स मज्झे अञ्ञेहि च[2] धनुग्गहेहि असाधारणं ञातकानं द्वादसविधं सिप्पं दस्सेसि। तं सरभंगजातके आगतनयेनेव वेदितब्बं। तदास्स ञातिसंघो निक्कंखो अहोसि।

चत्तारि पुब्बनिमित्तानि

१२६. अथेकं दिवसं बोधिसत्तो उय्यानभूमिं गन्तुकामो सारथिं आमन्तेत्वा 'रथं योजेही'ति आह। सो 'साधू'ति, पटिसुणित्वा महारहं उत्तमरथं सब्बालंकारेन अलंकरित्वा
R. 51 कुमुदपत्तवण्णे चत्तारो मंगलसिन्धवे योजेत्वा बोधिसत्तस्स पटिनिवेदेसि[3]। बोधिसत्तो देवविमानसदिसं रथं अभिरूहित्वा उय्यानाभिमुखो अगमासि।

जराजिण्णं

१२७. देवता-'सिद्धत्थकुमारस्स अभिसम्बुज्झनकालो आसन्नो, पुब्बनिमित्तं दस्सेस्सामा'ति, एकं देवपुत्तं जराजज्जरं खण्डदन्तं पलितकेसं गोपाणसिवंकं[4] ओभग्गसरीरं दण्डहत्थं पवेधमानकं कत्वा दस्सेसुं। तं बोधिसत्तो चेव सारथी च पस्सन्ति।

ततो बोधिसत्तो सारथिं—"सम्म, को नामेसो पुरिसो ?, केसापिस्स न यथा अञ्ञेसं" ति, महापदाने आगतनयेन पुच्छित्वा, तस्स वचनं सुत्वा 'धिरत्थु वत भो जाति; यत्रहि नाम जातस्स जरा पञ्ञायिस्सती'ति, संविग्गहदयो ततो व पटिनिवत्तित्वा पासादमेव अभिरुहि।

१-१. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि। २. म. पोत्थके नत्थि। ३. पटिवेदेसि रो. म.। ४. वङ्कं रो. म.।

बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—'तात, तुम्हारे सम्बन्धी कहते हैं कि सिद्धार्थ किसी शिल्प (कला) को न सीखकर केवल क्रीड़ा में ही रत रहता है। तुम इस सम्बन्ध में क्या समझते हो'। (सिद्धार्थ ने कहा) 'देव, मुझे शील्प सीखने की आवश्यकता नहीं। नगर में मेरे शिल्प को देखने के लिए भेरी (ढिंढोरा) बजवा दें। आज से सातवें दिन मैं अपने सम्बन्धियों को शिल्प दिखलाऊँगा"। राजा ने वैसा ही किया। बोधिसत्त्व ने अक्षवेधी, बालवेधी, स्वरवेधी, शब्दवेधी, यशस्वी धनुर्धरों को बुलवाकर जनसमूह के बीच अन्य धनुर्धरों से विशेष असाधारण कोटिके बारह प्रकार के शिल्प अपने सम्बन्धियों को दिखलाया। उसे सरभंग-जातक में आये वर्णन के अनुसार समझना चाहिए। तब उनके सम्बन्धी (इस विषय में) शंका रहित हो गये।

चार पूर्व-निमित्त

१२६. एक दिन बोधिसत्त्व ने उद्यान जाने की इच्छा से सारथी को बुलाकर 'रथ को जोतिये' ऐसा कहा। उसने 'अच्छा' कह महार्घ एवं उत्तम रथ को सभी अलंकारों से अलंकृत कर कुमुदपत्र सदृश चार उत्तम घोड़ों को जोत कर, बोधिसत्त्व को सूचना दी। बोधिसत्त्व देवविमान के समान रथ पर आरूढ़ हो उपवन (बगीचे) की ओर चले।

जराजीर्ण पुरुष

१२७. देवताओं ने—"कुमार सिद्धार्थ के बुद्धत्व प्राप्त करने का समय समीप है, हम पूर्व निमित्त दिखलायेंगे" ऐसा सोच एक देवपुत्र को जरा से जर्जर, खण्डित दाँत, पके केश, सीढ़ी सदृश झुके शरीर, हाथ में डंडा लिए हुए, काँपते हुए करके दिखलाया। उसे बोधिसत्त्व और सारथी ही देखते थे।

तब बोधिसत्त्व सारथी से—"सौम्य, यह कौन पुरुष है ? इसके केश भी वैसे नहीं है, जैसे औरों के हैं", आदि महापदान में आये वर्णन के अनुसार पूछ, तथा उसके वचन (उत्तर) को सुन (कह उठे)—"धिक्कार है, इस जन्म को जहाँ जन्म लेने वाले को बुढ़ापा का अनुभव करना पड़ता है," और (ऐसा सोच) वे उद्विग्न हृदय वहाँ से लौट (अपने) प्रासाद में चले गये।

राजा–"किं कारणा मम पुत्तो खिप्पं पटिनिवत्ती"ति पुच्छि। "जिण्णं पुरिसं दिस्वा देवा'ति आहंसु।

"जिण्णकं दिस्वा पब्बजिस्सती" ति कस्मा मं नासेथ ? सीघं मे पुत्तस्स नाटकानि सज्जेथ। सम्पत्तिं अनुभवन्तो पब्बज्जाय सतिं न करिस्सती"ति वत्वा, आरक्खं वड्ढेत्वा सब्बदिसासु अड्ढयोजने अड्ढयोजने ठपेसि।

व्याधितं

B. 70 १२८. पुनेकं दिवसं बोधिसत्तो तथेव उय्यानं गच्छन्तो देवताहि निम्मितं व्याधितं पुरिसं दिस्वा पुरिमनयेनेव पुच्छित्वा संविग्गहदयो निवत्तित्वा पासादं अभिरुहि। राजापि पुच्छित्वा हेट्ठा वुत्तनयेनेव संविदहित्वा पुन वड्ढेत्वा समन्ततो[1] तिगावुतप्पमाणे पदेसे आरक्खं ठपेसि।

कालकतं

१२९. अपरं पन एकं दिवसं बोधिसत्तो तथेव उय्यानं गच्छन्तो देवताहि निम्मितं कालकतं दिस्वा पुरिमनयेनेव पुच्छित्वा संविग्गहदयो पुन निवत्तित्वा पासादं अभिरुहि। राजापि पुच्छित्वा हेट्ठा वुत्तनयेनेव संविदहित्वा पुन वड्ढेत्वा समन्ततो[2] योजनप्पमाणे पदेसे आरक्खं ठपेसि।

पब्बजितं

१३०. अपरं पन एकं दिवसं उय्यानं गच्छन्तो तथेव देवताहि निम्मितं सुनिवत्थं सुपारुतं पब्बजितं दिस्वा 'को नामेसो सम्मा'ति सारथिं पुच्छि। सारथि किञ्चापि बुद्धुप्पादस्स अभावा पब्बजितं वा पब्बजितगुणे वा न जानाति। देवानुभावेन पन 'पब्बजितो नामेस देवा'ति, वत्वा पब्बजाय गुणे वण्णेसि। बोधिसत्तो पब्बजाय रुचिं उप्पादेत्वा तं दिवसं उय्यानं अगमासि। दीघभाणका पनाहु "चत्तारि निमित्तानि एकदिवसेनेव दिस्वा अगमासी"ति।

पच्छिमो अलंकारो

१३१. तत्थ[3] दिवसभागं कीळित्वा मंगलपोक्खरणियं नहायित्वा अत्थंगते सुरिये मंगलसिलापट्टे निसीदि, अत्तानं

१. समन्ता म.। २. समन्ता म.। ३. सो° म.।

राजा ने पूछा—"मेरा पुत्र क्यों शीघ्र लौट आया"? उन्होंने कहा "देव, बूढ़े पुरुष को देखकर"। 'यह जीर्ण पुरुष को देख प्रव्रजित होगा, तुम लोग क्यों मेरा नाश कर रहे हो? शीघ्र ही मेरे पुत्र के लिए नृत्य की व्यवस्था करो। ऐश्वर्य का उपभोग करते हुए प्रव्रज्या की ओर मन नहीं जायगा' ऐसा कह (उन्होंने) सभी दिशाओं में पहरे को बढ़ा आधे-आधे योजन तक करवा दिया।

रोगी

१२८. पुनः बोधिसत्त्व एक दिन उसी प्रकार उद्यान जाते हुए, देवताओं द्वारा निर्मित एक रोगग्रस्त पुरुष को देख, पहले जैसा (सारथी से) पूछ शोकाकुल हो लौट कर (अपने) प्रासाद में चले गये। राजा ने भी पूछ कर पूर्व कहे अनुसार खिन्न चित्त हो, पहरे को पुनः बढ़ाकर चारो ओर पौन योजन तक कर दिया।

मृतक

१२९. पुनः एक दूसरे दिन बोधिसत्त्व उसी प्रकार उद्यान जाते समय देवताओं द्वारा निर्मित एक मृतक को देख पहले की भाँति पूछकर उद्विग्न हृदय अपने प्रासाद को लौट आये। राजा ने भी (सारथी) से पूछ पूर्व कहे हुए जैसा खिन्न मन हो, पहरे को पुनः बढ़ा कर चारो ओर एक योजन तक कर दिया।

प्रव्रजित

१३०. पुनः एक दिन उद्यान जाते समय उसी प्रकार देवताओं द्वारा निर्मित भलीभाँति वस्त्र पहने, चीवर से अच्छी तरह ढके एक प्रव्रजित को देख कर (उन्होंने) सारथी से पूछा—"सौम्य, यह कौन है? बुद्ध के उत्पन्न नहीं हुए होने के कारण सारथी प्रव्रजित अथवा अप्रव्रजित का गुण नहीं जानता था। देवताओं की कृपा (प्रेरणा) से—'देव, वह प्रव्रजित है', ऐसा कह प्रव्रज्या के गुणों का वर्णन किया। बोधिसत्त्व प्रव्रज्या में रुचि उत्पन्न कर उस दिन उद्यान को गये। दीर्घभाणकों का कथन है कि बोधिसत्त्व चारो निमित्तों को एक ही दिन देखकर लौट आये।

अन्तिम शृङ्गार

१३१. बोधिसत्त्व ने दिन भर (उस उद्यान) में क्रीड़ा कर, सुन्दर पुष्करिणी में स्नान किया तथा सूर्य के अस्त होने पर अपने को अलंकृत करने के लिए वे

अलंकारापेतुकामो। अथस्स परिचारकपुरिसा नानावण्णानि
दुस्सानि नानप्पकारा आभरणविकतियो मालागन्धविलेपनानि
च आदाय समन्ता परिवारेत्वा अट्ठंसु। तस्मिं खणे सक्कस्स
R. 60 निसिन्नासनं उण्हं अहोसि। सो 'को नु खो मं इमम्हा ठाना
चावेतुकामो'ति उपधारेन्तो बोधिसत्तस्स अलंकरणकालं[1] दिस्वा[1]
विस्सकम्मं आमन्तेसि—'सम्म विस्सकम्म, सिद्धत्थकुमारो
अज्ज अड्ढरत्तिसमये महाभिनिक्खमनं निक्खमिस्सति। अयमस्स
पच्छिमो अलंकारो। उय्यानं गन्त्वा महापुरिसं दिब्बालंकारेहि
अलंकरोही'ति।

सो 'साधू' ति पटिसुणित्वा देवतानुभावेन तं खणं येव
उपसंकमित्वा तस्सेव कप्पकसदिसो हुत्वा कप्पकस्स हत्थतो
वेठनदुस्सं[2] गहेत्वा बोधिसत्तस्स सीसं वेठेसि। बोधिसत्तो
हत्थसंप्फस्सेनेव 'नायं मनुस्सो देवपुत्तो एसो'[3]ति अञ्ञासि।
वेठनेन वेठियमत्ते सीसे मोलियं मणिरतनाकारेन दुस्ससहस्सं
अब्भुग्गच्छि। पुन वेठेन्तस्स दुस्ससहस्सं ति, दसक्खत्तुं वेठेन्तस्स
R. 17 दसदुस्ससहस्सानि अब्भुग्गच्छिंसु। 'सीसं खुद्दकं, दुस्सानि बहूनि
कथं अब्भुग्गतानी' ति, न चिन्तेतब्बं। तेसु हि सब्बमहन्तं
सामलतापुप्फप्पमाणं। अवसेसानि कुतुम्बकपुप्फपमाणानि
अहेसुं। बोधिसत्तस्स सीसं केसेहि आकिण्णं किञ्जक्खगवच्छितं[4]
विय कुय्यकपुप्फं अहोसि। अथस्स सब्बालंकारपटिमंडितस्स
सब्बतालावचरेसु सकानि सकानि च पटिभाणानि दस्सयन्तेसु
ब्राह्मणेसु 'जयनरिन्दा'ति आदि वचनेहि सुतमागधादीसु नानप्प-
कारेहि मंगलवचनथुतिघोसेहि सम्भावन्तेसु सब्बालंकारपटि-
मण्डितं रथवरं अभिरुहि।

राहुलकुमारो

१३२. 'तस्मिं समये राहुलमाता पुत्तं विजायी'[5]ति, सुत्वा सुद्धोदनमहाराजा 'पुत्तस्स मे तुट्ठिं निवेदेथा'ति सासनं पहिणि। बोधिसत्तो तं सुत्वा 'राहुलोजातो' 'बन्धनं जातं ति आह। राजा–'किं मे पुत्तो अवचा' ति पुच्छित्वा तं वचनं सुत्वा 'इतो पट्ठाय मे नत्ता राहुलकुमारो येव नाम होतू' ति आह[6]।

१–१. अलंकारेतुकामतं ञत्वा म.। २. वेठनसुत्तं म.। ३. एको रो.। ४. ० पच्छितं म.। ५. विजाता रो. म.। ६. रो. पोत्थके नत्थि।

सुन्दर शिलापट्ट पर बैंठे। उस समय उनके परिचारक विविध वर्ण के दुशाले नाना प्रकार के आभूषण, सामग्रियाँ, मालागन्धविलेप आदि लाकर चारो ओर से घेर कर खड़े हो गये। उस क्षण इन्द्र का आसन गर्म हो गया। उन्होंने—"कौन मुझे इस स्थान से च्यूत कराना चाहता है" ऐसा सोचते हुए बोधिसत्त्व के अलंकृत होने के समय को जान विश्वकर्मा को बुलाया। 'सौम्य विश्वकर्मा, कुमार सिद्धार्थ आज आधी रात के समय महाभिनिष्क्रमण करेंगे। यह उनका अन्तिम शृंगार है। उद्यान में जाकर महापुरुष को दिव्य अलंकारों से अलंकृत करो'।

उन्होंने 'अच्छा' कह, देवतानुभाव से उसी क्षण वहाँ जाकर उनके नापित के सदृश होकर उसके हाथ से पगड़ो ले बोधिसत्त्व के सिरपर बाँधा। बोधिसत्त्व ने उसके हाथ के स्पर्श मात्र से जान लिया कि "यह मनुष्य नहीं, कोई देवपुत्र है"। उस पगड़ी को वेष्टित करते समय ही सिर में मणिरत्न सदृश एक हजार दुशाले उत्पन्न हो गये। पुनः बाँधने पर एक हजार दुशाले तथा दस बार बाँधने पर दस हज़ार दुशाले उत्पन्न हुए। यहाँ यह न चिन्ता (शंका) होनी चाहिए कि सिर तो छोटा था पर दुशाले बहुत थे। (इसका कारण यह है कि) उनमें जो सबसे बड़ा दुशाला था, वह श्यामलता के फूल के समान था। अवशेष सभी कुतुम्बक फूल के समान थे। बोधिसत्त्व का केशों से आकीर्ण सिर किजल्क युक्त कुय्यपुष्प के समान था। वे सभी प्रकार के आभूषणों से अलंकृत हो, सभी तालज्ञों के अपनी-अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर लेने पर तथा ब्राह्मणों के 'जय नरेन्द्र' आदि वचनों से एवं सूतमागधों के नाना प्रकार के मांगलिक वचनों तथा स्तुति ध्वनियों से सम्मानित हो, सभी अलंकारों से सुसज्जित उत्तम रथ पर जा बैंठे।

राहुलकुमार

१३२. 'उसी समय राहुल माता ने पुत्र प्रसव किया' यह सुन शुद्धोदन महाराज ने आज्ञा दी कि 'मेरे पुत्र को यह आनन्द का समाचार सुनाया जाय'। बोधिसत्त्व ने उसे सुन—'राहू जन्म लिया', 'बन्धन उत्पन्न हुआ'—ऐसा कहा। राजा ने यह पूछ कर कि 'मेरे पुत्र ने क्या कहा' तथा उनके वचन को सुन—"अब से मेरे पौत्र का नाम राहुल कुमार हो', ऐसा कहा।

किसागोतमिया उदानं

१३३. बोधिसत्तो पि खो रथवरं आरुय्ह महन्तेन यसेन अतिमनोरमेन सिरिसोभग्गेन नगरं पाविसि। तस्मिं समये किसागोतमी नाम खत्तियकञ्ञा उपरिपासादवरतलगता नगरं पदक्खिणं कुरुमानस्स बोधिसत्तस्स रूपसिरिं दिस्वा पीतिसोमनस्सजाता, इमं उदानं उदानेसि —

"निब्बुता नून सा माता, निब्बुतो नून सो पिता।
निब्बुता नून सा नारी, यस्सायं ईदिसो पती" ति ॥ २७१ ॥

R. 61 बोधिसत्तो तं सुत्वा चिन्तेसि :—"अयं एवमाह, एवरूपं
अत्तभावं पस्सन्तिया मातुहदयं निब्बायति, पितुहदयं निब्बायति,
पजापतिया हदयं निब्बायती ति। कस्मि नु खो निब्बुते हदयं
निब्बुतं नाम होती"ति? अथस्स किलेसेसु विरत्तमानसस्स
एतदहोसि—'रागग्गिम्हि निब्बुते निब्बुतं नाम होति,
[1]दोसग्गिम्हि निब्बुते निब्बुतं नाम होति, मोहग्गिम्हि[1] निब्बुते
निब्बुतं नाम होति; मानदिट्ठि-आदीसु सब्बकिलेसदरथेसु
निब्बुतेसु निब्बुतं नाम होति। अयं मे सुवचनं[2] सावेसि। अहं
हि निब्बानं गवेसन्तो चरामि। अज्जेव मया घरावासं छड्डेत्वा
B. 72 निक्खम्म पब्बजित्वा निब्बानं गवेसितुं वट्टती'ति। 'अयं'
इमिस्सा आचरियभागो होतू' ति, कण्ठतो ओमुञ्चित्वा किसागोत-
मिया सतसहस्सग्घनकं मुत्ताहारं पेसेसि। सा 'सिद्धत्थकुमारो
मयि पटिबद्धचित्तो हुत्वा पण्णाकारं पेसेसी' ति सोमनस्सजाता
अहोसि।

निब्बेदं

१३४. बोधिसत्तो पि महन्तेन सिरिसोभग्गेन अत्तनो पासादं अभिरुहित्वा सिरिसयने निपज्जि। तावदेव नं सब्बालंकारपटिमण्डिता नच्चगीतादिसु सुसिक्खिता देवकञ्ञा विय रूपसोभग्गप्पत्ता इत्थियो नाना तुरियानि गहेत्वा सम्परिवारयित्वा अभिरमापेन्तियो नच्चगीतवादितानि पयोजयिंसु। बोधिसत्तो किलेसेसु विरत्तचित्तताय नच्चादिसु अनभिरतो मुहुत्तं निद्दं ओक्कमि। तापि इत्थियो—'यस्सत्थाय मयं नच्चादीनि पयोजयेम, सो निद्दं

१. दोसग्गिम्हि मोहग्गिम्हि रो.। २. सुसवणं रो. म.।

कृशा गौतमो के उद्गार

१३३. बोधिसत्त्व ने उत्तम रथ पर चढ़, महान् यश, अति मनोरम ऐश्वर्य एवं शोभा के साथ नगर में प्रवेश किया। उस समय अपने प्रासाद के ऊपर बैठी कृशा गौतमी नामक एक क्षत्रिय कन्या ने नगर की प्रदक्षिणा करते हुए बोधिसत्त्व के रूप सौन्दर्य को देख प्रीति एवं सौमनस्य पूर्ण हो यह उद्गार व्यक्त किया—

"वह माता परम शान्त (निर्वृत) है, वह पिता भी परम शान्त है।
वह स्त्री भी परम शान्त है, जिसका इस प्रकार का पति है" ॥२७१॥

बोधिसत्त्व ने उसके इस वचन को सुन विचार किया—'उसने यह कहा कि इस प्रकार के रूप देखने वाली माता का हृदय शान्त होता है, पिता का हृदय शान्त होता है, पत्नी का हृदय शान्त होता है'। किसके शान्त होने से हृदय शान्त होता है? तब चित्तमलों से विरक्त होते हुए बोधिसत्त्व के मन में ऐसा हुआ—'रागअग्नि के शान्त हों जाने से शान्त होता है, द्वेष-अग्नि के शान्त होने से शान्त होता है, मोह-अग्नि के शान्त होने से शान्त होता है; मान दृष्टि आदि सभी क्लेशों एवं तृष्णा के उपशमन से शान्त होता है। उसने मुझे सुन्दर वचन सुनाया है, मैं तो निर्वाण की गवेषणा में विचरण कर रहा हूँ। 'मुझे आज ही गृही जीवन का परित्याग कर, प्रव्रजित हो, निर्वाण की गवेषणा करनी चाहिए'। 'यह उसकी गुरुदक्षिणा (आचार्यभाग) हो,' यह कह अपने कंठ से एक लाख मूल्ए का मोती का हार उतार कर कृशागौतमी को भेज दिया। वह यह सोच कि 'सिद्धार्थ कुमार ने मेरे प्रति आसक्त हो उपहार भेजा है' बहुत प्रसन्न हुई।

निर्वेद

१३४. बोधिसत्त्व भी परम श्री सौभाग्य के साथ अपने प्रासाद में जा श्री शय्या पर लेट गये। उसी समय सभी आभूषणों से अलंकृत, नृत्य गीत में निपुणा देव कन्याओं के सदृश रूप सौन्दर्य से युक्त स्त्रियों ने नाना प्रकार के वाद्यों को ले, उन्हें घेर कर प्रसन्न करती हुई नृत्य गान वाद्य आदि प्रारंभ किया। बोधिसत्त्व, चित्तमलों से विरक्त होने के कारण, नृत्य आदि में रत न हो, शीघ्र ही सो गये। वे स्त्रियां भी 'जिसके लिए हम नृत्य आदि कर रही

उपगतो। इदानि किमत्थं किलमामा' ति, गहितगहितानि तुरियानि अज्झोथरित्वा निपज्जिसु। गन्धतेलप्पदीपा झायन्ति।

१३५. बोधिसत्तो पबुज्झित्वा सयनपिट्ठे पल्लंकेन निसिन्नो अद्दस ता इत्थियो तुरियभण्डानि अवत्थरित्वा निद्दायन्तियो। एकच्चा पग्घरितखेला लालाकिलिन्नगत्ता, एकच्चा दन्ते खादन्तियो, एकच्चा काकच्छन्तियो, एकच्चा विप्पलपन्तियो, एकच्चा विवटमुखा, एकच्चा अपगतवत्था, पाकटवीभच्छसम्बाधट्ठाना। सो तासं तं विप्पकारं दिस्वा भिय्योसोमत्ताय कामेसु विरत्तो[1] अहोसि। तस्स अलंकतपटियत्तं सक्कभवनसदिसं पि तं महातलं विप्पविद्धनानाकुणपभरितं आमकसुसानं विय उपट्ठासि। तयो भवा आदित्तगेहसदिसा विय खायिसु। 'उपद्दुतं वत भो, उपस्सट्ठं वत भो' ति उदानं पवत्ति[2]। अतिविय पब्बज्जाय चित्तं नमि।

महाभिनिक्खमनं

१३६. सो 'अज्जेव मया महाभिनिक्खमनं निक्खमितुं वट्टती' ति सयना वुट्ठाय द्वारसमीपं गन्त्वा 'को एत्था' ति आह।

R. 62 उम्मारे सीसं कत्वा निपन्नो छन्नो 'अहं, अय्यपुत्त, छन्नो' ति आह।

"छन्न, अहं अज्ज महाभिनिक्खमनं निक्खमितुकामो। एकं मे अस्सं कप्पेही" ति।[3]

सो 'साधु देवा' ति, अस्सभण्डकं गहेत्वा अस्ससालं गन्त्वा गन्धतेलप्पदीपेसु जलन्तेसु सुमनपट्टवितानस्स हेट्ठा रमणीये भूमिभागे ठितं कन्थकं अस्सराजानं दिस्वा—'अज्ज मया इममेव कप्पेतुं वट्टती' ति कन्थकं कप्पेसि।

B. 73 सो कप्पियमानोव अञ्ञासि—"अयं मे[4] कप्पना अतिविय गाळ्हा। अञ्ञेसु दिवसेसु उय्यानकीलादिगमनकाले[5] कप्पना विय न होति। मय्हं अय्यपुत्तो अज्ज महाभिनिक्खमनं निक्खमितुकामो भविस्सती" ति। ततो तुट्ठमानसो महाहसितं हसि। सो सद्दो सकलनगरं पत्थरित्वा गच्छेय्य। देवता पन तं सद्दं निरुम्भित्वा न कस्सचि सोतुं अदंसु।

---

१. विरत्ततो रो., विरत्तचित्तो म.। २. पवत्तेसि म.। ३. °आह म.। ४. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि। ५. °गमने म.।

हैं, वह सो गया। अब हम क्यों परिश्रम करें' ऐसा सोच वाद्यों को लिए ही (हाथ पांव) फैला सो गईं। सुगन्धित तेल पूर्ण प्रदीप जल रहे थे।

१३५. बोधिसत्त्व ने उठकर शय्या पर आसन मार बैठे उन स्त्रियों को वाद्ययन्त्रो को फैलाकर पड़े हुए देखा। किसी के मुख से कफ एवं लार निकल रहा था, जिनसे शरीर भीग गया था, कोई दांत कट कटा रही थीं, कोई खाँस रही थीं, कोई बर्रा रही थीं, कुछ के मुख खुले थे, किन्हीं के वस्त्र हट जाने के कारण विभत्स गुह्य स्थान दिखाई दे रहे थे। उनके उन विकारों को देख वे कामभोगों से और विरक्त हो उठे। उनका वह सुअलंकृत इन्द्रभवन सा महाभवन नाना प्रकार के सड़ते हुए शवों से पूर्ण साक्षात् श्मशान की भाँति प्रतीत हुआ। तीनों भव (कामभव, रूपभव, अरूपभव) जलते हुए गृह के समान दिखायी दिये। 'हा कष्ठ', 'हा दुःख', ऐसी चीख मुँह से निकल पड़ी। चित्त प्रव्रज्या के लिए अत्यन्त आकुल हो उठा।

महाभिनिष्क्रमण

१३६. 'आज ही मुझे महाभिनिष्क्रमण करना उचित है', ऐसा सोच उन्होंने शय्या से उठ द्वार के निकट जा 'कौन यहाँ हैं' पूछा।

ड्योढ़ी पर सिर रख कर सोये हुए छन्न ने कहा—'आर्य पुत्र, मैं छन्दक हूँ'।

"छन्न, मैं आज महाभिनिष्क्रमण करना चाहता हूँ। मेरे लिए एक घोड़ा तैयार करो"।

"अच्छा देव' कह घोड़ा कसने की सामग्रियों को लेकर, अश्वशाला में जा, सुगन्धित तेल से प्रदीप्त प्रदीपों के प्रकाश में खचित चाँदनी के नीचे रमणीय स्थान में खड़े अश्वराज कन्थक को देख 'आज मुझे इसी को ही कसना चाहिए, (ऐसा सोच) कन्थक को ही तैयार किया।

उसने (कन्थक ने) कसे जाने के समय ही जान लिया कि 'आज की तैयारी बहुत गंभीर हुई है। अन्य दिनों में उद्यान-क्रीड़ा आदि के लिए जाने के समान नहीं है। मेरे आर्य पुत्र आज महाभिनिष्क्रमण के इच्छुक होंगे'। इससे प्रसन्न चित्त हो अट्टहास किया (जोरों से हिनहिनाया)। वह शब्द सम्पूर्ण नगर में फैल जाता। देवताओं ने उस शब्द को रोककर किसी को सुनने नहीं दिया।

१३७. बोधिसत्तो पि खो छन्नं पेसेत्वा व 'पुत्तं ताव पस्सिस्सामी' ति, चिन्तेत्वा निसिन्नपल्लंकतो वुट्ठाय राहुलमाताय वसनट्ठानं गन्त्वा गब्भद्वारं विवरि। तस्मिं खणे अन्तो गब्भे गन्धतेलप्पदीपो झायति। राहुलमाता सुमनमल्लिकादीनं पुप्फानं अम्मणमत्तेन अभिपकिण्णसयने पुत्तस्स मत्थके हत्थं ठपेत्वा निद्दायति। बोधिसत्तो उम्मारे पादं ठपेत्वा ठितकोव ओलोकेत्वा—'सचाहं देविया हत्थं अपनेत्वा मम पुत्तं गण्हिस्सामि, देवी पबुज्झिस्सति। एवं मे गमन्तरायो भविस्सति। बुद्धो हुत्वाव आगन्त्वा पुत्तं[1] पस्सिस्सामी' ति पासादतलतो ओतरि। यं पन जातकट्ठकथायं "तदा सत्ताहजातो राहुलकुमारो होती" ति वुत्तं, तं सेसट्ठकथासु नत्थि। तस्मा इदमेव गहेतब्बं।

१३८. एवं बोधिसत्तो पासादतला ओतरित्वा अस्ससमीपं गन्त्वा एवमाह—"तात कन्थक, त्वं अज्ज एकरत्तिं मं तारय, अहं तं निस्साय बुद्धो हुत्वा सदेवकं लोकं तारेस्सामी" ति। ततो उल्लंघित्वा कन्थकस्स पिट्ठिं अभिरुहि। कन्थको गीवतो पट्ठाय आयामेन अट्ठारसहत्थो होति, तदनुच्छविकेन उब्बेधेन समन्नागतो थामजवसम्पन्नो सब्बसेतो, धोतसंखसदिसो। सो सचे हसेय्य वा पादसद्दं वा करेय्य, सद्दा सकलनगरं अवत्थरेय्य। तस्मा देवता अत्तानो आनुभावेन तस्स 'यथा न कोचि सुणाति,' एवं हसितसद्दं सन्निरुम्भित्वा अक्कमन-अक्कमनपदवारे हत्थतलानि उपनामेसुं।

R. 63 १३९. बोधिसत्तो अस्सवरस्स पिट्ठिवेमज्झगतो छन्नं अस्सस्स वालधिं गाहापेत्वा अड्ढरत्तिसमये महाद्वारसमीपं पत्तो। तदा पन राजा-'एवं बोधिसत्तो याय कायचि वेलाय नगरद्वारं विवरित्वा निक्खमितुं न सक्खिसती'ति, द्वीसु द्वारकवाटेसु एकेकं पुरिससहस्सेन विवरितब्बं कारापेसि। बोधिसत्तो थामबलसम्पन्नो हत्थिगणनाय कोटिसहस्सहत्थीनं बलं धारेति,
B. 75 पुरिसगणनाय दसपुरिसकोटिसहस्सानं[2]। तस्मा[3] सो चिन्तेसि—"सचे द्वारं न अवापुरीयति[4], अज्ज कन्थकस्स पिट्ठे

१. रो. पोत्थके नत्थि। २. ° सहस्सस्स रो., दसकोटिसहस्सपुरिसानं म.
३. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि। ४. विवरीयति म.।

१३७. बोधिसत्त्व ने भी छन्न को भेजकर 'पुत्र को देखूँगा' ऐसा विचार, अपने आसन से उठकर राहुलमाता के वासस्थान की ओर जा गर्भद्वार को खोला। उस समय घर के भीतर गन्धपूर्ण तेल का दीपक जल रहा था। राहुलमाता सुमन मल्लिका आदि के अम्मण भर फूलों से भरी शय्या पर पुत्र के माथे पर हाथ रख कर सो रही थी। बोधिसत्त्व ने देहली पर पैर रख खड़े-खड़े उसे देख (सोचा) "यदि मैं देवी के हाथ को हटा अपने पुत्र को ग्रहण करूँगा, तो देवी उठ जायगी। इस प्रकार मेरे जाने में बाधा होगी। बुद्ध होकर ही आ पुत्र को देखूँगा" ऐसा सोच प्रासाद से उतर आये। जातक-अर्थकथा में जो यह कहा गया है कि 'उस समय राहुल कुमार एक सप्ताह के थे, वह अन्य अर्थकथाओं में नहीं है। अतः यहाँ यही समझना चाहिए।

१३८. इस प्रकार बोधिसत्त्व प्रासाद से उतर कर ड्योढ़ी के समीप जाकर ऐसा बोले—"तात कन्थक, तुम आज एक रात मुझे तार दो, मैं तुम्हारे सहारे बुद्ध होकर देवता सहित इस लोक को तारूँगा"। इसके बाद उछलकर कन्थक की पीठ पर चढ़ गये। कन्थक गर्दन से लेकर (पूँछ तक) अठारह हाथ लम्बा तथा उसी के अनुरूप पुष्ट (चौड़ा शरीर वाला), बल वेग सम्पन्न परिष्कृत शंख के समान सर्व श्वेत वर्ण का था। यदि वह हिनहिनाय या पाद शब्द करे, तो शब्द सम्पूर्ण नगर में फैल जाय। इसलिए देवताओं ने अपने प्रताप से 'उसे कोई नहीं सुने' इस लिए हिनहिनाने के शब्द को रोक कर, जहाँ जहाँ वह पैर रखता था, वहाँ अपनी हथेलियाँ रखी।

१३९. बोधिसत्त्व उत्तम घोड़े की पीठ पर सवार हो, छन्दक को उसकी पूछ पकड़वा, आधी रात के समय महाद्वार के समीप पहुँचे। उस समय राजा ने यह सोच कि 'बोधिसत्त्व जिस किसी समय नगर द्वार खोलकर बाहर निकल नहीं जाय, द्वार के दोनों कपाटों में से प्रत्येक को एक हजार मनुष्यों द्वारा खुलने लायक बनवाया। महाबलसम्पन्न बोधिसत्त्व हाथी की गिनती से दस अरब हाथी का बल धारण करते थे तथा मनुष्यों की गिनती से एक खरब मनुष्यों का बल। इसलिए उन्होंने विचार किया—"यदि द्वार न खुला, तो आज कन्थक की पीठ पर बैठे, पूछ पकड़ कर स्थित छन्न के साथ कन्थक

निसिन्नोव वालधिं गहेत्वा ठितेन छन्नेन सद्धिं येव कन्थकं उरूहि निप्पीळेत्वा अट्ठारसहत्थुब्बेधं पाकारं उप्पतित्वा अतिक्कमिस्सामी" ति। छन्नो पि चिन्तेसि—"सचे द्वारं न विवरीयति, अहं अय्यपुत्तं ममखन्धे[1] निसीदापेत्वा कन्थकं दक्खिणहत्थेन कुच्छियं परिक्खिपन्तो उपकच्छन्तरे कत्वा पाकारं उप्पतित्वा अतिक्कमिस्सामी" ति। 'कन्थको पि चिन्तेसि—"सचे द्वारं न विवरीयति, अहं अत्तनो सामिकं पिट्ठियं यथानिसिन्नमेव, छन्नेन वालधिं गहेत्वा ठितेन सद्धिं येव उक्खिपित्वा पाकारं उप्पतित्वा अतिक्कमिस्सामी" ति। सचे द्वारं न अवापूरीयित्थं, यथा चिन्तितमेव तीसु[2] जनेसु अञ्ञतरो सम्पादेय्य। द्वारे अधिवत्था देवता पन द्वारं विवरि।

१४०. तस्मिं येव खणे मारो पापिमा[3]—'बोधिसत्तं निवत्तेस्सामी'ति आगन्त्वा आकासे ठितो आह—"मारिस, मा निक्खमि। इतो ते सत्तमे दिवसे चक्करतनं पातुभविस्सति। द्विसहस्सपरित्तदीपपरिवारानं चतुन्नं महादीपानं रज्जं कारेस्ससि। निवत्त मारिसा"ति।

"कोसि त्वं"ति ?

"अहं वसवत्ती ति मारोम्ही"[4]ति।

"मार, जानामहं मय्हं चक्करतनस्स पातुभावं। अनत्थिकोहं रज्जेन। दससहस्सीं लोकधातुं उन्नादेत्वा बुद्धो भविस्सामी"ति।

मारो—"इतोदानि ते पट्ठाय कामवितक्कं वा व्यापादवितक्कं वा विहिंसावितक्कं वा चिन्तितकाले जानिस्सामी"ति, ओतारापेक्खो छाया विय अनुपगच्छन्तो अनुबन्धि।

१४१. बोधिसत्तो पि हत्थगतं चक्कवत्तिरज्जं खेळपिण्डं विय अनपेक्खो छड्डेत्वा महन्तेन सक्कारेन नगरा निक्खमित्वा[5], आसाळ्हिपुण्णमायं उत्तरासाळ्हनक्खत्ते वत्तमाने निक्खमित्वा च पुन नगरं अपलोकेतुकामो[6] जातो। एवञ्च पनस्स चित्ते उप्पन्नमत्ते येव—'महापुरिस, न तया निवत्तित्वा ओलोकनकम्मं कतं'ति, वदमाना विय महापठवी कुलालचक्कं विय छिज्जित्वा[7] परिवत्ति। बोधिसत्तो नगराभिमुखो ठत्वा नगरं ओलोकेत्वा,

---

१. खन्धे म.। २. तेसु ° म.। ३. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि।
४. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि। ५. निक्खमि म.। ६. ओलोकेतुकामो म.।
७. भिज्जित्वा म.।

को जांघ से दबाकर अठारह हाथ ऊँचे प्राकार को कूद कर पार करूँगा"। छन्न ने भी सोचा—"यदि द्वार नहीं खुलता है, तो मैं आर्यपुत्र को अपने कन्धे पर बैठा कन्थक को दाहिने हाथ से कुक्षि की ओर ले जाते हुए बगल में प्राकार को फांद कर पार चला जाऊँगा"। कन्थक ने भी सोचा—"यदि द्वार नहीं खुलता है, तो अपनी पीठ पर स्वामी को उसी प्रकार बैठे पूछ पकड़ कर स्थित छन्न के साथ लिये प्राकार को उछल कर पार जाऊँगा"। यदि द्वार न खुलता, तो ऊपर विचारे हुए के अनुसार तीनों में से कोई एक करते। (पर) द्वार पर रहने वाले देवता ने द्वार खोल दिया।

१४०. उसी क्षण पापी मार "बोधिसत्व को लौटाऊँगा" ऐसा सोच आकर, आकाश में स्थित हो बोला—"मार्ष, मत निकलो। आज से सातवें दिन चक्र रत्न प्रकट होगा। दो हजार छोटे द्वीपों सहित चार महाद्वीपों का राज्य करोगे। मार्ष, लौट जाओ"।

"तुम कौन हो" ?

"मैं वशवर्ती मार हूँ"

"मार, मैं भी अपने चक्ररत्न प्रकट होने की बात जानता हूँ। मुझे राज्य से कोई प्रयोजन नहीं, ब्रह्माण्डों को निनादित कर बुद्ध होऊँगा"।

मार—"आज से तुम्हारे मनमें जब कामवितर्क या व्यापादवितर्क या विहिंसावितर्क होंगे, तब तुम्हें समझूँगा", ऐसा कह अवसर की खोज में छाया की भाँति कभी भी बिना छोड़े पीछे लग गया।

१४१. बोधिसत्त्व भी हस्तगत चक्रवर्ती राज्य को थूक की भाँति परित्याग कर, उसके प्रति अनपेक्षी हो, अषाढ़ पूर्णिमा को उत्तराषाढ़ नक्षत्र के विद्यमान रहते महासत्कार के साथ नगर से निकल पड़े, निकलने पर उन्हें पुनः नगर देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। इस प्रकार के विचार को चित्त में आते ही महापृथ्वी कुम्हार के चाक के समान भिद्यमान हो काँप उठी, मानो यह कहती हुई कि 'महापुरुष, तुमने लौट कर देखने का काम कभी नहीं किया'। बोधिसत्त्व

R. 64 तस्मिं ठाने[1] कन्थकनिवत्तनचेतियट्ठानं दस्सेत्वा गन्तब्बमग्गाभिमुखं कन्थकं कत्वा पायासि, महन्तेन सक्कारेन उलारेन सिरिसोभग्गेन ।

१४२. तदा किरस्स देवता पुरतो सट्ठि उक्कासहस्सानि
B. 75 धारयिंसु, पच्छतो सट्ठिं, दक्खिणपस्सतो सट्ठिं, वामपस्सतो सट्ठिं । अपरा देवता चक्कवाळमुखवट्टियं अपरिमाणा उक्का धारयिंसु । अपरा देवता च नागसुपण्णादयो च दिब्बेहि गन्धेहि मालाहि चुण्णेहि धूपेहि पूजयमाना गच्छन्ति । पारिच्छत्तकपुप्फेहि चेव मन्दारवपुप्फेहि[2] च घनमेघवुट्ठिकाले धाराहि विय नभं निरन्तरं अहोसि । दिब्बानि सङ्गीतानि पवत्तन्ति[3] । समन्ततो अट्ठतुरियानि[4] सट्ठितुरियानीति[4] अट्ठसट्ठि तुरियसतसहस्सानि पवत्तिंसु । तेसं[5] सद्दो[5] समुद्दकुच्छियं मेघत्थनितकालो विय युगन्धरकुच्छियं सागरनिग्घोसकालो विय वत्तति । इमिना सिरिसोभग्गेन गच्छन्तो बोधिसत्तो एकरत्तेनेव तीणि रज्जानि अतिक्कम्म तिंस योजनमत्थके अनोमानदीतीरं पापुणि ।

१४३. किं पन अस्सो ततो परं गन्तुं न सक्कोती ति ? नो न सक्कोति । सो हि एक चक्कवालगब्भं नाभिया ठितचक्कस्स नेमिवट्टिं मद्दन्तो विय अन्तन्तेन चरित्वा पुरे पातरासमेव आगन्त्वा अत्तनो सम्पादितं भत्तं भुञ्जितुं समत्थो । तदा पन देवनागसुपण्णादीहि आकासे ठत्वा ओस्सट्ठेहि गन्धमालादीहि याव ऊरुप्पदेसा सञ्छन्नं सरीरं आकड्ढित्वा गन्धमालाजटं छिन्दन्तस्स अतिप्पपञ्चो अहोसि । तस्मा तिंसयोजनमत्तमेव अगमासि ।

पब्बज्जा

१४४. अथ खो बोधिसत्तो नदीतीरे ठत्वा छन्नं पुच्छि—
"किं नाम अयं नदी" ति ।
"अनोमा नाम देवा" ति ।

"अम्हाकम्पि पब्बज्जा अनोमा नाम भविस्सती" ति, पण्हिया घट्टेन्तो अस्सस्स सञ्ञं अदासि । अस्सो उप्पतित्वा

१. पठविप्पदेसे रो. म. । २. रो. पोत्थके नत्थि, गन्धारवपुप्फेहि म. ।
३. पवत्तिंसु म. । ४–४. म. पोत्थके नत्थी । ५–५. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि ।

नगर को ओर मुँह कर खड़े हो नगर को देख, उस स्थान में 'कन्थकनिवर्तन चैत्य का स्थान दर्शाकर, गन्तव्य मार्ग की ओर कन्थक का मुँह फेर महा आदर एवं अपार श्री-सौभाग्य के साथ चल पड़े ।

१४२. उस समय देवताओं ने उनके सम्मुख साठ हजार, पीछे साठ हजार, दाहिनी ओर साठ हजार, बायीं ओर साठ हजार मशाल धारण किये । अन्य देवताओं ने ब्रह्माण्डों के द्वार पर असंख्य मशालों को धारण किया । अन्य देवता, नाग, गरुड़ आदि भी दिव्य गन्ध, माला, चूर्ण तथा धूप से पूजा कर रहे थे । पारिजात पुष्प, मन्दार पुष्पों की वृष्टि से घने बादलों से युक्त वृष्टि के समय गिरती हुई जल धारा के समान आकाश अव्यवच्छिन्न (वृष्टिमय) हो गया । (उस समय) दिव्य संगीत हो रहा था । सर्वत्र आठ प्रकार के तूर्यं, साठ प्रकार के तूर्य, अड़सठ लाख वाद्य बज रहे थे । उनके शब्द समुद्र के गर्भ में मेघ गर्जन काल की भाँति, युगन्धर की कुक्षि में समुद्र गर्जन काल की भाँति (गुंजित) हो रहे थे । इस प्रकार के ऐश्वर्य एवं शोभा के साथ जाते हुए बोधिसत्त्व एक रात में ही तीन राज्यों को पार कर, तीस योजन दूर स्थित अनोमा नदी के तीर पर पहुँचे ।

१४३. क्या वह घोड़ा उसके बाद नहीं जा सकता था ? नहीं, नहीं जा सकता था । वह एक चक्रवाल के अन्दर के घेरे को, पृथ्वी स्थित चक्र के घेरे के समान मर्दित करते हुए, सर्वत्र विचरण कर, प्रातःकाल के जलपान के समय से पूर्व ही आकर अपने लिए बने भोजन को खाने में समर्थ था । उस समय आकाश में स्थित हो देवता, नाग, गरुड़ आदि द्वारा बरसाये गन्ध माला आदि से जंघे तक ढके शरीर को गन्धमाला आदि की ढेर से निकालक हुएर जाने में उसे बहुत कठिनाई हुई । इसलिए (वह) तीस योजन मात्र हो जा सका ।

प्रव्रज्या

१४४. इसके बाद बोधिसत्त्व ने नदी के तट पर खड़े हो छन्न से पूछा—
"इस नदी का क्या नाम है ?"

"देव, इसका नाम अनोमा है ।"

"मेरी प्रव्रज्या अनोमा (महान्) होगी" (ऐसा सोच) एड़ी से घोड़े को छूते हुए उन्होंने संकेत किया । घोड़ा आठ ऋषभ (एक ऋषभ में १४० हाथ)

अट्ठ उसभवित्थाराय नदिया पारिमतीरे अट्ठासि। बोधिसत्तो अस्सपिट्ठितो ओरुय्ह रजतपट्टसदिसे बालुकापुलिने ठत्वा छन्नं आमन्तेसि—"सम्म छन्न, त्वं मय्हं आभरणानि चेव कन्थकञ्च आदाय गच्छ, इधेवाहं[1] पब्बजिस्सामी" ति।

"अहम्पि देव, तया[2] सद्धिं[2] पब्बजिस्सामी" ति। बोधिसत्तो—"न लब्भा तया पब्बजितुं, गच्छ त्वं" ति, तिक्खत्तुं पटिबाहित्वा आभरणानि चेव कन्थकं च पटिच्छापेत्वा चिन्तेसि—"इमे मय्हं केसा समणसारुप्पा न होन्ति, अञ्ञो बोधिसत्तस्स केसे छिन्दितुं युत्तरूपो नत्थि; ततो सयमेव खग्गेन
B. 76 छिन्दिस्सामी" ति दक्खिणहत्थेन असिं गण्हित्वा वामहत्थेन मोलिया सद्धिं चूळं गहेत्वा छिन्दि। केसा द्वंगुलमत्ता दक्खिणतो आवट्टमाना सीसं अल्लीयिंसु। तेसं यावजीवं तदेवप्पमाणं अहोसि। मस्सु च तदनुरूपं अहोसि[3]। पुन केसमस्सुओहारणकिच्चं नाम नाहोसि।

R.65 १४५. बोधिसत्तो सह मोळिया चूळं गहेत्वा—"स चाहं बुद्धो भविस्सामि, आकासे तिट्ठतु; नो चे भूमियं पततू" ति अन्तलिक्खे खिपि। तं चूळामणिवेठनं योजनप्पमाणं ठानं गन्त्वा आकासे अट्ठासि। सक्को देवराजा दिब्बचक्खुना ओलोकेत्वा योजनियरतनचङ्गोटकेन सम्पटिच्छित्वा तावतिंसभवने चूळामणिचेतियं नाम पतिट्ठापेसि।

छेत्वान मोलिं वरगन्धवासितं।
वेहायसं उक्खिपि अग्गपुग्गलो॥
सहस्सनेत्तो सिरसा पटिग्गहि।
सुवण्णचङ्गोटवरेन वासवो' ति॥२७२॥

१४६ पुन बोधिसत्तो चिन्तेसि—"इमानि कासिकवत्थानि मय्हं न समणसारुप्पानी" ति। अथस्स कस्सपबुद्धकाले पुराणसहायको घटीकारमहाब्रह्मा एकं बुद्धन्तरं जरं अप्पत्तेन मित्तभावेन चिन्तेसि—"अज्ज मे सहायको महाभिनिक्खमनं निक्खन्तो, समणपरिक्खारमस्स गहेत्वा गच्छिस्सामी" ति,

तिचीवरं च पत्तो च, वासी सूचि च बन्धनं।
परिस्सावनेन अट्ठेते, युत्तयोगस्स भिक्खुनो ति"॥ २७३॥

१. अहं रो. म.। २-२. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि। ३. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि।

चौड़ी नदी को छलाँग मार पार कर दूसरे तट पर जा खड़ा हुआ। बोधिसत्त्वने घोड़े की पीठ से उतर कर रजतपट (चाँदी के वस्त्र) सदृश बालुका तट पर खड़े हो छन्न से कहा—"सौम्य छन्न, तुम मेरे आभूषण तथा कन्थक को लेकर जाओ, मैं यहीं प्रव्रजित होऊँगा।"

"देव, मैं भी आपके साथ प्रव्रजित होऊँगा।"

बोधिसत्त्व—"तुम्हें प्रव्रज्या अलभ्य है, (अतः) तुम लौट जाओ,।" इस प्रकार तीन बार जाने को कह, आभूषण एवं कन्थक को उसे दे सोचने लगे—"ये मेरे केश श्रमण के अनुरूप नहीं हैं, साथ ही बोधिसत्त्व के केश को काटने योग्य दूसरा कोई नहीं है; इसलिए मैं स्वयं ही काटूँगा।" (ऐसा सोच) उन्होंने दाहिने हाथ से तलवार तथा बायें हाथ से मौलि सहित केश को पकड़ कर काट डाला। केश दो अँगुली मात्र के हो, दाहिनी ओर से घूमते हुए सिर में चिपक गये। जीवन भर वे उतने ही बड़े रहे। दाढ़ी भी तदनुरूप हो गयी। पुनः केश श्मश्रु मुड़वाने की आवश्यकता नहीं हुई।

१४५. बोधिसत्त्व ने मौलि सहित केश को ले—"यदि मैं बुद्ध होऊँगा तो आकाश में स्थित हो जायें, नहीं तो पृथ्वी पर गिर पड़ें" ऐसा कह आकाश में फेंक दिया। वह चूड़ामणि वेष्ठन योजन भर ऊपर जा आकाश में स्थित हो गया। देवराज इन्द्र ने दिव्य चक्षु से उसे देख सुन्दर रत्नमय करण्ड में ग्रहण कर तावतिंस नामक देवलोक में (उस पर) चूड़ामणि चैत्य की स्थापना की।

"अग्रपुरुष (बोधिसत्त्व) ने श्रेष्ठ गन्ध से वासित मौलि को काट कर आकाश में फेंक दिया। सहस्रनेत्र वाले इन्द्र ने उसे सुवर्ण करण्ड में ग्रहण कर शिरोधार्य किया" ॥२७२॥

१४६. पुनः बोधिसत्त्व ने विचार किया—"ये काशी के बने (महीन एवं महार्घ) वस्त्र मुझ श्रमण के अनुरूप नहीं है।" तब काश्यप बुद्धकालीन इनके पुराने मित्र, घटोकार महाब्रह्मा, जो एक बुद्धान्तर के व्यतीत होने पर भी जरा को अप्राप्त थे, मित्र भाव के कारण सोचने लगे—"आज मेरे मित्र ने महाभिनिष्क्रमण किया है, उनके लिये श्रमण के अनुरूप आवश्यक सामग्रियाँ (परिष्कार) ले चलूँगा।"

"तीन चीवर (वस्त्रखण्ड), पात्र, अस्तुरा, सुई, काय-बन्धन तथा जल छानने का वस्त्र—ये आठ वस्तुयें योगाभ्यास-रत भिक्षु के लिए युक्त होती हैं" ॥२७३॥

इमे अट्ठ समणपरिक्खारे आहरित्वा अदासि। बोधिसत्तो
अरहद्धजं निवासेत्वा उत्तमपब्बज्जावेसं गण्हित्वा--"छन्न,
मम वचनेन मातापितुन्नं आरोग्यं वदेही"ति[1] उय्योजेसि।

१४७. छन्नो बोधिसत्तं वन्दित्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।
कन्थको पन छन्नेन सद्धिं मन्तयमानस्स बोधिसत्तस्स वचनं
सुणन्तो ठत्वा 'नत्थिदानि मय्हं पुन सामिनो दस्सनं'ति चक्खुपथं
विजहन्तो सोकं अधिवासेतुं असक्कोन्तो हदयेन फलितेन कालं
कत्वा तावतिंसभवने कन्थको नाम देवपुत्तो हुत्वा निब्बत्ति।
B.77 छन्नस्स पठमं एकोव सोको अहोसि। कन्थकस्स पन कालकिरियाय
दुतियेन सोकेन पीळितो रोदन्तो परिदेवन्तो नगरं अगमासि।

राजगहगमनं

१४८ बोधिसत्तो पि पब्बजित्वा तस्मिं येव पदेसे अनुपियं
नाम अम्बवनं अत्थि, तत्थ सत्ताहं पब्बज्जासुखेन वीतिनामेत्वा,
R.66 एकदिवसेनेव तिंसयोजनमग्गं पदसा गन्त्वा राजगहं पाविसि।
पविसित्वा सपदानं पिण्डाय चरि। सकलनगरं बोधिसत्तस्स
रूपदस्सनेन धनपालकेन पविट्ठराजगहं विय, असुरिन्देन पविट्ठ-
देवनगरं विय च सङ्खोभं अगमासि। अथ राजपुरिसा गन्त्वा--
"देव, एवरूपो नाम सत्तो नगरे पिण्डाय चरति। देवो वा
मनुस्सो वा नागो वा सुपण्णो वा को नामेसो ति, न जानामा"ति
आरोचेसुं। राजा पासादतले ठत्वा महापुरिसं दिस्वा अच्छरिय-
ब्भुतजातो पुरिसे आणापेसि—"गच्छथ भणे, वीमंसथ, सचे
अमनुस्सो भविस्सति, नगरा निक्खमित्वा अन्तरधायिस्सति;
सचे देवता भविस्सति, आकासेन गच्छिस्सति; सचे नागो
भविस्सति पठवियं निमुज्जित्वा गमिस्सति; सचे मनुस्सो भविस्सति
यथालद्धं भिक्खं परिभुञ्जिस्सती ति।

१४९ महापुरिसो पि खो मिस्सकभत्तं संहरित्वा 'अलं मे
एत्तकं यापनाया'ति, ञत्वा, पविट्ठद्वारेनेव नगरा निक्खमित्वा
पण्डवपब्बतच्छायाय पुरत्थाभिमुखो निसीदित्वा आहारं परिभु-
ञ्जितुं आरद्धो। अथस्स अन्तानि विपरिवत्तित्वा[2] मुखेन
निक्खमनाकारप्पत्तानि अहेसुं। ततो तेन अत्तभावेन एवरूपस्स
आहारस्स चक्खुना पि अदिट्ठपुब्बताय, तेन पटिक्कूलाहारेन

१. ° वन्वा म.। २. परिवत्तित्वा रो. म.।

इन आठ श्रमण की वस्तुओं को लेकर (उन्होंने) दिया। बोधिसत्त्व ने अर्हत्ध्वज को धारण कर, प्रव्रजित का उत्तम वेष ग्रहण कर छन्न को जाने के लिए (ऐसा कह) प्रेरित किया—"छन्न, मेरे शब्दों में माता पिता को आरोग्य कहना"।

१४७. छन्न बोधिसत्त्व की वन्दना एवं प्रदक्षिणा कर चल दिया। कन्थकने छन्न के साथ मन्त्रणा करते हुए बोधिसत्त्व की बातों को सुन, वहीं ठहर "अब पुनः मुझे स्वामी के दर्शन नहीं होंगे" (बोधिसत्त्व को) चक्षुपथ से ओझल होने के शोक को न सह सकने के कारण, हृदय फट कर मर कर, तावतिंस देव लोक में कन्थक नामक देवपुत्र होकर जन्म लिया। छन्न को पहले एक ही शोक था। कन्थक की मृत्यु से प्राप्त इस द्वितीय शोक से पीड़ित हो रोते पीटते नगर लौट आया।

राजगृह में बोधिसत्त्व

१४८. बोधिसत्त्व भी प्रव्रजित हो, उस प्रदेश में स्थित अनुप्रिय नामक आम्रवन में एक सप्ताह प्रव्रज्यासुख के अनुभवन में व्यतीत कर, एक ही दिन में तीस योजन का मार्ग पैदल चलकर राजगृह में प्रविष्ट हुए। वहाँ जा घर-घर भिक्षाटन करने लगे। धनपाल कुबेर के राजगृह में प्रवेश सदृश अथवा असुरेन्द्र के देव नगर में प्रवेश के समान सम्पूर्ण नगर बोधिसत्त्व के रूप दर्शन से संक्षुब्ध हो उठा। अतः राजपुरुषों ने जाकर (राजा से) कहा "देव, इस प्रकार का (रूपवान्) एक मनुष्य नगर में भिक्षाटन कर रहा है। वह देवता हैं, या मनुष्य, नाग है या गरुड़, या कौन है, हम लोग नहीं जानते हैं। राजा ने प्रासाद के ऊपर खड़े हो महापुरुष को देख, आश्चर्य चकित हो, अपने आदमियों को आज्ञा दी—"जाओ, देखो; यदि वह मनुष्य नहीं होगा तो नगर से निकल अन्तर्धान हो जायगा; यदि देवता होगा तो आकाश मार्ग से चला जायगा; यदि नाग होगा तो पृथ्वी में डुबकी लगा कर चला जायगा; यदि मनुष्य होगा तो प्राप्त भिक्षान्न को खायेगा।

१४९. महापुरुष ने भी मिश्रित भोजन का संग्रह कर, "मेरे लिए यह यथेष्ठ है" ऐसा जान, प्रविष्ट हुए द्वार से नगर से निकल कर पाण्डव पर्वत की छाया में पूर्व मुंह करके बैठ भोजन करना प्रारम्भ किया। उसके बाद उनकी आँतें उलटकर मुख से निकलने के सदृश प्रतीत हुई। तब इस जन्म में, इससे पूर्व ऐसा भोजन आँख से न देखा होने के कारण, उस प्रतिकूल आहार से खिन्न होते हुऐ अपने को स्वयं इस प्रकार समझाया—"सिद्धार्थ तुम बहुलता से

अट्टियमानो एवं अत्तनाव अत्तानं ओवदि—"सिद्धत्थ, त्वं बहु सुलभन्नपानकुले[1] तिवस्सिकगन्धसालिभोजनं नानग्गरसेहि भुञ्जनट्ठाने निब्बत्तित्वा पि एकं पंसुकूलिकं दिस्वा 'कदा नु खो, अहम्पि एवरूपो हुत्वा पिण्डाय चरित्वा भुञ्जिस्सामि, भविस्सति नु खो मे सो कालो'ति, चिन्तेत्वा निक्खन्तो। 'इदानि किं नामेतं करोसि"ति। एवं अत्तनाव अत्तानं ओवदित्वा निब्बिकारो हुत्वा आहारं परिभुञ्जि।

१५०. राजपुरिसा तं पवत्तिं दिस्वा गन्त्वा रञ्ञो
आरोचेसुं। राजा दूतवचनं सुत्वा वेगेन नगरा निक्खमित्वा
बोधिसत्तस्स सन्तिकं गन्त्वा इरियापथस्मिं येव पसीदित्वा
B.78 बोधिसत्तस्स सब्बं इस्सरियं निय्यादेसि। बोधिसत्तो—"मय्हं
महाराज, वत्थुकामेहि वा किलेसकामेहि वा अत्थो नत्थि। अहं
परमाभिसम्बोधिं पत्थयन्तो निक्खन्तो" ति। राजा
अनेकप्पकारं याचन्तो पि तस्स चित्तं अलभित्वा 'अद्धा त्वं बुद्धो
भविस्ससि। बुद्धभूतेन पन ते पठमं मम विजितं आगन्तब्बं' ति
पटिञ्ञं गण्हि। अयमेत्थ सङ्खेपो। वित्थारो पन "पब्बज्जं
कित्तयिस्सामि यथा पब्बजि चक्खुमा[2]" ति इमं पब्बज्जासुत्तं
सद्धिं अट्ठकथाय ओलोकेत्वा वेदितब्बो।

बोधिसत्तस्स पधानं

१५१. बोधिसत्तो पि रञ्ञो पटिञ्ञं दत्वा अनुपुब्बेन
चारिकं चरमानो आलारं च कालामं उद्दकं च रामपुत्तं
उपसङ्कमित्वा समापत्तियो निब्बत्तेत्वा 'नायं मग्गो सम्बोधाया'
R.67 ति, तम्पि समापत्तिभावनं अनलंकरित्वा सदेवकस्स लोकस्स
अत्तनो थामविरियसन्दस्सनत्थं महापधानं पदहितुकामो उरुवेलं
गन्त्वा, 'रमणीयो वतायं भूमिभागो' ति' तत्थेव वासं उपगन्त्वा
महापधानं पदहि। ते पि खो कोण्डञ्ञप्पमुखा पञ्च पब्बजिता
गामनिगमराजधानीसु भिक्खाय चरन्ता तत्थ बोधिसत्तं
सम्पापुणिंसु। अथ 'नं छब्बस्सानि महापधानं पदहन्तं, 'इदानि
बुद्धो भविस्सति', 'इदानि बुद्धो भविस्सती' ति परिवेणसम्मज्ज-
नादिकाय वत्तपटिपत्तिया उपट्ठहमाना[3] सन्तिकावचरा ति चस्स[3]
अहेसुं।

१. सुलभन्नपाने म.। २. सु नि. ३२६ पृ.। ३-३. सन्तिकावचरावस्स म.।

सुलभ अन्न पान वाले कुल में तीन वर्ष के पुराने सुगन्धित चावल नाना प्रकार के उत्तम रसों के साथ खाये जाने वाले स्थान में उत्पन्न होकर भी एक पंशुकूल धारी (भिक्षु) को देख "कब मैं भी इस प्रकार का (भिक्षु) होकर भिक्षा माँग कर भोजन करूँगा, वह समय कब होगा" ऐसा सोच घर से निकले हो, अभी तुम यह क्या कर रहे हो ?" इस प्रकार अपने ही अपने आप को समझा विकार रहित हो भोजन किया।

१५०. राजपुरुषों ने उस वृतान्त को देख, जाकर राजा से कहा। राजा ने दूत के वचन को सुन, शीघ्र ही नगर से निकल कर बोधिसत्त्व के निकट जा, उनके इर्यापथ (चर्या) से प्रसन्न हो, बोधिसत्त्व का अपना सम्पूर्ण ऐश्वर्य अर्पित किया। बोधिसत्त्व ने कहा—"महाराज" मुझे वस्तुकाम या क्लेशकाम से कोई प्रयोजन नहीं है ! मैं परम पद अभिसम्बोधि की खोज में निकला हूँ।" राजा ने अनेक प्रकार से याचना करने पर भी उनके मन को इस ओर न पाकर (कहा)—"तुम अवश्य बुद्ध होगे। बुद्ध होने पर पहले पहल मेरे इस राज्य में आना।" यह (इस कथा का) संक्षिप्त रूप है। इसका बिस्तार "प्रव्रज्या का वर्णन करूँगा, जिस प्रकार चक्षुमान प्रव्रजित हुए" आदि (ढंग से वर्णित) अट्ठकथा के साथ पब्बज्जासुत्त को देखकर जानना चाहिए।

बोधिसत्त्व की तपश्चर्या

१५१. बोधिसत्त्व ने भी राजा को वचन दे, क्रमशः चारिका (धर्मयात्रा) करते हुए आलारकालाम तथा उद्दकरामपुत्र के निकट जा समापत्तियों का लाभ कर "यह सम्बोधि के लिए उत्तम मार्ग नहीं है", (ऐसा सोच) उस समापत्ति-भावना को यथेष्ठ न समझ, देवलोक सहित अन्य लोक को अपने बल, वीर्य को दर्शाने के लिए महान् तपश्चर्या करने की इच्छा से उरुवेला पहुँच कर "यह भूमिभाग रमणीय है" (ऐसा विचार) वहीं रहते हुए महातप किया। वे कौण्डिन्य सहित पाँच प्रव्रजित भी ग्राम, निगम तथा राजधानियों में भिक्षाटन करते हुए वहाँ बोधिसत्त्व से आ मिले। उनके छः वर्षों तक तपश्चर्या करते हुए 'वे अब बुद्ध होंगे, अब बुद्ध होंगे, (इस आशा में) आश्रम में झाड़ू लगाने या अन्यान्य शारीरिक कर्तव्यों के परिपालन से उनकी सेवा करते हुए, उनके पास रहे।

१५२. बोधिसत्तो पि खो 'कोटिप्पत्तं दुक्करकारिकं करिस्सामी'ति एकतिलतण्डुलादीहि पि वीतिनामेसि। सब्बसो पि आहारुपच्छेदं अकासि। देवता पि लोमकूपेहि ओजं उपसंहरमाना पटिक्खिपि। अथस्स ताय निराहारताय[1] परमकसिमानपत्तकायस्स सुवण्णवण्णो कायो कालवण्णो अहोसि। द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि पटिच्छन्नानि अहेसुं।

अप्पेकदा अप्पाणकं झानं झायन्तो महावेदनाहि अभितुन्नो विसञ्ञिभूतो चङ्कमनकोटियं पतति[2]। अथ नं एकच्चा देवता 'कालकतो समणो गोतमो'ति वदन्ति। एकच्चा 'विहारोवेसो अरहतं'ति आहंसु। तत्थ 'यासं कालकतो'ति अहोसि ता गन्त्वा सुद्धोदनमहाराजस्स आरोचेसुं-"तुम्हाकं पुत्तो कालकतो"ति।

"मम पुत्तो बुद्धो हुत्वा कालकतो, अहुत्वा ति"?

"बुद्धो भवितुं नासक्खि, पधानभूमियं येव पतित्वा

B.79 कालकतो"ति।

इदं सुत्वा राजा—"नाहं सद्दहामि, मम पुत्तस्स बोधिं अप्पत्वा कालकिरिया नाम नत्थी"ति पटिक्खिपि।

"कस्मा पन राजा न सद्दहती"ति? कालदेवलतापसस्स वन्दापनदिवसे जम्बुरुक्खमूले च पाटिहारियानं[3] दिट्ठता।

पुन बोधिसत्ते सञ्ञं पटिलभित्वा उट्ठिते ता देवता आगन्त्वा[4]—"अरोगो ते महाराज, पुत्तो"ति आरोचेन्ति।

राजा—"जानामहं पुत्तस्स अमरणभावं"ति वदति।

१५३. महासत्तस्स छब्बस्सानि दुक्करकारियं करोन्तस्स आकासे गण्ठिकरणकालो विय अहोसि। सो 'अयं दुक्करकारिका नाम बोधाय मग्गो न होती'ति ओळारिकं आहारं आहारेतुं गामनिगमेसु पिण्डाय चरित्वा आहारं आहरि। अथस्स द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि पाकतिकानि अहेसुं। कायो सुवण्णवण्णो अहोसि।

पञ्चवग्गिया भिक्खू "अयं छब्बसानि दुक्करकारिकं करोन्तो पि सब्बञ्ञुतं पटिविज्झितुं नासक्खि। इदानि गामादिसु

R.68 पिण्डाय चरित्वा ओळारिकं आहारं आहरियमानो किं

---

१. निराहाराय म.। २. पति ना.। ३. पाटिहारियं म.। ४. गन्त्वा म.।

१५२. बोधिसत्त्व ने भी "पराकाष्ठा तक दुष्कर क्रिया करूँगा" (ऐसा सोच) एक-एक तिल तण्डुलादि से भी समय बिताने लगे। (पुनः) आहार ग्रहण का बिल्कुल परित्याग किया। देवताओं ने भी उनके रोम कूपों से ओज लाकर डाला। इसके बाद उनके आहार के बिना रहने के कारण शरीर के अति दुर्बल हो जाने से, शरीर का सुवर्ण वर्ण काला हो गया। महापुरुषों के बत्तीस लक्षण छिप गये।

एक बार निःश्वास ध्यान का आभ्यास करते हुए, दुःसाध्य वेदना से पीड़ित हो, चेतनाहीन हो चंक्रमण पर गिर पड़े। तब कुछ देवताओं ने कहा— "श्रमण गौतम मर गये।" कुछ ने कहा—अरहन्तों का यही विहार है।" उनमें जिनको यह ज्ञात हुआ कि वे मर गये, उन्होंने महाराज शुद्धोदन के निकट जाकर कहा कि "तुम्हारा पुत्र मर गया"।

"मेरा पुत्र बुद्ध होकर मरा या बिना बुद्ध हुए?" (राजा ने पूछा)।

"वह बुद्ध न हो सका, (तपश्चर्या की अवस्था में) तपश्चर्या की भूमि में गिर कर मर गया।"

इसे सुन राजा ने विरोध करते हुए कहा—"मैं इसमें विश्वास नहीं करता हूँ। बुद्धत्व को प्राप्त किये बिना मेरे पुत्र का मरण नहीं हो सकता है।"

राजा क्यों विश्वास नहीं करते थे? तपस्वी कालदेवल की बन्दना करने के दिन के तथा जम्बु वृक्ष के नीचे किये गये चमत्कारों को देखे रहने के कारण।

पुनः चेतना लाभ कर बोधिसत्त्व के उठ बैठने पर, वे देवता आकर राजा से कहा करते थे—"महाराज, तुम्हारा पुत्र सकुशल है"।

(इस पर) राजा कहते थे—"मैं अपने पुत्र के अमरणभाव (जीवित रहने की बात) को जानता हूँ"।

१५३. महासत्त्व की छ वर्षों तक की गयी दुष्कर क्रिया आकाश में गाँठ बाँधने में व्यतीत समय के समान (निष्फल) हुई। उन्होंने—"यह दुष्कर तपश्चर्या बुद्धत्व की प्राप्ति का मार्ग नहीं है" सोच स्थूल आहार ग्रहण करने के लिये ग्राम नगरों में भिक्षाटन कर भोजन करना आरंभ किया। अतः बत्तीस महापुरुषों के लक्षण अपने प्राकृतिक रूप में आ गये। शरीर स्वर्ण वर्ण का हो उठा।

पंचवर्गीय भिक्षुओं ने (सोचा) "छ वर्षों तक दुष्कर तपश्चर्या करके भी यह सर्वज्ञता नहीं प्राप्त कर सका, अब गाँवों में भिक्षा माँग कर स्थूल आहार ग्रहण करता हुआ क्या कर सकेगा? यह बहुत कुछ चाहने वाला लोभी है,

सक्खिस्सति ? बाहुल्लिको एस, पधानविब्भन्तो। सीसं नहायितुकामस्स उस्सावबिन्दुतक्कनं विय अम्हाकं एतस्स सन्तिका विसेसतक्कनं, किं नो इमिना"ति; महापुरिसं पहाय अत्तनो अत्तनो पत्तचीवरं गहेत्वा अट्ठारसयोजनमग्गं गन्त्वा इसिपतनं पविसिंसु।

सुजाताय पायासं

१५४. तेन खो पन समयेन उरुवेलायं सेनानिनिगमे सेनानिकुटुम्बिकस्स गेहे निब्बत्ता सुजाता नाम दारिका वयप्पत्ता एकस्मिं निग्रोधरुक्खे पत्थनं अकासि। "सचे समजातिकं कुलघरं गन्त्वा पठमगब्भे पुत्तं लभिस्सामि, अनुसंवच्छरं ते सतसहस्सपरिच्चागेन बलिकम्मं करिस्सामी" ति। तस्सा सा पत्थना समिज्झि। सा महासत्तस्स दुक्करकारिकं करोन्तस्स छट्ठे वस्से परिपुण्णे विसाखपुण्णमायं बलिकम्मं कातुकामा हुत्वा पुरेतरं [1]चेव च[1] धेनुसहस्सं लट्ठिमधुकवने चरापेत्वा, तासं खीरं पञ्चधेनुसतानि पायेत्वा, तासं खीरं अड्ढतियानी ति; एवं याव सोलसन्नं धेनूनं खीरं अट्ठ धेनुयो पिवन्ति, ताव खीरस्स बहलतं च मधुरतं च ओजवन्ततं च पत्थयमाना खीरपरिवत्तनं नाम अकासि।

१५५. सा विसाखपुण्णमदिवसे 'पातोव बलिकम्मं करिस्सामी' ति रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय ता अट्ठधेनुयो दुहापेसि। वच्छका धेनूनं थनमूलं नागमंसु। थनमूले पन नवभाजने उपनीतमत्ते अत्तनो धम्मताय खीरधारा पवत्तिसु। तं अच्छरियं दिस्वा सुजाता सहत्थेनेव खीरं गहेत्वा नवभाजने पक्खिपित्वा सहत्थेनेव अग्गिं कत्वा पचितुं आरभि। तस्मिं पायासे पच्चमाने महन्तमहन्ता बुब्बुला उट्ठहित्वा दक्खिणावत्ता हुत्वा सञ्चरन्ति। एकफुसितं पि बहि न पतति। उद्धनतो अप्पमत्तकोपि धूमो न उट्ठहति। तस्मिं समये चत्तारो लोकपाला आगन्त्वा उद्धने आरक्खं गण्हिंसु। महाब्रह्मा छत्तं धारेसि। सक्को अलातानि समानेन्तो अग्गिं जालेसि। देवता द्विसहस्सदीपपरिवारेसु चतूसु महादीपेसु देवानं च मनुस्सानं च उपकप्पनकं ओजं अत्तनो देवानुभावेन दण्डकबद्धं मधुपटलं पीलेत्वा मधुं गण्हमाना विय संहरित्वा तत्थ

१-१. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि।

तपस्या-भ्रष्ट पुरुष है! सिर से स्नान करने की कामना वाले पुरुष का ओसबुन्द की ओर देखने के समान हम लोगों का इसकी ओर देखना (निष्फल) है, इससे हम लोगों को क्या लाभ हो सकेगा ? ऐसा विचार महापुरुष को छोड़, अपना पात्र चीवर ले अठारह योजन का मार्ग चल कर ऋषिपतन पहुँचे।

सुजाता की खीर

१५४. उस समय उरुवेला के सेनानी नामक निगम में, सेनानी परिवार में उत्पन्न सुजाता नामक एक कन्या ने तरुण-अवस्था को प्राप्त कर, एक बरगद वृक्ष के नीचे ऐसी प्रार्थना की—"यदि समान जाति के कुल-घर में जाकर प्रथम गर्भ में पुत्र प्राप्त करूँगी, तो प्रतिवर्ष एक लाख (मुद्रा) के व्यय से बलि कर्म (पूजा) करूँगी।" उसकी वह प्रार्थना पूरी हुई। महासत्त्व के दुष्कर तपश्चर्या का छठा वर्ष परिपूर्ण होने पर वैशाख पूर्णिका के दिन बलिकर्म करनेकी इच्छा से, पहले उसने एक हजार गायों को यष्टिमधु के वन में चरवा कर, उनका दूध पाँच सौ गायों को पिलवा कर, उनका दूध ढाई सौ गायों को पिला, इस प्रकार (एक का दूध दूसरे को पिलाते हुए) सोलह गायों का दूध आठ गायोंने जब पीया, तब तक (ऐसा कर) दूध के गाढ़ेपन, मधुरता एवं ओज की कामना करते हुए क्षीर परिवर्तन किया।

१५५. उसने वैशाख पूर्णिमा के दिन 'प्रातःकाल मैं बलि कर्म करूँगी' (ऐसा सोच) रात के प्रत्यूष समय ही उठ उन आठ गायों को दुहवाया। बछड़ों ने गायों के थनों में मुँह नहीं लगाया। थनमूल के निकट नवीन पात्र लाते ही, अपनी धर्मतावश दूध की धारा निकलने लगी। उस आश्चर्य को देख, सुजाता ने अपने हाथ से दूध लेकर, नये पात्र में रख, अपने हाथ अग्नि प्रज्वलित कर खीर पकाना आरंभ किया। उस पायस के पकते समय बड़े-बड़े बुलबुले उठकर दक्षिण की ओर होकर संचरण करते थे। एक कण भी बाहर नहीं गिरता था। इन्धन से (चूल्हे से) तनिक भी धुँआँ नहीं उठता था। उस समय चारों लोकपाल आकर (चूल्हे) पर पहरा देते थे। महाब्रह्मा ने छत्र धारण किया। इन्द्र ने इन्धन ला आग जलायी। देवताओं ने दो हजार द्वीप समूहों तथा चार महाद्वीपों से देवता तथा मनुष्यों के योग्य ओज को, दण्डे में आबद्ध मधु छत्ते को निचोड़ कर मधु ग्रहण करने के समान, अपने देव प्रताप

पक्खिपिंसु। अञ्ञेसु हि कालेसु देवता कवले कवले ओजं
पक्खिपन्ति। सम्बोधिदिवसे च पन परिनिब्बानदिवसे च
उक्खलियं येव पक्खिपन्ति।

R.69 १५६. सुजाता एकदिवसेनेव तत्थ अत्तनो पाकटानि अनेकानि
अच्छरियानि दिस्वा पुण्णादासिं आमन्तेसि—"अम्म पुण्णे,
अज्ज अम्हाकं देवता अतिविय पसन्ना। मया एत्तके काले
एवरूपं अच्छरियं नाम न दिट्ठपुब्बं। वेगेन गन्त्वा देवट्ठानं
पटिजग्गाही"ति। "सा साधु अय्ये"ति तस्सा वचनं संपटिच्छित्वा
तुरिततुरिता रुक्खमूलं अगमासि। बोधिसत्तो पि खो तस्मिं रत्ति-
भागे पञ्च महासुपिणे दिस्वा परिगण्हन्तो "निस्संसयेनाहं अज्ज
बुद्धो भविस्सामी"ति कतसन्निट्ठानो तस्सा रत्तिया अच्चयेन
कतसरीरपटिजग्गनो भिक्खाचारकालं आगमयमानो पातोव
आगन्त्वा तस्मि रुक्खमूले निसीदि, अत्तनो पभाय सकलं रुक्खं
ओभासयमानो।

१५७. अथ खो सा पुण्णा आगन्त्वा अद्दस बोधिसत्तं
रुक्खमूले पाचीनलोकधातुं ओलोकयमानं[1] निसिन्नं। सरीरतो
चस्स निक्खन्ताहि पभाहि सकलरुक्खं सुवण्णवण्णं दिस्वा तस्सा
एतदहोसि—"अज्ज अम्हाकं देवता रुक्खतो ओरुय्ह सहत्थेनेव
बलिकम्मं सम्पटिच्छितुं निसिन्ना मञ्ञे" ति उब्बेगप्पत्ता हुत्वा
B.81 वेगेन गन्त्वा सुजाताय एतमत्थं आरोचेसि। सुजाता तस्सा
वचनं सुत्वा तुट्ठमानसा हुत्वा 'अज्जदानि पट्ठाय मम जेट्ठधीतुट्ठाने
तिट्ठाही' ति धीतु अनुच्छविकं सब्बालंकारं अदासि।

१५८. यस्मा पन बुद्धभावं पापुणनदिवसे सतसहस्स-
ग्घनिकं सुवण्णपातिं लद्धुं वट्टति, तस्मा सा 'सुवण्णपातियं पायासं
पक्खिपिस्सामी' ति चित्तं उप्पादेत्वा सतसहस्सग्घनिकं सुवण्णपातिं
नीहरापेत्वा तत्थ पायासं पक्खिपितुकामा पक्कभोजनं[2] आवज्जेसि।
सब्बो पायासो पदुमपत्ता उदकं विय विनिवट्टित्वा पातियं
पतिट्ठासि। एकपातिपूरणमत्तोव अहोसि। सा तं पातिं अञ्ञाय
सुवण्णपातिया पटिकुज्जेत्वा ओदातवत्थेन वेठेत्वा सब्बालंकारेहि
अत्तभावं अलङ्करित्वा तं पातिं अत्तनो सीसे ठपेत्वा महन्तेन
आनुभावेन निग्रोधमूलं गन्त्वा बोधिसत्तं ओलोकेत्वा बलवसोमन-

१. °मानो भ. । २. पत्तभाजनं म. ।

से एकत्र कर उसमें डाला। अन्य समय में देवता ओज को एक-एक कौर (ग्रास) में डालते हैं। (पर) सम्बोधि-प्राप्ति के दिन तथा महापरिनिर्वाण के दिन उस पात्र में ही डालते हैं।

१५६. सुजाता ने एक ही दिन अनेक आश्चर्यों को प्रकट हुए देख (अपनी) पूर्णा नामक दासी से कहा—"अम्मा पूर्णे, आज हमारे देवता अति प्रसन्न हैं। मैंने इससे पूर्व, इतने समय तक, इस प्रकार के आश्चर्य (कभी) नहीं देखे। शीघ्र जाकर देवस्थल को साफ करो।" वह, "अच्छा आर्या," कह उसके वचन को सुन शीघ्रता से (दौड़ी-दौड़ी) वृक्ष के नीचे गयी। बोधिसत्त्व भी उस रात पाँच महास्वप्न देख, "आज मैं अवश्य बुद्ध होऊँगा," ऐसा निश्चय कर, उस रात के व्यतीत होने पर, शौचादि क्रिया समाप्त कर, भिक्षा के लिए समय की प्रतीक्षा करते हुए, अपनी प्रभा से समस्त वृक्षको प्रकाशित करते हुए, प्रातःकाल ही आकर उस वृक्ष के नीचे बैठे।

१५७. पूर्णाने आकर बोधिसत्त्व को वृक्ष के नीचे बैठ पूर्व दिशा को अवलोकित करते हुए देखा। उनके शरीर से निसृत प्रभा से समस्त वृक्ष को स्वर्ण वर्ण का हुए देख उसके मन में ऐसा हुआ—"आज हमारे देवता पेड़ से उतर कर अपने हाथ से ही बलि (पूजा) ग्रहण करने के लिए बैठे हैं," (तथा ऐसा सोच) उद्विग्न हो, शीघ्रता से जाकर सुजाता को इसकी सूचना दी। सुजाता ने उसकी बातों को सुनकर प्रसन्न हो, "आज से तुम मेरी ज्येष्ठ पुत्री के स्थान पर रह," ऐसा कह पुत्री के अनुरूप सभी अलंकार उसे प्रदान किए।

१५८. यस्मात् बुद्धत्व की प्राप्ति के दिन एक लाख (मुद्रा के) मूल्य की स्वर्ण थाली मिलनी चाहिए, इसलिये उसने "मैं स्वर्ण की थाली में खीर को रखूँगी" ऐसा विचार एक लाख मूल्य की स्वर्ण थाली मँगवा उसमें खीर रखने की इच्छा से पके भोजन की ओर ध्यान दिया। पद्म पत्र में रखे जल के समान पूरी खीर उलट कर थाली में आ गिरी। वह पूरी एक थाली भर ही हुई। उस थाली को एक अन्य स्वर्ण थाली से ढक कर, श्वेत वस्त्र से वेष्ठित कर, अपने को सभी आभूषणों से विभूषित कर, उसको अपने सिर पर रख, बहुत ही ऐश्वर्य के साथ उस बरगद के नीचे जा, बोधिसत्त्व को देख

स्सजाता 'रुक्खदेवता,ति सञ्ञाय[१] दिट्ठट्ठानतो पट्ठाय ओनतोनता गन्त्वा सीसतो पातिं ओतारेत्वा विवरित्वा सुवण्णभिङ्कारेन गन्धपुप्फवासितं उदकं गहेत्वा बोधिसत्तं उपगन्त्वा अट्ठासि। घटीकारमहाब्रह्मुना दिन्नमत्तिकापत्तो एत्तकं अद्धानं बोधिसत्तं अविजहित्वा तस्मिं खणे अदस्सनं गतो।

१५९ बोधिसत्तो पत्तं अपस्सन्तो दक्खिणहत्थं पसारेत्वा
उदकं सम्पटिच्छि। सुजाता सहेव पातिया पायासं महापुरिसहत्थे
ठपेसि। महापुरिसो सुजातं ओलोकेसि। सा आकारं सल्लखेत्वा–
"अय्य, मया तुम्हाकं परिच्चत्तं, गण्हित्वा यथा रुचिं गच्छथा"ति
R.70 वन्दित्वा "यथा मय्हं मनोरथो निप्फन्नो, एवं तुम्हाकम्पि
निप्फज्जतू"ति वत्वा सतसहस्सग्घनिकाय सुवण्णपातिया पुराण-
पण्णं विय अनपेक्खा हुत्वा पक्कामि।

१६० बोधिसत्तो पि खो निसिन्नट्ठाना उट्ठाय रुक्खं पदक्खिणं
कत्वा पातिं आदाय नेरञ्जराय तीरं गन्त्वा, अनेकेसं बोधिसत्त-
सतसहस्सानं अभिसम्बुज्झनदिवसे ओतरित्वा नहानट्ठानं सुप्पति-
ट्ठिततित्थं नाम अत्थि, तस्स तीरे पातिं ठपेत्वा ओतरित्वा नहात्वा
अनेकबुद्धसतसहस्सानं निवासनं अरहद्धजं निवासेत्वा, पुरत्थाभि-
मुखो निसीदित्वा एकट्ठितालपक्कप्पमाणे एकूनपण्णासपिण्डे कत्वा
सब्बं अप्पोदकं मधुपायासं परिभुञ्जि। सो एवं हिस्स बुद्धभूतस्स
सत्तसत्ताहं बोधिमण्डे वसन्तस्स एकूनपञ्ञासदिवसानि आहारो
B.82 अहोसि। एत्तकं कालं नेव अञ्ञो आहारो अत्थि, न नहानं, न
मुखधोवनं, न सरीरवलञ्जो। झानसुखेन मग्गसुखेन फलसुखेनेव[२]
वीतिनामेसि।

१६१ तं पन पायासं परिभुञ्जित्वा सुवण्णपातिं गहेत्वा—"सचाहं अज्ज बुद्धो भवितुं सक्खिस्सामि, अयं मे पाति पटिसोतं गच्छतु, नो चे सक्खिस्सामि अनुसोतं गच्छतू"ति वत्वा[३] पक्खिपि। सा सोतं छिन्दमाना नदीमज्झं गन्त्वा मज्झमज्झट्ठानेनेव जवसम्पन्नो अस्सो विय असीतिहत्थमत्तट्ठानं पटिसोतं गन्त्वा एकस्मिं आवट्टे निमुज्जित्वा कालनागराजभवनं गन्त्वा तिण्णं बुद्धानं परिभोग-

१. अञ्ञाय म.। २. फलसुखेन च म.। ३. ° नदीसोते म.।

अत्यधिक प्रसन्न हो, उन्हें वृक्ष देवता जान, देखे हुए स्थान से झुकती हुई आगे बढ़, अपने सिर से थाली को उतार, उसे खोल, स्वर्ण के जलपात्र (झारी) में सुगन्धित जल ले, बोधिसत्त्व के निकट जा वह खड़ी हुई। घटीकार महाब्रह्मा द्वारा दिया हुआ मृत्तिकापात्र इतने दिनों तक बोधिसत्त्व के पास रह कर उसी क्षण अदृश्य हो गया।

१५९. बोधिसत्त्व ने पात्र को न देख दाहिने हाथ को फैला जल ग्रहण किया। सुजाता ने थाली सहित खीर को महापुरुष के हाथ में रख दिया। महापुरुष ने सुजाता को देखा। उसने उस संकेत को समझ "आर्य, मेरे द्वारा दिये (भोजन) को ग्रहण कर यथारुचि पधारें।" (ऐसा कह) वन्दना कर जिस प्रकार मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ, उसी प्रकार तुम्हारा भी पूर्ण हो" कह एक लाख मूल्य की थाली को जीर्ण पत्र के समान छोड़ अनपेक्षी हो (वहाँ से) चली गयी।

१६०. बोधिसत्त्व ने भी उस बैठे हुए स्थान से उठकर वृक्ष की प्रदक्षिणा कर, थाली को ले नेरञ्जरा नदी के तीर पर जा, लाखों बोधिसत्त्वों के बुद्धत्व प्राप्ति के दिन उतर कर स्नान करने योग्य जो सुप्रतिष्ठित तीर्थ है, उसके तीर पर थाली को रख, उतर कर स्नान कर, लाखों बुद्धों का परिधान अर्हत् ध्वज (चीवर) धारण कर पूर्व की ओर मुख कर के बैठ, एक गुठली वाले पके ताल फल के प्रमाण के (उस खीर का) उनचास पिण्ड बना कर उस सम्पूर्ण निर्जल (केवल दूध में पकी) खीर का भोजन किया। यही (भोजन) बुद्धत्व की प्राप्ति कर सात सप्ताह तक बोधिमण्ड में बैठे रहने के समय, उनचास दिनों का आहार हुआ। इतने समय तक (उन्होंने) न दूसरा आहार किया, न स्नान, न मुख-धोवन, न शारीरिक (शौचादि) क्रियायें ही की। ध्यान-सुख, मार्ग-सुख तथा फल-सुख (के अनुभवन में हा इतना) समय व्यतीत किया।

१६१. उस खीर को खा, स्वर्ण थाली को लेकर यह कह कर उसे (नदी में) फेंक दिया कि "यदि मैं बुद्ध हो सकूँगा, तो यह नदी की धारा के प्रतिकूल जाय तथा यदि नहीं हो सकूँगा तो धारा के अनुकूल जाय।" वह धारा को चीरती हुई नदी के बीच जा, बीचोबीच वेगसम्पन्न घोड़े के समान अस्सी हाथ तक स्रोत के प्रतिकूल जा, एक गड्ढे में निमग्न हो कालनागराज के भवन में जा, तीन बुद्धों द्वारा उपभुक्त

पातियो 'किळिकिळी'ति रवं कारयमाना पहरित्वा तासं सब्बहेट्ठिमा हुत्वा अट्ठासि। कालो नागराजा तं सद्दं सुत्वा हिय्यो एको बुद्धो निब्बत्तो[1], पुन अज्ज एको निब्बत्तो ति[2], अनेकेहि पदसतेहि थुतियो वदमानो अट्ठासि। तस्स किर[3] महापठविया एकयोजनतिगावुतप्पमाणं नभं पूरेत्वा आरोहनकालो अज्ज वा हिय्यो वा ति सदिसो अहोसि।

बोधिमण्डाभिरोहणं

१६२. बोधिसत्तोपि नदीतीरम्हि सुपुप्फितसालवने दिवाविहारं कत्वा सायण्हसमये पुप्फानं वण्टतो मुच्चनकाले देवताहि अलङ्कतेन अट्ठउसभवित्थारेन मग्गेन सीहो विय[4] विजम्भमानो बोधिरुक्खाभिमुखो पायासि। नागयक्खसुपण्णादयो दिब्बेहि गन्धपुप्फादीहि पूजयिंसु। दिब्बसङ्गीतादीनि पवत्तयिंसु। दससहस्सीलोकधातु एकगन्धा, एकमाला, एकसाधुकारा अहोसि।

१६३. तस्मिं समये सोत्थियो नाम तिणहारको तिणं आदाय पटिपथे आगच्छन्तो महापुरिसस्स आकारं ञत्वा अट्ठ तिणमुट्ठियो तस्स[5] अदासि। बोधिसत्तो तिणं गहेत्वा
R.71 बोधिमण्डं आरुय्ह दक्खिणदिसाभागे उत्तराभिमुखो अट्ठासि। तस्मिं खणे दक्खिणचक्कवालं ओसीदित्वा हेट्ठा अवीचिसम्पत्तं विय अहोसि। उत्तरचक्कवालं उल्लंघित्वा उपरि भवग्गप्पत्तं विय अहोसि। बोधिसत्तो 'इमं सम्बोधिपापुणनट्ठानं भविस्सति मञ्ञे'ति पदक्खिणं करोन्तो पच्छिमदिसाभागं गन्त्वा पुरत्थाभिमुखो अट्ठासि। ततो पच्छिमचक्कवालं ओसीदित्वा हेट्ठा अवीचिसम्पत्तं विय अहोसि। पुरत्थिमचक्कवालं उल्लंघित्वा भवग्गप्पत्तं विय अहोसि। ठितठितट्ठाने किरस्स नेमिवट्टपरियन्ते अक्कन्ते नाभिया पतिट्ठितमहासकटचक्कं विय महापठवी
B.83 ओनतुन्नता अहोसि। बोधिसत्तो 'इदम्पि सम्बोधिपापुणनट्ठानं न भविस्सति मञ्ञे'ति पदक्खिणं करोन्तो उत्तरदिसाभागं गन्त्वा

---

१. निब्बत्ति रो.। २. °वत्वा म.। ३. पन रो.। ४. व. रो.।
५. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि।

थालियों से टकरा कर किल-किल शब्द करती हुई, उन सब के नीचे जा स्थित हो गयी। कालनाग राजा उस शब्द को सुन कर—'कल भी एक बुद्ध उत्पन्न हुए, पुनः आज भी एक बुद्ध उत्पन्न हुए' (ऐसा विचार) सैंकड़ो पदों से स्तुति करते रहे। उनका महापृथ्वी से एक योजन तीन गव्यूति प्रमाण तक आकाश को व्याप्त कर आरोहण का समय कल के समान आज भी था।

बोधिमंडाभिरोहण

१६२. बोधिसत्त्व भी नदी के तट पर स्थित सुपुष्पित शालवन में दिवाविहार कर सन्ध्या काल, अपने, डंठल से पुष्पों के गिरने के समय, देवताओं द्वारा अलंकृत, आठ ऋषभ विस्तृत मार्ग से सिंह के सदृश जँभाई करते हुए बोधिवृक्ष की ओर चल पड़े। नाग, यक्ष, गरुड़ आदि ने दिव्य गन्ध एवं पुष्पों से उनकी पूजा की। दिव्य संगीत प्रवृत्त हुए। दसों हजार ब्रह्माण्ड एक प्रकार से गन्धपूर्ण माला से सुसज्जित एवं साधुकार ध्वनि से निनादित हो उठे।

१६३. उस समय सामने मार्ग से घास लेकर आते हुए सोत्थिय नामक एक तृणहारक ने महापुरुष के आकार को देख आठ मुट्ठी घास उन्हें दी। बोधिसत्त्व ने उस घास को ले, बोधिमण्ड पर चढ़, दक्षिण दिशा में उत्तर की ओर मुँह करके खड़े हुए। उस क्षण दक्षिण चक्रवाल दब कर मानो अवीचि नरक तक नीचे चला गया। उत्तर चक्रवाल ऊपर उठकर मानो लोक के ऊपरी भाग (भवाग्र) तक चला आया। बोधिसत्त्व, 'यह स्थान सम्बोधि प्राप्ति के लिए युक्त नहीं है', ऐसा सोच प्रदक्षिणा करते हुए पश्चिम दिशा की ओर जा, पूर्व की ओर मुख करके खड़े हुए। उस समय पश्चिम चक्रवाल दबकर मानो अवीचि नरक तक नीचे धँस गया, तथा पूर्व चक्रवाल ऊपर उठ भवाग्र स्थिति को प्राप्त हुआ। उनके जहाँ-जहाँ जाकर खड़े होने से महापृथ्वी वैसे ही ऊँची नीची हो उठी जैसे नाभि के बल से रखे हुए एक बड़े रथ के चक्के को नेमि (अन्तिम छोर) पर खड़े होने से वह ऊँचा नीचा होता है।

'यह स्थान भी बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए नहीं है, ऐसा सोच प्रदक्षिणा करते हुए उत्तर दिशा की ओर जा, दक्षिणाभिमुख हो खड़े हुए। उस समय

दक्खिणाभिमुखो अट्ठासि। ततो उत्तरचक्कवालं ओसीदित्वा हेट्ठा अवीचिसम्पत्तं विय अहोसि। दक्खिणचक्कवालं उल्लंघित्वा[1] भवग्गप्पत्तं विय अहोसि। बोधिसत्तो 'इदम्पि सम्बोधिपापुणनट्ठानं न भविस्सति मञ्ञे' ति पदक्खिणं करोन्तो पुरत्थिमदिसाभागं गन्त्वा पच्छिमाभिमुखो अट्ठासि। 'पुरत्थिमदिसाभागे पन सब्बबुद्धानं पल्लङ्कट्ठानं', तं नेवच्छम्भति, न कम्पति।

१६४. महासत्तो 'इदं सब्बबुद्धानं अविजहितं अचलट्ठानं किलेसपञ्जरविद्धंसनट्ठानं ति', ञत्वा तानि तिणानि अग्गे गहेत्वा[2] चालेसि। तावदेव चुद्दसहत्थो पल्लङ्को अहोसि। तानि पि खो तिणानि तथारूपेन सण्ठानेन सण्ठहिंसु, यथारूपं सुकुसलोपि चित्तकारो वा पोत्थकारो वा आलिखितुं पि समत्थो नत्थि। बोधिसत्तो बोधिक्खन्धं पिट्ठितो कत्वा पुरत्थाभिमुखो दळ्हमानसो हुत्वा 'कामं तचो च नहारू च अट्ठि च अवसुस्सतु, उपसुस्सतु[3] सरीरे मंसलोहितं; नत्वेव सम्मासम्बोधिं अप्पत्वा इमं पल्लङ्कं भिन्दिस्सामी' ति, असनिसतसन्निपातेना पि अभेज्जरूपं अपराजितपल्लङ्कं आभुजित्वा निसीदि।

मारपराजयो

१६५. तस्मिं समये मारो देवपुत्तो 'सिद्धत्थकुमारो मय्हं वसं अतिक्कमितुकामो, न दानिस्स अतिक्कमितुं दस्सामी' ति, मारबलस्स सन्तिकं गन्त्वा एतमत्थं आरोचेत्वा मारघोसनं नाम घोसापेत्वा मारबलं आदाय निक्खमि। सा मारसेना मारस्स पुरतो द्वादस योजनानि होति, दक्खिणतो च वामतो च द्वादस योजनानि, पच्छतो पन[4] चक्कवाळपरियन्तं कत्वा ठिता; उद्धं
R. 72 नवयोजनुब्बेधा; यस्सा उन्नदन्तिया उन्नादसद्दो योजनसहस्सतो पट्ठाय पटविउद्रियनसद्दो विय सूयति। अथ मारो देवपुत्तो दियड्ढयोजनसतिकं गिरिमेखलं नाम हत्थिं अभिरूहित्वा बाहुसहस्सं मापेत्वा नानायुधानि अग्गहेसि। अवसेसाय पि मारपरिसाय द्वे जना एकसदिसकं आयुधं न गण्हिंसु। नानप्पकारवण्णा नानप्पकारमुखा हुत्वा महासत्तं अज्झोत्थरमाना आगमिंसु।

---

१. ° उपरि म.। २. पग्गहेत्वा म.। ३. ° निस्सेसं म.। ४. याव रो, म.।

उत्तर चक्रवाल दबकर मानो अवीचि नरक तक नीचे चला गया। दक्षिण चक्रवाल उठकर मानो लोक के ऊपरी भाग के समान हो उठा। "यह स्थान भी बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए युक्त नहीं हो सकता है" ऐसा सोच बोधिसत्त्व प्रदक्षिणा करते हुए पूर्व दिशा को जा पश्चिमाभिमुख खड़े हुए। 'पूर्व दिशा भाग ही सभी बुद्धों का पल्लङ्कस्थान (बैठने का स्थान) है, जो न भय से व्याप्त होता है, न कम्पित होता है"।

१६४. महासत्त्व ने—'यह सभी बुद्धों का अपनाया हुआ अचल स्थान है, क्लेश पञ्जर (चित्त-मलों) के विध्वंसक स्थान है,' ऐसा जान, उन तृणों के अग्रभागको पकड़ कर हिलाया। उसी समय चौदह हाथ का आसन बन गया। वे तृण भी वैसे सुन्दर ढंग से सजकर स्थित हुए, जिस प्रकार कोई कुशल चित्रकार या शिल्पकार भी चित्रित नहीं कर सकता है। बोधिसत्त्व बोधि वृक्ष को पीठ की ओर कर पूर्वाभिमुख दृढ़चित्त हो—'भले ही मेरा चमड़ा, नसें, हड्डियाँ सूख जायँ, शरीर के माँस, रक्त सूख जायँ, पर सम्यक्-सम्बोधि (बुद्धत्व) को प्राप्त किये बिना, इस आसन को नहीं छोड़ूँगा' (ऐसा निश्चयकर) सौ बिजलियों के गिरने से भी नहीं टूटनेवाले अपराजित आसन लगा कर बैठ गये।

मार-पराजय

१६५. उस समय देवपुत्र मार "सिद्धार्थ कुमार मेरे अधिकार से बाहर निकलना चाहता है, उसे वश से बाहर नहीं जाने दूंगा", (सोच) मारसेना के निकट जा, इस अभिप्राय का कथन कर, मारघोषणा घोषित कर, अपनी सेना लेकर निकला। वह मारसेना आगे बारह योजन तक, दाहिनी तथा बाँयी ओर बारह-बारह योजन तक तथा पीछे की ओर चक्रवाल के अन्त तक, ऊपर की ओर नव योजन तक फैली थी; उसके उन्नादित होने पर जयघोष एक हजार योजन दूर से भी पृथ्वी के फटने के शब्द के समान सुनाई पड़ता था। तब देवपुत्र मार ने डेढ़ सौ योजन के गिरिमेखल नामक हाथी पर चढ़कर, एक हजार हाथ बना, उनमें नाना प्रकार के आयुधों को ग्रहण किया। अवशेष मारसेना के मनुष्यों में कोई दो आदमी एक प्रकार के हथियार नहीं लिए। वे नाना प्रकार के वर्ण तथा मुख वाले बनकर बोधिसत्त्व को चारो ओर से घेरते हुए आ पहुँचे।

B. 84 दससहस्सचक्कवाले देवता पन महासत्तस्स थुतियो वदमाना अट्ठंसु। सक्को देवराजा विजयुत्तरसङ्खं धममानो अट्ठासि। सो किर सङ्खो वीसहत्थसतिको होति । सकिं वातं गाहापेत्वा धमन्तो चत्तारो मासे सद्दं करित्वा निस्सद्दो होति। महाकाल-नागराजा अतिरेकपदसतेन वण्णं वदन्तो अट्ठासि । महाब्रह्मा सेतच्छत्तं धारयमानो अट्ठासि । मारबले पन बोधिमण्डं उपसङ्कमन्ते उपसङ्कमन्ते[1] तेसं एको पि ठातुं नासक्खि । सम्मुखसम्मुखट्ठाने येव पलायिंसु। कालो नागराजा पठवियं निमुज्जित्वा पञ्चयोजनसतिकं मञ्जेरिकं नागभवनं गन्त्वा उभोहि हत्थेहि मुखं पिदहित्वा निपन्नो। सक्को विजयुत्तरसङ्खं पिट्ठियं कत्वा चक्कवालमुखवट्टियं अट्ठासि । महाब्रह्मा सेतच्छत्तं चक्कवालकोटियं ठपेत्वा ब्रह्मलोकमेव अगमासि। एकदेवता पि ठातुं समत्था नाम[2] नाहोसि। महापुरिसो एको व निसीदि।

१६६. मारो पि अत्तनो परिसं आह—"ताता, सुद्धोदन-पुत्तेन सिद्धत्थेन सदिसो अञ्ञो पुरिसो नाम नत्थि। मयं सम्मुखा युद्धं दातुं न सक्खिस्साम, पच्छाभागेन दस्सामा" ति । महापुरिसो पि तीणि पस्सानि ओलोकेत्वा सब्बदेवतानं पलायितत्ता सुञ्ञानि अद्दस । पुन उत्तरपस्सेन मारबलं अज्झोत्थरमानं दिस्वा—'अयं एत्तको जनो मं एककं सन्धाय महन्तं वायामं परक्कमं करोति। इमस्मिं ठाने मय्हं माता वा पिता वा भाता वा अञ्ञो वा कोचि ञातको नत्थि। इमा पन दसपारमियोव मय्हं दीघरत्तं पुट्ठपरिजनसदिसा। तस्मा पारमियो च फलकं कत्वा पारमिसत्थेनेव पहरित्वा अयं बलकायो मया विद्धंसेतुं वट्टती' ति दसपारमियो आवज्जमानो निसीदि।

१६७. अथ खो[3] मारो देवपुत्तो–'एतेनेव सिद्धत्थं पलापेस्सामी' ति वातमंडलं समुट्ठापेसि। तं खणं येव पुरत्थिमादिभेदा वाता
R, 73 समुट्ठहित्वा अड्ढयोजन[4]-द्वियोजन-तियोजनप्पमाणानि पब्बतकूटानि पदालेत्वा वनगच्छरुक्खादीनि उम्मूलेत्वा समन्ता गामनिगमे चुण्णविचुण्णं कातुं समत्था पि महापुरिसस्स पुञ्ञतेजेन विहतानुभावा बोधिसत्तं पत्वा चीवरकण्णमत्तं पि चालेतुं नासक्खिंसु।

---

१. म. पोत्थके नत्थि। २. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि। ३. रो. पोत्थके नत्थि। ४. °एकयोजन° म.

दस हजार चक्रवालों के देवता महासत्त्व की स्तुति करने लगे। देवराज शक्र विजयोत्तर शंख बजाते हुए खड़े थे। वह शंख एक सौ बीस हाथ का था। एक बार फूँक देने पर चार महीने तक बजते हुए निःशब्द होता था। महाकाल नागराज सौ से अधिक पदों से गुणगान करते हुए खड़े थे। महाब्रह्मा श्वेत छत्र धारण किए हुए थे। (पर) मार की सेना के बोधिमण्ड के निकट पहुँचते-पहुँचते, उनमें से एक भी वहाँ खड़े नहीं रह सके। सामने होते ही भाग निकले। काल नागराज पृथ्वी में समा कर अपने पाँच सौ योजन वाले मञ्जेरिक भवन में जा, दोनों हाथों से मुख को ढक कर, पड़ गये। शक्र विजयोत्तर शंख को (अपनी) पीठ पर रख चक्रवाल को सीमा पर जा खड़े हुए। महाब्रह्मा ने श्वेत छत्र को चक्रवाल के सिरे पर रख (स्वयं) ब्रह्मलोक चले आये। एक देवता भी ठहर न सके। महापुरुष अकेले ही बैठे रहे।

१६६. मार ने अपनी सेना के लोगों से कहा—"तात, शुद्धोदन पुत्र सिद्धार्थ के समान अन्य कोई (वीर) पुरुष नहीं है। हमलोग सामने से युद्ध नहीं कर सकेंगे, पीछे की ओर से युद्ध करेंगे"। महापुरुष ने भी तीनों दिशाओं को देख, सभी देवताओं के भाग जाने के कारण उन्हें शून्य पाया। पुनः उत्तर की ओर से मार की सेना को आगे बढ़ते देख—'ये इतने लोग मुझ अकेले के विरुद्ध इतना यत्न एवं महान् पराक्रम दिखला रहे हैं। इस स्थान में मेरे माँ-बाप, भाई या अन्य कोई सम्बन्धी नहीं हैं। ये दस पारमितायें ही दीर्घ काल से पोषित परिजन के समान हैं। इसलिए पारमिताओं को ढाल बना, पारमिता शस्त्र से प्रहार कर इस मार सेना को मुझे विध्वंस करना है' ऐसा सोच वे पारमिताओं का आवर्जन (स्मरण) करते हुए बैठे रहे।

१६७. इसके बाद देवपुत्र मार ने 'इससे सिद्धार्थ को भगाऊँगा', सोच वातमण्डल (तूफान) उत्पन्न किया। उस समय पूर्वैया, पश्चिमा आदि हवा उत्पन्न हो आधे योजन, दो योजन, तीन योजन प्रमाण के पर्वत शिखरों को पददलित करती, वन के वृक्षों का उन्मूलन करती, समस्त ग्राम निगमों को चूर्ण-विचूर्ण करने में समर्थ होकर भी, महापुरुष के पुण्यतेज से प्रभावहीन हो उनके निकट जा, उनके चीवर मात्र को प्रकम्पित नहीं कर सकी।

ततो 'उदकेन नं अज्झोत्थरित्वा मारेस्सामी' ति
B. 85 महावस्सं समुट्ठापेसि। तस्सानुभावेन उपरूपरि सतपटलसहस्स-पटलाभिभेदा वलाहका उट्ठहित्वा वस्सिंसु। वुट्ठिधारावेगेन पठवी छिद्दा अहोसि। बनरुक्खादीनं उपरिभागेन महोमेघो आगन्त्वा महासत्तस्स चीवरे उस्सावविन्दुपतनमत्तं पि तेमेतुं नासक्खि।

ततो पासाणवस्सं समुट्ठापेसि। महन्तानि महन्तानि पब्बतकूटानि धूपायन्तानि पज्जलन्तानि आकासेनागन्त्वा बोधिसत्तं पत्वा दिब्बमाळागुळभावं आपज्जिंसु।

ततो पहरणवस्सं समुट्ठापेसि। एकतोधारा उभतोधारा असिसत्तिखुरप्पादयो धूपायन्ता पज्जलन्ता आकासेनागन्त्वा बोधिसत्तं पत्वा दिब्बपुप्फानि अहेसुं।

ततो अङ्गारवस्सं समुट्ठापेसि। किंसुकवण्णा अङ्गारा आकासेनागन्त्वा बोधिसत्तस्स पादमूले दिब्बपुप्फानि हुत्वा विकिरिंसु।

ततो कुक्कुळवस्सं समुट्ठापेसि। अच्चुण्हो अग्गिवण्णो कुक्कुळो आकासेनागन्त्वा बोधिसत्तस्स पादमूले चन्दनचुण्णं हुत्वा निपति।

ततो वालुकावस्सं समुट्ठापेसि। अतिसुखुमवालुका धूपायन्ता पज्जलन्ता आकासेनान्त्वा बोधिसत्तस्स पादमूले दिब्बपुप्फानि हुत्वा निपतिंसु।

ततो कललवस्सं समुट्ठापेसि। तं कललं धूपायन्तं पज्जलन्तं आकासेनागन्त्वा बोधिसत्तस्स पादमूले दिब्बविलेपनं हुत्वा निपति।

ततो 'इमिना भिंसेत्वा सिद्धत्थं[1] पलापेस्सामी'ति अन्धकारं समुट्ठापेसि। तं चतुरङ्गसमन्नागतं विय[2] महातमं हुत्वा बोधिसत्तं पत्वा सुरियप्पभाविहतं विय अन्धकारं अन्तरधायि।

१६८. एवं मारो इमाहि नवहि वातवस्सपासाणप्पहरणङ्गारकुक्कुळवालिकाकललन्धकारवुट्ठीहि बोधिसत्तं पलापेतुं असक्कोन्तो—किं भणे, तिट्ठथ, इमं कुमारं गण्हथ, हनथ, पलापेथा ति, परिसं आणापेत्वा सयम्पि गिरिमेखलस्स हत्थिनो

१. म. पोत्थके नत्थि। २. रो. पोत्थके नत्थि।

इसके बाद 'इन्हें जल से डुबो कर मारूँगा' सोच घोर वृष्टि उत्पन्न की। इसके प्रभाव से ऊपर से सौ पटल (तह) तथा हजार पटल वाले बादल उमड़ उमड़ बरसने लगे। वर्षा की धारा के वेग से पृथ्वी में छेद हो गये। बन वृक्षों के ऊपर भागों में भयंकर मेघ बरस कर भी ओस विन्दु गिरने के समान महासत्त्व के चीवर को भी नहीं भिगो सके।

इसके बाद (उसने) पत्थरों की वर्षा उत्पन्न की। बड़े-बड़े पर्वत शिखर धुआँ फेंकते, जलते हुए आकाश मार्ग से आकर बोधिसत्त्व को पा दिव्य पुष्प गुच्छ के रूप में परिणत हो गये।

तब प्रहरण वृष्टि (आयुध वर्षा) उत्पन्न की। एक ओर धारवाले, दोनों ओर धारवाले तलवार, भाले, तीर आदि धुँधुयाते प्रज्वलित होते आकाश मार्ग से आ बोधिसत्त्व को प्राप्त कर दिव्य पुष्प बन गये।

पुनः (उसने) अंगार की वर्षा उत्पन्न की। लालरंग के अंगार आकाश मार्ग से बरस बोधिसत्त्व के चरणोंमें दिव्य पुष्प हो बिखर गये।

पुनः (उसने) राख की वर्षा उत्पन्न की। अति उष्ण, आग के रंग का राख आकाश से बरस कर बोधिसत्त्व के चरण में चन्दन चूर्ण होकर आ गिरा।

तदनन्तर (उसने) बालू की वर्षा उत्पन्न की। अति सूक्ष्म बालुका-कण धुँधवाते प्रज्वलित होते आकाश से बोधिसत्त्व के चरण में दिव्य पुष्प हो कर आ गिरे।

तब (उसने) कीचड़ की वर्षा उत्पन्न की। धुंधुवाता प्रज्वलित कीचड़ आकाश से बरस बोधिसत्त्व के चरण में दिव्य लेप होकर गिरने लगा।

तदनन्तर 'इससे सिद्धार्थ को डरा कर भगा दूँगा' सोच अन्धकार उत्पन्न किया। यह चारो अंगों से युक्त भयंकर अन्धकार बन बोधिसत्त्व के निकट आ सूर्य प्रभा से नष्ट अन्धकार के समान अन्तर्धान हो गया।

१६८. इस प्रकार मार वायु, जल, पाषाण, आयुध, अंगार, उष्ण राख, बालुका, कर्दम तथा अन्धकार—इन प्रकार की वर्षा से भी बोधिसत्त्व को जब भगा नहीं सका तो अपनी परिषद् को इस प्रकार आज्ञा देकर कि "भणे, खड़े क्यों हो, इस कुमार को पकड़ो, मारो, भगाओ", स्वयं गिरिमेखला नामक हाथी

खन्धे निसिन्नो चक्कायुधं आदाय बोधिसत्तं उपसङ्कमित्वा "सिद्धत्थ, उट्ठेहि एतस्मा पल्लङ्का, नायं तुय्हं पापुणाति, मय्हं एसो[1] पापुणाती" ति आह। महासत्तो तस्स वचनं सुत्वा अवोच—"मार, नेव तया दसपारमियो पूरिता, न उपपारमियो, न परमत्थपारमियो; नापि पञ्चमहापरिच्चागा परिच्चत्ता, न ञाणत्थचरिया, न लोकत्थचरिया, न बुद्धत्थचरिया[2]
B. 86 पूरिता;[3] नायं पल्लंको तुय्हं पापुणाति, मय्हेवेसो पापुणाती'
R. 74 ति आह[4]।

१६६. मारो कुद्धो कोधवेगं असहन्तो महापुरिसस्स चक्कायुधं विस्सज्जेसि। तं तस्स दसपारमियो आवज्जेन्तस्स उपरिभागे मालावितानं हुत्वा अट्ठासि। तं किर खुरधारं चक्कायुधं अञ्ञदा तेन कुद्धेन विसट्ठं एकघनपासाणे थम्भे वंसकळीरे विय छिन्दन्तं गच्छति। इदानि पन तस्मिं मालावितानं हुत्वा ठिते 'अवसेसा मारपरिसा इदानि पल्लङ्कतो वुट्ठाय पलायिस्सती' ति महन्तमहन्तानि सेलकूटानि विस्सज्जेसुं। तानि पि महापुरिसस्स दस पारमियो आवज्जेन्तस्स मालागुलभावं आपज्जित्वा भूमियं पतिंसु। देवता चक्कवालमुखवट्टियं ठिता गीवं पसारेत्वा सीसं उक्खिपित्वा उक्खिपित्वा[5] 'नट्ठो वत भो, सिद्धत्थकुमारस्स रूपसोभग्गप्पत्तो अत्तभावो, किन्नु खो करिस्सती'[6] ति ओलोकेन्ति।

१७०. ततो महापुरिसो 'पूरितपारमीनं बोधिसत्तानं अभिसम्बुज्झनदिवसे पत्तपल्लङ्को मय्हं पापुणाती' ति वत्वा ठितं मारं आह—"मार, तुय्हं दानस्स दिन्नभावे को सक्खी" ति? मारो—"इमे एत्तका सक्खिनो"ति मारबलाभिमुखं हत्थं पसारेसि। तस्मिं खणे मारपरिसाय 'अहं सक्खी, अहं सक्खी' ति पवत्तसद्दो पठविउद्रियनसद्दसदिसो अहोसि। अथ मारो महापुरिसं आह—"सिद्धत्थ, तुय्हं दानस्स दिन्नभावे को सक्खी" ति? महापुरिसो—'तुय्हं ताव दानस्स दिन्नभावे सचेतना सक्खिनो, मय्हं पन इमस्मिं ठाने सचेतनो कोचि सक्खि नाम नत्थि। तिट्ठतु ताव मे अवसेसअत्तभावेसु दिन्नदानं। वेस्सन्तरत्तभावे पन

---

१. एव म.। २. बुद्धिचरिया रो. म.। ३. °सब्बा ता मया येव पूरिता, तस्मा म.। ४. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि। ५. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि। ६. करिस्सामी ति म.।

पर बैठ, हाथ में चक्र ले सिद्धार्थ के निकट जाकर बोला—"सिद्धार्थ इस आसन से उठो, यह तुम्हारे लिए नहीं है, यह मेरे लिये है"। महासत्त्व ने उसके वचन को सुन उत्तर दिया—"मार, तुमने न तो दस पारमितायें पूरी की है, न उप-पारमितायें, न परमार्थ पारमितायें ही; न तुमने पाँच महात्याग किया है, न तो तुमने ज्ञान के लिए, न लोक कल्याण के लिए, न बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए आचरण किया है, (अतः) यह आसन तुम्हारे लिए नहीं है, यह मेरे लिए है"।

१६६. मार क्रुद्ध हो, क्रोध के आवेग का सहन न करते हुए महापुरुष के ऊपर चक्र फेका। दस पारमिताओं के आवर्जन करते वह उन पर मालावितान (फूलों की चान्दनी) हो स्थित हुआ। वह तीक्ष्ण धारवाला चक्रायुध उसके द्वारा क्रुद्ध हो अन्य किसी समय छोड़े जाने पर एक ठोस पाषाण स्तम्भ को कलीर बाँस के समान काटता हुआ चला जाता। इस समय उन पर पुष्पों की चान्दनी बन स्थित होने पर अवशेष मार परिषद् ने 'अभी हम इसे इस आसन से उठा भगायेंगे' सोच बड़े-बड़े पर्वत शिखरों को उन पर फेका। वे सभी भी दस पारमिताओं का स्मरण करते ही, महापुरुष के निकट आ, पुष्प मालायें बनकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

देवता गण चक्रवाल के किनारे खड़े होकर, गर्दन फैला सिर आगे बढ़ा-बढ़ा कर देखते थे (तथा सोचते थे) 'हा, सिद्धार्थ कुमार का सुन्दर रूप युक्त शरीर नष्ट हो गया, वह क्या कर सकेगा'।

१७०, 'पारमिताओं को पूरा करने वाले बोधिसत्त्वों को बुद्धत्व प्राप्ति के दिन प्राप्त होने वाला आसन, 'मेरे लिए है,' ऐसा कह खड़े मार से महापुरुष ने पूछा "मार, तुम्हारे दान देने का कौन साक्षी है"? मार ने—'ये इतने साक्षी हैं' (कह) मार सेना की ओर हाथ फैलाया। उस समय मार-परिषद् के 'मैं साक्षी हूँ, मैं साक्षी हूँ,' इस प्रकार प्रवृत्त शब्द, पृथ्वी के फटने के सदृश प्रतीत होते थे। तब मार ने महापुरुष से पूछा—"सिद्धार्थ, तुम्हारे दान देनेका कौन साक्षी है"? महापुरुष ने कहा कि 'तुम्हारे दान देने के साक्षी सचेतन प्राणी हैं, (पर) यहाँ मेरे दिये दान का सचेतन साक्षी कोई नहीं है। मेरे अन्य जन्मों में दिये दान को छोड़ दे। वेस्सन्तर जन्म में मेरे द्वारा सात सप्ताह तक दिये गये महादान का यह अचेतन घनी महा पृथ्वी

ठत्वा मय्हं सत्तसतकमहादानस्स ताव दिन्नभावे अयं अचेतना पि घनमहापठवी सक्खी' ति, चीवरगब्भन्तरतो दक्खिणहत्थं अभिनीहरित्वा वेस्सन्तरत्तभावे ठत्वा 'मया[1] सत्तसतकमहादानस्स दिन्नभावे त्वं सक्खी, न सक्खी ति महापठवीअभिमुखं हत्थं पसारेसि। महापठवी—'अहं ते तदा सक्खी' ति विरवसतेन विरवसहस्सेन विरवसतसहस्सेन मारबलं अवत्थरमाना विय उन्नदि।

१७१. ततो महापुरिसे 'दिन्नं ते सिद्धत्थ, महादानं उत्तम-
B. 87 दानं' ति वेस्सन्तरदानं सम्मसन्ते सम्मसन्ते दियड्ढयोजनसतिको गिरिमेखलहत्थी जन्नुकेहि[2] पतिट्ठासि। मारपरिसा दिसा विदिसा पलायि। द्वे एकमग्गेन गता नाम नत्थि। सीसाभरणानि चेव निवत्थवत्थानि च पहाय सम्मुखसम्मुखदिसाहि येव पलायिसु। ततो देवसङ्घा पलायमानं मारबलं दिस्वा 'मारस्स
R. 75 पराजयो जातो, सिद्धत्थ कुमारस्स जयो, जयपूजं करिस्सामा'ति नागा नागानं, सुपण्णा सुपण्णानं, देवता देवतानं, ब्रह्मानो ब्रह्मानं पेसेत्वा[3] गन्धमालादिहत्था महापुरिसस्स सन्तिकं बोधिपल्लकं आगमंसु। एवं गतेसु च पन तेसु—

जयो हि बुद्धस्स सिरीमतो अयं,
मारस्स च पापिमतो पराजयो।
उग्घोसयुं बोधिमण्डे पमोदिता,
जयं तदा नागगणा महेसिनो॥ २७४॥

जयो हि बुद्धस्स सिरीमतो अयं,
मारस्स च पापिमतो पराजयो।
उग्घोसयुं बोधिमण्डे पमोदिता,
सुपण्णसङ्घापि जयं महेसिनो॥ २७५॥

जयो हि बुद्धस्स सिरीमतो अयं,
मारस्स च पापिमतो पराजयो।
उग्घोसयुं बोधिमण्डे पमोदिता,
जयं तदा देवगणा महेसिनो॥ २७६॥

जयो हि बुद्धस्स सिरीमतो अयं,
मारस्स च पापिमतो पराजयो।
उग्घोसयुं बोधिमण्डे पमोदिता,
जयं तदा ब्रह्मगणा पि तादिनो" ति॥ २७८॥

१. मय्हं रो. म.। २. ° पठवियं म.। ३. उग्घोसेत्वा म.।

साक्षिणी हैं', कह चीवर के भीतर से दाहिना हाथ निकाल 'वेस्सन्तर-जन्म में मेरे द्वारा सात सप्ताह तक दिये महा दान का तुम साक्षी हो अथवा नहीं, महा पृथ्वी की ओर हाथ फैलाया।

महापृथ्वी ने—'मैं उस समय के लिए आप की साक्षिणी हूँ,' कह सौ वाणी से, सहस्र उद्घोष से, लाख उद्घोष से मार की सेना को तितर बितर करते हुए महा नाद किया।

१७१. तब महापुरुष से "सिद्धार्थ तुमने महा दान दिया है, उत्तम दान दिया है," कह वेस्सन्तर जन्म के दान पर विचार करते हुए, डेढ़ सौ योजन लम्बा गिरिमेखला हाथी ने घुटने टेक दिया। मार सेना विभिन्न दिशाओं में भाग निकली। एक मार्ग से दो जने भी नहीं जा सके। वे सिर के आभूषण तथा पहने वस्त्रों को छोड़ सामने की दिशाओं में भाग निकले। देवता भागती हुई मार सेना को देख 'मार की पराजय हुई, सिद्धार्थ कुमार की जय, (हम) विजयी की पूजा करेंगे', इस प्रकार नागों ने नागों को, गरुड़ों ने गरुड़ों को, देवताओं ने देवताओं को (समाचार) भेज हाथ में गन्ध माला आदि लेकर, महापुरुष के निकट बोधि आसन के पास आये। इस प्रकार वे वहाँ पहुँच कर—

"श्री मान् बुद्ध की जय हुई, तथा पापी मार की पराजय। उस समय आनन्दविभोर नागों ने बोधिमण्ड में महर्षि की विजय उद्घोषणा की॥२७४॥

बोधिमण्ड में (एकत्र) प्रसन्नचित्त गरुड़ों ने (यह कहते कि) 'श्री मान् बुद्ध की जय हुई, पापी मार की पराजय, महर्षि की विजय पर जयध्वनि की॥२७५॥

श्री मान् बुद्ध की जय तथा पापी मार की पराजय हुई। उस समय प्रमुदित देवताओं ने बोधिमण्ड में महर्षि के जय का उद्घोष किया॥२७६॥

उस समय बोधिमण्ड में एकत्र आह्लादित ब्रह्माओं ने यह कहते कि 'श्री मान् बुद्ध की जय तथा पापी मार की पराजय,' महर्षि के जय का उद्घोष किया"॥२७८॥

अवसेसा दससु चक्कवालसहस्सेसु देवता मालागन्ध-विलेपनेहि पूजयमाना नानप्पकारा थुतियो वदमाना अट्ठंसु।

सम्बोधि

B. 88 १७२. एवं धरमाने[1] येव सुरिये महापुरिसो मारबलं विधमेत्वा चीवरूपरि पतमानेहि बोधिरुक्खङ्कुरेहि रत्तपवालदलेहि विय पूजियमानो पठमे यामे पुब्बेनिवासञाणं अनुस्सरित्वा, मज्झिमे यामे[2] दिब्बचक्खुं विसोधेत्वा, पच्छिमे यामे पटिच्चसमुप्पादे ञाणं ओतारेसि। अथस्स द्वादसङ्गिकं पच्चयाकारं वट्टविवट्टवसेन अनुलोमपटिलोमतो सम्मसन्तस्ससम्मसन्तस्स दससहस्सीलोकधातु उदकपरियन्तं कत्वा द्वादसक्खत्तुं सङ्कम्पि।

१७३. महापुरिसे पन दससहस्सी लोकधातुं उन्नादेत्वा
R. 76 अरुणुग्गमन वेलाय सब्बञ्ञुत ञाणं पटिविज्झन्ते सकलदससहस्सी लोकधातु अलङ्कतपटियत्ता अहोसि। पाचीनचक्कवाळमुखवट्टियं उस्सापितानं धजानं पटाकानं रंसियो पच्छिमचक्कवालमुखवट्टियं पहरन्ति। तथा पच्छिमचक्कवाळमुखवट्टियं उस्सापितानं पाचीनचक्कवाळमुखवट्टियं, उत्तरचक्कवाळमुखवट्टियं उस्सापितानं दक्खिणचक्कवाळमुखवट्टियं, दक्खिणचक्कवाळमुखवट्टियं उस्सापितानं उत्तरचक्कवाळमुखवट्टियं पहरन्ति। पठवितले उस्सापितानं पन धजानं पटाकानं ब्रह्मलोकं आहच्च अट्ठंसु। ब्रह्मलोके बद्धानं पठवितले पतिट्ठहंसु। दससहस्सचक्कवाळे पुप्फूपगरुक्खा पुप्फं गण्हिसु। फलूपगरुक्खा फलपिण्डिभारभरिता अहेसुं। खन्धेसु खन्धपदुमानि पुप्फिसु। साखासु साखापदुमानि, लतासु लतापदुमानि, आकासे ओलम्बकपदुमानि, सिलातलानि भिन्दित्वा उपरि-उपरि सत्तसत्त हुत्वा दण्डकपदुमानि उट्ठहिंसु। दससहस्सीलोकधातु वट्टेत्वा विस्सट्ठमालागुळा विय, सुसंथत-पुप्फसन्थारो विय च अहोसि। चक्कवाळन्तरेसु अट्ठयोजन-सहस्सलोकन्तरिका सत्तसुरियप्पभायपि अनोभासितपुब्बा एकोभासा अहेसुं। चतुरासीतियोजनसहस्सगम्भीरो महासमुद्दो मधुरोदको अहोसि। नदियो न पवत्तिसु। जच्चन्धा रूपानि पस्सिसु। जातिबधिरा सद्दं सुणिसु। जातिपीठसप्पी पदसा गच्छिसु। अन्दुबन्धनादीनि छिज्जित्वा पतिसु।

१. अनत्थङ्गते म.। २. रो. पोत्थके नत्थि।

अवशेष दस हजार चक्रवालों में देवता मालागन्ध विलेप आदि से पूजा एवं स्तुति करने लगे।

सम्बोधि

१७२. इस प्रकार महापुरुष ने सूर्य के रहते-रहते मार की सेना को नष्ट कर चीवर के ऊपर बोधिवृक्ष से लाल रंग के मूंगों के समान गिरते अंकुर से पूजित हो, रात के प्रथम प्रहर में पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त कर, दूसरे प्रहर में दिव्य चक्षु को विशुद्ध कर, अन्तिम प्रहर में प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान का साक्षात्कार किया। इसके बाद द्वादस अंग से युक्त प्रतीत्यसमुत्पाद को वर्त-विवर्त दृष्टि से तथा अनुलोम-प्रतिलोम क्रम से विचार करते हुए, जल की सीमा तक दस हजार ब्रह्माण्ड बारह बार काँपे।

१७३. (इस प्रकार) महापुरुष के दस हजार ब्रह्माण्डों को उन्नादित कर अरुणोदय वेला में (प्रातः लालिमा निकलते समय) सर्वज्ञता की प्राप्ति करने पर सम्पूर्ण दस हजार ब्रह्माण्ड सुअलंकृत हो उठे। पूर्व के चक्रवालों की अन्तिम छोर पर फहराते ध्वजा पताकाओं की प्रभा (किरणें) पश्चिम चक्रवालों की अन्तिम सीमा तक पहुँच रही थी। उसी प्रकार पश्चिम चक्रवालों के छोर पर फहराती (ध्वजाओं की प्रभा) पूर्व के चक्रवालों की छोर तक, उत्तर के चक्रवालों की छोर पर फहराती (ध्वजाओं की प्रभा) दक्षिण चक्रवाल की सीमा तक, तथा दक्षिण चक्रवाल की छोर पर फहराती ध्वजाओं की प्रभा उत्तर चक्रवाल की अन्तिम छोर तक व्याप्त थी। पृथ्वीतल पर फहराती ध्वजा, पताकायें ब्रह्मलोक को छू रही थीं। ब्रह्मलोक में आबद्ध (ध्वजायें) पृथ्वी तल तक पहुँचती थी। दस हजार ब्रह्माण्डों में फूल वाले वृक्ष फूलों से युक्त हो उठे। फलवाले वृक्ष फलों के भार से लद गये। स्कन्धों में स्कन्ध पद्म खिल गये। शाखाओं में शाखापद्म, लताओं में लतापद्म, आकाश में लटकने वाले कमल, शिलातल को फाड़ कर ऊपर-ऊपर सात-सात होकर दण्डक पद्म खिल उठे। दस सहस्र लोक धातु आवेष्ठित हो रखी माला के सदृश, या सुप्रसारित पुष्प शय्या के सदृश हो गये। चक्रवालों के बीच आठ हजार योजन का लोकान्तर (लोकों के बीच की भूमि), जो सात सूर्यों के प्रकाश से भी पहले प्रकाशमान नहीं हो पाता था, (अब) पूर्णतः प्रकाशपूर्ण हो उठा था। चौरासी हजार योजन गहरा महासमुद्र मीठे जल वाला हो गया। नदियों का बहना रुक गया। जन्मान्धों ने (विविध) रूपों को देखा। जन्म से बधिर पुरुषों ने शब्द सुना। जन्म से पंगु पुरुष पैर से चलने लगे। हथकड़ी बेड़ी आदि टूट कर गिर पड़ी।

१७४. एवं अपरिमाणेन सिरिविभवेन पूजियमानो अनेकप्पकारेसु अच्छरियधम्मेसु पातुभूतेसु सब्बञ्ञुतञाणं पटिविज्झित्वा सब्बबुद्धानं अविजहितं उदानं उदानेसि—

B 89. "अनेकजाति संसारं, सन्धाविस्सं अनिब्बिसं ।
गहकारकं गवेसन्तो, दुक्खा जाति पुनप्पुनं[1] ॥ २७८ ॥
गहकारक, दिट्ठोसि, पुन गेहं न काहसि,
सब्बा ते फासुका भग्गा, गहकूटं विसङ्खतं, ।
विसङ्खारगतं चित्तं, तण्हानं खयमज्झगा"ति[2] ॥ २७९ ॥

R. 77 इति तुसितपुरतो पट्ठाय याव अयं बोधिमण्डे सब्बञ्ञुतप्पत्ति[3], एत्तकं ठानं 'अविदूरे निदानं' नामा ति वेदितब्बं ।

सन्तिके निदानं

१७५. सन्तिके निदानं पन "भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे, वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं" ति, एवं तेसु ठानेसु विहरन्तो तस्मिं तस्मिं ठाने येव लब्भतो ति वुत्तं । किञ्चा पि एवं वुत्तं, अथ खो पन तं[4] आदितो पट्ठाय एवं वेदितब्बं ।

जयपल्लंको

१७६. इमं[5] उदानं उदानेत्वा जयपल्लंके[6] निसिन्नस्स हि भगवतो एतदहोसि—"अहं कप्पसतसहस्साधिकानि चतारि असंखेय्यानि इमस्स पल्लंकस्स कारणा सन्धावि । एत्तकं मे कालं इमस्सेव पल्लंकस्स कारणा मया अलंकतसीसं गीवाय छिन्दित्वा दिन्नं; सुअञ्जितानि अक्खीनि, हदयमंसं[7] उब्बत्तेत्वा दिन्नं; जालियकुमारसदिसा पुत्ता, कण्हाजिनकुमारीसदिसा धीतरो, मद्दीदेवीसदिसा भरियायो च परेसं दासत्थाय दिन्ना । अयं मे पल्लंको जयपल्लंको वरपल्लंको च । एत्थ मे निसिन्नस्स संकप्पा परिपुण्णा, न ताव इतो वुट्ठहिस्सामी" ति, अनेक कोटिसतसहस्ससमापत्तियो समापज्जन्तो सत्ताहं तत्थेव निसीदि । यं सन्धाय वुत्तं[8]:—"अथ खो भगवा सत्ताहं एकपल्लंकं निसीदि विमुत्तिसुखपटिसंवेदी" ति ।

१. ध. प. १५३ गा. । २. ध. प. १५४ गा. । ३. °पत्तं म. ।
४. तम्पि रो. म. । ५. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि । ६. रो. पोत्थके नत्थि ।
७. °च. म. । ८. रो. पोत्थके नत्थि ।

१७४. इस प्रकार अप्रमेय शोभा एवं वैभव से पूजित तथा अनेक प्रकार के आश्चर्य जनक घटनाओं के घटित होते हुए (उन्होंने) बुद्धत्व (सर्वज्ञता) का साक्षात्कार कर, सभी बुद्धों द्वारा कहे गये (न छोड़े गये) उदान (प्रीति-वचन) को कहा—

"मैंने अनेक जन्मों तक गृहकारक को खोज में व्यर्थ भटकता रहा। पुनः पुनः सभी जन्मों में दुःख ही दुःख मिला ॥ २७८ ॥

"हे गृहकारक, अब तुम देख लिए गये। अब तुम गृह निर्माण नहीं कर सकोगे। तुम्हारी सभी कड़ियाँ टूट गई, गृह शिखर बिखर गया, चित्त संस्कारों से रहित हो गया, तृष्णाओं का क्षय हो गया" (तृष्णा के विनाश से निर्वाण की प्राप्ति हो गई) ॥ २७९ ॥

इस प्रकार तुषित पुर (देवलोक) से आरम्भ कर यहाँ बोधिमण्ड में सर्वज्ञता (बुद्धत्व) की प्राप्ति तक की जीवन कथा को अविदूरे निदान जानना चाहिए ।

सन्तिके निदान

१७५. सन्तिके निदान—"भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे, वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे, "इस प्रकार उन स्थानों में विहार करते हुए (वह-वह वृत्तान्त) उस उस स्थान (प्रसंग) में प्राप्त होता है, ऐसा कहा गया है। जो कुछ भी इस सम्बन्ध में कथित है, उसे प्रारम्भ से लेकर इस प्रकार समझना चाहिए।

जयपल्लंक

१७६. इस उदान को कहकर (उस) जय आसन पर बैठे भगवान के मन में ऐसा हुआ—"मैं इस (विजय) आसन के लिए चार असंखेय्य एक लाख कल्पों तक दौड़ता रहा। इस आसन के लिए ही मैं ने इतने दिनों तक अपने अलंकृत शिर को गर्दन से काट कर दिया; सुअञ्जित आँखे तथा हृदय का मांस निकाल कर दिया; जालियकुमार सदृश पुत्र, कृष्णजिना कुमारी सदृश पुत्री तथा माद्रीदेवी सदृश भार्या दूसरों के दास बनने के लिए प्रदान किया। यह मेरा आसन जय आसन है, श्रेष्ठ आसन है। इसी पर बैठे हुए मेरे संकल्प पूरे हुए। मैं यहाँ से अभी नहीं उठूँगा। (ऐसा विचार कर) दसों खरब समापत्तियों का लाभ करते हुए एक सप्ताह तक वहीं बैठे रहे। इसे लक्ष्य कर कहा है—"इसके बाद भगवान एक ही आसन से बैठे विमुक्ति सुख का आनन्द लेते रहे।"

अनिमिसचेतियं

१७७. अथेकच्चानं 'देवतानं अज्जा पि नून सिद्धत्थस्स किच्चं
अत्थि, पल्लंकस्मिं हि आलयं न विजहती' ति परिवितक्को
B. 10 उदपादि। सत्था देवतानं वितक्कं[1] ञत्वा तासं वितक्कवूपसम-
नत्थं वेहासं अब्भुग्गन्त्वा यमकपाटिहारियं दस्सेसि। महाबोधि-
मण्डस्मि हि कतयमकपाटिहारियं च पाटिकपुत्तसमागमे कतपा-
टिहारियं च सब्बं गण्डम्बरुक्खमूले यमकपाटिहारियसदिसं
अहोसि। एवं सत्था इमिना पाटिहारियेन देवतानं वितक्कं
वूपसमेत्वा पल्लंकतो ईसकं पाचीननिस्सिते उत्तरदिसाभागे
ठत्वा 'इमस्मिं वत मे पल्लंके सब्बञ्ञुतञाणं पटिविद्धं ति
असंखेय्यानि कप्पसतसहस्सं च पूरितानं पारमीनं फलाधि-
गमनट्ठानं पल्लंकं अनिमिसेहि अक्खीहि ओलोकयमानो सत्ताहं
वीतिनामेसि। तं ठानं 'अनिमिसचेतियं' नाम जातं।

रतनचङ्कमचेतियं

१७८. अथ पल्लंकस्स च ठितट्ठानस्स च अन्तरा चंकमं मापेत्वा पुरत्थिमपच्छिमतो सत्ताहं वीतिनामेसि। तं ठानं 'रतनचंकमचेतियं' नाम जातं।

रतनघरं

१७९. चतुत्थे पन सत्ताहे बोधितो पच्छिमुत्तरदिसाभागे देवता 'रतनघरं' मापयिंसु[2]। तत्थ पल्लंकेन निसीदित्वा अभिधम्मपिटकं विसेसतो चेत्थ अनन्तनयं समन्तपट्ठानं विचिनन्तो सत्ताहं वीतिनामेसि। आभिधम्मिका पनाहु—"रतनघरं नाम न रतनमयं[3] गेहं। सत्तन्नं पन[4] पकरणानं सम्मसितट्ठानं रतनघरं" ति।[5] यस्मा पनेत्थ उभोपेते परियाया युज्जन्ति, तस्मा उभयं पेतं गहेतब्बमेव। ततो पट्ठाय पन तं ठानं 'रतनघरचेतियं' नाम जातं।

अजपालनिग्रोधो

१८०. एवं बोधिसमीपे येव चत्तारि सत्ताहानि वीतिनामेत्वा पञ्चमे सत्ताहे बोधिरुक्खमूला येन अजपालनिग्रोधो तेन उपसंकमि। तत्रापि धम्मं विचिनन्तो येव विमुत्तिसुखं पटिसंवेदेन्तो निसीदि।

१. परिवितक्कं म.। २. मापिन्सु म.। ३. सत्त० म.। ४. रो. पोत्थके नत्थि। ५. ० वुच्चति म.।

अनिमेष-चैत्य

१७७. तब कुछ देवताओं के मन में ऐसा सन्देह उत्पन्न हुआ कि "कुमार सिद्धार्थ को अभी भी कुछ करना बाकी है, वे आसन के प्रति आसक्ति को नहीं छोड़ रहे हैं"। शास्ता ने देवताओं के वितर्क को जान, उनके सन्देह को हटाने के लिए आकाश में जाकर यमकप्रतिहार्य दिखलायी। बोधिमण्ड में की गई यह प्रतिहार्य, सम्बन्धियों के समागम के अवसर पर की गई प्रतिहार्य, पाटिकपुत्र समागम में की गयी प्रतिहार्य—ये सभी प्रतिहार्य गण्डम्बवृक्ष के नीचे की गई यमक-प्रतिहार्य के सदृश थीं। इस प्रकार शास्ता ने इस प्रतिहार्य से देवताओं के सन्देह का निवारण कर आसन से थोड़ा पूर्व की ओर उत्तर दिशा भाग में खड़े हो 'इसी आसन पर मुझे सर्वज्ञता (बुद्धत्व) की प्राप्ति हुई', तथा (ऐसा सोच) चार असंखेय्य एक लाख कल्प तक पूरी की गयी पारमिताओं के फलरूप प्राप्त स्थान, उस आसन को निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए एक सप्ताह व्यतीत किया। (इसलिए) उस स्थान का नाम अनिमेष चैत्य पड़ा।

रत्नचंक्रमण-चैत्य

१७८. इसके बाद (उन्होंने) उस आसन तथा खड़े हुए स्थान के बीच (की भूमि को) चंक्रमण बनाकर पूर्व पश्चिम लम्बे रत्नचंक्रमण पर चंक्रमण करते हुए एक सप्ताह बिताया। वह स्थान रत्नचंक्रमण चैत्य कहलाया।

रत्नघर

१७९. चौथे सप्ताह देवताओं ने बोधि से पश्चिमोत्तर दिशा में रत्नघर बनाया। वहाँ पर शास्ता ने आसन पर बैठ अभिधर्मपिटक का, तथा विशेषतः अनन्त नयों से युक्त समन्तपट्ठान का मनन करते हुए एक सप्ताह बिताया। आभिधर्मिकों का कहना है कि 'रत्नघर रत्नमय गृह का नाम नहीं है।' (अभिधर्म पिटक के) सातों प्रकरणों (ग्रन्थों) के ऊपर विचार करने के स्थान को रत्नघर कहते हैं। यस्मात् ये दोनों अर्थ यहाँ युक्त हैं; अतः दोनों का ही ग्रहण करना चाहिए। तब से उस स्थान का नाम रत्नघरचैत्य पड़ा।

अजपाल-न्यग्रोध

१८०. इस प्रकार बोधिवृक्ष के निकट चार सप्ताह बिताकर, पाँचवे सप्ताह बोधिवृक्ष से चलकर, अजपाल नामक बरगद के निकट चले गये। वहाँ भी धर्म पर विचार करते तथा विमुक्तिसुख का आनन्द लेते बैठे रहे।

१८१. तस्मि समये मारो देवपुत्तो–'एत्तकं कालं अनुबन्धन्तो ओतारापेक्खो पि इमस्स[1] किञ्चि खलितं नाद्दसं[1], "अतिक्कन्तो दानि एस मम वसं"ति दोमनस्सप्पत्तो महामग्गे निसीदित्वा सोळस कारणानि चिन्तेन्तो भूमियं सोळस लेखा कड्ढि। "अहं ऐसो विय दानपारमिं न पूरेसिं, तेनम्हि इमिना सदिसो न जातो" ति एकं लेखं कड्ढि। तथा–"अहं एसो विय सीलपारमिं, नेक्खम्मपारमिं, पञ्ञापारमिं, विरियपारमिं, खन्तिपारमिं, सच्चपारमिं, अधिट्ठान-
B.91 पारमिं, मेत्तापारमिं, उपेक्खापारमिं न पूरेसिं, तेनम्हि इमिना सदिसो न जातो" ति दसमं लेखं कड्ढि। 'अहं[2] एसो विय असाधारणस्स इन्द्रियपरोपरियत्तञाणस्स पटिवेधाय उपनिस्सयभूता दसपारमियो न पूरेसिं, तेनम्हि इमिना सदिसो न जातो' ति एकादसमं लेखं कड्ढि। तथा 'अहं एसो विय असाधारणस्स आसयानुसयञाणस्स, महाकरुणासमापत्तिञाणस्स, यमकपाटिहीरञाणस्स, अनावरणञाणस्स, सब्बञ्ञुतञाणस्स, पटिवेधाय उपनिस्सयभूता दसपारमियो न पूरेसिं, तेनम्हि इमिना सदिसो न जातो' ति सोलसमं लेखं कड्ढि। एवं इमेहि कारणेहि महामग्गे सोलसलेखा आकड्ढमानो निसीदि।

१८२. तस्मि समये तण्हा अरति रागा चाति तिस्सो मारधीतरो, 'पिता नो न पञ्ञायति, कहं नु खो एतरही'ति ओलोकयमाना तं दोमनस्सप्पत्तं भूमियं विलिखमानं[3] दिस्वा पितुसन्तिकं गन्त्वा "कस्मासि तात, दुक्खी दुम्मनो"ति[4] पुच्छिसु।

"अम्मा, अयं महासमणो मय्हं वसं अतिक्कन्तो। एत्तकं कालं ओलोकेन्तो ओतारमस्स दट्ठुं नासक्खिं, तेनम्हि[5] दुक्खी दुम्मनो"ति।

R.79 यदि एवं–"मा चिन्तयित्थ। मयमेतं अत्तनो वसे कत्वा आदाय आगमिस्सामा"ति।

"न सक्का अम्मा, एसो केनचि वसे कातुं। अचलाय सद्धाय पतिट्ठितो एसो पुरिसो"ति।

"तात, मयं इत्थियो नाम। इदानेव नं रागपासादीहि बन्धित्वा आनेस्साम। तुम्हे मा चिन्तयित्था"ति।

१–१. न किञ्चि खलितं अद्दस० म०। २. तथा० म०।
३. लिखमानं रो०, विलेखमानं निसिन्नं म०। ४. दोमनस्सो रो०।
५. तेनाहं म०।

१८१. उस समय देवपुत्र मारने 'इतने दिनों तक अवसर की खोज में इनका पीछा करते हुए, कुछ भी इनमें स्खलन नहीं देखा, यह मेरे वश से बाहर चले गये,' सोच दौर्मनस्य युक्त हो महामार्ग पर बैठे, इसके सोलह कारणों पर विचार करते हुए सोलह रेखायें खींची। 'मैंने इनके समान दानपारमिता की पूर्त्ति नहीं की है, इसलिए मैं उनके सदृश नहीं हुआ' ऐसा सोच उसने पहली रेखा खींची। पुनः 'मैंने इनके समान शीलपारमिता, नैष्क्रम्यपारमिता, प्रज्ञापारमिता, वीर्यपारमिता, क्षान्तिपारमिता, सत्यपारमिता, अधिष्ठानपारमिता, मैत्रीपारमिता तथा उपेक्षापारमिता की पूर्त्ति नहीं की है, इसलिए इसके समान नहीं हुआ', ऐसा सोच दसवीं रेखा खींची। 'मैंने इसके समान इन्द्रियों की विविध अवस्थाओं सम्बन्धी असाधारण ज्ञान के प्रतिवेध के आश्रयभूत दस पारमिताओं की पूर्ति नहीं की है, इसके कारण मैं इसके समान नहीं हुआ' (ऐसा विचार) उसने ग्यारहवीं रेखा खींची। पुनः 'मैंने इसके समान असाधारण-आश्रय-अनुशयज्ञान, महाकरुणासमापत्तिज्ञान, यमकप्रतिहार्यज्ञान, अनावरणज्ञान, सर्वज्ञताज्ञान की प्राप्ति के उपनिश्रयभूत दस पारमितायें नहीं पूरी की, इसलिए इसके समान नहीं हुआ', ऐसा सोच सोलहवीं रेखा खींची। इस प्रकार इन कारणों से महामार्ग में सोलह रेखायें खींचते हुए बैठा।

१८२. उस समय तृष्णा, अरति तथा रागा नामक मार की तीन कन्याओं ने 'हमारे पिता अभी दिखायी नहीं दे रहे हैं, वे अभी कहाँ हैं', (सोच) देखते हुए उन्हें दौर्मनस्य युक्त हो भूमि कुरेदते हुए देखकर पिता के निकट जा पूछा—"तात, आप किस लिए दुखी एवं खिन्नचित्त हैं?

"अम्माँ, यह महाश्रमण मेरे अधिकार से बाहर चला गया है। इतने दिनों तक देखते रहते भी इसमें कोई स्खलन नहीं देख पाया। इस कारण मैं दुखी एवं खिन्नचित्त हूँ"।

यदि ऐसी बात है, तो "आप चिन्ता न करें। हम लोग इसे अपने वश में कर ले आयेंगे।"

"अम्माँ, कोई भी इसे वश में नहीं कर सकता है। यह अचल श्रद्धा में प्रतिष्ठित पुरुष है"।

"तात, हम लोग स्त्रियां हैं। अभी उसे राग (आसक्ति) आदि के पाश में बाँधकर ले आयेंगी। आप चिन्ता न करें।"

१८३. [1]ता इतो[1] भगवन्तं उपसंकमित्वा 'पादे ते समण, परिचारेस्सामा'[2] ति आहंसु। भगवा नेव तासं वचनं मनसि अकासि, न अक्खीनि उम्मीलेत्वा ओलोकेसि, अनुत्तरे उपधिसंखये विमुत्तमानसो विवेकसुखं येव अनुभवन्तो निसीदि। पुन मारधीतरो "उच्चावचा खो पुरिसानं अधिप्पाया। केसञ्चि कुमारिकासु पेमं होति, केसञ्चि पठमवये ठितासु, केसञ्चि मज्झिमवये ठितासु, केसञ्चि पच्छिमवये ठितासु। यन्नून मयं नानप्पकारेहि रूपेहि पल्लोभेय्यामा" ति एकमेका कुमारिवण्णा-दिवसेन सतं सतं अत्तभावे अभिनिम्मिनित्वा कुमारियो, अविजाता, सकिंविजाता, दुविजाता, मज्झिमित्थियो, महित्थियो च हुत्वा छक्खत्तुं भगवन्तं उपसंकमित्वा 'पादे ते समण, परिचारे-स्सामा' ति आहंसु'। तम्पि भगवा न मनसाकासि, यथा तं अनुत्तरे उपधिसंखये[3] विमुत्तो।

B.92 १८४. केचि पनाचरिया वदन्ति—ता महित्थिभावेन उपगता दिस्वा भगवा "एवमेवं एता खण्डदन्ता पलितकेसा होन्तू" ति अधिट्ठासी ति, तं न गहेतब्बं। न हि सत्था एवरूपं अधिट्ठानं करोति। भगवा पन-"अपेथ तुम्हे, किं दिस्वा एवं वायमथ? एवरूपं नाम अवीतरागादीनं पुरतो कातुं वट्टति[4]। तथागतस्स पन रागो पहीनो, दोसो पहीनो, मोहो पहीनो" ति अत्तनो किलेसप्पहानं आरब्भ:—

यस्स जितं नावजीयति, जितमस्स नो याति कोचि लोके।
तं बुद्धमनन्तगोचरं, अपदं केन पदेन नेस्सथ॥ २८०॥
यस्स जालिनी विसत्तिका, तण्हा नत्थि कुहिञ्चि नेतवे।
तं बुद्धमनन्तगोचरं, अपदं केन पदेन नेस्सथा" ति॥ २८१॥

१–१. रो० म० पोत्थकेसु नत्थि। २. परिचारेमा ति० रो० म०। ३. ०व म०। ४. युत्तं म०।

१८३. वे वहाँ से भगवान के निकट जाकर बोली—'श्रमण, हम लोग आपके चरणों की सेवा करेंगी। भगवान ने न तो उनकी बातों पर ध्यान ही दिया, न आँख खोलकर उनकी ओर देखा, वे लोकोत्तर उपधिक्षीण (निर्वाण में रत) मुक्तचित्त हो एकान्त सुख का अनुभवन करते बैठे रहे। पुनः मार कन्याओं ने सोचा—"पुरुषों की रुचि भिन्न-भिन्न प्रकार को होती है। किसी को कुमारियों से प्रेम होता है, किसी को आयु के प्रथम चरण में प्रतिष्ठित (नव तरुणी) स्त्री प्रिय होती है, किसी को आयु की मध्य अवस्था में प्रतिष्ठित नारी तथा किसी को अन्तिम अवस्था में प्रतिष्ठित प्रौढ़ायें (वृद्धायें) प्रिय होती हैं। क्यों न हमलोग नाना प्रकार के रूपों से उसे प्रलोभित करें", (ऐसा सोच) एक एक ने कुमारी आदि का सौ-सौ रूप बनाकर कुमारी, अप्रसूता, एक बार प्रसूता, दो बार प्रसूता, मध्यम अवस्थावाली, वृद्धा या प्रौढ़ अवस्था वाली स्त्रियां बन छ बार भगवान के निकट जा "श्रमण, तुम्हारे चरणों की हम सेवा करेंगी" बोलीं। भगवान ने उस पर ध्यान नहीं दिया, वे तो लोकोत्तर उपधिरहित निर्वाण में रत विमुक्त चित्त बैठे रहे।

१८४. कुछ आचार्यों का कथन है कि उन्हें वृद्ध स्त्रियों के रूप में देख भगवान ने—"ये इसी प्रकार खण्डित दन्त तथा श्वेत केशवाली हो जायँ"। ऐसा अधिष्ठान किया, यह ऐसा नहीं ग्रहण करना चाहिए। शास्ता इस प्रकार का अधिष्ठान नहीं करते हैं। भगवान ने (कहा) "तुम लोग चली जाओ, क्यों ऐसा यत्न करती हो। जो वीतराग नहीं है, उसी के सामने ऐसा करना चाहिए। तथागत का तो राग नष्ट हो गया है, द्वेष नष्ट होगया है, मोह (अज्ञान) प्रहीण हो चुका है, ऐसा कह अपने क्लेशों के प्रहीण हो जाने के विषय में (बतलाया)।

"जिसके जय को पराजय में नहीं बदला जा सकता है, जिस (रागादि) पर उसने विजय पा ली है, वे पुनः लोक में उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। उस इन्द्रियों से परे लिंगरहित बुद्ध को तुम लोग किस साधन से प्राप्त कर सकती हो? (अथवा जिसके द्वारा विजित उत्तम पद (बुद्धत्व) किसी अन्य के द्वारा अविजित नहीं होता है। जिसके द्वारा विजित उस बुद्धत्व पद को संसार में अन्य कोई प्राप्त नहीं कर सकता है। ऐसे इन्द्रियों द्वारा अपरिमेय प्रभाववाले तथा जिसकी यत्ता का कोई ज्ञापक नहीं हैं, उस बुद्ध के प्रभाव के अन्त का तुम लोग किस साधन से प्राप्त कर सकती हो?) ॥२८०॥

जिसकी (जन्म मरण के) जाल में आबद्ध करने वाली तथा (मार के बन्धन में) अत्यधिक रूप से आसक्त करने वाली तृष्णा किसी भी पदार्थ में नहीं रह गई है, जो पुनः उन्हें संसार की ओर ले जा सके। उस अनन्तगोचर (इन्द्रियातीत), अपद (लिंग रहित) बुद्ध को किस पद (ज्ञान साधन) से (तुम लाग) परिमेय बना सकती हो?" ॥२८१॥

इमा धम्मपदे बुद्धवग्गे द्वे गाथा वदन्तो धम्मं कथेसि । ता
"सच्चं किर नो पिता अवोच—'अरहं सुगतो लोके', न रागेन
R.80 सुवानयो" ति आदीनि वत्वा पितुसन्तिकं अगमंसु ।

मुचलिन्दं राजायतनं च

१८५. भगवा पि तत्थ सत्ताहं वीतिनामेत्वा मुचलिन्दमूलं अगमासि । तत्थ[1] सत्ताहवद्दलिकाय उप्पन्नाय सीतादिपटिबाहनत्थं मुचलिन्देन नागराजेन सत्तक्खत्तुं भोगेहि परिक्खितो असम्बाधं गन्धकुटियं विहरन्तो विय विमुत्तिसुखं पटिसंवेदियमानो सत्ताहं वीतिनामेत्वा राजायतनं उपसंकमि । तत्थापि विमुत्तिसुखपटिसंवेदी येव[2] निसीदि । एत्तावता सत्त सत्ताहानि परिपुण्णानि । एत्थन्तरे नेव मुखधोवनं, न सरीरपटिजग्गनं, न आहारकिच्चं अहोसि । झानसुखेन मग्गसुखेन फलसुखेनेव वीतिनामेसि ।

१८६. अथस्स तस्मिं सत्तसत्ताहमत्थके एकूनपञ्ञासतिमे
दिवसे तत्थ निसिन्नस्स 'मुखं धोविस्सामी' ति चित्तं उदपादि ।
सक्को देवानमिन्दो अगदहरीटकं आहरित्वा अदासि । सत्था तं
परिभुञ्जि । तेनस्स सरीरवळञ्जं अहोसि । अथस्स सक्को येव
B.93 नागलतादन्तकट्ठं चेव मुखधोवनउदकं च अदासि । सत्था तं
दन्तकट्ठं खादित्वा अनोतत्तदहे उदकेन मुखं धोवित्वा तत्थेव
राजायतनमूले निसीदि ।

तपस्सुभल्लिका

१८७. तस्मिं समये तपस्सुभल्लिका नाम द्वे वाणिजा पञ्चहि सकटसतेहि उक्कला जनपदा मज्झिमदेसं गच्छन्ता अत्तनो ञातिसालोहिताय देवताय सकटानि सन्निरुम्भित्वा सत्थुआहारसम्पादने उस्साहिता मन्थं च मधुपिण्डिकं च आदाय "पतिगण्हातु नो भन्ते, भगवा इमं आहारं अनुकम्पं उपादाया" ति सत्थारं उपसंकमित्वा अट्ठंसु । भगवा पायासं पटिग्गहणदिवसे येव पत्तस्स अन्तरहितत्ता 'न खो तथागता हत्थेसु पटिग्गण्हन्ति, किम्हि खो अहं पटिग्गण्हेय्यं' ति चिन्तेसि । अथस्स चित्तं ञत्वा चतूहि दिसाहि चत्तारो महाराजानो इन्दनीलमणिमये पत्ते उपनामेसुं । भगवा ते पटिक्खिपि । पुन मुग्गवण्णसेलमये चत्तारो

१. ० सत्ताहं वीतिनामेत्वा रो० । २. ० संवेदियमानो म० ।

धर्मपद के बुद्धवर्ग में आगत इन दो गाथाओं को कह उन्होंने धर्मोपदेश किया । उन लोगों ने—"सत्य ही हमारे पिता ने कहा था कि 'वे इस लोक में सुगत एवं अर्हत् हैं' रागादि बन्धन में सुगमतया नहीं लाये जा सकते हैं" आदि बातें कह पिता के निकट चली गईं ।

मुचलिन्द तथा राजायतन के नीचे

१८५. भगवान भी वहाँ एक सप्ताह बिताकर (वहाँ से उठ) मुचलिन्द वृक्ष के नीचे आये । वहाँ सप्ताह भर तक उत्पन्न मेघजनित शीतादि के निवारणार्थ मुचलिन्द नागराज द्वारा सात बार फन से वेष्टित हो, बिबाधारहित गन्धकुटी में रहने के समान विहरते तथा विमुक्तिसुख का आनन्द लेते एक सप्ताह व्यतीत कर राजायतन वृक्ष के नीचे गये । वहाँ भी विमुक्तिसुख का आनन्द लेते बैठे रहे । इस प्रकार सात सप्ताह पूरे हो गये । इस बीच उन्होंने न मुखप्रक्षालन, न स्नान, न आहार-ग्रहण कृत्य ही किया । ध्यानसुख, मार्ग-सुख, फल-सुख के (आनन्द में) बिताया ।

१८६. इसके बाद सात सप्ताह व्यतीत होने पर उनचासवें दिन वहाँ बैठे 'मैं मुँह धोऊँगा' उन्हें ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई । देवराज इन्द्र ने हर्रें लाकर दी । शास्ता ने उसे खाया । उससे उन्हें शौच हुआ । तब शक्र ने नागलता की दातौन तथा मुख धोने के लिए जल दिया । शास्ता उससे दातौन कर अनोतप्त दह में जल से मुँह धोकर वहीं राजायतन के नीचे बैठे रहे ।

तपस्सु भल्लिक

१८७. उस समय तपस्सु और भल्लिक नामक दो व्यापारी पाँच सौ गाड़ियों के साथ उत्कल जनपद से मध्यदेश जाते हुए, अपने जातिसालोहित देवता द्वारा गाड़ियों को रोक शास्ता के लिए भोजन देने के लिए उत्साहित मट्ठा तथा मधुर पूप लेकर "भगवान भन्ते, कृपाकर इस आहार को ग्रहण करें" ऐसा कहते हुए भगवान के निकट जा खड़े हुए । (सुजाता की) खीर ग्रहण करने के दिन ही भगवान के पात्र के अन्तर्धान हो जाने के कारण—'तथागत हाथ में आहार नहीं ग्रहण करते हैं, मैं किसमें आहार ग्रहण करूँ' ऐसा उन्होंने सोचा । तब (भगवान) के विचार को जान चारों दिशाओं के चारों महाराजाओं ने इन्द्रनीलमणि के पात्र ले उन्हें समर्पित किया । भगवान ने उन्हें अस्वीकार किया । पुनः वे मूँगे के रंग के चार पत्थर के पात्र ले आये ।

पत्ते उपनामेसुं । भगवा चतुन्नं पि देवपुत्तानं अनुकम्पाय
चत्तारोपि[1] पत्ते पटिग्गहेत्वा उपरूपरि ठपेत्वा 'एको होतू' ति
अधिट्ठहि । चत्तारो पि मुखवट्टियं पञ्ञायमानलेखा हुत्वा[2]
मज्झिमेन पमाणेन एकत्तं उपगमिसु । भगवा तस्मिं पच्चग्घे
सेलमये पत्ते आहारं पटिगण्हित्वा परिभुञ्जित्वा अनुमोदनं
R. 81 अकासि । द्वे भातरो वाणिजा बुद्धं च धम्मं च सरणं गन्त्वा द्वे-
वाचिकउपासका अहेसुं । अथ तेसं 'एकं नो भन्ते, परिचरि-
तब्बट्ठानं देथा' ति वदन्तानं दक्खिणेन हत्थेन अत्तनो सीसं
परामसित्वा केसधातुयो अदासि । ते अत्तनो नगरे ता धातुयो[3]
अन्तोपक्खिपित्वा चेतियं पतिट्ठापेसुं ।

सहम्पति-ब्रम्हुनो याचनं

१८८. सम्मासम्बुद्धो पि खो ततो वुट्ठाय[4] अजपाल-निग्रोधमेव गन्त्वा निग्रोधमूले निसीदि । अथस्स तत्थ निसीन्नमत्तस्सेव अत्तना अधिगतस्स धम्मस्स गम्भीरत्तं पच्चवेक्खन्तस्स "सब्बबुद्धानं[5] आचिण्णो अधिगतो खो म्यायं धम्मो" ति परेसं धम्मं अदेसेतुकाम्यताकारप्पवत्तो वितक्को उदपादि । अथ ब्रम्हा सहम्पति "नस्सति वत भो, लोको; विनस्सति वत भो, लोको" ति दसहि चक्कवाळसहस्सेहि सक्कसुयामसन्तुसितसुनिम्मित-वसवत्तीमहाब्रम्हानो आदाय सत्थुसन्तिकं गन्त्वा "देसेतु भन्ते, भगवा धम्मं, [6]देसेतु सुगतो धम्मं[6] ति आदिना नयेन धम्मदेसनं आयाचि ।

धम्मचक्कप्पवत्तनं

B. 94 १८९. सत्था तस्स पटिञ्ञं दत्वा 'कस्स नु खो अहं पठमं
धम्मं देसेय्यं' ति चिन्तेन्तो 'आळारो पण्डितो, सो इमं धम्मं
खिप्पं आजानिस्सती' ति चित्तं उप्पादेत्वा पुन ओलोकेन्तो तस्स
सत्ताहकालकतभावं ञत्वा उद्दकं आवज्जेसि । तस्सा पि अभिदो-
सकालकतभावं ञत्वा 'बहुपकारा खो मे पञ्चवग्गिया भिक्खू' ति
पञ्चवग्गिये आरब्भ मनसिकारं कत्वा 'कहन्नु खो ते एतरहि
विहरन्ती' ति आवज्जेन्तो वाराणसियं मिगदाये ति ञत्वा,
तत्थ गन्त्वा 'धम्मचक्कं पवत्तेस्सामी' ति, कतिपाहं बोधि-

---

१. रो. पोत्थके नत्थि । २. म. पोत्थके नत्थि । ३. सुवण्णसमुग्गस्स म.।
४. ° पुन रो. । ५. बुद्धानं रो. म. । ६-६. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि ।

भगवान ने चारों देवपुत्रों पर अनुकम्पा करते हुए, चारों पात्रों को ले, एक के ऊपर दूसरे को रख ऐसा अधिष्ठान किया कि 'एक हो जायँ' । चारों पात्र मुख-द्वार पर प्रकट रेखा तक मध्यम पात्र के परिमाण के एक पात्र हो गये । भगवान ने उस मूल्यवान पत्थरमय पात्र में आहार ले, भोजन कर उसका अनुमोदन किया । दोनों व्यापारी-भाई बुद्ध तथा धर्म की शरण जा द्वेवाचिक उपासक हुए । इसके बाद उनके यह कहने पर कि 'भन्ते, हम लोगों को एक पूजा के लिए निमित्त दें' उन्होंने दाहिने हाथ से अपने सिर का स्पर्श कर उन्हें केशधातु (बाल) प्रदान की । उन्होंने अपने नगर में उस केशधातु को (स्वर्ण मंजूषा के) गर्भ में रख उस पर चैत्य बनवाया ।

सहम्पति ब्रह्मा की याचना

१८८. सम्यक् सम्बुद्ध भी वहाँ से उठ अजपाल-न्यग्रोध के पास जा, न्यग्रोध के नीचे बैठे । तब उनके वहाँ बैठते ही, अपने अधिगत धर्म के गम्भीर भाव पर विचार करते हुए, 'सभी बुद्धों द्वारा पुनः पुनः आसेवित गंभीर धर्म का मैं ने साक्षात्कार किया है,' उसे दूसरों को उपदेश करने के सम्बन्ध में अनिच्छापूर्व वितर्क उत्पन्न हुआ । तब सहम्पति ब्रह्मा—'अरे' यह लोक नष्ट हो जायगा, यह लोक विनष्ट हा जायगा' (कह), दस हजार ब्रह्माण्डों के शक्र, सुयाम, सन्तुषित, सुनिर्मितवशवर्ती, महाब्रह्माओं को लेकर शास्ता के निकट जा 'भन्ते' भगवान् धर्म का उपदेश करें, सुगत धर्म का उपदेश करें आदि प्रकार से धर्मोपदेश के लिए याचना की ।

धर्म चक्रप्रवर्तन

१८९. शास्ता ने उन्हें वचन दे-'किसको मैं पहले धर्मोपदेश करूँ' ऐसा विचारते हुए, 'आलार पण्डित है, वह शीघ्र ही इस धर्म को जान जायगा', सोच उसको देखते हुए एक सप्ताह पूर्व उसके मरे होने की बात जान, उद्दक (रुद्रक) के सम्बन्ध में आवर्जन (स्मरण) किया । उसके भी गत रात में मर जाने की बात जान, 'पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने मेरा बहुत उपकार किया है' सोच उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं के सम्बन्ध में चिन्तन कर, वे अभी कहाँ रह रहे हैं,

मण्डसामन्ता येव पिण्डाय चरन्तो विहरित्वा आसाळ्हिपुण्ण-
मासियं 'वाराणसिं गमिस्सामी' ति, चातुद्दसियं पच्चूससमये
पभाताय रत्तिया कालस्सेव पत्तचीवरमादाय अट्ठारसयोजनमग्गं
पटिपन्नो अन्तरामग्गे उपकं नाम आजीवकं दिस्वा, तस्स अत्तनो
बुद्धभावं आचिक्खित्वा तं दिवसं येव सायण्हसमये इसिपतनं
अगमासि।

१९०. पञ्चवग्गिया थेरा तथागतं दूरतोव आगच्छन्तं
दिस्वा "अयं आवुसो, समणो गोतमो पच्चयबाहुल्लाय आवत्तित्वा
परिपुण्णकायो फीतिन्द्रियो[1] सुवण्णवण्णो हुत्वा आगच्छति।
इमस्स अभिवादनादीनि न करिस्साम। महाकुलप्पसुतो खो
पनेस आसनाभिहारं अरहति, तेनस्स आसनमत्तं पञ्ञापेस्सामा"
ति कतिकं अकंसु। भगवा सदेवकस्स लोकस्स चित्ताचारं जानन-
समत्थेन ञानेन 'किन्नु खो इमे चिन्तयिंसू' ति आवज्जित्वा चित्तं
अञ्ञासि। अथ ने सब्बदेवमनुस्सेसु अनोदिस्सकवसेन
R. 82 फरणसमत्थं मेत्तचित्तं संखिपित्वा ओदिस्सकवसेन मेत्तचित्तं
फरि। ते भगवता मेत्तचित्तेन फुट्ठा तथागते उपसंकमन्ते सकाय
कतिकाय सण्ठातुं असक्कोन्ता अभिवादनपच्चुपट्ठानादीनि
सब्बकिच्चानि अकंसु। सम्बुद्धभावं पनस्स अजानमाना केवलं
नामेन च आवुसो वादेन च समुदाचरन्ति।

१९१. अथ ते भगवा "मा भिक्खवे, तथागतं नामेन च
आवुसोवादेन च समुदाचरथ। अरहं भिक्खवे, तथागतो सम्मा-
सम्बुद्धो" ति अत्तनो बुद्धभावं सञ्ञापेत्वा पञ्ञत्तवरबुद्धासने
निसिन्नो उत्तरासाळ्हनक्खत्तयोगे वत्तमाने अट्ठारसहि ब्रह्म-
B. 95 कोटिहि परिवुतो पञ्चवग्गिये थेरे आमन्तेत्वा धम्मचक्कप्पवत्तन-
सुत्तं देसेसि। तेसु अञ्ञाकोण्डञ्ञत्थेरो देसनानुसारेन ञाणं
पेसेन्तो सुत्तपरियोसने अट्ठारसहि ब्रह्मकोटिहि सद्धिं सोतापत्तिफले
पतिट्ठासि। सत्था तत्थेव वस्सं उपगन्त्वा पुन दिवसे वप्पत्थेरं
ओवदन्तो विहारे येव निसीदि। सेसा चत्तारो पिण्डाय चरिंसु।
वप्पथेरो पुब्बण्हेयेव सोतापत्तिफलं पापुणि। एतेनेव उपायेन
पुनदिवसे भद्दियत्थेरं, पुनदिवसे महानामत्थेरं, पुनदिवसे अस्स-

१. पीणिन्द्रियो म.।

ऐसा आवर्जन करते हुए, वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में हैं, जान, वहीं जाकर 'धर्म चक्र प्रवर्तन करूँगा' (निश्चय कर) कई दिनों तक बोधिमण्ड के चारों ओर भिक्षाचार कर विहार करते हुए, आषाढ़ पूर्णिमा के दिन 'वाराणसी जाऊँगा' सोच चतुर्दशी के प्रातःकाल भिनसहरे पात्र चीवर ले अठारह योजन के मार्ग पर आरुढ़ हो, रास्ते में उपक नामक आजीवक को देख, उसे अपने बुद्ध होने की बात कह, उसी दिन सन्ध्या समय ऋषिपतन पहुँचे।

१९०. पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने तथागत को दूर से आते हुए देख कर "मित्रो, यह श्रमण गौतम वस्तुओं के अधिक लाभ के लिए पथभ्रष्ट हो, परिपूर्ण शरीर, स्फीत इन्द्रिय, सुवर्ण वर्ण का होकर आ रहा है। इसका अभिवादन आदि हम नहीं करेंगे। महान् कुल में उत्पन्न होने के कारण यह आसन का अधिकारी है, इसलिए हम उसे आसन मात्र दे देंगे" ऐसा निश्चय किया। भगवान् ने देवलोक सहित समस्त लोक के चित्त की बात को जानने में समर्थ ज्ञान से 'इन लोगों ने क्या सोचा' ऐसा आवर्जन कर उनके मन की बातों को जान लिया। इसके बाद सभी देवता एवं मनुष्यों में समान रूप से व्याप्त होने वाले मैत्री चित्त को उधर से खींच कर विशेष रूप से उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं की ओर उसे लगाया। वे भगवान के मैत्री चित्त से स्पृष्ट हो तथागत के समीप आते अपने निश्चय पर स्थिर रहने में असमर्थ हो अभिवादन प्रत्युपस्थान आदि सभी कार्य किये। (पर) उनके सम्बुद्ध होने के बात को न जानते हुए केवल नाम लेकर या आयुष्मान कह कर पुकारते थे।

१९१. इसके बाद भगवान ने उन्हें—"भिक्षुओ, तथागत को नाम अथवा 'आवुसो' कह कर मत पुकारो, तथागत अर्हत् हैं, सम्यक् सम्बुद्ध हैं" कह कर अपने बुद्धभाव को जनाते हुए, बिछे हुए श्रेष्ठ बुद्ध-आसन पर बैठ, उत्तराषाढ़ नक्षत्र योग के विद्यमान रहते अठारह करोड़ ब्रह्माओं से घिरे हुए, पञ्चवर्गीय स्थविरों को सम्बोधित कर धर्म-चक्रप्रवर्तन-सूत्र का उपदेश किया। उनमें से अञ्ञाकौण्डिन्य स्थविर उनके उपदेश के अनुसार ज्ञान को विकसित करते हुए सूत्र के उपदेश की समाप्ति पर अठारह करोड़ ब्रह्माओं के साथ 'सोतापत्तिफल' में प्रतिष्ठित हो गये। शास्ता वहीं वर्षावास करते हुए, दूसरे दिन वप्पस्थविर को उपदेश करते विहार में बैठे रहे। अवशेष चार भिक्षुओं ने भिक्षाचार किया। वप्पस्थविर ने पूर्वाह्न में ही सोतापत्तिफल की प्राप्ति की। इसी क्रम से दूसरे दिन भद्दिय स्थविर, पुनः दूसरे दिन महानाम स्थविर, पुनः दूसरे दिन अस्सजि

जित्थेरं ति, सब्बे सोतापत्तिफले पतिट्ठापेत्वा पञ्चमियं पक्खस्स पञ्चपि जने सन्निपातेत्वा अनत्तलक्खणसुत्तन्तं देसेसि। देसनापरियोसाने पञ्चपि थेरा अरहत्तफले पतिट्ठहिंसु।

चारिकाविधानं

१९२. अथ सत्था यसस्स कुलपुत्तस्स उपनिस्सयं दिस्वा तं रत्तिभागे निब्बिज्जित्वा गेहं पहाय निक्खन्तं 'एहि यसा'ति पक्कोसित्वा तस्मिं येव रत्तिभागे सोतापत्तिफले पतिट्ठापेसि[1]। पुनदिवसे अरहत्ते पतिट्ठापेत्वा अपरेपि तस्स सहायके चतुपण्णासजने एहि-भिक्खुपब्बज्जाय पब्बाजेत्वा अरहत्तं पापेसि।

१९३. एवं लोके एकसट्ठिया अरहन्तेसु जातेसु सत्था
वुत्थवस्सो पवारेत्वा 'चरथ भिक्खवे, चारिकं' ति सट्ठि भिक्खू
दिसासु पेसेत्वा सयं उरुवेलं गच्छन्तो अन्तरामग्गे कप्पासिकवन-
सण्डे तिसजने भद्दवग्गियकुमारे विनेसि। तेसु सब्बपच्छिमको
सोतापन्नो, सब्बुत्तमो अनागामी अहोसि। ते पि सब्बे 'एहि
भिक्खु-भावेनेव' पब्बाजेत्वा दिसासु पेसेत्वा सयं उरुवेलं गन्त्वा
अड्ढुड्ढानि पाटिहारियसहस्सानि दस्सेत्वा उरुवेलकस्सपादयो
सहस्सजटिलपरिवारे तेभातिकजटिले विनेत्वा 'एहि भिक्खु'
भावेनेव पब्बाजेत्वा गयासीसे निसीदापेत्वा आदित्तपरियाय-
देसनाय अरहत्ते पतिट्ठापेत्वा तेन अरहन्तसहस्सेन परिवुतो
R. 83 विम्बिसाररञ्ञो दिन्नं पटिञ्ञं मोचेस्सामी' ति राजगहन-
गरुपचारे लट्ठिवनुय्यानं अगमासि।

राजगहे भगवा

१९४. राजा उय्यानपालस्स सन्तिका 'सत्था आगतो' ति
सुत्वा द्वादसंनहुतेहि ब्राह्मणगहपतिकेहि परिवुतो सत्थारं
B. 97 उपसंकमित्वा चक्कविचित्ततलेसु सुवण्णपट्टवितानं विय पभास-
मुदयं विस्सज्जेन्तेसु तथागतस्स पादेसु सिरसा निपतित्वा एकमन्तं
निसीदि, सद्धिं परिसाय। अथ खो तेसं ब्राह्मणगहपतिकानं
एतदहोसि—''किन्नु खो महासमणो उरुवेलकस्सपे ब्रह्मचरियं
चरित, उदाहु उरुवेलकस्सपो महासमणे' ति। भगवा तेसं चेतसा
चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय थेरं गाथाय अज्झभासि :—

१. रो० पोत्थके नत्थि, पतिट्ठापेत्वा म०।

स्थविर—ऐसे सबों को सोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित कर, पक्ष के पाँचवे दिन पाँचो जनों को एकत्र कर 'अनत्तलक्खणसुत्त' का उपदेश किया। उपदेश की समाप्ति पर पाँचों स्थविर अर्हत् फल में स्थित हुए।

चारिका विधान

१९२. इसके बाद शास्ता ने उसी रात निर्वेद प्राप्त कर घर छोड़ निकले यश कुल पुत्र की (आध्यात्मिक) योग्यता को देख—'आओ, यश' कह बुलाकर, उसी रात में उन्हें सोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित किया। दूसरे दिन अर्हत्फल में प्रतिष्ठित कर उसके अन्य चौवन मित्रों को 'आओ भिक्षुओ' प्रव्रज्या वचन से प्रव्रज्या देकर अर्हत्व प्राप्त कराया।

१९३. इस प्रकार संसार में एकसठ अर्हन्तों के हो जाने पर, शास्ता ने वर्षावास की समाप्ति पर प्रवारणा कर—'भिक्षुओ, चारिका करो' कह, साठ भिक्षुओं को विभिन्न दिशाओं में भेज कर, स्वयं उरुवेला जाते हुए रास्ते में कप्पासिय वनसण्ड में तीस भद्रवर्गीय कुमारों को दीक्षित किया। उनमें जो सबसे पिछला था, वह सोतापन्न तथा जो सबसे उत्तम था, वह अनागामी हुआ। उन सबों को 'आओ' भिक्षुओ' नय से प्रव्रजित कर विभिन्न दिशाओं में भेज स्वयं उरुवेला जा साढ़े तीन हजार प्रातिहार्य दिखला एक हजार जटिल परिवार के साथ उरुवेलकाश्यप आदि तीन जटाधारी (जटिल) भाइयों को दीक्षित कर 'आओ भिक्षुओ' नय से प्रव्रजित कर गयाशीर्ष पर्वत पर बैठा आदित्तपरियाय देशना के सहारे अर्हत्व अवस्था में (उन्हें) प्रतिष्ठित कर, उन एक हजार अर्हन्तों से परिवृत "राजा बिम्बिसार को दी गयी प्रतिज्ञा की पूर्त्ति करूँगा," सोच राजगृह नगर के समीप स्थित लट्ठिवन उद्यान में पहुँचे।

भगवान राजगृह में

१९४. राजा ने उद्यानपाल से यह सुन कि 'शास्ता आ गये' बारह नहुत (एक नहुत = दस हजार) ब्राह्मण गृहपतियों से परिवृत भगवान के निकट जा, विचित्र चक्र अंकित स्वर्ण की चान्दनी सदृश प्रभा पुंज बिखेरने वाले तथागत के पाद तलों में सिर से प्रणाम कर, अपनी परिषद् के साथ एक ओर आसन ग्रहण किया। इसके बाद उन ब्राह्मणगृहपतियों के मन में ऐसा हुआ—"क्या महाश्रमण ऊरुवेल काश्यप के निर्देशन में साधुजीवन व्यतीत कर रहे हैं, अथवा उरुवेल काश्यप ही महाश्रमण गौतम के निर्देशन में। भगवान ने अपने चित्त से उनके चित्त के वितर्क को जान स्थविर उरुवेल काश्यप को (इस) गाथा में कहा—

"किमेव दिस्वा उरुवेलवासी,
पहासि अग्गिं किसको वदानो ।
पुच्छामि तं कस्सप, एतमत्थं,
कथं पहीनं तव अग्गिहुत्तं" ति ॥ २८२ ॥

थेरोपि भगवतो अभिप्पायं विदित्वा :—

"रूपे च सद्दे च अथो रसे च,
कामित्थियो चाभिवदन्ति यञ्ञा ।
एतं मलं ति उपधीसु ञत्वा,
तस्मा न यिट्ठे न हुते अरञ्जिं" ति ॥ २८३ ॥

१९५. इमं गाथं वत्वा अत्तनो सावकभावप्पकासनत्थं तथागतस्स पादपीठे सीसं ठपेत्वा 'सत्था मे भन्ते, भगवा; सावकोहमस्मी' ति वत्वा एकतालं द्वितालं तितालं ति, याव सत्ततालप्पमाणं सत्तक्खत्तुं वेहासं अब्भुग्गन्त्वा ओरुय्ह तथागतं वन्दित्वा एकमन्तं निसीदि । तं पाटिहारियं दिस्वा महाजनो 'अहो, महानुभावा बुद्धा । एवं थामगतदिट्ठिको नाम अत्तानं अरहा ति मञ्ञमानो उरुवेलकस्सपो पि दिट्ठिजालं भिन्दित्वा तथागतेन दमितो' ति सत्थुगुणकथं येव कथेसि । भगवा 'नाहं इदानिमेव उरुवेलकस्सपं दमेमि, अतीतेपि एस मया दमितो येवा' ति वत्वा इमिस्सा अत्थुप्पत्तिया महानारदकस्सपजातकं कथेत्वा चत्तारि सच्चानि पकासेसि । मगधराजा एकादसहि नहुतेहि सद्धिं सोता-
R. 84 पत्तिफले पतिट्ठासि । एकं नहुतं उपासकत्तं पटिवेदेसि । राजा
B. 97 सत्थुसन्तिके निसिन्नो येव पञ्च अस्सासके पवेदेत्वा सरणं गन्त्वा स्वातनाय निमन्तेत्वा आसना वुट्ठाय भगवन्तं पदक्खिणं कत्वा पक्कामि ।

१९६. पुनदिवसे येहि च भगवा दिट्ठो, येहि च अदिट्ठो- सब्बे पि राजगहवासिनो अट्ठारसकोटिसंखा मनुस्सा तथागतं दट्ठुकामा पातोव राजगहतो लट्ठिवनं अगमंसु । तिगावुतमग्गो नप्पहोसि । सकललट्ठिवनुय्यानं निरन्तरं फुटं अहोसि । महाजनो दसबलस्स रूपग्गप्पत्तं अत्तभावं पस्सन्तो तित्तिं कातुं नासक्खि । वण्णभूमि नामेसा । एवरूपेसु हि ठानेसु तथागतस्स लक्खणानुब्यञ्जनादिप्पभेदा सब्बापि रूपकायसिरि वण्णेतब्बा ।

"हे उरुवेलवासी, कृशता (तपश्चर्या) के प्रशंसक, क्या देख कर आपने अग्निचर्या का परित्याग किया ? हे काश्यप, मैं आप से यह बात पूछता हूँ कि आपका अग्निहोत्र कैसे छूटा" ? ॥२८२॥

स्थविर ने भी भगवान के अभिप्राय को जान (ऐसा कहा)--

"रूप, शब्द, रस, कामभोग, स्त्रियाँ आदि यज्ञ से प्राप्त होती हैं, ऐसा (पण्डित) कहते हैं । ये सब उपाधियाँ मल हैं, ऐसा जान कर, (उनसे) अनासक्त हो, मैं ने यज्ञ तथा हवन करना छोड़ दिया" ॥२८३॥

१९५. इस गाथा को कह (उरुवेल काश्यप) अपने शिष्यभाव को प्रकाशित करने के लिए तथागत के चरणों में शिर रख कर 'भगवान मेरे शास्ता हैं, मैं उनका शिष्य हूँ' कह, एक ताल, दो ताल, तीन ताल, सातताल प्रमाण तक सातबार आकाश में जा (वहाँ से पुनः) उतर तथागत की वन्दना कर एक ओर बैठ गये । उस चमत्कार (प्रतिहार्य) को देख जनसमूह कह उठा—'अहो, बुद्ध महाप्रतापी हैं । इस प्रकार सबल मिथ्या दृष्टि से युक्त, अपने को अर्हत् कहने वाले उरुवेल काश्यप को भी उसकी दृष्टिजाल का भेद कर, इन्होंने दमित (दीक्षित) किया' ऐसा कह शास्ता के गुणों की चर्चा करने लगे । भगवान ने (यह सुन) 'मैं ने केवल अभी ही उरुवेलकाश्यप का दमन नहीं किया है, (वरन्) अतीत में भी ये मेरे द्वारा दमित किये गये थे' ऐसा कह, इस अर्थ को प्रकाशनार्थ महानारदकाश्यप जातक कह चार आर्य सत्यों को प्रकाशित किया । मगध राजा ग्यारह नहुत (ब्राह्मण गृहपतियों) के साथ सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए । एक नहुत उपासक हुए । राजा शास्ता के निकट बैठे ही (अपने मन की) पाँच इच्छाओं को व्यक्त कर, त्रिशरण ग्रहण कर, अगले दिन के लिए भोजन के लिए निमन्त्रित कर, आसन से उठ, भगवान की प्रदक्षिण कर चले गये ।

१९६. दूसरे दिन, जिन्होंने भगवान को देखा था, या जिन्होंने नहीं देखा था, वे सभी राजगृह में निवास करने वाले मनुष्य भगवान को देखने के लिए प्रातः ही राजगृह से (निकल) यष्टिवन को गये । तीन गव्यूति का मार्ग भी (उनके लिए) पर्याप्त नहीं था । सम्पूर्ण लट्ठिवन उद्यान सर्वदा (उनसे) भरा रहता था । जन समूह दसबल (बुद्ध) के सौन्दर्यपूर्ण रूप को देखते तृप्त नहीं होता था । यह स्थान (प्रकरण) उनके रूप के वर्णन का है । ऐसे स्थलों में तथागत के (महापुरुष) लक्षण, अनुव्यञ्जन आदि के सभी भेदों सहित उनके सौन्दर्य का वर्णन करना चाहिए ।

१९७. एवं रूपग्गप्पत्तं[1] दसबलस्स सरीरं पस्समानेन महाजनेन निरन्तरं फुटे उय्याने च मग्गे च एकभिक्खुस्सापि निक्खमनोकासो नाहोसि। तं दिवसं किर भगवा 'छिन्नभत्तो भवेय्य, तं मा अहोसी' ति सक्कस्स निसिन्नासनं उण्हाकारं दस्सेसि। सो आवज्जमानो तं कारणं ञत्वा माणवकवण्णं अभिनिम्मिनित्वा बुद्धधम्मसंघपटिसंयुत्तथुतियो वदमानो दसबलस्स पुरतो ओतरित्वा देवानुभावेन ओकासं कत्वा :—

"दन्तो दन्तेहि सह, पुराणजटिलेहि विप्पमुत्तो विप्पमुत्तेहि।
सिंगीनिक्खसुवण्णो, राजगहं पाविसि भगवा ॥ २८४ ॥
मुत्तो मुत्तेहि सह, पुराणजटिलेहि विप्पमुत्तो विप्पमुत्तेहि सह।
सिंगीनिक्खसुवण्णो, राजगहं पाविसि भगवा ॥ २८५ ॥
तिण्णो तिण्णेहि सह, पुराणजटिलेहि विप्पमुत्तो विप्पमुत्तहि।
सिंगीनिक्खसुवण्णो, राजगहं पाविसि भगवा ॥ २८६ ॥
B. 98 दसवासो दसबलो, दसधम्मविदू दसहि चुपेतो।
सो दससतपरिवारो, राजगहं पाविसि भगवा" ति ॥ २८७ ॥

इमाहि गाथाहि सत्थुवण्णं वदमानो पुरतो पायासि। महाजनो[1] माणवकस्स रूपसिरिं दिस्वा 'अतिविय अभिरूपो अयं माणवको, न खो पन अम्हेहि 'दिट्ठपुब्बो' ति चिन्तेत्वा 'कुतो अयं माणवको, कस्स वा अयं' ति आह। तं सुत्वा माणवो—

"यो धीरो सब्बधि दन्तो, बुद्धो अप्पटिपुग्गलो।
अरहं सुगतो लोके, तस्साहं परिचारका" ति ॥ २८८ ॥

वेलुवनदानं

१९८. सत्था सक्केन कतोकासं मग्गं पटिपज्जित्वा
R. 85 भिक्खुसहस्सपरिवुतो राजगहं पाविसि। राजा बुद्धपमुखस्स संघस्स महादानं दत्वा 'अहं भन्ते, तीणि रतनानि विना वत्तितुं न सक्खिस्सामि; वेलाय वा अवेलाय वा भगवतो सन्तिकं आगमिस्सामि। लट्ठिवनुय्यानं च नाम अतिदूरे। इदं पन अम्हाकं वेलुवनं नाम उय्यानं नातिदूरे नच्चासन्ने[2] गमनागमनसम्पन्नं

1. रूपसोभग्गपत्तं म०।
2. तदा० म०।

१९७. इस प्रकार सौन्दर्य-सम्पन्न तथागत के रूप को देखने के लिए (एकत्र) जनसमूह द्वारा उद्यान तथा मार्ग के सर्वदा भरे रहने के कारण, एक भिक्षु को बाहर निकलने का अवकाश नहीं मिला। 'उस दिन भगवान को आहार न मिले, ऐसा न हो' (इस बात से) इन्द्र का आसन उष्ण हो उठा। उन्होंने (इसे जानने के लिए) आवर्जित करते हुए, कारण जान माणव (तरुण ब्राह्मण) का रूप धारण कर, बुद्ध धर्म तथा संघ की स्तुति करते हुए, भगवान् के सम्मुख प्रकट हो, दैवबल से अपने लिए स्थान बना (इन गाथाओं को कहा)—

"विप्रमुक्त संयमी तथा सिंगीनिक्ष (दीप्तिमान्) स्वर्णवर्णवाले भगवान (आस्रवों से) मुक्त तथा संयमी पुराने जटिलों के साथ राजगृह में प्रवेश किये ॥२८४॥

मुक्त, विप्रमुक्त, प्रभायुक्त स्वर्णसदृशरूपवाले भगवान ने मुक्त, विप्रमुक्त पुराने जटिलों के साथ राजगृह में प्रवेश किया ॥२८५॥

(संसार से) उत्तीर्ण, विप्रमुक्त, कान्तिमान् स्वर्णवर्णवाले भगवान उत्तीर्ण तथा विप्रमुक्त पुराने जटाधारियों के साथ राजगृह में प्रविष्ट हुए ॥२८६॥

दस वासवाले, दस बलवाले, दस धर्म के ज्ञाता, तथा दस गुणों से युक्त भगवान एक हजार भिक्षुपरिवार सहित राजगृह में प्रविष्ट हुए ॥२८७॥

इन गाथाओं से शास्ता के गुणों का वर्णन करते हुए इन्द्र आगे आगे चल पड़े। जनसमूह ने माणव की रूपशोभा को देख—'यह माणवक अत्यन्त सुन्दर है, हम लोगों ने ऐसा (बालक) पहले कभी नहीं देखा है, ऐसा विचार 'यह माणवक कहाँ से आया है', यह किसका (पुत्र) है', पूछा। यह सुन माणवक ने इस गाथा को कहा—

"जो लोक में धीर, सभी प्रकार संयमी, अद्वितीय पुरुष बुद्ध अर्हत् तथा सुगत हैं, उन्हीं का मैं सेवक हूँ" ॥२८८॥

वेलुवन का दान

१९८. शास्ता ने (इस प्रकार) इन्द्र द्वारा बताये मार्ग से एक सहस्र भिक्षुओं से परिवृत राजगृह में प्रवेश किया। राजा ने बुद्धप्रमुख भिक्षुसंघ को भोजन दे (निवेदन किया)—'भन्ते, मैं तीन रत्नों के बिना नहीं रह सकता हूँ। समय बे समय भगवान के निकट आया करूंगा। लट्ठिवन नामक उद्यान बहुत दूर है। यह हमलोगों का बेलुवन नामक उद्यान, न तो अधिक दूर है, न अत्यन्त निकट, सहज गमनागमन सम्पन्न तथा बुद्ध के निवास स्थान के

बुद्धारहं सेनासनं। इदं मे भगवा पटिगण्हातू'ति सुवण्ण-भिंकारेनेव पुप्फगन्धवासितं मणिवण्णउदकं आदाय वेलुवनु-य्यानं परिच्चजन्तो दसबलस्स हत्थे उदकं पातेसि। तस्मि आरामपटिग्गहणे 'बुद्धसासनस्स मूलानि ओतिण्णानी' ति महापठवी कम्पि। जम्बुदीपस्मिं हि ठपेत्वा वेलुवनं अञ्ञं पठविं[1] कम्पेत्वा गहितसेनासनं नाम नत्थि। तम्बपण्णिदीपे पि ठपेत्वा महाविहारं अञ्ञं पठविं कम्पेत्वा गहितसेनासनं नाम नत्थि। सत्था वेलुवनारामं पटिग्गहेत्वा रञ्ञो अनुमोदनं कत्वा उट्ठाया-सना भिक्खुसंघपरिवुतो वेलुवनं अगमासि।

सारिपुत्तमोग्गल्लानकथा

१९९ तस्मिं खो पन समये सारिपुत्तो च मोग्गल्लानो चा ति द्वे परिब्बाजका राजगहं उपनिस्साय विहरन्ति अमतं परियेसमाना। तेसु सारिपुत्तो अस्सजित्थेरं पिण्डाय पविट्ठं
B.11 दिस्वा पसन्नचित्तो पयिरुपासित्वा "ये धम्मा हेतुप्पभवा" ति गाथं सुत्वा सोतापत्तिफले पतिट्ठाय अत्तनो सहायकस्स मोग्गल्लानपरिब्बाजकस्सा पि तमेव गाथं अभासि। सो पि सोता-पत्तिफले पतिट्ठहि। ते उभोपि सञ्जयं ओलोकेत्वा अत्तनो परिसाय सद्धिं सत्थु[2]सन्तिके पब्बजिंसु। तेसु महामोग्गल्लानो सत्ताहेनेव अरहत्तं पापुणि। सारिपुत्तत्थेरो अड्ढमासेन। उभोपि जने सत्था अग्गसावकट्ठाने ठपेसि। सारिपुत्तत्थेरेन अरहत्तप्पत्तदिवसे येव सावकसन्निपातं अकासि।

कपिलवत्थुगमनकथा

२००. तथागते पन तस्मिं येव वेलुवनुय्याने विहरन्ते सुद्धोदनमहाराजा 'पुत्तो किर मे छ वस्सानि दुक्करकारिकं चरित्वा परमाभिसम्बोधिं पत्वा पवत्तवरधम्मचक्को राजगहं निस्साय वेलुवने विहरती'ति सुत्वा अञ्ञतरं अमच्चं आमन्तेसि। "एहि भणे, पुरिससहस्सपरिवारो राजगहं गन्त्वा मम वचनेन 'पिता वो सुद्धोदनमहाराजा दट्ठुकामो' ति वत्वा 'पुत्तं मे गण्हित्वा एही'"ति आह। सो 'एवं देवा' ति रञ्ञो वचनं सिरसा सम्पटिच्छित्वा पुरिससहस्सपरिवारो खिप्पमेव सट्ठियोजनमग्गं

---

१. महापठविं म.। २. भगवतो म.।

योग्य है। इसे भगवान ग्रहण करें', कह स्वर्ण पात्र (झारी) से पुष्प गन्ध से वासित, मणि वर्ण उज्ज्वल जल ले, वेलुवन उद्यान का दान करते हुए बुद्ध के हाथ में जल गिराया। उस विहार के ग्रहण करने के समय 'बुद्ध शासन का मूल (लोक में) जड़ पकड़ा', सोच महापृथ्वी कांप उठी। जम्बूदीप में बेलुवन को छोड़ महापृथ्वी को प्रकम्पित करते हुए अन्य किसी विहार के ग्रहण करने का नाम नहीं है। ताम्रपर्णी द्वीप में भी महाविहार के ग्रहणकाल के अतिरिक्त अन्य शयनासन ग्रहण करते समय कभी पृथ्वीकम्पन नहीं हुआ। शास्ता ने वेलुवन विहार का ग्रहण कर, राजा के दान का अनुमोदन कर आसन से उठ, भिक्षुसंघ सहित वेलुवन के लिये प्रस्थान किया।

सारिपुत्रमौद्गल्यायन-कथा

१९९. उस समय सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन नामक दो परिव्राजक अमृत की खोज में राजगृह में रहते थे। उनमें सारिपुत्र ने अश्वजित स्थाविर को भिक्षा के लिये प्रविष्ट देख, प्रसन्न चित्त उनका साथ कर, 'यो धर्म हेतु से उत्पन्न हैं', इस गाथा को सुन सोतापत्तिफल में स्थित हो, अपने मित्र मोदगल्यायन परिव्राजक को भी उस गाथा को सुनाया। वे भी सोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हो गये। वे दोनों (अपने गुरु) संजय से मिल अपनी परिषद् के साथ शास्ता के निकट जा प्रव्रजित हो गये। उनमें महामोद्गल्यायन ने एक सप्ताह में अर्हत्व की प्राप्ति की। सारिपुत्र स्थविर ने आधे महीने में (अर्हत्व की प्राप्ति की)। शास्ता ने दोनों जनों को अग्रश्रावक के स्थान पर प्रतिष्ठित किया। सारिपुत्र स्थविर द्वारा अर्हत्व प्राप्ति के दिन ही शिष्यों का सम्मेलन (श्रावक सन्निपात) किया।

कपिलवस्तुगमन-कथा

२००. तथागत के उसी वेलुवन नामक उद्यान में विहार करते, शुद्धोदन महाराज ने यह सुन कि 'मेरे पुत्र ने छः वर्षों तक दुष्कर तपस्या कर परम पद सम्बोधि को प्राप्त कर, श्रेष्ठ धर्मचक्र का प्रवर्तन कर राजगृह के निकट वेलुवन में विहार कर रहे हैं' एक मंत्री को बुलाया। हे भणे, आप एक हजार मनुष्यों (पुरजनों) के साथ राजगृह जा, मेरे शब्दों में मेरे पुत्र को कहो कि—"आपके पिता शुद्धोधन आपको देखना चाहते हैं' कह 'मेरे पुत्र को लेकर आओ', (ऐसा उन्होंने) कहा। उसने, 'अच्छा देव' कह राजा के वचन को शिरोधार्य कर एक हजार मनुष्यों के साथ शीघ्र ही साठ योजन का मार्ग तय कर, (राजगृह

गन्त्वा दसबलस्स चतुपरिसमज्झे निसीदित्वा धम्मदेसनवेलाय विहारं पाविसि। सो 'तिट्ठतु ताव रञ्ञो पहितसासनं'ति परिसपरियन्ते ठितो सत्थुधम्मदेसनं सुत्वा यथाठितोव सद्धिं पुरिस-
Q.89 सहस्सेन अरहत्तं पत्वा पब्बज्जं याचि। भगवा 'एथ भिक्खवो'ति हत्थं पसारेसि। सब्बे तं खणं येव इद्धिमयपत्तचीवरधरा वस्ससतिकत्थेरा[1] विय अहेसुं। अरहत्तप्पत्तकालतो पट्ठाय पन अरिया नाम मज्झत्ताव होन्ती ति[2], रञ्ञो पहितसासनं दसबलस्स न कथेसि। राजा 'नेव गतको आगच्छति, न सासनं सूयती'ति, एहि भणे, 'त्वं गच्छा'ति, तेनेव नियामेन अञ्ञं अमच्चं पेसेसि। सो पि गन्त्वा पुरिमनयेनेव सद्धिंपरिसाय अरहत्तं पत्वा तुण्ही अहोसि। राजा एतेनेव नियामेन पुरिससहस्सपरिवारेन नव अमच्चे पेसेसि। सब्बे अत्तनो किच्चं निट्ठपेत्वा तुण्हीभूता तत्थेव विहरिंसु।

B.100 २०१ राजा सासनमत्तं पि आहरित्वा आचिक्खन्तं अलभित्वा चिन्तेसि "एत्तका जना मयि सिनेहभावेन सासनमत्तं पि न पच्चाहरिंसु, को नु खो मम वचनं करिस्सती"ति सब्बं राजबलं ओलोकेन्तो कालुदायिं अद्दस। सो किर रञ्ञो सब्बत्थसाधको अमच्चो अब्भन्तरिको अतिविस्सासिको बोधिसत्तेन सद्धिं एकदिवसे जातो सहपंसुकीळितो सहायो। अथ नं राजा आमन्तेसि— "तात, कालुदायि, अहं मम पुत्तं पस्सितुकामो, नव पुरिससहस्सानि पेसेसिं। एको पुरिसो पि आगन्त्वा सासनमत्तं आरोचेन्तो पि नत्थि। दुज्जानो खो पन मे जीवितन्तरायो। अहं जीवमानोव पुत्तं दट्ठुं इच्छामि,। सक्खिस्ससि नु खो मे पुत्तं दस्सेतुं"ति ?

"सक्खिस्सामि देव, सचे पब्बजितुं लभिस्सामी"ति।

"तात' त्वं पब्बजित्वा अपब्बजित्वा वा मय्हं पुत्तं दस्सेही"ति आह[3]।

सो 'साधु देवा'ति रञ्ञो सासनं आदाय राजगहं गन्त्वा सत्थुधम्मदेसनवेलाय परिसपरियन्ते ठितो धम्मं सुत्वा सपरिवारो अरहत्तफलं पत्वा 'एहिभिक्खु-भावे पतिट्ठासि।

१. सट्ठिवस्सत्थेरा म.। २. ° सो म.। ३. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि।

पहुँच) शास्ता की चार प्रकार की परिषद् में बैठ धर्म देशना के समय विहार में प्रवेश किया। उसने—'राजा द्वारा प्रेषित सन्देश अपनी जगह रहे' सोच उस परिषद् के एक किनारे खड़े हो शास्ता के धर्मोपदेश को सुन, एक हजार मनुष्यों के साथ खड़े-खड़े अर्हत्व की प्राप्ति कर प्रव्रज्या की याचना की। भगवान ने—'आओ भिक्षुओं', कह—हाथ फैलाया। वे सभी उसी क्षण ऋद्धि से प्राप्त पात्रचीवर धारण किये हुए एक सौ वर्ष के स्थविरों जैसा हो गये। अर्हत्व की प्राप्ति समय से आर्य लोग मध्यस्थ (उदासीन) हो जाते हैं, इसलिये उन्होंने राजा द्वारा प्रेषित संवाद तथागत को नहीं कहा। राज ने, 'न गये हुए (आमात्य) ही लौटते हैं, न कुछ समाचार ही सुनने को मिलता है' सोच, 'आओ भणे, आप जाँय', उसी प्रकार एक अन्य अमात्य को भेजा। वे भी जाकर पूर्वकथित ढंग से परिषद् सहित अर्हत्व की प्राप्ति कर चुप हो रहे। राजा ने इसी प्रकार एक-एक हजार मनुष्यों के साथ नव मंत्रियों को भेजा। सभी अपना-अपना (आध्यात्मिक) कृत्य पूरा कर शान्त हो वहीं विहार करने लगे।

२०१. राजा ने समाचार लेकर कहने वाले को नहीं पा, विचार किया— "इतने मनुष्य मुझमें स्नेह रखते हुए भी कुछ संवाद नहीं ला सके, तब कौन मेरे वचन को (पूरा) करेगा; सोच सभी राजकीय पुरुषों के सम्बन्ध में विचार करते हुए कालुदायी को देखा। वे राजा के सर्वार्थ साधक, निजी एवं अत्यधिक विश्वासी अमात्य थे, जो बोधिसत्त्व के साथ एक दिन जन्मे थे तथा उनके धूली-खेला मित्र थे। इसलिए राजा ने उन्हें बुलाया—"तात, कालुदायी, मैं ने अपने पुत्र को देखने की इच्छा से नव हजार मनुष्यों को भेजा। एक मनुष्य भी आकर समाचार कहने वाला नहीं निकला। मेरे जीवन के सम्बन्ध में क्या होगा, अज्ञात है। मैं जीते हुए ही पुत्र को देखना चाहता हूँ। क्या आप मेरे पुत्र को देखा सकते हैं ?

"देव, मैं देखा सकता हूँ, यदि मुझे प्रव्रजित होने की आज्ञा प्राप्त हो"।

(राजा ने) कहा—"तात, आप प्रव्रजित हो या अप्रव्रजित होकर, मेरे पुत्र को लाकर दिखलावें"।

उन्होंने—'अच्छा देव', कह राजा का सन्देश ले राजगृह जा शास्ता के धर्मदेशना समय परिषद् के एक किनारे खड़े हो, धर्मोपदेश सुनकर अपनी मण्डली सहित अर्हत्व की प्राप्ति कर 'आओ भिक्षु' भाव से प्रव्रज्या ग्रहण की।

२०२. सत्था बुद्धो हुत्वा पठमं अन्तोवस्सं इसिपतने वसित्वा वुत्थवस्सो पवारेत्वा उरुवेलं गन्त्वा तत्थ तयो मासे वसन्तो तेभातिकजटिले विनेत्वा भिक्खुसहस्सपरिवारो फुस्समास-पुण्णमाय राजगहं गन्त्वा द्वे मासे वसि। एत्तावता वाराणसितो निक्खमन्तस्स पञ्च मासा जाता। सकलो हेमन्तो अतिक्कन्तो। उदायित्थेरस्स आगतदिवसतो पट्ठाय सत्तट्ठदिवसा वीतिवत्ता। सो फग्गुणिपुण्णमासियं चिन्तेसि—'अतिक्कन्तो हेमन्तो, वसन्त-समयो अनुप्पत्तो। मनुस्सेहि सस्सादीनि उद्धरित्वा सम्मुख-सम्मुखट्ठाने हि मग्गा दिन्ना। हरिततिणसञ्छन्ना पठवी। सुपुप्फिता वनसण्डा, पटिपज्जनक्खमा मग्गा, कालो दसबलस्स ञातिसंगहं कातुं' ति। अथ भगवन्तं उपसंकमित्वा—

Q. 87 "अंगारिनो दानि दुमा भदन्ते,
फलेसिनो छदनं विप्पहाय।
ते अच्चिमन्तोव पभासयन्ति,
समयो[1] महावीर, भगीरसानं[1] ॥ २८९ ॥
B. 101 नातिसीतं नातिउण्हं, नातिदुब्भिक्खछातकं।
सद्दला हरिता भूमि, एस कालो महामुनि" ति ॥२९०॥

सट्ठिमत्ताहि गाथाहि दसबलस्स कुलनगरं गमनत्थाय गमनवण्णं वण्णेसि।

२०३. अथ नं सत्था 'किन्नु खो उदायि, मधुरस्सरेन गमनवण्णं वण्णेसी' ति आह।

भन्ते, तुम्हाकं पिता सुद्धोदनो महाराजा पस्सितुकामो, करोथ ञातकानं संगहं" ति

"साधु उदायि, करिस्सामि ञातकानं सङ्गहं। भिक्खु-संघस्स आरोचेहि गमिकवत्तं पूरेस्सन्ती"ति।

"साधु भन्ते" ति थेरो[2] आरोचेसि।

२०४. भगवा अंगमगधवासीनं कुलपुत्तानं दसहि सहस्सेहि, कपिलवत्थुवासीनं दसहि सहस्सेही ति सब्बेहेव वीसतिसहस्सेहि खीणासवभिक्खूहि परिवुतो राजगहा निक्खमित्वा दिवसे दिवसे योजनं गच्छति। राजगहतो सट्ठियोजनं कपिलवत्थुं 'द्वीहि मासेहि

१-१. समयो महावीर, अङ्गीरसानं. म.। २. °तेसं म.।

२०२. शास्ता ने बुद्ध होकर प्रथम वर्षावास ऋषिपन में कर वर्षा की समाप्ति पर प्रवारणा कर, उरुवेला जा वहाँ तीन महीने तक रहते हुए जटाधारी तीन भाइयों को दीक्षित कर, एक हजार भिक्षुओं के साथ पौष मास की पूर्णिमा के दिन राजगृह जा, वहाँ दो महीनों तक वास किया। यहाँ तक वाराणसी से निकले पाँच महीने बीत गये। सम्पूर्ण हेमन्त काल समाप्त हो गया। उदायी स्थविर के आये हुए दिन से सात आठ दिन बीत गये। उन्होंने फाल्गुन महीने की पूर्णिमा के दिन सोचना प्रारम्भ किया—'सम्पूर्ण हेमन्त ऋतु समाप्त हो गया, वसन्त ऋतु आ गया। मनुष्यों ने खेतों को काट सामने-सामने (आने जाने का) रास्ता छोड़ दिया है। पृथ्वी हरित तृण से आच्छादित हो उठी है, वन-खण्ड सुपुष्पित हो गये हैं, मार्ग जाने योग्य हो गये हैं, यही बुद्ध के लिये अपने सम्बन्धियों से मिलने (जाति संग्रह करने) का उत्तम समय है। इसलिए भगवान के निकट जाकर (उन्होंने)—

"हे भन्ते, फल की इच्छा से अपने (जीर्ण) वत्रों को छोड़ वृक्ष (किशलयों से युक्त हो) अंगार वर्ण के (लाल) हो गये हैं। वे अर्चिमान् (अग्नि शिखा) के सदृश प्रभासित हो रहे हैं। हे महावीर, यह शाक्यों (भगीरसों) के संग्रह (सम्पर्क) का उत्तम समय है ॥२८९॥

(अभी) न अत्यधिक शीत है, न अत्यधिक उष्ण ही। पृथ्वी हरित दल सन्छन्न है। हे महामुनि, यही उत्तम समय है ॥२९०॥

इस प्रकार (उदायी ने) साठ गाथाओं द्वारा तथागत के कुल नगर जाने के लिए यात्रा की प्रशंसा की।

२०३. तब भगवान ने पूछा—'उदायि क्या बात है कि तुम मधुर स्वर से यात्रा वर्णन कर रहे हो' ?

"भन्ते, आपके पिता शुद्धोदन महाराज आपको देखना चाहते हैं, आप सम्बन्धियों का संग्रह करें"।

"अच्छा उदायि, मैं जातिवालों से मिलूँगा, भिक्षुसंघ को कहो कि वे गमिक व्रत अर्थात् यात्रा की तैयारी करें।"

"अच्छा भन्ते, कह स्थविर ने उन्हें सूचित किया"।

२०४. भगवान अंग-मगधवासी दस हजार कुलपुत्रों, तथा कपिलवस्तुवासी दस हजार कुलपुत्रों—कुल बीस हजार क्षीणाश्रव भिक्षुओं के साथ राजगृह से निकल प्रतिदिन एक योजन पार करते चले। कपिलवस्तु नगर राजगृह से साठ योजन है, 'जिसे दो महीनों में तय करूँगा' सोच अतुरित चारिका अर्थात् धीमी

पापुणिस्सामी' ति अतुरितचारिकं पक्कामि। थेरोपि 'भगवतो निक्खन्तभावं 'रञ्ञो आरोचेस्सामी' ति वेहासं अब्भुग्गन्त्वा रञ्ञो निवेसने पातुरहोसि। राजा थेरं दिस्वा तुट्ठचित्तो महारहे पल्लंके निसीदापेत्वा अत्तनो पटियादितस्स नानग्गरसभोजनस्स पत्तं पूरेत्वा अदासि। थेरो उट्ठाय गमनाकारं दस्सेसि।

"निसीदित्वा भुञ्जथ ताता," ति[1]।

"सत्थु सन्तिकं गन्त्वा भुञ्जिस्सामि महाराजा" ति।

"कहं पन सत्था" ति ?

"वीसतिभिक्खुसहस्सपरिवारो तुम्हाकं दस्सनत्थाय चारिकं निक्खन्तो महाराजा" ति।

राजा तुट्ठमानसो आह—"तुम्हे इमं परिभुञ्जित्वा याव मम पुत्तो मं नगरं पापुणाति, तावस्स इतोव पिण्डपातं पटिहरथा"[2] ति। थेरो अधिवासेसि।

२०५. राजा थेरं परिविसित्वा पत्तं गन्धचुण्णेन उब्बट्टेत्वा उत्तमभोजनस्स पूरेत्वा—'तथागतस्स देथा' ति थेरस्स हत्थे पतिपट्ठापेसि। थेरो सब्बेसं पस्सन्तानं येव पत्तं आकासे खिपित्वा सयंपि वेहासं अब्भुग्गन्त्वा पिण्डपातं आहरित्वा सत्थुहत्थे ठपेसि। सत्था तं परिभुञ्जि। एतेनुपायेन थेरो दिवसे दिवसे आहरि। सत्था पि अन्तरामग्गे रञ्ञो येव पिण्डपातं परिभुञ्जि। थेरो पि भत्तकिच्चावसाने दिवसे दिवसे 'अज्ज एत्तकं भगवा आगतो,
Q. 88 अज्ज एत्तकं' ति बुद्धगुणपटिसंयुत्ताय च धम्मकथाय सकलराज-
कुलं सत्थुदस्सनं विनायेव सत्थरि सञ्जातप्पसादं अकासि।
B. 102 तेनेव नं भगवा—"एतदग्गं भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं
कुलप्पसादकानं यदिदं कालुदायी" ति एतदग्गे ठपेसि।

भगवा कपिलवत्थुनगरे

२०६. साकिया पि खो अनुप्पत्ते भगवति 'अम्हाकं ञातिसेट्ठं पस्सिस्सामा'ति सन्निपतित्वा भगवतो वसनट्ठानं वीमंसमाना 'निग्रोधसक्कस्स आरामो रमणीयो'ति सल्लक्खेत्वा तत्थ सब्बं पटिजग्गनविधिं कारेत्वा गन्धपुप्फहत्था पच्चुग्गमनं करोन्ता सब्बालंकारपटिमण्डिते दहरदहरे नगरदारके च

---

१. रो. पोत्थके नत्थि। २. हरथा ति म.।

गति से चलते थे। स्थविर—'भगवान के निकलने की सूचना राजा को दूँगा' सोच आकाश मार्ग से जा राजा के प्रासाद में प्रकट हुए। राजा ने स्थविर को देख प्रसन्न हो उन्हें बहुमूल्य आसन पर बैठा, अपने लिए तैयार किये गये, नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन से उनका भिक्षापात्र पूर्ण कर प्रदान किया। स्थविर ने उठकर चलने सदृश किया।

(राजा) "तात, बैठ कर भोजन करें"।

'महाराज, भगवान के निकट जाकर भोजन करूँगा' (स्थविर ने कहा)।

"शास्ता कहाँ है" ? (राजा ने पूछा)।

"महाराज, बीस हजार भिक्षुओं के साथ वे आपको देखने के लिए चल पड़े हैं"।

राजा प्रसन्न चित्त हो बोले—"आप यहीं स्वयं भोजन कर, जब तक मेरा पुत्र यहाँ नहीं पहुँचता है, तब तक उनके लिए यहीं से भिक्षा ले जाँय"। स्थविर ने स्वीकृति दी।

२०५. राजा ने स्थविर को भोजन परोस कर दिया तथा भिक्षा पात्र को सुगन्धित चूर्ण से उबट उत्तम भोजन से पूर्ण कर 'इसे तथागत को दें' कह उसे स्थविर के हाथ में रख दिया। स्थविर ने सबों के देखते देखते पात्र को आकाश में फेंक, स्वयं आकाश में जा भिक्षा ले जाकर भगवान के हाथ में दिया। इसी क्रम से प्रति दिन स्थविर (भगवान का) भोजन ले जाते थे। शास्ता ने भी रास्ते भर राजा के भोजन को ग्रहण किया। स्थविर भी भोजन के उपरान्त प्रति दिन—'भगवान आज इतना चले आये, आज इतना आये' कह बुद्ध गुण से युक्त धार्मिक कथा कह, भगवान के दर्शन बिना ही, समस्त परिवार को भगवान के प्रति श्रद्धा सम्पन्न बना दिया। इसलिए उन्हें भगवान ने—"भिक्षुओं, मेरे गृहस्थों को मन प्रसन्न करने वाले मेरे शिष्य भिक्षुओं में कालुदायी सर्व श्रेष्ठ हैं" कह उन्हें अग्र स्थान पर प्रतिष्ठित किया।

कपिलवस्तु में भगवान

२०६. शाक्यों ने भगवान के पहुँचने पर 'हम अपने जाति के श्रेष्ठ पुरुष को देखेंगे' सोच एकत्र हो भगवान के ठहरने के लिए स्थान के सन्बन्ध में विचार करते हुए, 'न्यग्रोध शाक्य का आराम रमणीय है' देख, वहाँ सभी प्रकार से सफाई करा, हाथ में गन्ध पुष्प ले आगवानी करते हुए, सभी आभूषणों से अलंकृत छोटे छोटे नगर के बालक बालिकाओं को पहले भेजा। इसके बाद राजकुमार

दारिकायो च पठमं पहिणिंसु। ततो राजकुमारे च राजकुमारियो च। तेसं अनन्तरा सामं गन्धपुप्फचुण्णादीहि पूजयमाना भगवन्तं गहेत्वा निग्रोधाराममेव अगमंसु। तत्थ भगवा वीसतिसहस्स-खीणासवपरिवुतो पञ्ञत्तवरबुद्धासने निसीदि। साकिया नाम मानजातिका मानत्थद्धा। ते सिद्धत्थकुमारो 'अम्हेहि दहरतरो', 'अम्हाकं कनिट्ठो', 'भागिनेय्यो पुत्तो नत्ता'ति चिन्तेत्वा दहरदहरे राजकुमारे आहंसु,—"तुम्हे भगवन्तं[1] वन्दथ, मयं तुम्हाकं पिट्ठितो निसीदिस्सामा"ति। तेसु एवं अवन्दित्वा[2] निसिन्नेसु भगवा तेसं अज्झासयं ओलोकेत्वा 'न मं ञातयो वन्दन्ति,हन्द दानि ने वन्दापेस्सामी'ति अभिञ्ञापादकज्झानं[3] समापज्जित्वा वुट्ठाय आकासं अब्भुग्गन्त्वा तेसं सीसे पादपंसुं ओकिरमानो विय गण्डम्बरुक्खमूले यमकपाटिहारिय सदिसं पाटिहारियं अकासि।

२०७. राजा तं अच्छरियं दिस्वा आह—"भगवा, तुम्हाकं जातदिवसे इसिकालदेवलस्स वन्दनत्थं उपनीतानं पादे वो परिवत्तित्वा ब्राह्मणस्स मत्थके पतिट्ठिते दिस्वापि अहं तुम्हे वन्दिं। अयं मे पठमवन्दना। बप्पमंगलदिवसे जम्बुच्छायाय सिरिसयने निसिन्नानं वो जम्बुच्छायाय अपरिवत्तनं दिस्वापि पादे वन्दिं। अयं मे दुतियवन्दना। इदानि इमं अदिट्ठपुब्बं पाटिहारियं दिस्वापि[4] तुम्हाकं पादे वन्दामि। अयं मे ततिय-वन्दना"ति। रञ्ञे पन वन्दिते भगवन्तं अवन्दित्वा ठातुं समत्थो नाम एको साकियोपि नाहोसि। सब्बे वन्दिंसु येव। इति भगवा ञातके वन्दापेत्वा आकासतो ओतरित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसिन्ने भगवति सिखाप्पत्तो ञातिसमागमो
B.103 अहोसि। सब्बे एकग्गचित्ता हुत्वा निसीदिंसु। ततो महामेघो पोक्खरवस्सं वस्सि। तम्बवण्णं उदकं हेट्ठा विरवन्तं गच्छति। तेमितुकामोव तेमेति, अतेमितुकामस्स सरीरे बिन्दुमत्तो[5]पि न पतति। तं दिस्वा सब्बे अच्छरियब्भुतचित्ता जाता—'अहो, अच्छरियं; अहो, अब्भुतं'ति कथं समुट्ठापेसुं। सत्था—'न
R. 81 इदानेव मय्हं ञातिसमागमे पोक्खरवस्सं वस्सति, अतीतेपि

१. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि। २. रो. पोत्थके नत्थि। ३. ° चतुत्थज्झानं म.। ४. ° अहं म.। ५. उदविन्दुमत्तो रो., एकबिन्दुमत्तं म.।

तथा राजकुमारियों को (भेजा)। उनके बाद स्वयं गन्ध, पुष्प, चूर्ण आदि से भगवान की पूजा करते हुए उन्हें न्यग्रोध आराम में ले आये। वहाँ भगवान बीस हजार क्षीणाश्रव परिवृत प्रज्ञप्त श्रेष्ठ बुद्धासन पर बैठे। शाक्य लोग जातीय स्वभाव से अभिमानी, अपने को श्रेष्ठ समझने वाले होते हैं। उन्होंने 'सिद्धार्थ कुमार हमसे छोटा है, हमारा कनिष्ट है, (हमारा) भागिनेय्य है, (हमारा) पुत्र है, नाती है,' आदि प्रकार से विचार करते हुए छोटे छोटे राजकुमारों से कहा—"तुम लोग भगवान की वन्दना करो, हम तुम लोगों के पीछे बैठेंगे। उनके इस प्रकार वन्दना न कर बैठे रहने पर, भगवान ने उनकी इन कृत्यों को देखते हुए—'मेरे जाति-सम्बन्धी मेरी वन्दना नहीं कर रहें हैं, ठीक है, मैं उनसे वन्दना करवाऊँगा' अभिज्ञापादक ध्यान प्राप्त कर, उससे उठ आकाश में जा, उनके शिर के ऊपर चरण रज बिखेरते हुए से गण्डम्ब वृक्ष के नीचे किये गये यमक प्रातिहार्य के सदृश चमत्कार (प्रातिहार्य) दिखलाया।

२०७. राजा ने उस आश्चर्य को देख कर कहा—'भगवान, आपके जन्म दिन आपको ऋषि काल देवल के वन्दना के लिए ले जाने पर आपके पैरों को उलट कर ब्राह्मण के सिर पर प्रतिष्ठित होते देख मैंने आपकी वन्दना की थी। वह मेरी प्रथम वन्दना थी। खेत बोने के उत्सव के दिन जम्बू वृक्ष की छाया में श्रीशय्या पर बैठे रहने पर जम्बू वृक्ष की छाया का ज्यों का त्यों बने रहना देख, मैंने आपके चरणों की वन्दना की थी। वह मेरी द्वितीय वन्दना थी। आज इस अदृष्ट पूर्व प्रातिहार्य को देख कर आपके चरणों की वन्दना करता हूँ। यह मेरी तृतीय वन्दना है'। राजा के वन्दना करने पर, एक भी शाक्य ऐसा न रहा, जो वन्दना नहीं किया हो। सबों ने वन्दना की। इस प्रकार भगवान ने अपने सम्बन्धियों से वन्दना करवा, आकाश से उतर बिछे आसन पर बैठ गये। भगवान के बैठ जाने पर शिखर प्राप्त (उत्तम) जाति समागम हुआ। तब महामेघ ने पुष्कल वर्षा आरम्भ की। ताम्र वर्ण का जल नीचे शब्द करता हुआ बरसता था। भीगने की इच्छा वालों को वह जल भीगोता था, जो भीगना नहीं चाहते थे, उनके शरीर पर जल का बून्द मात्र भी नहीं गिरता था। यह देख वे सभी आश्चर्य चकित हो कहने लगे—'अहो आश्चर्य, अहो अद्भुत'। शास्ता ने—'केवल अभी ही मेरे वंश के लोगों के समागम के समय पर पुष्कल

वस्सी'ति। इमिस्सा अत्थुप्पत्तिया वेस्सन्तरजातकं कथेसि। धम्मदेसनं सुत्वा सब्बे उट्ठाय वन्दित्वा पक्कमिंसु। एकोपि राजा व राजमहामत्तो वा 'स्वे अम्हाकं भिक्खं गण्हथा'ति वत्वा गतो नाम नत्थि।

भिक्खाचारो

२०८. सत्था पुन दिवसे वीसतिसहस्सभिक्खुपरिवुतो कपिलवत्थुं पिण्डाय पाविसि। तं न कोचि गन्त्वा निमन्तेसि वा पत्तं वा अग्गहेसि। भगवा इन्दखीले ठितोव आवज्जे[1]सि "कथं नु खो पुब्बबुद्धा कुलनगरे पिण्डाय चरिंसु"? किं नु उप्पटिपाटिया इस्सरजनानं घरानि अगमंसु, उदाहु सपदानचारिकं चरिंसु ति? ततो एकबुद्धस्सापि उप्पटिपाटिया गमनं अदिस्वा, मयापि दानि 'अयमेव तेसं वंसो, अयं मे पवेणी' पग्गहेतब्बा। आयति च मे सावकापि ममञ्ञेव अनुसिक्खन्ता पिण्डचारियवत्तं परिपूरेस्सन्ती'ति कोटियं निविट्ठगेहतो पट्ठाय सपदानं पिण्डाय चरि। 'अय्यो किर सिद्धत्थकुमारो पिण्डाय चरती'ति द्विभूमकतिभूमकादिसु पासादेसु सीहपञ्जरं विवरित्वा महाजनो दस्सनब्यावटो अहोसि।

२०९. राहुलमाता पि देवी 'अय्यपुत्तो, किर इमस्मिं येव नगरे महन्तेन राजानुभावेन सुवण्णसिविकादीहि विचरित्वा इदानि केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायवत्थवसनो कपालहत्थो पिण्डाय चरति'। सोभति नु खो'ति सीहपञ्जरं विवरित्वा ओलोकयमाना भगवन्तं नाना विरागसमुज्जलाय सरीरप्पभाय नगरवीथियो ओभासेत्वा ब्यामप्पभाय परिक्खेपसमुपगूल्हाय[2], असीत्यनुब्यञ्जनावभासिताय, द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणपटिमण्डिताय, अनुपमाय बुद्धसिरिया विरोचमानं दिस्वा उण्हीसतो[3] पट्ठाय याव पादतला[3]:—

B.104 "सिनिद्धनीलमुदुकुञ्चितकेसो,
सुरियनिम्मलतलाभिनलाटो।
युत्ततुङ्गमुदुकायतनासो,
रंसिजालविततो नरसीहो"ति॥२६१॥

१. रो. म. पोत्थकेसु नत्थि। २. समङ्गिभूताय म.। ३-३. रो. पोत्थके नत्थि।

वर्षा हो रही है, ऐसी बात नहीं है; वरन् अतीत में भी हुई थी'। इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिए (उन्होंने) वेस्सन्तर जातक कही। धर्मोपदेश सुन, सभी उठकर वन्दना कर चले गये। न तो राजा न राजमहामन्त्री, किसी एक ने भी यह नहीं कहा कि 'कल (भगवान) हमारे यहाँ भोजन ग्रहण करें'।

भिक्षाचार

२०८. दूसरे दिन शास्ता ने बीस हजार भिक्षुओं के साथ कपिलवस्तु में भिक्षा के लिए प्रवेश किया। किसी ने भी जाकर न उन्हें भोजन के लिए निमन्त्रित किया, न पात्र ही ग्रहण किया। भगवान ने इन्द्रकील पर खड़े होकर विचार किया—"किस प्रकार पहले के बुद्धों ने अपने कुल नगर में भिक्षाचार किया था"? क्या वे क्रम रहित केवल ऐश्वर्य सम्पन्न मनुष्यों के घर गये, अथवा सपदान (बिना किसी घर को छोड़े) चारिका किये"। तब एक बुद्ध का भी क्रमहीन भिक्षाचार न देख, 'मेरा भी अब वही बुद्धवंश है, वही परम्परा है' मुझे इसी का पालन करना चाहिए। भविष्य में भी मेरे शिष्य मेरा अनुकरण करते हुए भिक्षाचारव्रत को पूरा करेंगे', ऐसा सोच एक छोर पर स्थित घर से लेकर प्रति घर भिक्षाचार किया। 'आर्य सिद्धार्थकुमार भिक्षाचार कर रहे हैं' यह सुन (नगरवासी) दो मंजिले तिमंजिले प्रासादों पर चढ़ खिड़कियों को खोल उन्हें देखने लगे।

२०९. राहुल माता देवी ने भी 'आर्य पुत्र इसी नगर में महान् राज्य वैभव के साथ स्वर्ण पालकी पर घूम, आज केश दाढ़ी मुड़ा, काषाय वस्त्र पहन, हाथ में कपाल ले (इसी नगर में) भिक्षाचार कर रहे हैं। क्या यह शोभा देता है' कह खिड़की खोल भगवान को देखती हुई उन्हें परम वैराग्य से उज्ज्वल, शरीर प्रभा से नगर की वीथियों को आलोकित करते हुए, परिमण्डलाकार व्यामप्रभा से युक्त, (महापुरुष के) अस्सी अनुव्यञ्जनों से अवभासित, वत्तीस महापुरुष लक्षणों से प्रतिमण्डित, अनुपम बुद्ध शोभा से शोभायमान देख, उनके शिर से लेकर पाँव तक का वर्णन इस प्रकार किया—

"स्निग्ध, कृष्ण वर्ण के कोमल तथा घुंघराले (इनके) केश हैं। सूर्य के सदृश निर्मल धरातल युक्त (इनका) ललाट है। सुन्दर, ऊँची, मृदु एवं लम्बी (इनकी) नाशिका है। ऐसे नरसिंह (श्रेष्ठ पुरुष) अपने रश्मि जाल को बिखेरे हुए हैं' ॥२६१॥

चक्कवरङ्कितरत्तसुपादो,
लक्खणमण्डितग्रायतपण्हि ।
चामरिहत्थविभूसितपण्हो,
एस हि तुय्हं पिता नरसीहो ॥ २६१ क ॥

सक्यकुमारो वरदो सुखुमालो,
लक्खणविचित्तपसन्नसरीरो ।
लोकहिताय ग्रागतो नरवीरो,
एस हि तुय्हं पिता नरसीहो ॥ २६१ ख ॥

ग्रायतयुत्तसुसण्ठितसोतो,
गोपखुमो ग्रभिनीलनेत्तो ।
इन्दधनुग्रभिनीलभमुको,
एस हि तुय्हं पिता नरसीहो ॥ २६१ ग ॥

पुण्णचन्दनिको मुखवण्णो,
देवनरानं पियो नरनागो ।
मत्तगजिन्दविलासितगामी,
एस हि तुय्हं पिता नरसीहो ॥ २६१ घ ॥

सिनिद्धसुगम्भीरमञ्जुघोसो,
हिङ्गुलवण्णरत्तसुजिह्वो ।
वीसतिवीसतिसेतसुदन्तो,
एस हि तुय्हं पिता नरसीहो ॥ २६१ ङ ॥

खत्तियसम्भवग्रग्गकुलिन्दो,
देवमनुस्सनमस्सितपादो ।
सीलसमाधिपतिट्ठितचित्तो,
एस हि तुय्हं पिता नरसीहो ॥ २६१ च ॥

वट्टसुवट्टसुसण्ठितगीवो,
सीहहनु मिगराजसरीरो ।
कञ्चनसुच्छविउत्तमवण्णो,
एस हि तुय्हं पिता नरसीहो ॥ २६१ छ ॥

ग्रञ्जनसमवण्णसुनीलकेसो,
कञ्चनपट्टविसुद्धनलाटो ।
ग्रोसधिपण्डरसुद्धसुउण्णो,
एस हि तुय्हं पिता नरसीहो ॥ २६१ ज ॥

उत्तम चक्र अंकित (इनके) लाल रंग के चरण हैं तथा (महापुरुषों के) लक्षण से युक्त चौड़ी एड़ी है । (इनका) पादतल हस्तयुक्त चमर से विभूषित है । यही पुरुष सिंह तुम्हारे पिता हैं ॥२६१ क ॥

वे शाक्यकुमार वरद एवं सुकुमार हैं । विचित्र लक्षणों से युक्त (इनका) परिशुद्ध शरीर है । वे वीर पुरुष लोक कल्याणार्थ यहाँ ग्राये हैं । यही श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारे पिता हैं ॥२६१ ख ॥

सुन्दर चौड़े एवं सुव्यवस्थित इनका कान है । गाय की पपनी सदृश इनकी पपनी है । इन्द्र धनुष के समान टेढ़ी नील वर्ण की भौंहे हैं । यही पुरुष सिंह तुम्हारे पिता हैं ॥२६१ ग ॥

पूर्ण चन्द्र के समान उज्जवल (इनके) मुख की कान्ति है । वे नरश्रेष्ठ देवता तथा मनुष्य सबको प्रिय हैं । मत्त गजराज के समान उनकी सुन्दर गति है । यही नरसिंह तुम्हारे पिता हैं ॥२६१ घ ॥

उनकी वाणी स्निग्ध गंभीर एवं मनोहर है । हिंगुल वर्ण लाल इनकी जिह्वा । है बीस बीस (ऊपर नीचे) श्वेत वर्ण के सुन्दर दांत हैं । यही नरपुंगव तुम्हारे पिता हैं ॥१६१ ङ॥

कुलों में ग्रग्र क्षत्रिय कुल में वे उत्पन्न हैं, जिनके चरण देवता तथा मनुष्यों से पूजित हैं । (इनका) चित्त शील एवं समाधि में प्रतिष्ठित है । यही पुरुष सिंह तुम्हारे पिता हैं ॥२६१ च॥

सुन्दर वर्तुलाकार (इनकी) गर्दन है । सिंह के सदृश (इनकी) ठुड्ढी है तथा मृगराज के समान शरीर है । कञ्चन सदृश कान्तियुक्त (इनका) सुन्दर रूप है । यही नरसिंह तुम्हारे पिता हैं ॥१६१ छ ॥

ग्रञ्जनवर्ण के नीले केश हैं । सोने का वस्त्र सदृश प्रभा सम्पन्न (इनका) ललाट है । (इनके) रोएँ ग्रौषधि तारा अर्थात् शुक्र के समान पण्डर वर्ण ज्योतिमय है । यह पुरुषसिंह तुम्हारे पिता हैं ॥२६१ ज॥

गच्छन्तो नीलपथे विय चन्दो,
तारागणपरिवट्टित रूपो।
सावकमज्झगतो समणिन्दो,
एस हि तुय्हं पिता नरसीहो ॥ २९१ झ ॥

एवं[1] इमाहि दसहि[1] नरसीहगाथाहि नाम अभित्थवित्वा 'तुम्हाकं पुत्तो पिण्डाय चरती" ति रञ्ञो आरोचेसि।

२१०. राजा संविग्गहदयो हत्थेन साटकं सण्ठपेन्तो तुरिततुरितं निक्खमित्वा वेगेन गन्त्वा भगवतो पुरतो ठत्वा आह—

"किं भन्ते, अम्हे लज्जापेथ, किमत्थं पिण्डाय चरथ,
R. 10 किं एत्तकानं भिक्खूनं न सक्का भत्तं लद्धुं ति सञ्ञं करित्था" ति?

"वंसचारित्तमेतं महाराज, अम्हाकं" ति।

"ननु भन्ते, अम्हाकं महासम्मतखत्तियवंसो नाम वंसो? तत्थ च एकखत्तियो पि भिक्खाचरो नाम नत्थी" ति।

"अयं महाराज, राजवंसो नाम तव वंसो। अम्हाकं पन दीपंकरो कोडञ्ञो···पे···कस्सपो ति अयं बुद्धवंसो नाम। एते च अञ्ञे च अनेकसहस्ससंखा बुद्धा भिक्खाचरा, भिक्खाचारेनेव जीविकं कप्पेसुं" ति, अन्तरवीथियं ठितोव—

"उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य, धम्मं सुचरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति, अस्मिं लोके परम्हि चा" ति ॥२९२॥

इमं गाथमाह। गाथापरियोसाने राजा सोतापत्तिफले पतिट्ठासि।

"धम्मं चरे सुचरितं, न तं दुच्चरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति, अस्मिं लोके परम्हि चा" ति ॥२९३॥

B.106 इमं पन गाथं सुत्वा सकदागामीफले पतिट्ठासि। महाधम्मपालजातकं सुत्वा अनागामिफले पतिट्ठासि। मरणसमये सेतच्छत्तस्स हेट्ठा सिरिसयने निपन्नो येव अरहत्तं पापुणि। अरञ्ञवासेन पन पधानानुयोगकिच्चं रञ्ञो नाहोसि। सोतापत्तिफलं सच्छिकत्वा येव पन भगवतो पत्तं गहेत्वा सपरिसं भगवन्तं महापासादं आरोपेत्वा पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन परिविसि।

१. एवमादिकाहि अट्ठहि रो.।

तारागण परिवारित नील पथ में गतिमान अभिरूप चन्द्रमा के समान वे श्रावकों के मध्य श्रमणेन्द्र हैं। यही श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारे पिता हैं ॥२९१ झ॥

इस प्रकार दस नरसिंह गाथाओं से उनकी अभ्यर्थना कर—"आर्य, आपके पुत्र पिण्डाचार कर रहे हैं" ऐसा (उसने) राजा को कहा।

२१०. संविग्न हृदय राजा ने हाथ से धोती (वस्त्र) को संभालते हुए शीघ्र ही (घर से) निकल तेजी से जा भगवान के सामने खड़े होकर कहा—

"भन्ते, हमें क्यों लज्जित करते हैं, क्यों भिक्षाटन कर रहे हैं, क्या यह दिखला रहे हैं कि (मेरे यहाँ) इतने भिक्षुओं को भोजन नहीं मिल सकता है"?

"महाराज, हमारे वंश का यही आचार है" (भगवान ने कहा)।

"भन्ते, क्या हमलोगों का 'महा सम्मत' क्षत्रिय वंश ही वंश नहीं है? उसमें एक क्षत्रिय भी भिक्षाचारी नहीं है।"

"महाराज, यह राजवंश का नाम है, जो आपका वंश है"। हमलोगों का दीपंकर, कौण्डिन्य···पे···काश्यप आदि के वंश का नाम बुद्धवंश है। ये तथा अन्य दूसरे हजारों बुद्ध भिक्षाचारी रहे हैं, भिक्षाचार से ही जीवन निर्वाह करते रहे हैं' कह उसी वीथिमार्ग में खड़े ही इस गाथा को कहा—

उद्योगी बनें, प्रमाद न करें, सुचरित धर्म का आचरण करें, धर्माचरण करने वाला इस लोक तथा परलोक में सुख पूर्वक सोता है ॥२९२॥

गाथा की समाप्ति पर राजा सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हो गये।

"सुचरित (कुशल) धर्म का आचरण करें, दुश्चरित (अकुशल) धर्म का आचरण न करें। धर्माचरण करने वाला इस लोक तथा परलोक में सुख पूर्वक सोता है" ॥२९३॥

इस गाथा को सुन वे एकदागामी फल में प्रतिष्ठित हुए। महाधर्मपाल जातक को सुन उन्होंने अनागामीफल में प्रतिष्ठा पायी। (अन्त में) मरने के समय श्वेत छत्र के नीचे श्रीशय्या पर पड़े उन्होंने अर्हत्व की प्राप्ति की। राजा को अरण्य में रह ध्यानाभ्यास आदि उद्योग (तपश्चर्या) नहीं करना पड़ा। सोतापत्तिफल का साक्षात्कार कर राजा ने भगवान के पात्र को ग्रहण कर भिक्षु मण्डली सहित भगवान को महा प्रासाद में ले जाकर प्रणीत खाद्य भोज्य पदार्थों को (उनके भोजनार्थ) परोसा।

राहुलमाता

२११. भत्तकिच्चपरियोसाने सब्बं इत्थागारं आगन्त्वा भगवन्तं वन्दि, ठपेत्वा राहुलमातरं। सा पन 'गच्छ अय्यपुत्तं वन्दाही' ति परिजनेन वुच्चमाना पि 'सचे मय्हं गुणो अत्थि, सयमेव मे सन्तिकं अय्यपुत्तो आगमिस्सति, आगतमेव नं वन्दिस्सामी" ति वत्वा न अगमासि। भगवा राजानं पत्तं गाहापेत्वा द्वीहि अग्गसावकेहि सद्धिं राजधीताय सिरिगब्भं गन्त्वा 'राजधीता यथारुचिं वन्दमाना न किञ्चि वत्तब्बा' ति वत्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। सा वेगेनागन्त्वा गोप्फकेसु गहेत्वा पादपिट्ठियं सीसं परिवत्तेत्वा यथाज्झासयं वन्दि। राजा राजधीताय भगवति सिनेहबहुमानादिगुणसम्पत्तियो कथेसि—"भन्ते, मम धीता
R. 91 'तुम्हेहि कासायानि निवत्थानी' ति सुत्वा ततो पट्ठाय कासायवत्था जाता। तुम्हाकं एकभत्तिकभावं सुत्वा एकभत्तिकाव जाता। तुम्हेहि महासयनस्स छड्डितभावं ञत्वा पट्टिकामञ्चके येव निपन्ना। तुम्हाकं मालागन्धादीहि विरतभावं ञत्वा विरतमालागन्धाव जाता। अत्तनो ञातकेहि 'मयं पटिजग्गिस्सामा' ति सासने पेसिते एकञातकम्पि न ओलोकेसि। एवं गुणसम्पन्ना मे भगवा, धीता" ति। "अनच्छरियं महाराज, यं इदानि तया रक्खियमाना राजधीता परिपक्के ञाणे अत्तानं रक्खेय्य। एसा पुब्बे अनारक्खा पब्बतपादे विचरमाना अपरिपक्के ञाणे अत्तानं रक्खी" ति वत्वा चन्दकिन्नरजातकं[1] कथेत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

नन्दपब्बज्जा

२१२. दुतियदिवसे नन्दस्स राजकुमारस्स अभिसेकगेहप्पवेसनविवाहमंगलेसु वत्तमानेसु तस्स गेहं गन्त्वा कुमारं पत्तं गाहापेत्वा पब्बाजेतुकामो मंगलं वत्वा उट्ठायासना पक्कामि। जनपदकल्याणी कुमारं गच्छन्तं दिस्वा-'तुवटं खो अय्यपुत्त, आगच्छे-

१. चन्दकिन्नरी. म.।

राहुलमाता

२११. भोजन के उपरान्त रनिवास की सभी स्त्रियों ने आकर भगवान की वन्दना की, केवल राहुल माता को छोड़ कर। उसे परिजनों द्वारा "जाओ, आर्यपुत्र की वन्दना करो" कहे जाने पर 'यदि मुझमें गुण है, तो आर्यपुत्र स्वयं मेरे निकट आयेंगे, आने पर ही मैं उनकी वन्दना करूँगी' कह (वहाँ) न गई। भगवान राजा को पात्र दे, दो अग्र श्रावकों (सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन) के साथ राज कन्या के शयनागार में जा 'राज कन्या को इच्छानुसार वन्दना करते हुए कुछ न कहा जाय' कह बिछे आसन पर बैठ गये। उसने शीघ्रता से आ (उनके) पैरों को पकड़, चरणों पर शिर रख, अपनी इच्छानुसार वन्दना की। राजा ने राज कन्या के भगवान के प्रति अपार स्नेह-सत्कारभाव आदि से उपेत गुणों का आख्यान किया—

"भन्ते' मेरी पुत्री ने आपके काषाय वस्त्र धारण करने की बात सुन, तब से काषाय वस्त्र ही धारण किया। आपके एक बार भोजन करने को सुन, यह भी एक ही बार आहार ग्रहण करने लगी। आपके ऊँची ऊँची शय्याओं के परित्याग की बात सुन, यह भी काष्ठ फलकों के मञ्च पर ही सोने लगी। आपके माला गन्ध आदि से विरत होने की बात सुन, यह भी माला गन्धादि से विरत हो गयी। अपने सम्बन्धियों (नैहरवालो) के ऐसा संवाद भेजने पर कि 'हमलोग तुम्हारी सेवा सुश्रुषा करेंगे', इसने एक भी सम्बन्धी की ओर (तदर्थ) नहीं देखा। यह मेरी पुत्री इस प्रकार के गुणों से सम्पन्न है। 'महाराज' इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, जो इस राजकन्याने आप के द्वारा सुरक्षिता हो, परिपक्व ज्ञान से अपनी रक्षा की। इसके पूर्व अनारक्षित हो पर्वत पाद में विचरण करती हुई, अपरिपक्व ज्ञान की अवस्था में भी इसने अपनी रक्षा की थी, कह भगवान ने चन्द्रकिन्नर-जातक का कथन किया तथा वे आसन से उठ चले गये।

नन्दप्रव्रज्या

२१२. दूसरे दिन राजकुमार नन्द का अभिषेक, गृहप्रवेश तथा विवाह—के (तीन) मांगलिक उत्सवों के उपस्थित होने के अवसर पर (भगवान) उसके घर जा, उसे प्रव्रजित करने की इच्छा से, उसे अपना पात्र दे, मंगल वचन कह आसन से उठ चल पड़े। जनपद-कल्याणी ने कुमार को जाते हुए देख—"आर्यपुत्र' शीघ्र ही आ जाता' कह ग्रीवा फैला निहारने लगी। वह भी

B.107 य्यासी'ति वत्वा गीवं पसारेत्वा श्रोलोकेसि। सो पि भगवन्तं 'पत्तं गण्हथा'ति वत्तुं श्रविसहमानो विहारमेव श्रगमासि। तं श्रनिच्छमानं येव भगवा पब्बाजेसि। इति भगवा कपिलपुरं गन्त्वा ततियदिवसे नन्दं पब्बाजेसि।

राहुलपब्बज्जा

२१३. सत्तमे दिवसे राहुलमाता कुमारं श्रलंकरित्वा भगवतो सन्तिकं पेसेसि–पस्स तात, एतं वीसतिसहस्ससमणपरि-वुतं सुवण्णवण्णं ब्रह्मरूपीवण्णं समणं, श्रयं ते पिता। एतस्स महन्ता निधयो श्रहेसुं, त्यास्स निक्खमन्तो[1] पट्ठाय न पस्साम। गच्छ नं दायज्जं याच[2]—'श्रहं तात, कुमारो, श्रभिसेकं पत्वा चक्कवत्ती भविस्सामि, धनेन मे श्रत्थो, धनं मे देहि, सामिको हि पुत्तो पितु-सन्तकस्सा" ति। कुमारो च भगवतो सन्तिकं गन्त्वा पितुसिनेहं पटिलभित्वा हट्ठतुट्ठो—"सुखा ते समण, छाया" ति वत्वा श्रञ्ञम्पि बहु श्रत्तनो श्रनुरूपं वदन्तो श्रट्ठासि।

२१४. भगवा कतभत्तकिच्चो श्रनुमोदनं कत्वा उट्ठाया-सना पक्कामि। कुमारो पि "दायज्जं मे समण, देहि; दायज्जं मे समण, देही" ति भगवन्तं श्रनुबन्धि। भगवा कुमारं न निवत्तापेसि। परिजनो पि भगवता सद्धिं गच्छन्तं निवत्तेतुं ना सक्खि। इति सो भगवता सद्धिं श्राराममेव श्रगमासि। ततो भगवा चिन्तेसि—"यं श्रयं पितुसन्तकं धनं इच्छति, तं वट्टानुगतं सविघातं। हन्दस्स बोधिमण्डे पटिलद्धं सत्तविधं श्ररियधनं देमि, लोकुत्तरदायज्जस्स नं सामिकं करोमी" ति श्रायस्मन्तं सारिपुत्तं
R. 92 श्रामन्तेसि। "तेन हि त्वं सारिपुत्त, राहुलकुमारं पब्बाजेही" ति। थेरो तं पब्बाजेसि।

२१५. पब्बजिते पन कुमारे रञ्ञो श्रधिमत्तदुक्खं उप्पज्जि। तं श्रधिवासेतुं श्रसक्कोन्तो भगवतो निवेदेत्वा "साधु भन्ते श्रय्या, मातापितूहि श्रननुञ्ञातं पुत्तं न पब्बाजेय्यु" ति वरं

---

१. निक्खमनकालतो म.। २. याचाहि म.।

(नन्द ने) 'भगवान पात्र को लेलें,' कहने में संकोच कर विहार तक चला गया। उसकी इच्छा न रहने पर भी भगवान ने उसे प्रव्रजित किया इस प्रकार भगवान ने कपिलवस्तु नगरी में जा तीसरे दिन नन्द को प्रव्रजित किया।

राहुलप्रव्रज्या

२१३. सातवें दिन राहुल माता ने कुमार को अलंकृत कर भगवान के निकट भेजा-तात, देखो, बीस हजार श्रमणों से परिवृत स्वर्ण वर्ण के उत्तम रूपवाले ये श्रमण तुम्हारे पिता हैं। उनके पास बहुत सी निधियाँ थीं, जिन्हें इनके घर से निकलने के बाद हम नहीं देख रहे हैं। जाओं, उनसे दायज्ज को याचना करो। (जाकर उनसे कहना) कि तात, मैं राजकुमार हूँ, अभिषिक्त हो चक्रवर्ती राजा होऊंगा; मुझे धन से प्रयोजन है, मुझे धन दें. पुत्र ही पिता का सम्पत्ति का स्वामी होता है। राजकुमार पिता के निकट जा, पितृस्नेह प्राप्त कर प्रसन्न चित्त हो, 'हे श्रमण, तुम्हारी छाया सुखमय है' कह और भी अपने अनुरूप बहुत सी बाते कहते हुए खड़ा रहा।

२१४. भगवान भोजनोपरान्त उक्त दान का अनुमोदन कर आसन से उठ चल दिये। कुमार भी "श्रमण' मुझे दायज्ज दें, मुझे दायज्ज दें, कहता हुआ उनके पीछे पोछे हो लिया। भगवान ने कुमार को लौटाया नहीं। परिजन भो उसे भगवान के साथ जाने से न रोक सके। इस प्रकार वह भगवान के साथ आराम में चला आया। तब भगवान ने विचार किया—"यह पिता के पास जिस धन को चाहता है, वह संसार में आबद्ध करने वाला तथा नाशवान है। अच्छा हो कि मैं इसे बोधिमण्ड में प्राप्त सात प्रकार का आर्यधन दूँ, इसे लोकोत्तर दायज्ज का स्वामी बना दूँ", ऐसा सोच आयुष्मान सारिपुत्र को बुलवाया। "इसलिये सारिपुत्र, तुम राहुल कुमार को प्रव्रजित करो"। स्थविर ने उसे प्रव्रजित किया।

२१५. राहुल कुमार के प्रव्रजित हो जाने पर राजा को अत्यन्त दुःख हुआ। उस दुःख को सहने में असमर्थ हो उन्होंने भगवान से निवेदन कर यह वर मांगा —"अच्छा हो भन्ते, कि माता पिता की आज्ञा के बिना पुत्र को

याचि। भगवा तस्स तं वरं दत्वा पुन दिवसे राजनिवेसने कतभत्तकिच्चो[१] एकमन्तं निसन्नेन रञ्ञा "भन्ते, तुम्हाकं दुक्करकारिककाले[२] एका देवता मं उपसंकमित्वा 'पुत्तो ते कालकतो' ति आह; तस्सा वचनं असद्दहन्तो न मय्हं पुत्तो बोधिं अप्पत्वा कालं करोती ति, तं पटिक्खिपिं" ति वुत्ते, "इदानि किं
B.108 सद्दहिस्सथ, ये तुम्हे पुब्बेपि अट्ठिकानि दस्सेत्वा 'पुत्तो ते मतो' ति वुत्ते न सद्दहित्था" ति। इमिस्सा अत्थुप्पत्तिया महाधम्मपालजातकं कथेसि। कथापरियोसाने राजा अनागामिफले पतिट्ठहि।[३] इति भगवा पितरं तीसु फलेसु पतिट्ठापेत्वा भिक्खुसंघपरिवुतो पुनदेव राजगहं गन्त्वा सीतवने विहासि।

अनाथपिण्डिकस्स जेतवनं

२१६. तस्मिं समये अनाथपिण्डिको गहपति पञ्चहि सकटसतेहि भण्डं आदाय राजगहे अत्तनो[४] पियसहायस्स सेट्ठिनो गेहं गन्त्वा तत्थ बुद्धस्स भगवतो उप्पन्नभावं सुत्वा बलवपच्चुससमये देवतानुभावेन विवट्टेन द्वारेन सत्थारं उपसंकमित्वा धम्मं सुत्वा सोतापत्तिफले पतिट्ठाय, दुतियदिवसे बुद्धपमुखस्स संघस्स महादानं दत्वा, सावत्थि आगमनत्थाय सत्थुपटिञ्ञं गहेत्वा, अन्तरामग्गे पञ्चचत्ताळीसयोजनट्ठाने सतसहस्सं सतसहस्सं दापेत्वा[५], योजनिकाय[६] योजनिकाय[६] विहारे कारापेत्वा, जेतवनं कोटिसन्थारेन अट्ठारसहिरञ्ञकोटीहि किणित्वा नवकम्मं पट्ठपेसि। सो मज्झे दसबलस्स गन्धकुटिं कारेसि। तं परिवारेत्वा असीतिमहाथेरानं पाटिएक्कसन्निवेसने आवासे एककुड्डकद्विकुड्डकहंसवट्टकदीघसालामण्डपादिवसेन[७] सेससेनासनानि पोक्खरणियो चंकमनरत्तिट्ठानदिवाट्ठानानि चाति, अट्ठारसकोटिपरिच्चागेन रमणीये भूमिभागे मनोरमं विहारं कारापेत्वा दसबलस्स आगमनत्थाय दूतं पेसेसि। सत्था दूतस्स वचनं[८] सुत्वा महाभिक्खुसंघपरिवारो राजगहा निक्खमित्वा अनुपुब्बेन सावत्थिनगरं पापुणि।

---

१. कतपातरासो रो.। २. दुक्करचारिककाले रो.। ३. पतिट्ठासि म.।
४. रो. पोत्थके नत्थि। ५. दत्वा म.। ६-६. योजनिके योजनिके म.।
७. एककूटागारद्विकूटागार ० म। ८. सासनं रो.

प्रव्रजित न करें"। उन्हें यह वर देकर दूसरे दिन राजप्रासाद में भगवान के भोजन कर एक ओर बैठे समय राजा के द्वारा यह कहे जाने पर कि 'भन्ते' आपके दुष्कर तपस्या के समय एक देवता मेरे निकट आकर कहा कि आपका पुत्र मर गया, तो मैं ने उसके वचन पर विश्वास नहीं करते हुए विरोध किया कि 'मेरा पुत्र सम्बोधिको प्राप्त किये बिना नहीं मर सकता है', बुद्ध ने— "महाराज, अब आप क्यों विश्वास कर सकते हैं, पूर्व में भी आपको हड्डियां देखाकर कहे जाने पर कि 'आपका पुत्र मर गया', आपने विश्वास नहीं किया" कह, इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये महाधर्मपाल जातक का कथन किया। कथा की समाप्ति पर राजा अनागामी फल में प्रतिष्ठित हो गये। इस प्रकार भगवान ने पिता को तीन फलों में प्रतिष्ठित कर भिक्षुसंघ के साथ पुनः राजगृह जा शीतवन में विहार किया।

अनाथपिण्डिक का जेतवन

२१६. उस समय गृहपति अनाथपिण्डिक ने पाँच सौ गाड़ियों पर (विविध) वस्तुयें ले राजगृह के अपने प्रिय मित्र एक सेठ के घर जा, वहाँ भगवान बुद्ध के उत्पन्न होने की बात सुन, अत्यन्त प्रातः काल देवताओं की कृपा से खुले द्वार से शास्ता के निकट जा, धर्मोपदेश सुन सोतापत्तिफल में स्थित हो, दूसरे दिन बुद्धप्रमुख भिक्षुसंघ को भोजन दे, श्रावस्ती में आने के लिए शास्ता का वचन प्राप्त कर, पैंतालिसयोजन के रास्ते में एक एक लाख खर्च कर, योजन योजन भर पर विहार बनवा, करोड़ों मुद्रायें बिछा, अठारह करोड़ सुवर्ण मुद्राओं से जेतवन को खरीद वहाँ (विहार) बनवाना प्रारम्भ किया। उसने मध्य में शास्ता के लिए गन्धकुटी बनवायी। उसके चारो ओर अस्सो महास्थविरों के लिए पृथक् पृथक् निवास, एक दीवार वाली, दो दीवारवाली हंस के आकार की दीर्घ शालायें, मण्डप आदि निवास स्थान, पुष्करिणी, चक्रमण, रात्रि का स्थान, दिन के लिए स्थान आदि अठारह करोड़ के खर्च से रमणीय भूभाग में सुन्दर आराम बनवा, भगवान के पधारने के लिए दूत भेजा। शास्ता दूत का वचन सुन महान् भिक्षुसंघ के साथ राजगृह से निकल क्रमशः श्रावस्ती नगर पहुँचे।

२१७. महासेट्ठि पि खो विहारमहं सज्जेत्वा तथागतस्स जेतवनपविसनदिवसे पुत्तं सब्बालंकारपटिमण्डितं कत्वा अलंकतपटियत्तेहेव पञ्चहि कुमारसतेहि सद्धिं पेसेसि। सो सपरिवारो पञ्चवण्णवत्थसमुज्जलानि पञ्चधजसतानि गहेत्वा
R. 94 दसबलस्स पुरतो अहोसि। तेसं पच्छतो महासुभद्दा चूळसुभद्दा ति द्वे सेट्ठिधीतरो पञ्चहि कुमारिसतेहि सद्धिं पुण्णघटे गहेत्वा निक्खमिसु। तासं पच्छतो सेट्ठिभरिया सब्बालंकारपटिमण्डिता पञ्चहि मातुगामसतेहि सद्धिं पुण्णपातियो गहेत्वा निक्खमि।
B.109 सब्बेसं पच्छतो सयं महासेट्ठि अहतवत्थनिवत्थो अहतवत्थेहेव पञ्चहि सेट्ठिसतेहि सद्धिं भगवन्तं अब्भुग्गञ्छि।

२१८. भगवा इमं उपासकपरिसं पुरतो कत्वा महाभिक्खुसंघपरिवुतो अत्तनो सरीरप्पभाय सुवण्णरससेकपिञ्जरानि विय वनन्तरानि कुरुमानो अनन्ताय बुद्धलीळहाय अप्पटिसमाय बुद्धसिरिया जेतवनविहारं पाविसि। अथ नं अनाथपिण्डिका पुच्छि—

"कथाहं भन्ते[1] इमस्मि विहारे पटिपज्जामी" ति ?

"तेनहि गहपति, इमं विहारं आगतानागतस्स[2] भिक्खुसंघस्स देही" ति।

"साधु भन्ते," ति महासेट्ठि सुवण्णभिङ्कारं आदाय दसबलस्स हत्थे उदकं पातेत्वा "इमं जेतवनविहारं आगतानागतस्स चातुद्दिसस्स बुद्धपमुखस्स संघस्स दम्मी" ति अदासि।

सत्था विहारं पटिग्गहेत्वा अनुमोदनं करोन्तो विहारानिसंसं कथेसि—

"सीतं उण्हं पटिहन्ति, ततो वाळमिगानि च।
सिरिंसपे च मकसे, सिसिरे चापि वुट्ठियो।
ततो वातातपे घोरे, सञ्जाते पटिहञ्ञति ॥२६४॥
लेणत्थं च सुखत्थं च, झायितुं च विपस्सितुं।
विहारदानं संघस्स, अग्गं बुद्धेन वण्णितं ॥२६५॥
तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं अत्थमत्तनो।
विहारे कारये रम्मे, वासयेत्थ बहुस्सुते ॥२६६॥

---

१. अपरिमाणाय। २. चातुद्दिसस्स म.।

२१७. महासेठ ने उस बड़े विहार को तैयार कर भगवान के जेतवन में प्रवेश करने के दिन अपने पुत्र को सभी आभूषणों से विभूषित कर अन्य पाँच सौ सुअलंकृत कुमारों के साथ वहाँ भेजा। वह अपने साथियों के साथ पाँच वर्णों के समुज्वल पाँच सौ ध्वजायें ले भगवान के आगे की ओर चला। उनके पीछे महासुभद्रा तथा चूलसुभद्रा नामक दो श्रेष्ठि कन्यायें पाँच सौ कुमारियों के साथ जलपूर्ण घटों को लेकर निकली। उनके पीछे सभी आभूषणों से सुसज्जित सेठ की पत्नी पाँच सौ स्त्रियों के साथ भरी हुई थालियाँ लेकर निकली। सबके पीछे स्वयं महासेठ श्वेत वस्त्र को पहने, अन्य श्वेत वस्त्रधारी पाँच सौ सेठों के साथ भगवान की आगवानी के लिए चला।

२१८. भगवान ने इस उपासक परिषद् को आगे कर महाभिक्षुसंघ से परिवृत हो, अपनी शरीरप्रभा से सुवर्ण रस से वनान्त को रंजित करते हुए के सदृश, अनन्त बुद्ध लीला तथा अद्वीतीय बुद्ध-सौन्दर्य के साथ जेतवन नामक विहार में प्रवेश किया। तब अनाथपिण्डिक ने भगवान से पूछा—

"भन्ते, इस विहार के सम्बन्ध में मैं क्या करूँ" ?

"गृहपति, इस विहार को आप आये हुए तथा न आये हुए भिक्षुओं के लिए दान कर दें।"

"अच्छा भन्ते, कह महासेठ ने स्वर्ण का जलपात्र ले शास्ता के हाथ में जल गिराते हुए" 'इस जेतवन नामक विहार को चारों दिशाओं से आगत अनागत बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को देता हूँ" व्यक्त कर दे दिया।

शास्ता ने विहार को स्वीकार कर उस दान का अनुमोदन करते हुए इस प्रकार विहारदान के महात्म्य को बतलाया—

"यह शीत, उष्णता, हिंस्र पशु आदि, सर्प, मच्छड़, ओसकण, तथा वृष्टि से बचाता है। इसके अतिरिक्त भयंकर आंधी तथा ग्रीष्म के ताप के उत्पन्न होने पर उन्हें नष्ट कर रक्षा करता है ॥२६४॥

यह आश्रय के लिए, सुख के लिए, ध्यान तथा विपश्यना के लिए (उपयुक्त स्थान) है। संघार्थ विहारदान बुद्ध द्वारा प्रशंसित है ॥ २६५ ॥

इसलिए अपना हित चाहने वाले पण्डित पुरुषों को चाहिए कि विहार बनवायें तथा उसमें बहुश्रुतों को निवास करा ॥ २६६ ॥

तेसं अन्नञ्च पानं च, वत्थसेनासनानि च।
ददेय्य उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा ॥२९७॥
ते तस्स धम्मं देसेन्ति, सब्बदुक्खापनूदनं।
यं सो धम्मं इधञ्ञाय, परिनिब्बाति अनासवो"ति ॥२९८॥

२१९. अनाथपिण्डिको दुतियदिवसतो पट्ठाय विहारमहं आरभि। विसाखाय पासादमहो चतूहि मासेहि निट्ठितो। अनाथपिण्डिकस्स पन विहारमहो नवहि मासेहि निट्ठासि। विहारमहेपि अट्ठारसेव कोटियो[1] अगमंसु। इति इमस्मि येव विहारे चतुपण्णासकोटिसंखं धनं परिच्चजि।

B.110 २२०. अतीते पन विपस्सिस्स भगवतो काले पुनब्बसुमित्तो नाम सेट्ठि सुवण्णिट्ठिकासन्थारेन किणित्वा तस्मिं येव ठाने योजनप्पमाणं संघारामं कारेसि। सिखिस्स भगवतो काले सिरिवड्ढो नाम सेट्ठि सुवण्णजालसन्थारेन[2] किणित्वा तस्मिं येव ठाने तिगावुतप्पमाणं संघारामं कारेसि। वेस्सभुस्स भगवतो काले सोत्थियो नाम सेट्ठि सुवण्णहत्थिपदसन्थारेन किणित्वा तस्मिं येव ठाने अड्ढयोजनप्पमाणं संघारामं कारेसि। ककुसन्धस्स भगवतो काले अच्चुतो नाम सेट्ठि सुवण्णिट्ठिकासन्थारेनेव किणित्वा तस्मिं येव ठाने गावुतप्पमाणं संघारामं कारेसि। कोणागमनस्स भगवतो काले उग्गो नाम सेट्ठि सुवण्णकच्छपसन्थारेन किणित्वा तस्मिं येव ठाने अड्ढगावुतप्पमाणं संघारामं कारेसि। कस्सपस्स भगवतो काले सुमंगलो नाम सेट्ठि सुवण्णिट्ठिकसन्थारेन किणित्वा तस्मिं येव ठाने सोळसकरीसप्पमाणं संघारामं कारेसि। अम्हाकं पन भगवतो काले अनाथपिण्डिको सेट्ठि कहापणकोटिसन्थारेन किणित्वा तस्मिं येव ठाने अट्ठकरीसप्पमाणं संघारामं कारेसि। इदं किर ठानं सब्बबुद्धानं अविजहितट्ठानमेव।

२२१. इति महाबोधिमण्डे सब्बञ्ञुतप्पत्तितो याव महापरिनिब्बानमञ्चा यस्मिं यस्मिं ठाने भगवा विहासि, इदं सन्तिकेनिदानं नाम। तस्स वसेन सब्बजातकानि वण्णयिस्साम।

जातकअट्ठकथाय निदानकथानिट्ठिता

---

१. ˜परिच्चागं म.। २. °फालसन्थारेन रो. म.।

२१९. अनाथपिण्डिक ने दूसरे दिन से विहार की पूजा प्रारम्भ की। विशाखा के प्रासाद का पूजोत्सव चार महीनों में पूर्ण हुआ। अनाथपिण्डिक के विहार का पूजोत्सव नव महीनों में समाप्त हुआ। विहारपूजोत्सव में भी अठारह करोड़ (मुद्रा) खर्च हुआ। इस प्रकार इस विहार में चौवन करोड़ धन लगा।

२२०. अतीत काल में भगवान विपश्यी के समय पुनर्वसुमित्र नामक सेठ सोने के ईंटों को विछा, उससे भूमि खरोदकर, उस स्थान में एक योजन प्रमाण का संघाराम बनवाया। भगवान शिखी के समय श्रीवर्द्धन नामक सेठ ने सोने के फलकों को बिछा उससे भूमि खरीद, उसी स्थान पर तीन गव्यूति प्रमाण का संघाराम बनवाया। भगवान विश्वभू के समय स्वस्ति नामक सेठ ने सोने के हस्तिपदों के फैलाव से भूमि खरीद कर, उस पर आधे योजन प्रमाण का संघाराम बनवाया। भगवान ककुसन्ध के काल में अच्युत नामक सेठ ने सोने के ईंटों को बिछा, उसी से भूमि खरीद; उस पर एक गव्यूति भर का संघाराम बनवाया। कोणागमन भगवान के समय उग्र नामक सेठ ने स्वर्ण के कछुओं को बिछा, उसी से भूमि को खरीद, उस स्थान पर अर्द्ध गव्यूति के प्रमाण का संघाराम बनाया। भगवान काश्यप के समय सुमंगल नामक सेठ ने सोने के ईंटों को फैला, उसी मूल्य से भूमि खरीद, उस स्थान पर सोलह करीष प्रमाण का विहार बनवाया। हमलोगों के भगवान गौतम बुद्ध के समय अनाथपिण्डिक नामक सेठ ने करोड़ों कार्षापण को बिछा, उससे भूमि खरीद उस स्थान पर आठ करीष प्रमाण का संघाराम बनवाया। यह स्थान सभी बुद्धो का अपरित्यक्त स्थान है।

२२१. इस प्रकार महाबोधिमण्ड में सर्वज्ञता की प्राप्ति से लेकर महापरिनिर्वाणमञ्च तक, जिस-जिस स्थान पर भगवान ने विहार किया, वह सन्तिकेनिदान है। इसी के आधार पर आगे के सभी जातकों का बर्णन करेंगे।

जातक अर्थकथा में आगत निदानकथा समाप्त

पारिभाषिक-शब्द-विवरण

(अकारादि क्रम से)

अट्ठ-समापत्ति—समाधि विषयक आठ प्रकार की उपलब्धियों को अट्ठ-समापत्ति कहा जाता है। वे हैं— चार रूप-ध्यान तथा चार अरूप-ध्यान।

चित्त स्वरूपतः चञ्चल है। वह अपनी द्रुत गति से सर्वदा यत्र तत्र गमन करते हुए विविध विषयों के साथ आसक्ति उत्पन्न करता है। ज्यों ज्यों आसक्ति बढ़ती जाती है, त्यों त्यों उसका प्रकृत प्रभापूर्ण रूप आगन्तुक क्लेशों से उपक्लिष्ट होता जाता है। ऐसा चित्त ही विविध प्रकार के दुःखों का कारण बनता है। इससे निर्वृति के लिए समाधि की आवश्यकता है।

विभिन्न विषयों से चित्त को हटा कर किसी एक विहित विषय पर एकाग्र करना ही समाधि है। इसे कुशलचित्त की एकाग्रता या चित्त-चेतसिकों का किसी एक आलम्बन पर आधान भी कहा गया है—"कुसलचित्तेकग्गता समाधि। एकारम्मणे चित्तचेतसिकानं समं सम्मा च आधानं ठपनं" ति वुत्तं (वि० म० ५७)। पटिसम्भिदामग्ग (५५) में इसे एकाग्रता, अविक्षेप, अनिञ्जन, सम्यक् एषणा आदि अर्थों में बतलाया गया है।

चित्त के एकाग्र होने में पाँच बाधक धर्म हैं, जो नीवरण कहलाते हैं। इनके प्रहीण हो जाने पर एकाग्रता के सहायक पाँच ध्यानांगों का उदय होता है। उनके उदय के साथ-साथ चित्त एकाग्र होने लगता है। चित्त को एकाग्र करने के लिए भगवान् बुद्ध द्वारा चालीस कर्मस्थानों (विषयों) का विधान किया गया है। वे हैं—दस कसिण, दस अशुभ, दस अनुस्मृति, चार आरुप्य, चार ब्रह्मविहार, एक संज्ञा तथा एक व्यवस्थान। समाधि का अभिलाषी योगावचर स्वतः या कल्याण मित्र भी सहायता से इनमें से किसी एक का चयन कर उस पर ध्यान करना प्रारम्भ करता है।

समाधि दो प्रकार की होती है—रूप-समाधि तथा अरूप-समाधि। जब किसी रूपवाले आलम्बन पर ध्यान प्राप्त होता है, तो उसे रूप-समाधि कहते हैं। रूपरहित विषय पर प्राप्त एकाग्रता का नाम अरूप-समाधि है।

रूप-समाधि की चार अवस्थायें हैं, जिन्हें चार ध्यान कहते हैं। वे हैं—प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान तथा चतुर्थ ध्यान। प्रथम ध्यान में पाँचों ध्यानांग–वितर्क, विचार, प्रीति, सुख एवं एकाग्रता बने रहते हैं। द्वितीय ध्यान में वितर्क एवं विचार अनुपस्थित हो जाते हैं,—केवल तीन ध्यानांग रह जाते हैं। तृतीय ध्यान में प्रीतिध्यानांग भी हट जाता है।

केवल सुख एवं एकाग्रता के साथ इस ध्यान की प्राप्ति होती है। चतुर्थ ध्यान में सुख के स्थान पर उपेक्षा आ जाती है तथा उपेक्षा एवं एकाग्रता नामक दो ध्यानांगों से युक्त इस ध्यान की उपलब्धि होती है। रूप-समाधि की इन चारों ध्यानों का आलम्बन एक रहता है, केवल ध्यानांगों का ही समतिक्रमण होता है। अभिधर्म के अनुसार पांच रूपावचर ध्यान कहे गये हैं।

अरूप-समाधि की भी चार अवस्थायें होती हैं, जिन्हें चार अरूपावचर ध्यान कहा जाता है। वे हैं—आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिञ्च-न्यायतन एवं नैवसंज्ञानासंज्ञायतन। ध्यान की इन चारों अवस्थाओं में उपेक्षा तथा एकाग्रता नामक दो ध्यानांग रहते हैं। इस कारण अरूपावचर के सभी ध्यान पञ्चम ध्यान कहे जाते हैं। यहां प्रत्येक ध्यान का आलम्बन भिन्न-भिन्न रहता है। प्रथम ध्यान में अनन्त-आकाश विषय रहता है। द्वितीय ध्यान का लाभ अनन्त-विज्ञान पर होता है। आकिञ्चन्य ही तृतीय ध्यान का आलम्बन है तथा इसी विषय को शान्त रूप में मनन करते हुए चतुर्थ ध्यान का लाभ होता है।

इन्हीं चार रूप-ध्यान तथा चार अरूप-ध्यान को अट्ठ-समापत्ति कहते हैं।

अनोतत्तदह (अनवतप्तदह)—यह एक सरोवर का नाम है, जो हिमालय पर स्थित बतलाया जाता है। यह एक सौ पचास योजन लम्बा, पचास योजन चौड़ा तथा पचास योजन गहरा है। सुदस्सनकूट, चित्रकूट, कालकूट, गन्धमादनपब्बत तथा केलास नामक पाँच पर्वत कूटों से यह चतुर्दिक परिवृत है। इन पर्वत कूटों के मध्य में स्थित होने के कारण सूर्य तथा चन्द्र की किरणें सीधे इसके जल पर नहीं पड़ती हैं। फलतः उसका जल सर्वदा शीतल बना रहता है। इसके अनोतत्त (अनवतप्त = शीतल) दह कहलाने का यही कारण हो सकता है।

इस सरोवर का जल बहुत पवित्र समझा जाता है। बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, अरहन्त तथा अनेक देवताओं के इसमें स्नान के अनेक प्रसंग देखे जाते हैं। भगवान् बुद्ध जब देवलोक में जा अपनी मां को अभिधर्म का उपदेश दे रहे थे, तो वे प्रति दिन पूर्वाह्न में यहीं आकर स्नान किया करते थे। पुनः उत्तरकुरु से पिण्डपात का संग्रह कर यहीं बैठ भोजन करते थे, तथा उसी के तट पर स्थित चन्दनवन में दिवा-विहार करते थे। इसके अनेक प्राकृतिक घाटों पर देव, यक्ष, किन्नरादि स्नान करते हैं। इसका जल स्वास्थ्यवर्द्धक समझा जाता है। इसके जल की पवित्रता एवं अपूर्व शक्तिसम्पन्नता के सम्बन्ध में कई कथायें पायी जाती हैं। (अ० सा० १४-१५, D. P. P. N. I, 97-99)।

अप्पाणक-झान—यह तपश्चर्या के अन्तर्गत एक प्रकार के ध्यान का नाम है। इसके अभ्यास-क्रम में शरीर के विभिन्न छिद्रों से श्वास का गमनागमन रोक दिया जाता है। श्वासावरोध सहित इसके अभ्यास किये जाने के कारण यह अप्पाणक-झान (प्राण-रहित-ध्यान) कहलाता है। मज्झिमनिकाय (२, ३२७-२८) से प्रकट है कि बोधिसत्त्व ने उरुबेला में तपस्या करते हुए इसका अभ्यास किया था। इसका विवरण इस प्रकार प्राप्त होता है—"तब मुझको ऐसा हुआ—'क्यों न श्वास-रहित ध्यान करूँ'? सो मैंने मुख एवं नासिका से श्वास का आना-जाना रोक दिया। मुख-नासिका से आश्वास-प्रश्वास के रुक जाने पर मेरे कान के छिद्रों से निकलते वात से वैसा ही गम्भीर शब्द होने लगा जैसा लोहकार की धौंकनी को धौंकने से निकलता है" आदि। इसके अनन्तर अन्यान्य छिद्रों से भी श्वास की गति को रोक कर ध्यान करते हुए बोधिसत्त्व द्वारा उदर, शिर आदि अंगों में असह्य दुःख वेदना की अनुभूति का वर्णन है।

अभिञ्ञा (अभिज्ञा)—समाधिजनित विशेष प्रज्ञा का नाम अभिञ्ञा है। रूप-समाधि के पञ्चम झान की पूर्णतः परिपक्वता होने पर कुछ मानसिक शक्तियों का उदय होता है। इन्हें चित्त के अत्यधिक सूक्ष्म एवं एकाग्र होने से प्राप्त एक प्रकार का ज्ञानविशेष या आध्यात्मिक उपलब्धि कहा जा सकता है। यह पाँच प्रकार की हैं। यथा—

"इद्धिविधं दिब्बसोतं, परिचित्तविजाननं।
पुब्बेनिवासानुस्सति, दिब्बचक्खू ति पञ्चधा" ॥

एक होकर अनेक हो जाना, अनेक होकर पुनः एक होना, जल में चलना, पृथ्वी में जल की भाँति गोता लगाना, आकाश में उड़ना आदि आश्चर्यजनक कार्य इद्धिविध कहलाते हैं। इसे इद्धि भी कहा जाता है।

दिव्यश्रोत्र के लाभ से उसे एक ऐसी श्रवण शक्ति की प्राप्ति होती है, जिसके सहारे वह दिव्य तथा मानुषिक समस्त प्रकार के निकट एवं दूरवर्ती शब्दों को सुन लेता है।

परचित्तविजाननशक्ति द्वारा वह अन्य मनुष्यों के चित्त को जान लेता है। पुब्बेनिवासानुस्सति के सहारे वह अनेक संवर्त विवर्त तक की अपने पूर्व जन्म की बातें पूर्ण विवरण के साथ जान लेता है।

इसी प्रकार दिव्य चक्षु से वह विभिन्न सत्त्वों को कर्मानुसार हीन या प्रणीत गति तथा योनि में उत्पन्न होते तथा मृत्यु को प्राप्त करते देखता है (अभि० सं० १६६-६७)।

अभिञ्ञापादक-झान—अभिञ्ञा नामक प्रज्ञाविशेष की प्राप्ति के लिए कुछ पूर्वभूत उपलब्धि की आवश्यकता होती है। वह है रूपावचर पञ्चम ध्यान की स्थिति। इस ध्यान की प्राप्ति के अनन्तर ही योगावचर अभिज्ञा की उपलब्धि करता है। इस दृष्टि से यह पंचम ध्यान अभिज्ञा का पाद या आधार समझा जाता है—"पञ्चमं झानं अभिञ्ञाय पादभूतत्ता पादकपंचमज्झानं" ति वुच्चति (न० नी० टी० १६६)।

अरूपी देवता (अरूपिनो देवा)—अरूपावचर लोक के ब्रह्मा को अरूपी देवता कहा जाता है। अरूप का अर्थ है रूप अर्थात् भौतिक काय से रहित। ये देवता भौतिक काय से रहित केवल विज्ञानमय होते हैं। इनके व्यक्तित्व में चक्खुवत्थु, सोतवत्थु आदि छ वत्थुओं में कोई नहीं रह जाते हैं, न कोई रूपकलाप ही—"अरूपलोके सब्बानि पि न संविज्जन्ति"। इसलिए इनके स्वरूप आकार आदि के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जाता है। ये सूक्ष्म चित्तवाले होते हैं। जिस प्रकार अरूप-समाधि में चित्त चाञ्चल्यरहित हो सूक्ष्मता को प्राप्त होता है, उस प्रकार का चित्त इन देवों को स्वभावतः उपलब्ध है।

अरूपी देवता चार प्रकार के होते हैं—यथा–आकासानञ्चायतनदेव, विञ्ञाणानञ्चायतनदेव, आकिञ्चञ्ञायतनदेव तथा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनदेव। इनका निवास उक्त नाम की चार अरूप भूमियों में होता है, जो रूपावचर देवलोक के ऊपर तथा अजटाकाश के नीचे स्थित हैं, (ध० सं० २८१, अभि० सं० ८८)।

आनापानसति—एक ध्यान प्रक्रिया का नाम है, जिसके अनुसार अपने श्वास-प्रश्वास पर ही चित्त को एकाग्र करने को कहा गया है। इसका अभ्यास महाफलप्रद बतलाया गया है।

ध्यान का अभीप्सु किसी अरण्य, वृक्षमूल या शून्य गृह में जा आसनमार शरीर को सीधा धारण कर, स्मृति को सम्मुख कर बैठता है। वह देखता है कि उसके श्वास बाहर निकल रहे हैं तथा पुनः आ रहे हैं। श्वासों के ऐसे आन (ऊर्ध्वगमन) एवं अपान (अधोगमन) पर ही वह अपने चित्त को एकाग्र करता है। "वह स्मृतिमान् हो श्वास को छोड़ता है तथा स्मृतिमान् हो श्वास को लेता है। जब वह लम्बी श्वास छोड़ता है, तो जानता है कि वह लम्बी श्वास छोड़ रहा है। पुनः लम्बी श्वास लेते हुए वह स्मृति-सम्पन्न रहता है कि वह लम्बी श्वास ले रहा है" आदि (म० नि० २,१०५-६)। इस प्रकार श्वासों पर चित्त के स्थिर हो जाने के कारण उसका चाञ्चल्य समाप्त हो जाता है तथा वह शनैः शनैः एकाग्र हो उठता है।

आसव (आश्रव)—चित्तमल का नाम आसव है। व्रण से पूय आदि के सदृश चक्षु-श्रोत्रादि से सर्वदा श्रवित होने के अर्थ में आश्रव कहलाता है—"आसवन्ती ति आसवा, चक्खुतो.....मनतो पि सन्दति पवत्तन्ती ति वुत्तं" (अ० सा० ४१) "वणतो वा विस्सन्दमानयूसा विय चक्खादितो विसयेसु विसन्दनतो आसावा" (विभा० १८७)। अथवा मदिरादि के समान मादकता उत्पन्न करने के अर्थ में भी आसव कहलाता है—"चिरपारिवासियट्ठेन मदिरादयो आसवा विया ति पि आसवा" (अ० सा० ४१)।

आसव चार प्रकार के होते हैं। यथा—कामासव, भवासव, दिट्ठासव तथा अविज्जासव। वासना अथवा पञ्चेन्द्रियजनित सुख के प्रति आसक्ति को कामासव कहते हैं। रूपलोक एवं अरूपलोक में उत्पन्न होने की इच्छा को भवासव कहते हैं। ध्यानादि की तृष्णा, शाश्वत उच्छेद दृष्टियों के प्रति अनुराग भी यहाँ संगृहीत है। दीघनिकाय के ब्रह्मजाल-सुत्त में कथित बासठ मिथ्या-दृष्टियां ही दिट्ठासव हैं। चार आर्यसत्य, पूर्वान्त, अपरान्त, पूर्वान्तापरान्त एवं प्रतीत्यसमुत्पाद के अज्ञान को अविज्जासव कहा जाता है। (विभा० १८७, ध० सं० २४७)।

उपोसथंगानि—बौद्ध शासन में उपोसथ का प्रमुख स्थान है। यह प्रत्येक महीने में दो बार अमावस्या तथा पूर्णिमा को मनाया जाता है। उक्त दिवस को एक सीमा के अन्तर्गत रहने वाले भिक्षु एक निश्चित उपोसथागार में एकत्र हो विशुद्धि ज्ञापन कर 'पातिमोक्ख' के नियमों का संगायन करते हैं।

उपोसथ के दिन गृहस्थ भी उपवासादि कर परिशुद्ध हो आठ शीलों का पालन करते हैं। ये आठ शील ही उपोसथ के आठ अंग कहे जाते हैं। भगवान् ने उपोसथ के प्रसंग में गृहस्थों के द्वारा पालनीय इन आठ उपोसथांगों का विधान करते हुए इस प्रकार कहा है—

"पाणं न हञ्ञे न चदिन्नमादिये।
मुसा न भासे न च मज्जपो सिया॥
अब्रह्मचरिया विरमेय मेथुना।
रत्तिं न भुञ्जेय्य विकाल-भोजनं॥
मालं न धारे न च गन्धमाचरे।
मञ्चे छमायं व सयेथ सन्थते॥
एतं हि अट्ठङ्गिकमाहुपोसथं।
बुद्धेन दुक्खन्तगुना पकासितं" ॥ (अं० नि० ३-३५१)

किलेस—चित्त को क्लिष्ट करने वाले धर्मों को किलेस (क्लेश) कहा जाता

है—"चित्तं किलिस्सति उपतप्पति, बाधियति वा एतेही ति किलेसा" (विभा० १९१)। ये दस हैं। यथा—१. लोभ (दूसरों की वस्तु को प्राप्त करने की तृष्णा), २. दोस (परविनाश चिन्ता), ३. मोह (चार आर्यसत्य, पूर्वान्त अपरान्त तथा प्रतीत्यसमुत्पाद का अज्ञान), ४. मान ('मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं समान हूँ' आदि प्रकार का अस्मिमान), ५. दिट्ठि ('लोक शाश्वत है, लोक अशाश्वत है, लोक अन्तवान् है, लोक अनन्त है' आदि प्रकार की मिथ्या धारणायें), ६. विचिकिच्छा (बुद्ध, धर्म, संघ, पूर्वान्त, अपरान्त, प्रतीत्यसमुत्पन्न भाव में संशय), ७. थीन (चित्त की अकर्मण्यता), ८. उद्धच्च (चित्त की भ्रान्तता), ९. अहिरि (आत्मलज्जा का अभाव), १०. अनोतप्प (लोकलज्जा का अभाव)—ध० सं० २७०-७३, अभि० सं० १९१।

किलेसकाम—चित्त को क्लिष्ट करने वाले लोभादि दस धर्मों को क्लेश कहते हैं। इनके प्रति आसक्ति का नाम किलेसकाम है। यहां क्लेश शब्द से इन दस क्लेशों के अतिरिक्त अन्य अकुशल धर्म भी अभिप्रेत हैं—"किलेसकामेहि सब्बाकुसलेहि वा" (अ० सा० १३५)।

गन्धब्ब (गन्धर्व)—यह एक देव जाति का नाम है। इनका स्थान मनुष्य से ऊपर तथा देवताओं में सबसे नीचे समझा जाता है (दी० नि० २, १५९)। कहीं-कहीं इनका उल्लेख असुर तथा नागों के साथ किया गया है (अं० नि० १,३०८)। महासमयसुत्त (दी० नि० २·१९१) से प्रकट होता है कि पूर्व दिशा के लोकपाल धतरट्ठ गन्धर्वों के राजा हैं। इससे वे चातुमहाराजिकदेवलोक के निवासी कहे जा सकते हैं।

गन्धर्व ऋद्धिसम्पन्न होते हैं। वे इच्छानुसार मनुष्य एवं देवलोक में विचरण करते हैं। कई गन्धर्व देवराज शक्र की सेवा में देखे जाते हैं। मातली शक्र का सारथी है। पञ्चशिख गायक का कार्य करता है। वह अपनी वीणा के मधुर स्वर से शक्र का मनोरंजन करता है। सुरियवच्चसा नर्त्तकी का काम करती है। इसके विपरीत उनके विध्वंसक कार्य भी देखे जाते हैं। कुछ ऐसे भी गन्धर्वों का उल्लेख है, जो ध्यानरत भिक्षु एवं भिक्षुणियों को विभिन्न प्रकार की बाधायें उपस्थित करते हैं (दी० नि० ३,१५६)।

पहरादसुत्त (अं० नि० ३,३०८) में वे महासागर निवासी कहे गये हैं। उनका शरीर विशाल तथा भयावह होता है। दोणसुत्त (अं० नि० २,४१) के अनुसार वे आकाश में रहने वाले प्राणी हैं। अन्यत्र उन्हें स्थलवासी कहा गया है। इस प्रकार जल, स्थल, आकाश एवं देवलोक में निवास की दृष्टि से उनके चार प्रकार हो सकते हैं।

घटीकारब्रह्मा—यह एक रूपावचर ब्रह्मा का नाम है, जो अविहा ब्रह्मलोक में रहते हैं। पालि-साहित्य से प्रकट होता है कि इन्हें बुद्ध में अटल श्रद्धा थी। इन्होंने बुद्धोपदिष्ट पथ पर चलते हुए अनागामी पद की प्राप्ति की थी। बुद्ध या बोधिसत्त्व की आवश्यकताओं की पूर्ति में ये सदा लगे रहते थे। जब बोधिसत्त्व प्रव्रज्या ले हिमालय की पादभूमि में पहुँचे, तो उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि उनके बहुमूल्य वस्त्र श्रमण के अनुरूप नहीं हैं। घटीकार ब्रह्मा ने तत्क्षण उनकी मनोदशा को जान 'समणपरिक्खार' ले वहाँ उपस्थित हो उन्हें प्रदान किया। बुद्ध, धर्म एवं संघ के लिए उनकी सेवाओं का उल्लेख अन्य सूत्रों में भी पाया जाता है। (सं० नि० १,३३ ५७-५९; म० नि० २,२७१-८०, जा० १,६५; नि० क० १६२)।

चातुमहाराजिकदेव—कामावचर भूमि के प्रथम देवलोक को चातुमहाराजिकलोक कहते हैं। इसके निवासी चातुमहाराजिक देवता कहे जाते हैं। यह मनुष्यलोक के ऊपर तथा तावतिंसलोक के नीचे बतलाया जाता है। इसकी व्यवस्था एवं शासन चार देवों द्वारा होता है, जो चार लोकपाल या दिग्पाल कहे जाते हैं। वे हैं—धतरट्ठ विरुल्हक, विरुपक्ख तथा वेस्सवण्ण। वेस्सवण्ण को कुबेर भी कहा जाता है। धतरट्ठ पूर्व दिशा के पालक हैं, तथा गन्धर्वों पर शासन करते हैं। विरुल्हक दक्षिण दिशा के लोकपाल हैं, तथा कुम्भण्डों पर शासन करते हैं। पश्चिम दिशा विरुपक्ख द्वारा रक्षित होती है। वे नागों के अधिपति कहे जाते हैं। इसी प्रकार यक्षों के अधिपति कुबेर उत्तर दिशा के लोकपाल हैं। इस सम्पूर्ण देवलोक के राजा शक्र हैं।

चारों लोकपाल बड़े ही उदार चित्त वाले हैं। सर्वदा मनुष्यमात्र के कल्याण में लगे रहते हैं। वे मनुष्य तथा देवलोक में शांत एवं सुखद वातावरण बनाये रखने में तत्पर रहते हैं। वे प्रति मास अष्टमी के दिन मनुष्य लोक में विचरण करते हैं, तथा यहाँ के पुण्यरत मनुष्यों के सत्कर्मों की सूचना तावतिंस भवन की सुधम्मसभा में देते हैं। वहाँ वे उक्त क्रम से बैठ शक्र का सलाहकार का काम करते हैं। उन्हें बुद्ध में श्रद्धा है, तथा उनकी सेवा तथा धर्मप्रसार में अभिरुचि है। इनके अतिरिक्त खिड्डापदोसिका, मनोपदोसिका, सीतवलाहका, उण्हवलाहका, सुरियदेवपुत्त, चन्दिमदेवपुत्त, पज्जुन्न आदि इस लोक के देवता हैं। दी० नि० १,१९, १८६; २, ८६, १८९, १९२, २०-२, २५५; ३, १५०-५३, १६२; म० नि० १,२५२-५३, ३१३; २, ४५९; सं० नि० १, ४८, ३, ४६९-७०; अं० नि० १, १३१-३३; ३, २८४, ३५०)।

चारिका—चारिका शब्द की व्युत्पत्ति 'चर' धातु से होती है, जिसका

अर्थ चलना या विचरण करना है। यह शब्द सामान्य विचरण से भिन्न "बहुजनहिताय बहुजनसुखाय" की भावना से प्रेरित होकर एक बड़ी भिक्षु-मण्डली के साथ भगवान् बुद्ध के ग्राम, निगम, जनपदों में विचरण के लिए विशेषतः प्रयुक्त होता है। बुद्ध के जीवन में चारिका का प्रमुख स्थान देखा जाता है। सम्बोधि लाभ के अनन्तर पैंतालीस वर्षों तक वे लगातार विचरण करते हुए धर्मोपदेश करते रहे। उनकी चर्या से प्रकट होता है कि उन्होंने कभी भी यह नहीं चाहा कि लोग उनके निकट धर्मोपदेश के लिए आवें, बल्कि उन्होंने स्वयं बड़े-बड़े नगरों तथा सुदूर के गाँव, अरण्य, पर्वत तथा नदियों की कछारों में स्थित झोपड़ियों में वास करने वाले श्रद्धालु व्यक्तियों के निकट जा उनके दुःख निवारणार्थ उपदेश किया। भिक्षु भी उनके आदेशानुसार चारिका रत रहते थे।

बुद्ध की चारिका दो प्रकार की होती थी—तुरित-चारिका तथा अतुरित-चारिका। तथागत प्राणिमात्र की मनोदशा को जानते थे। जब वे किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में ऐसा जान जाते थे कि उसके समस्त चित्तमल धुल गये हैं तथा धर्म बीज की उद्भावना की सारी परिस्थितियाँ अनुकूल हो उठी हैं, तो उसको उपदेश करने के लिए तुरितचारिका प्रारम्भ करते थे। इस चारिका क्रम में वे एक-एक क्षण में कई योजनों की दूरी समाप्त कर देते थे। आलवक-यक्ष तथा अङ्गुलिमाल के लिए एक-एक क्षण में उन्होंने तीस-तीस योजन की दूरी समाप्त की थी। महाकाश्यप एवं धनिय के पक्ष में भी ऐसी बातें कही जाती हैं।

अतुरितचारिका सामान्य गति से होती थी। वे प्रतिदिन भिक्षु मण्डली के साथ एक योजन या आधे योजन तक चलते हुए मार्गस्थित जनवर्ग को उपदेश देते थे।

चारिका के मंडलगत भेद की भी चर्चा प्राप्त है। कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध आवश्यकतानुसार महामंडल, मध्यमंडल तथा अन्तमंडल नामक तीन क्षेत्रों में भ्रमण करते थे, जो क्रमशः नव सौ योजन, आठ सौ योजन तथा सात सौ योजन के कहे जाते हैं।

वर्षावास की समाप्ति पर आश्विन पूर्णिमा के दिन पवारणा कर कार्त्तिक प्रतिपदा के दिन भगवान् भिक्षु-संघ सहित महामंडल में चारिका के लिए निकलते थे, तथा नव सौ योजन की दूरी नव मासों में सम्पन्न करते थे। यह उनकी महामंडल चारिका कहलाती है।

कभी-कभी वर्षोपगत भिक्षुओं का समथ विपश्यना का अभ्यास वर्षावास की समाप्ति अवधि तक परिपक्व नहीं हो पाता था। ऐसी दशा में वर्षावास की अवधि एक मास तक बढ़ा दी जाती थी तथा कार्तिक पूर्णिमा को पवारणा सम्पन्न होती थी। ऐसी दशा में मार्गशीर्ष की प्रतिपदा को बुद्ध भिक्षु-संघ सहित

मध्यमण्डल में चारिका के लिए प्रवृत्त होते थे। इसके आठ सौ योजन के क्षेत्र को आठ महीनों में समाप्त कर वे पुनः वर्षोपगत होते थे। उनकी यह चारिका मध्य-मण्डल-चारिका नाम से अभिहित है। कभी-कभी चार महीनों तक वर्षावास करते भी भिक्षुओं का ध्यानाभ्यास परिपक्व नहीं हो पाता था। ऐसी दशा में वर्षावास की अवधि एक महीने के लिए और बढ़ा दी जाती थी। इसकी समाप्ति पर मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के दिन पवारणा कर पौष्य की प्रतिपदा को वे भिक्षु-संघ-परिवृत अन्तमण्डल में चारिका के लिए निकल पड़ते थे। इसके सात सौ योजन के क्षेत्र में सात महीनों तक विचरण करते हुए पुनः वर्षोपगत होते थे। उनकी यह चारिका अन्तमंडलचारिका कहलाती है। (सु० वि० २३९-४१)।

चीवर—भिक्षु का काषाय परिधान जो कई वस्त्र खण्डों से बना रहता है, चीवर कहलाता है। चीवर शब्द वस्त्र के अर्थ में कैसे रूढ़ हो चला इसकी सुगम प्रतीति नहीं हो पाती है। 'च्यादीहि ईवरो' (उणादि) से प्राप्त व्युत्पत्ति भी इस अर्थ का गमक नहीं होती है। संभवतः यह चीर शब्द से व्युत्पन्न है।

भिक्षुओं के लिए साधारणतः तीन चीवर धारण करने का विधान है। वे हैं—अन्तरवासक, उत्तरासंग तथा संघाटी। अन्तरवासक नीचे का वस्त्र है, जो घुट्ठी से चार अंगुल ऊपर तक लटका रहता है। उत्तरासंग पाँच हाथ लम्बा तथा चार हाथ चौड़ा होता है। यह एक कन्धे को ढके हुए चादर सा शरीर पर रखा जाता है। संघाटी भी उत्तरासंग के माप की दुहरी सिली हुई रहती है। यह उत्तरासंग के ऊपर कन्धे पर रखी रहती है।

चीवर को देखने से प्रकट होता है कि वह कपड़े को छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में काट कर बनाया जाता है। उसमें कई छोटे-बड़े आयत-सा देखे जाते हैं। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध ने मगध के खेतों को देख उन्हीं की आकृति का चीवर बनाने का विधान किया था—

"अद्दसा खो भगवा मगधखेत्तं अच्छिबन्धं पालिबन्धं मरियादबन्धं सिंघाटक-बन्धं, दिस्वान आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि। उस्सहसि त्वं, आनन्द, भिक्खूनं एवरूपानि चीवरानि संविदहितुं" ति (म० व० ३०३)।

चुति (च्युति)—प्रत्युत्पन्नभव की परिसमाप्ति को च्युति कहा जाता है—'चुती ति निब्बत्तभवतो मुञ्चनं'। नामरूप अभिसंज्ञक सत्त्व के वर्तमान जीवन की परिसमाप्ति चुति कृत्य है—"निब्बत्तभवतो परिगलनं चुतिकिच्चं"। कहा जाता है कि मनुष्य अपने जीवन काल में विविध प्रकार का कुशल एवं अकुशल कर्म करता है। कर्मानुसार जीवन के अन्तिम क्षण में कम्म, कम्मनिमित्त, गतिनि

मित्त संज्ञक किसी एक आलम्बन के सहारे चुतिचित्त उत्पन्न होता है। चित्तप्रवृत्ति मन्द हो जाती है। चुतिचित्त के निरूद्ध होने के अनन्तर प्रतिसन्धिचित्त उत्पन्न होता है। चुति कर्मफल के अनुसार होती है। अतः इस कृत्य को सम्पादन करने वाले दो उपेक्खा-सहगत सन्तीरण, आठ महाविपाक, नव महग्गतविपाक नामक उन्नीस विपाक चित्त होते हैं। अपायभूमि, कामसुगतिभूमि, रूपभूमि तथा अरूपभूमि नामक चार वासभूमियों से च्यवन होने की दृष्टि से चुति के चार भेद कहे जाते हैं।

तिलक्खण—विश्व के समस्त संस्कृत धर्म तीन लक्षणों से युक्त हैं। वे तीन लक्षण हैं—अनित्य, अनात्म्य एवं दुःख। कोई भी संस्कृत पदार्थ नित्य नहीं है। वस्तु का स्वरूप सरित प्रवाह सदृश है, जिसमें प्रतिक्षण ध्वंस एवं निर्मिति का क्रम लगा रहता है। किसी भी पदार्थ में आत्मा नामक नित्य सद्वस्तु नहीं है। सभी धर्म दुःखस्वरूप हैं। धर्मों के ऐसे तीन लक्षणों को तिलक्खण कहा जाता है।

तिस्सो विज्जायो—पूर्वनिवास-अनुस्मृति, दिव्यचक्षु तथा आश्रवक्षय-ज्ञान को तीन विद्यायें कहा जाता है। प्रथम विद्या के सहारे साधक अपने अनेक पूर्वजन्मों को पूर्ण विवरण सहित जानता है। द्वितीय से कर्मानुसार सत्त्वों को विविध गति योनियों में उत्पन्न होते तथा मरते देखता है। तृतीय विद्या द्वारा चार आश्रवों के क्षय को जान लेता है (म० नि० २,३३१-३२)।

तुसितपुर—यह एक कामावचर देवलोक का नाम है। स्थविरवादी बौद्ध परम्परा के अनुसार छब्बीस देवलोक बतलाये गये हैं, जो क्रमशः एक-एक के ऊपर स्थित हैं। इस क्रम में तुसितदेवलोक (तुसितपुर) का स्थान चतुर्थ है। यह यमदेवलोक के ऊपर तथा निम्मानरतिदेवलोक के नीचे स्थित है।

यह देवलोक अति पवित्र एवं रमणीय स्थान समझा जाता है। सभी बुद्ध बोधिलाभ के पूर्व यहां जन्म लेते हैं। उनका अनेक जन्मों का बोधिसत्त्व जीवन यहीं समाप्त होता है। इसकी समाप्ति के कुछ क्षण पूर्व दससहस्रलोकधातु के देवता यहाँ एकत्र हो बोधिसत्व से मनुष्य के रूप में जन्म लेने की याचना करते हैं। बोधिसत्व बोधिलाभ की संभावना तथा अन्यान्य विलोकनों को देख मनुष्यलोक में जन्म लेते हैं। गौतम बुद्ध के सम्बन्ध में भी ऐसा वर्णन उपलब्ध है। कहा जाता है कि बोधिसत्त्व के माता-पिता अर्हत्त्व लाभ के पूर्व मरणोपरान्त इस देवलोक में जन्म लेते हैं। कुशल कर्मों के फलस्वरूप अन्य सत्पुरुष भी लोकलीला समाप्त कर यहां उत्पन्न होते हैं। ऐसी भी परम्परा है कि अनागत बुद्ध आर्य मैत्रेय अभी नाथदेव के नाम से तुसितलोक में विद्यमान हैं।

तुसितलोक के निवासी देवगण बड़े ही प्रसन्नचित्त एवं सन्तुष्ट प्रकृति के होते हैं—"तुट्ठपहट्ठा ति तुसिता" (विभ० अ० ५२८)। वे एक लम्बी अवधि तक वहीं सुखपूर्वक जीवन यापन करते हैं। उनकी जीवन अवधि के सम्बन्ध में बतलाया जाता है कि मनुष्यलोक के चार सौ वर्ष उनके एक दिन के बराबर होते हैं। इस गणनाक्रम से वे चार हजार वर्षों तक जीते हैं। उन्हें त्रिरत्न में दृढ़ श्रद्धा है। वे मनुष्यलोक में आकर बुद्ध के उपदेशों को सुनते हैं, तथा कुशल कर्मों में रत मनुष्यों को देख बड़े प्रसन्न होते हैं। इस लोक के राजा का नाम सन्तुसित बतलाया जाता है। (अं० नि० १,१९४, १९८; २, १३६; ३, ३४१, ३५०; दी० नि० २, १९५; म० नि० २, ४६०; महा० वं० ३२)।

दसबल—दस बलों से उपेत होने के कारण तथागत को दसबल कहा जाता है। पटिसम्भिदामग्ग में इन दस बलों का उल्लेख इस प्रकार है—

(१) स्थान को स्थान के रूप में तथा अस्थान को अस्थान के रूप में यथार्थतः जानना।
(२) अतीत, वर्तमान तथा अनागत के कर्मों को स्थान हेतु एवं विपाक की दृष्टि से सम्यक् प्रकार से जानना।
(३) सर्वत्रगामी प्रतिपदा को यथावत् जानना।
(४) अनेक वासभूमियों से युक्त समस्त ब्रह्माण्ड को जानना।
(५) विविध स्वभाव वाले सत्त्वों को जानना।
(६) विभिन्न सत्त्वों की इन्द्रियों के परत्व अपरत्व को जानना।
(७) ध्यान, विमोक्ष, समाधि तथा समापत्ति के संक्लेश, व्यवदान एवं उत्थान को जानना।
(८) पूर्ण विवरण के साथ अपने अनेक जन्मों का स्मरण करना।
(९) दिव्य चक्षु से सत्त्वों को उत्पन्न होते तथा मृत्यु को प्राप्त करते देखना।
(१०) आश्रवों के क्षय कर आश्रव रहति चित्तविमुक्ति तथा प्रज्ञाविमुक्ति का इसी जीवन में साक्षात्कार कर विहार करना।

दससहस्स चक्कवाल—पालि-साहित्य में बहुसंख्यक चक्रवालों का उल्लेख है। उनकी चर्चा करते हुए बहुलतया सहस्सचक्कवाल, दससहस्सचक्कवाल आदि शब्द प्रयुक्त हैं। उन प्रसङ्गों में सभी चक्रवालों का पूर्ण विवरण नहीं प्राप्त होता है। इससे केवल इतना ही ध्वनित होता है कि बुद्ध के सामने एक बृहद् जगत् का चित्र था। जो हो, अङ्गुत्तरनिकाय के चूळनिकसुत्त (१,२१०) में जो अल्प सामग्री मिलती है, उसके आधार इस प्रकार कहा जा सकता है।

"जहाँ तक सूर्य एवं चंद्रमा की गति है, तथा जहाँ तक प्रकाश का प्रवेश है, उसी के मध्य ये हजारों चक्रवाल स्थित हैं। सभी चक्रवाल वृत्ताकार हैं, तथा अजटाकाश में अवस्थित हैं। प्रत्येक चक्रवाल में एक चंद्रमा, एक सूर्य, एक पृथ्वी, एक सिनेरु पर्वत, चार द्वीप (जम्बूद्वीप, अपरमोयान, उत्तर-कुरु, पूर्व विदेह), चार दिग्पाल, छः देवलोक एवं बीस ब्रह्मलोक हैं।" इनके अतिरिक्त पृथ्वी के नीचे असुरलोक, प्रेतलोक, तिर्यक् लोक तथा नरक नामक चार लोक हैं। उनके नीचे क्रमशः जलमंडल, वायुमंडल तथा अजटाकाश है। ऊपर की ओर जहाँ अन्तिम ब्रह्मलोक से बौद्ध जगत् का पर्यवसान होता है, वहाँ से अजटाकाश प्रारम्भ होता है। इस प्रकार नीचे एवं ऊपर दोनों ओर से प्रत्येक चक्रवाल अजटाकाश से वेष्ठित हैं। इन्हीं एकतीस लोकों से एक चक्रवाल की कल्पना देखी जाती है। ये सभी लोक एक-एक के ऊपर क्रम से अवस्थित कहे जाते हैं।

दस सील—भगवान् बुद्ध ने सामणेरों की प्रव्रज्या का विधान करते हुए उनके द्वारा पालनीय दस नियमों की प्रज्ञप्ति की है, जो दस शिक्षापद या दस सील कहलाते हैं। वे इस प्रकार हैं :—

१. जीवहिंसा से विरति—'पाणातिपाता वेरमणी'।
२. चोरी से विरति—'अदिन्नादाना वेरमणी'।
३. अब्रह्मचर्य से विरति—'अब्रह्मचरिया वेरमणी'।
४. असत्य कथन से विरति—'मुसावादा वेरमणी'।
५. मद्यपान से विरति—'सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठाना वेरमणी'।
६. असमय भोजन से विरति—'विकालभोजना वेरमणी'।
७. नृत्यगानादि से विरति—'नच्चगीतवादितविसूकदस्सना वेरमणी'।
८. मालागन्धादिधारण से विरति—'मालागन्धविलेपनधारणमण्डनविभूसनट्ठाना वेरमणी'।
९. उच्चशय्या महाशय्या से विरति—'उच्चसयनमहासयना वेरमणी'।
१०. सोना-चाँदी ग्रहण से विरति—'जातरूपरजतपटिग्गहणा वेरमणी'।

(म० व० ८६-८७)

गृह में रहते हुए भी श्रद्धालु एवं आध्यात्मतः समुन्नत गृहस्थ ऊपर के आठ शीलों का पालन करते हैं। उस दृष्टि से प्रथम आठशील अष्ट-शील कहलाते हैं। श्रामणेरों के लिए दसों का पालन अनिवार्य है—'अनुजानामि, भिक्खवे, सामणेरानं इमानि दस सिक्खापदानि, इमेसु च सामणेरेहि सिक्खितुं ति (म०व०८७)।

द्वेवाचिकउपासका—संघ-निर्माण के पूर्व केवल बुद्ध एवं धर्म की शरण जाने से ही उपासकत्व की प्राप्ति होती थी। ऐसी कुशल अलिभाषा सम्पन्न

पुरुष केवल 'बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि' कह कर शरण की याचना करते थे। इनके द्वारा शरणागमन के दो वचनों के प्रयुक्त होने के कारण वे द्वेवाचिक उपासक कहलाते थे। तपस्सु तथा भल्लिक नामक दो वणिक बन्धुओं ने सर्वप्रथम दो वचनों से उपासकत्व ग्रहण कर द्वेवाचिक उपासक कहलाये।

नन्दनवन—यह तावतिंस देवलोक में एक अत्यन्त सुन्दर उद्यान हैं। देवराज शक्र तथा अन्यान्य देव इस उद्यान में भ्रमण कर मनोरञ्जन करते हैं। यह विविध प्रकार के पुष्पों से सुसज्जित लतावितान से परिपूर्ण है। मध्य में पारिछत्तक वृक्ष है, जो अपनी अपूर्व शोभा तथा सुन्दरतम सुगन्ध भरे पुष्पों के लिए विख्यात है। इसकी ऐसी गरिमा को लक्ष्य कर बुद्ध ने कहा है कि—'जिसने नन्दनवन को नहीं देखा है, वह वास्तविक सुख को नहीं जान सकता है (सं०नि० १,७)। ऐसा भी कहा जाता है कि प्रत्येक देवलोक में एक नन्दनवन है।

नाग—नागों का वर्णन एक देवमनुष्य-मिश्रित जाति के रूप में पाया जाता है। इनमें कुछ लक्षण मनुष्य के, कुछ देवता के तथा कुछ विवेकहीन पशु के पाये जाते हैं। ये अपार बल एवं ऋद्धि सम्पन्न होते हैं। इन्हें सर्प के समान शरीर तथा फन होता है। इच्छानुसार ये मनुष्य का रूप धारण कर लेते हैं। भारत में प्राचीनकाल से नाग एक देवता के रूप में पूजे जाते हैं, जिन्हें दूध, पायस, लावा, माँस, मदिरा आदि का भोग दिया जाता है।

महावग्ग (९०) में नाग के मनुष्य रूप में प्रव्रज्या लेने का उल्लेख है। चुल्लवग्ग (१९८) में इनके चार राजवंश—विरुपक्ख, एरापथ, छब्यापुत्त तथा कण्हागोतम की चर्चा है। जातकों में मनुष्य कन्या के साथ नागराजकुमार के विवाह की कथाएँ भी मिलती हैं (जा० ६,१५९)। ऐसे तथ्यों के आधार पर कुछ इतिहासकारों ने इन्हें अनार्य जाति का मनुष्य बतलाया है। (ना० कु० च० भूमिका)। पालि-साहित्य में उपलब्ध विवरण के अनुसार ये मनुष्यलोक (जल एवं स्थल), देवलोक तथा पाताललोक में रहते हैं। महासमयसुत्त (दी० नि० २,१९३) के अनुसार उन्हें बुद्ध में अपार श्रद्धा देखी जाती है। वैशाली, तच्छक, कम्बल, अस्वतर, प्रयाग आदि स्थानों से आकर नागों ने बुद्ध की वन्दना की। विमुक्तिसुख में लीन बुद्ध को मुचलिन्द नाग द्वारा ऋतु-प्रकोप से बचाने का प्रसङ्ग (म० व० ५) उक्त धारणा का पोषक प्रतीत होता है। अन्यत्र उरुवेल काश्यप के आश्रम में बुद्ध द्वारा नागदमन की कथा (म० व० २६) भी उपलब्ध है। जातकों में नन्दोपनन्द, एरकपुत्त, अरवाल, महाकाल आदि ऋद्धिमान् नागों के नाम मिलते हैं।

निब्बान (निर्वाण)—बौद्ध परम्परा के अनुसार जीवन की चरम

उपलब्धि निर्वाण की प्राप्ति है। यही भगवान् बुद्ध के धर्म विनय का एकमात्र रस तथा ब्रह्मचरियवास का सर्वोत्कृष्ट फल है। यह एक सवंमल विरहित अत्यन्त परिशुद्ध अवस्था है, जिसके अधिगम से जातिजराव्याधिमरणसमन्वित भवचक्र सदा के लिए भग्न हो जाता है तथा लोकोत्तर सुख की प्राप्ति होती है।

निब्बान की व्युत्पत्ति कई प्रकार से देखी जाती है। इसमें 'नि' उपसर्ग है, जो निषेध अर्थ का द्योतक है। 'वान' का अर्थ तृष्णा है। अतः वान अभिसंज्ञक तृष्णा का अशेष निरोध ही निब्बान है—'वानसङ्खाताय तण्हाय निक्खन्तत्ता निब्बानं' ति पवुच्चति।

निर्वाण दो प्रकार का होता है—'सउपादिसेस' तथा 'अनुपादिसेस'। पञ्चस्कन्ध को उपादि कहते हैं। इसमें क्लेश चोरों के समान छिपे रहते हैं। ब्रह्मचर्यवास के सहारे जब समस्त क्लेश नष्ट हो जाते हैं, तो ये पञ्चस्कन्ध तस्करनिहत चौर ग्राम सदृश परम शुद्ध रूप में अवशिष्ट रहते हैं। पञ्चस्कन्धों के इस अवस्था की प्राप्ति रूप जिस निर्वाण का लाभ होता है, उसे सउपादिसेसनिब्बान कहते हैं। इसे जीवनमुक्ति या अर्हत्व पद भी कहते हैं। पुनः जब इन पञ्चस्कन्धों का पर्यवसान हो जाता है और उस दशा में जिस निर्वाण की प्राप्ति होती है उसे अनुपादिसेस निब्बान कहते हैं।

निर्वाण के स्वरूप की चर्चा विविध रूपों में देखी जाती है। इसे एक भावरूप में चर्चित करते हुए—'निब्बानं परमं सुखं', 'सिवपदं', 'अमतं पदं', 'अनुत्तरं योगक्खेमं' आदि पदों से इसकी अभिव्यक्ति की गई है। निर्वाणलाभ से प्राप्त सुख से उत्कृष्टतर अन्य सुख नहीं है, ऐसे पद बहुलतया देखने को मिलते हैं—'लभति पीति पामोज्जं अमतं तं विजानतं', 'निब्बानसुखा परं नत्थि', इत्यादि।

दूसरी ओर निर्वाण के स्वरूप का प्रतिपादन 'निरोधो निब्बानं', 'तण्हाय असेसविरागनिरोधो मुत्ति', 'तण्हाय विप्पहानेन निब्बानं ति वुच्चति'—आदि पदों से करते हुए इसे एक अभावरूप जैसा कहा गया है।

अन्यत्र 'निर्वाण प्रदीपवत् बुझ जाना है', 'यह वायु से क्षिप्त अग्नि की अर्चि सदृश बुझ जाने के समान हैं', 'यह प्रज्वलित अग्नि की निर्वापित अवस्था-सा है' आदि पद भी इसे अभावात्मक या अनिर्वचनीय स्वरूपात्मक बतलाते हैं।

जो हो, इन स्वरूपगत वैविध्य को परमार्थतः अस्तिरूपात्मक दर्शाते हुए स्थविरवादी परम्परा सबल तर्कों से ऐसी स्थापना करती है कि निर्वाण एक एकान्ततः सुख स्वरूप भावात्मक अवस्था है—'अत्थेसा निब्बानधातु सन्ता सुखा पणीता, तं अनीतितो निरुपद्दवतो अभयतो खेमतो सन्ततो सुखतो साततो पणीततो सुचितो सीतलतो दट्ठब्बं'।

निर्वाण के ऐसे स्वरूप की स्थापना के अनन्तर उसकी अनुभूति का प्रश्न विवेच्य हो उठता है। अनुभूति का साधन एक स्कन्ध केवल विज्ञान स्कन्ध है। जब तक साधक सउपादिसेसनिब्बान की अवस्था में रहता है, तब तक विज्ञान-स्कन्ध के विद्यमान रहने के कारण इसकी अनुभूति समझी जा सकती है, पर जब अनुपादिसेसनिब्बान का लाभ होता है, तब इसकी अनुभूति कैसे होती है? उस समय तो पाँचों स्कन्धों के निरुद्ध हो जाने से अनुभूति का कोई साधन ही नहीं रह जाता है। ऐसी दशा में निर्वाण 'अमृत पद है', 'सुख स्वरूप है' आदि पदों से उसका निर्वचन करना आधारहीन प्रतीत होता है। स्थविरवादी परम्परा इसका स्पष्ट समाधान नहीं दे पाती हैं। सम्भवतः इसके स्वरूप निर्देशन में ऐसे काठिन्य का अनुभव करते हुए ही इसकी चर्चा इस प्रकार की गई है—

"खीणं पुराणं नव नत्थि सम्भवं, विरत्तचित्ता आयतिके भवस्मिं।
ते खीणबीजा अवरुल्हिछन्दा, निब्बन्ति धीरा यथायं पदीपो॥

× × ×

अच्ची यथा वातवेगेन खित्तो, अत्थं पलेति न उपेति संखं।
एवं मुनि नामकाया विमुत्तो, अत्थं पलेति न उपेति संखं॥

× × ×

अयोघनहतस्सेव जलतो जातवेदस्स,
अनुपुब्बुपसन्तस्स यथा न जायते गति।
एवं सम्मा विमुत्तानं कामबन्धोघतारिणं,
पञ्ञापेतुं गति नत्थि, पत्तो सो अचलं सुखं"॥

(दी० नि० १, ७४, १९०; २, १६७; म० नि० १, ३७५, ४०३; २, ११२-१३, १८०-८१, २०७, ४०२; सं० नि० ७३; सु० नि० ११५, ११८, १२०; थेर० गा० ३२, ६७, ७९, ९०, ९१, १३८, १७०, २२७, ३३३, ३६४, ३९६; थे० गा० १५, १६, १८, ३४, ६६, ७६, ८६, १०१, १०२, ११६, २१२, ४७६; म० व० १३; चु० व० ३५७; ध० प०; बु० व० ६; सु० व० ७; मि० प० ३४, ७२, २६३-६५, ३०४, ३०९, ३११, ३१६, ३१९; वि० म० ३५५)।

निरय (नरक)—बौद्ध जगत् व्यवस्था के अनुसार सबसे नीचे की वास-भूमि को निरय या नरक कहते हैं। यह उस स्थान का नाम है, जहाँ पापकर्मी विविध प्रकार की यातनाओं को भोग कर दुःखद जीवन व्यतीत करता है। यहाँ सुख का नाम भी नहीं है—'नत्थि एत्थ अयो सुखं' ति।

नरक मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं :—उष्णनिरय तथा शीतनिरय। उष्णनिरय के आठ प्रकार कहे गये हैं। यथा—

(१) सञ्जीव—यहाँ दुःखाभितप्त प्राणि को पुनः पुनः जीवित कर यातनाएँ दी जाती हैं।

(२) कालसुत्त—यहाँ काले वर्ण के विषाक्त सूत्र से पापकर्मी को काटा जाता है।

(३) संघात—यहाँ पापी को पर्वतीय चट्टानों पर पटका जाता है।

(४) रूरव—यहाँ व्यथा के कारण रुदन ही सुनाई पड़ता है।

(५) महारूरव—यहाँ सर्वदा दुःखार्त्तों की महारुदन ध्वनि सुनाई पड़ती है।

(६) तपन—यहाँ पापकारी को अग्निदाह से तप्त किया जाता है।

(७) पतापन—यहाँ भयङ्कर ज्वाला के बीच पापी सन्तप्त होता है।

(८) अवीचि—यहाँ एक साथ कई प्रकार की यातनाएँ दी जाती हैं। नरकों में सबसे दुःखद स्थान यही समझा जाता है। ये सभी नरक एक-एक के ऊपर स्थित बतलाये जाते हैं।

शीतनिरय के दस प्रकार कहे गये हैं (सं० नि० १,१५०)। वे हैं—अब्बुद, निरब्बुद, अहट्ट, अटट, अबब, कुमुद, सोगन्धिक, उप्पल, पुण्डरीक तथा पदुम। ये भी एक-एक ऊपर क्रम से स्थित हैं।

प्रत्येक नरक सुदृढ़ प्राचीरों से घिरे हैं। इन प्राचीरों से लगे चार प्रकार के कुण्ड होते हैं। वे हैं—कुक्कुल (अग्निकुण्ड), कुणप (शवकुण्ड), खुरमग्ग (तीक्ष्ण धार से युक्त मार्ग) तथा वेतरणी नदी। देवदूतसुत्त (म० नि० ३, २५७) में नरकों की एक दूसरी सूची पायी जाती है। इसमें गूथ, कुक्कुल, सिम्बलीवन, असिपत्तवन तथा खरोदकनदी के नाम आते हैं। जातकों में खुरधार, ककोल, सत्तिसूल आदि प्रकार के नरकों के नाम आते हैं। इनके नाम मात्र से ही इनके दुःखद स्थान होने की ध्वनि मिलती है।

निरोधसमापत्ति—निर्वाण-अधिगम-क्रम में निरोधसमापत्ति एक आध्यात्मिक उपलब्धि का नाम है, जिसमें चित्त चेतसिक की समस्त वृत्तियां पूर्णतः निरुद्ध हो जाती हैं। इस प्रकार चित्त प्रवृत्तिनिरोध को इस जीवन में ही प्राप्त कर विहार करना संभवतः निर्वाण का पूर्वास्वादन रूप है। इसका लाभ केवल अनागामी एवं अर्हत्त को ही होता है।

इस अवस्था में प्रवृष्ट होने के लिए साधक प्रथम ध्यानादि क्रम से पञ्चम ध्यान की प्राप्ति करता है। पुनः उक्त ध्यान से उठ इन ध्यानों से सम्बद्ध चित्तचेतसिकों के स्वरूप पर विचार करते हुए आकिञ्चञ्ञायतन ध्यान को प्राप्त

पारिभाषिक-शब्द-विवरण

(अकारादि क्रम से)

अट्ठ-समापत्ति—समाधि विषयक आठ प्रकार की उपलब्धियों को अट्ठ-समापत्ति कहा जाता है। वे हैं—चार रूप-ध्यान तथा चार अरूप-ध्यान।

चित्त स्वरूपतः चञ्चल है। वह अपनी द्रुत गति से सर्वदा यत्र तत्र गमन करते हुए विविध विषयों के साथ आसक्ति उत्पन्न करता है। ज्यों ज्यों आसक्ति बढ़ती जाती है, त्यों त्यों उसका प्रकृत प्रभापूर्ण रूप आगन्तुक क्लेशों से उपक्लिष्ट होता जाता है। ऐसा चित्त ही विविध प्रकार के दुःखों का कारण बनता है। इससे निर्वृति के लिए समाधि की आवश्यकता है।

विभिन्न विषयों से चित्त को हटा कर किसी एक विहित विषय पर एकाग्र करना ही समाधि है। इसे कुशलचित्त की एकाग्रता या चित्त-चेतसिकों का किसी एक आलम्बन पर आधान भी कहा गया है—"कुसलचित्तेकग्गता समाधि। एकारम्मणे चित्तचेतसिकानं समं सम्मा च आधानं ठपनं" ति वुत्तं (वि० म० ५७)। पटिसम्भिदामग्ग (५५) में इसे एकाग्रता, अविक्षेप, अनिञ्जन, सम्यक् एषणा आदि अर्थों में बतलाया गया है।

चित्त के एकाग्र होने में पाँच बाधक धर्म हैं, जो नीवरण कहलाते हैं। इनके प्रहाण हो जाने पर एकाग्रता के सहायक पाँच ध्यानांगों का उदय होता है। उनके उदय के साथ-साथ चित्त एकाग्र होने लगता है। चित्त को एकाग्र करने के लिए भगवान् बुद्ध द्वारा चालीस कर्मस्थानों (विषयों) का विधान किया गया है। वे हैं—दस कसिण, दस अशुभ, दस अनुस्मृति, चार आरुप्य, चार ब्रह्मविहार, एक संज्ञा तथा एक व्यवस्थान। समाधि का अभिलाषी योगावचर स्वतः या कल्याण मित्र भी सहायता से इनमें से किसी एक का चयन कर उस पर ध्यान करना प्रारम्भ करता है।

समाधि दो प्रकार की होती है—रूप-समाधि तथा अरूप-समाधि। जब किसी रूपवाले आलम्बन पर ध्यान प्राप्त होता है, तो उसे रूप-समाधि कहते हैं। रूपरहित विषय पर प्राप्त एकाग्रता का नाम अरूप-समाधि है।

रूप-समाधि की चार अवस्थायें हैं, जिन्हें चार ध्यान कहते हैं। वे हैं—प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान तथा चतुर्थ ध्यान। प्रथम ध्यान में पाँचों ध्यानांग—वितर्क, विचार, प्रीति, सुख एवं एकाग्रता बने रहते हैं। द्वितीय ध्यान में वितर्क एवं विचार अनुपस्थित हो जाते हैं,—केवल तीन ध्यानांग रह जाते हैं। तृतीय ध्यान में प्रीतिध्यानांग भी हट जाता है।

केवल सुख एवं एकाग्रता के साथ इस ध्यान की प्राप्ति होती है। चतुर्थ ध्यान में सुख के स्थान पर उपेक्षा आ जाती है तथा उपेक्षा एवं एकाग्रता नामक दो ध्यानांगों से युक्त इस ध्यान की उपलब्धि होती है। रूप-समाधि की इन चारों ध्यानों का आलम्बन एक रहता है, केवल ध्यानांगों का ही समतिक्रमण होता है। अभिधर्म के अनुसार पांच रूपावचर ध्यान कहे गये हैं।

अरूप-समाधि की भी चार अवस्थायें होती हैं, जिन्हें चार अरूपावचर ध्यान कहा जाता है। वे हैं—आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिञ्चन्यायतन एवं नैवसंज्ञानासंज्ञायतन। ध्यान की इन चारों अवस्थाओं में उपेक्षा तथा एकाग्रता नामक दो ध्यानांग रहते हैं। इस कारण अरूपावचर के सभी ध्यान पञ्चम ध्यान कहे जाते हैं। यहां प्रत्येक ध्यान का आलम्बन भिन्न-भिन्न रहता है। प्रथम ध्यान में अनन्त-आकाश विषय रहता है। द्वितीय ध्यान का लाभ अनन्त-विज्ञान पर होता है। आकिञ्चन्य ही तृतीय ध्यान का आलम्बन है तथा इसी विषय को शान्त रूप में मनन करते हुए चतुर्थ ध्यान का लाभ होता है।

इन्हीं चार रूप-ध्यान तथा चार अरूप-ध्यान को अट्ठ-समापत्ति कहते हैं।

अनोतत्तदह (अनवतप्तदह)—यह एक सरोवर का नाम है, जो हिमालय पर स्थित बतलाया जाता है। यह एक सौ पचास योजन लम्बा, पचास योजन चौड़ा तथा पचास योजन गहरा है। सुदस्सनकूट, चित्रकूट, कालकूट, गन्धमादनपब्बत तथा केलास नामक पाँच पर्वत कूटों से यह चतुर्दिक परिवृत है। इन पर्वत कूटों के मध्य में स्थित होने के कारण सूर्य तथा चन्द्र की किरणें सीधे इसके जल पर नहीं पड़ती हैं। फलतः उसका जल सर्वदा शीतल बना रहता है। इसके अनोतत्त (अनवतप्त = शीतल) दह कहलाने का यही कारण हो सकता है।

इस सरोवर का जल बहुत पवित्र समझा जाता है। बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, अरहन्त तथा अनेक देवताओं के इसमें स्नान के अनेक प्रसंग देखे जाते हैं। भगवान् बुद्ध जब देवलोक में जा अपनी मां को अभिधर्म का उपदेश दे रहे थे, तो वे प्रति दिन पूर्वाह्ण में यहीं आकर स्नान किया करते थे। पुनः उत्तरकुरु से पिण्डपात का संग्रह कर यहीं बैठ भोजन करते थे, तथा उसी के तट पर स्थित चन्दनवन में दिवा-विहार करते थे। इसके अनेक प्राकृतिक घाटों पर देव, यक्ष, किन्नरादि स्नान करते हैं। इसका जल स्वास्थ्यवर्द्धक समझा जाता है। इसके जल की पवित्रता एवं अपूर्व शक्तिसम्पन्नता के सम्बन्ध में कई कथायें पायी जाती हैं। (अ० सा० १४-१५, D. P. P. N. I, 97-99)।

अप्पाणक-झान—यह तपश्चर्या के अन्तर्गत एक प्रकार के ध्यान का नाम है। इसके अभ्यास-क्रम में शरीर के विभिन्न छिद्रों से श्वास का गमनागमन रोक दिया जाता है। श्वासावरोध सहित इसके अभ्यास किये जाने के कारण यह अप्पाणक-झान (प्राण-रहित-ध्यान) कहलाता है। मज्झिमनिकाय (२, ३२७-२८) से प्रकट है कि बोधिसत्त्व ने उरुबेला में तपस्या करते हुए इसका अभ्यास किया था। इसका विवरण इस प्रकार प्राप्त होता है—"तब मुझको ऐसा हुआ—'क्यों न श्वास-रहित ध्यान करूँ'? सो मैंने मुख एवं नासिका से श्वास का आना-जाना रोक दिया। मुख-नासिका से आश्वास-प्रश्वास के रुक जाने पर मेरे कान के छिद्रों से निकलते वात से वैसा ही गम्भीर शब्द होने लगा जैसा लोहकार की धौंकनी को धौंकने से निकलता है" आदि। इसके अनन्तर अन्यान्य छिद्रों से भी श्वास की गति को रोक कर ध्यान करते हुए बोधिसत्त्व द्वारा उदर, शिर आदि अंगों में असह्य दुःख वेदना की अनुभूति का वर्णन है।

अभिञ्ञा (अभिज्ञा)—समाधिजनित विशेष प्रज्ञा का नाम अभिञ्ञा है। रूप-समाधि के पञ्चम ज्ञान की पूर्णतः परिपक्वता होने पर कुछ मानसिक शक्तियों का उदय होता है। इन्हें चित्त के अत्यधिक सूक्ष्म एवं एकाग्र होने से प्राप्त एक प्रकार का ज्ञानविशेष या आध्यात्मिक उपलब्धि कहा जा सकता है। यह पाँच प्रकार की हैं। यथा—

"इद्धिविधं दिब्बसोतं, परिचित्तविजाननं।
पुब्बेनिवासानुस्सति, दिब्बचक्खू ति पञ्चधा"॥

एक होकर अनेक हो जाना, अनेक होकर पुनः एक होना, जल में चलना, पृथ्वी में जल की भाँति गोता लगाना, आकाश में उड़ना आदि आश्चर्यजनक कार्य इद्धिविध कहलाते हैं। इसे इद्धि भी कहा जाता है।

दिव्यश्रोत्र के लाभ से उसे एक ऐसी श्रवण शक्ति की प्राप्ति होती है, जिसके सहारे वह दिव्य तथा मानुषिक समस्त प्रकार के निकट एवं दूरवर्ती शब्दों को सुन लेता है।

परचित्तविजाननशक्ति द्वारा वह अन्य मनुष्यों के चित्त को जान लेता है। पुब्बेनिवासानुस्सति के सहारे वह अनेक संवर्त विवर्त तक की अपने पूर्व जन्म की बातें पूर्ण विवरण के साथ जान लेता है।

इसी प्रकार दिव्य चक्षु से वह विभिन्न सत्त्वों को कर्मानुसार हीन या प्रणीत गति तथा योनि में उत्पन्न होते तथा मृत्यु को प्राप्त करते देखता है (अभि० सं० १६६-६७)।

अभिञ्ञापादक-ज्ञान—अभिञ्ञा नामक प्रज्ञाविशेष की प्राप्ति के लिए कुछ पूर्वभूत उपलब्धि की आवश्यकता होती है। वह है रूपावचर पञ्चम ध्यान की स्थिति। इस ध्यान की प्राप्ति के अनन्तर ही योगावचर अभिज्ञा की उपलब्धि करता है। इस दृष्टि से यह पंचम ध्यान अभिज्ञा का पाद या आधार समझा जाता है—"पञ्चमं झानं अभिञ्ञाय पादभूतत्ता पादकपंचमज्झानं" ति वुच्चति (न० नी० टी० १६६)।

अरूपी देवता (अरूपिनो देवा)—अरूपावचर लोक के ब्रह्मा को अरूपी देवता कहा जाता है। अरूप का अर्थ है रूप अर्थात् भौतिक काय से रहित। ये देवता भौतिक काय से रहित केवल विज्ञानमय होते हैं। इनके व्यक्तित्व में चक्खुवत्थु, सोतवत्थु आदि छ वत्थुओं में कोई नहीं रह जाते हैं, न कोई रूपकलाप ही—"अरूपलोके सब्बानि पि न संविज्जन्ति"। इसलिए इनके स्वरूप आकार आदि के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जाता है। ये सूक्ष्म चित्तवाले होते हैं। जिस प्रकार अरूप-समाधि में चित्त चाञ्चल्यरहित हो सूक्ष्मता को प्राप्त होता है, उस प्रकार का चित्त इन देवों को स्वभावतः उपलब्ध है।

अरूपी देवता चार प्रकार के होते हैं—यथा–आकासानञ्चायतनदेव, विञ्ञाणानञ्चायतनदेव, आकिञ्चञ्ञायतनदेव तथा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनदेव। इनका निवास उक्त नाम की चार अरूप भूमियों में होता है, जो रूपावचर देवलोक के ऊपर तथा अजटाकाश के नीचे स्थित हैं, (ध० सं० २८१, अभि० सं० ८८)।

आनापानसति—एक ध्यान प्रक्रिया का नाम है, जिसके अनुसार अपने श्वास-प्रश्वास पर ही चित्त को एकाग्र करने को कहा गया है। इसका अभ्यास महाफलप्रद बतलाया गया है।

ध्यान का अभीप्सु किसी अरण्य, वृक्षमूल या शून्य गृह में जा आसनमार शरीर को सीधा धारण कर, स्मृति को सम्मुख कर बैठता है। वह देखता है कि उसके श्वास बाहर निकल रहे हैं तथा पुनः आ रहे हैं। श्वासों के ऐसे आन (ऊर्ध्वंगमन) एवं अपान (अधोगमन) पर ही वह अपने चित्त को एकाग्र करता है। "वह स्मृतिमान् हो श्वास को छोड़ता है तथा स्मृतिमान् हो श्वास को लेता है। जब वह लम्बी श्वास छोड़ता है, तो जानता है कि वह लम्बी श्वास छोड़ रहा है। पुनः लम्बी श्वास लेते हुए वह स्मृति-सम्पन्न रहता है कि वह लम्बी श्वास ले रहा है" आदि (म० नि० २,१०५-६)। इस प्रकार श्वासों पर चित्त के स्थिर हो जाने के कारण उसका चाञ्चल्य समाप्त हो जाता है तथा वह शनैः शनैः एकाग्र हो उठता है।

आसव (आश्रव)—चित्तमल का नाम आसव है। व्रण से पूय आदि के सदृश चक्षु-श्रोत्रादि से सर्वदा श्रवित होने के अर्थ में आश्रव कहलाता है—"आसवन्ती ति आसवा, चक्खुतो……मनतो पि सन्दति पवत्तन्ती ति वुत्तं" (अ० सा० ४१) "वणतो वा विस्सन्दमानयूसा विय चक्खादितो विसयेसु विसन्दनतो आसावा" (विभा० १८७)। अथवा मदिरादि के समान मादकता उत्पन्न करने के अर्थ में भी आसव कहलाता है—"चिरपारिवासियट्ठेन मदिरादयो आसवा विया ति पि आसवा" (अ० सा० ४१)।

आसव चार प्रकार के होते हैं। यथा—कामासव, भवासव, दिट्ठासव तथा अविज्जासव। वासना अथवा पञ्चेन्द्रियजनित सुख के प्रति आसक्ति को कामासव कहते हैं। रूपलोक एवं अरूपलोक में उत्पन्न होने की इच्छा को भवासव कहते हैं। ध्यानादि की तृष्णा, शाश्वत उच्छेद दृष्टियों के प्रति अनुराग भी यहाँ संगृहीत है। दीघनिकाय के ब्रह्मजाल-सुत्त में कथित बासठ मिथ्या-दृष्टियां ही दिट्ठासव हैं। चार आर्यसत्य, पूर्वान्ति, अपरान्त, पूर्वान्तापरान्त एवं प्रतीत्यसमुत्पाद के अज्ञान को अविज्जासव कहा जाता है। (विभा० १८७, ध० सं० २४७)।

उपोसथंगानि—बौद्ध शासन में उपोसथ का प्रमुख स्थान है। यह प्रत्येक महीने में दो बार अमावस्या तथा पूर्णिमा को मनाया जाता है। उक्त दिवस को एक सीमा के अन्तर्गत रहने वाले भिक्षु एक निश्चित उपोसथागार में एकत्र हो विशुद्धि ज्ञापन कर 'पातिमोक्ख' के नियमों का संगायन करते हैं।

उपोसथ के दिन गृहस्थ भी उपवासादि कर परिशुद्ध हो आठ शीलों का पालन करते हैं। ये आठ शील ही उपोसथ के आठ अंग कहे जाते हैं। भगवान् ने उपोसथ के प्रसंग में गृहस्थों के द्वारा पालनीय इन आठ उपोसथांगों का विधान करते हुए इस प्रकार कहा है—

"पाणं न हञ्ञे न चदिन्नमादिये।
मुसा न भासे न च मज्जपो सिया॥
अब्रह्मचरिया विरमेय मेथुना।
रत्तिं न भुञ्जेय्य विकाल-भोजनं॥
मालं न धारे न च गन्धमाचरे।
मञ्चे छमायं व सयेथ सन्थते॥
एतं हि अट्ठङ्गिकमाहुपोसथं।
बुद्धेन दुक्खन्तगुना पकासितं"॥ (अं० नि० ३-३५१)

किलेस—चित्त को क्लिष्ट करने वाले धर्मों को किलेस (क्लेश) कहा जाता

है—"चित्तं किलिस्सति उपतप्पति, बाधियति वा एतेही ति किलेसा" (विभा० १९१)। ये दस हैं। यथा—१. लोभ (दूसरों की वस्तु को प्राप्त करने की तृष्णा), २. दोस (परविनाश चिन्ता), ३. मोह (चार आर्यसत्य, पूर्वान्त अपरान्त तथा प्रतीत्यसमुत्पाद का अज्ञान), ४. मान ('मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं समान हूँ' आदि प्रकार का अस्मिमान), ५. दिट्ठि ('लोक शाश्वत है, लोक अशाश्वत है, लोक अन्तवान् है, लोक अनन्त है' आदि प्रकार की मिथ्या धारणायें), ६. विचिकिच्छा (बुद्ध, धर्म, संघ, पूर्वान्त, अपरान्त, प्रतीत्यसमुत्पन्न भाव में संशय), ७. थीन (चित्त की अकर्मण्यता), ८. उद्धच्च (चित्त की भ्रान्तता), ९. अहिरि (आत्मलज्जा का अभाव), १०. अनोतप्प (लोकलज्जा का अभाव)—ध० सं० २७०-७३, अभि० सं० १९१।

किलेसकाम—चित्त को क्लिष्ट करने वाले लोभादि दस धर्मों को क्लेश कहते हैं। इनके प्रति आसक्ति का नाम किलेसकाम है। यहां क्लेश शब्द से इन दस क्लेशों के अतिरिक्त अन्य अकुशल धर्म भी अभिप्रेत हैं—"किलेसकामेहि सब्बाकुसलेहि वा" (अ० सा० १३५)।

गन्धब्ब (गन्धर्व)—यह एक देव जाति का नाम है। इनका स्थान मनुष्य से ऊपर तथा देवताओं में सबसे नीचे समझा जाता है (दी० नि० २, १५९)। कहीं-कहीं इनका उल्लेख असुर तथा नागों के साथ किया गया है (अं० नि० १,३०८)। महासमयसुत्त (दी० नि० २·१९१) से प्रकट होता है कि पूर्व दिशा के लोकपाल धतरट्ठ गन्धर्वों के राजा हैं। इससे वे चातुमहा-राजिकदेवलोक के निवासी कहे जा सकते हैं।

गन्धर्व ऋद्धिसम्पन्न होते हैं। वे इच्छानुसार मनुष्य एवं देवलोक में विचरण करते हैं। कई गन्धर्व देवराज शक्र की सेवा में देखे जाते हैं। मातली शक्र का सारथी है। पञ्चशिख गायक का कार्य करता है। वह अपनी वीणा के मधुर स्वर से शक्र का मनोरंजन करता है। सुरियवच्चसा नर्त्तकी का काम करती है। इसके विपरीत उनके विध्वंसक कार्य भी देखे जाते हैं। कुछ ऐसे भी गन्धर्वों का उल्लेख है, जो ध्यानरत भिक्षु एवं भिक्षुणियों को विभिन्न प्रकार की बाधायें उपस्थित करते हैं (दी० नि० ३,१५६)।

पहरादसुत्त (अं० नि० ३,३०८) में वे महासागर निवासी कहे गये हैं। उनका शरीर विशाल तथा भयावह होता है। दोणसुत्त (अं० नि० २,४१) के अनुसार वे आकाश में रहने वाले प्राणी हैं। अन्यत्र उन्हें स्थलवासी कहा गया है। इस प्रकार जल, स्थल, आकाश एवं देवलोक में निवास की दृष्टि से उनके चार प्रकार हो सकते हैं।

घटीकारब्रह्मा—यह एक रूपावचर ब्रह्मा का नाम है, जो अविहा ब्रह्मलोक में रहते हैं। पालि-साहित्य से प्रकट होता है कि इन्हें बुद्ध में अटल श्रद्धा थी। इन्होंने बुद्धोपदिष्ट पथ पर चलते हुए अनागामी पद की प्राप्ति की थी। बुद्ध या बोधिसत्त्व की आवश्यकताओं की पूर्ति में ये सदा लगे रहते थे। जब बोधिसत्त्व प्रव्रज्या ले हिमालय की पादभूमि में पहुँचे, तो उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि उनके बहुमूल्य वस्त्र श्रमण के अनुरूप नहीं हैं। घटीकार ब्रह्मा ने तत्क्षण उनकी मनोदशा को जान 'समणपरिक्खार' ले वहाँ उपस्थित हो उन्हें प्रदान किया। बुद्ध, धर्म एवं संघ के लिए उनकी सेवाओं का उल्लेख अन्य सूत्रों में भी पाया जाता है। (सं० नि० १,३३ ५७-५९; म० नि० २,२७१-८०, जा० १,६५; नि० क० १६२)।

चातुमहाराजिकदेव—कामावचर भूमि के प्रथम देवलोक को चातुमहा-राजिकलोक कहते हैं। इसके निवासी चातुमहाराजिक देवता कहे जाते हैं। यह मनुष्यलोक के ऊपर तथा तावतिंसलोक के नीचे बतलाया जाता है। इसकी व्यवस्था एवं शासन चार देवों द्वारा होता है, जो चार लोकपाल या दिग्पाल कहे जाते हैं। वे हैं—धतरट्ठ विरुल्हक, विरुपक्ख तथा वेस्सवण्ण। वेस्सवण्ण को कुबेर भी कहा जाता है। धतरट्ठ पूर्व दिशा के पालक हैं, तथा गन्धर्वों पर शासन करते हैं। विरुल्हक दक्षिण दिशा के लोकपाल हैं, तथा कुम्भण्डों पर शासन करते हैं। पश्चिम दिशा विरुपक्ख द्वारा रक्षित होती है। वे नागों के अधिपति कहे जाते हैं। इसी प्रकार यक्षों के अधिपति कुबेर उत्तर दिशा के लोकपाल हैं। इस सम्पूर्ण देवलोक के राजा शक्र हैं।

चारों लोकपाल बड़े ही उदार चित्त वाले हैं। सर्वदा मनुष्यमात्र के कल्याण में लगे रहते हैं। वे मनुष्य तथा देवलोक में शांत एवं सुखद वातावरण बनाये रखने में तत्पर रहते हैं। वे प्रति मास अष्टमी के दिन मनुष्य लोक में विचरण करते हैं, तथा यहाँ के पुण्यरत मनुष्यों के सत्कर्मों की सूचना तावतिंस भवन की सुधम्मसभा में देते हैं। वहाँ वे उक्त क्रम से बैठ शक्र का सलाहकार का काम करते हैं। उन्हें बुद्ध में श्रद्धा है, तथा उनकी सेवा तथा धर्मप्रसार में अभिरुचि है। इनके अतिरिक्त खिड्डापदोसिका, मनोपदोसिका, सीतवलाहका, उण्हवलाहका, सुरियदेवपुत्त, चन्दिमदेवपुत्त, पज्जुन्न आदि इस लोक के देवता हैं। दी० नि० १,१९, १८६; २, ८६, १८९, १९२, २०-२, २५५; ३, १५०-५३, १६२; म० नि० १,२५२-५३, ३१३; २, ४५९; सं० नि० १, ४८, ३, ४६९-७०; अं० नि० १, १३१-३३; ३, २४, ३५०)।

चारिका—चारिका शब्द की व्युत्पत्ति 'चर' धातु से होती है, जिसका

अर्थ चलना या विचरण करना है। यह शब्द सामान्य विचरण से भिन्न "बहुजनहिताय बहुजनसुखाय" की भावना से प्रेरित होकर एक बड़ी भिक्षु-मण्डली के साथ भगवान् बुद्ध के ग्राम, निगम, जनपदों में विचरण के लिए विशेषतः प्रयुक्त होता है। बुद्ध के जीवन में चारिका का प्रमुख स्थान देखा जाता है। सम्बोधि लाभ के अनन्तर पैंतालीस वर्षों तक वे लगातार विचरण करते हुए धर्मोपदेश करते रहे। उनकी चर्या से प्रकट होता है कि उन्होंने कभी भी यह नहीं चाहा कि लोग उनके निकट धर्मोपदेश के लिए आवें, बल्कि उन्होंने स्वयं बड़े-बड़े नगरों तथा सुदूर के गाँव, अरण्य, पर्वत तथा नदियों की कछारों में स्थित झोपड़ियों में वास करने वाले श्रद्धालु व्यक्तियों के निकट जा उनके दुःख निवारणार्थ उपदेश किया। भिक्षु भी उनके आदेशानुसार चारिका रत रहते थे।

बुद्ध की चारिका दो प्रकार की होती थी—तुरित-चारिका तथा अतुरित-चारिका। तथागत प्राणिमात्र की मनोदशा को जानते थे। जब वे किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में ऐसा जान जाते थे कि उसके समस्त चित्तमल धुल गये हैं तथा धर्म बीज की उद्भावना की सारी परिस्थितियाँ अनुकूल हो उठी हैं, तो उसको उपदेश करने के लिए तुरितचारिका प्रारम्भ करते थे। इस चारिका क्रम में वे एक-एक क्षण में कई योजनों की दूरी समाप्त कर देते थे। आलवक-यक्ष तथा अङ्गुलिमाल के लिए एक-एक क्षण में उन्होंने तीस-तीस योजन की दूरी समाप्त की थी। महाकाश्यप एवं धनिय के पक्ष में भी ऐसी बातें कही जाती हैं।

अतुरितचारिका सामान्य गति से होती थी। वे प्रतिदिन भिक्षु मण्डली के साथ एक योजन या आधे योजन तक चलते हुए मार्गस्थित जनवर्ग को उपदेश देते थे।

चारिका के मंडलगत भेद की भी चर्चा प्राप्त है। कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध आवश्यकतानुसार महामंडल, मध्यमंडल तथा अन्तमंडल नामक तीन क्षेत्रों में भ्रमण करते थे, जो क्रमशः नव सौ योजन, आठ सौ योजन तथा सात सौ योजन के कहे जाते हैं।

वर्षावास की समाप्ति पर आश्विन पूर्णिमा के दिन पवारणा कर कार्त्तिक प्रतिपदा के दिन भगवान् भिक्षु-संघ सहित महामंडल में चारिका के लिए निकलते थे, तथा नव सौ योजन की दूरी नव मासों में सम्पन्न करते थे। यह उनकी महामंडल चारिका कहलाती है।

कभी-कभी वर्षोपगत भिक्षुओं का समथ विपश्यना का अभ्यास वर्षावास की समाप्ति अवधि तक परिपक्व नहीं हो पाता था। ऐसी दशा में वर्षावास की अवधि एक मास तक बढ़ा दी जाती थी तथा कार्तिक पूर्णिमा को पवारणा सम्पन्न होती थी। ऐसी दशा में मार्गशीर्ष की प्रतिपदा को बुद्ध भिक्षु-संघ सहित

मध्यमण्डल में चारिका के लिए प्रवृत्त होते थे। इसके आठ सौ योजन के क्षेत्र को आठ महीनों में समाप्त कर वे पुनः वर्षोपगत होते थे। उनकी यह चारिका मध्य-मण्डल-चारिका नाम से अभिहित है। कभी-कभी चार महीनों तक वर्षावास करते भी भिक्षुओं का ध्यानाभ्यास परिपक्व नहीं हो पाता था। ऐसी दशा में वर्षावास की अवधि एक महीने के लिए और बढ़ा दी जाती थी। इसकी समाप्ति पर मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के दिन पवारणा कर पौष्य की प्रतिपदा को वे भिक्षु-संघ-परिवृत अन्तमण्डल में चारिका के लिए निकल पड़ते थे। इसके सात सौ योजन के क्षेत्र में सात महीनों तक विचरण करते हुए पुनः वर्षोपगत होते थे। उनकी यह चारिका अन्तमंडलचारिका कहलाती है। (सु० वि० २३९-४१)।

चीवर—भिक्षु का काषाय परिधान जो कई वस्त्र खण्डों से बना रहता है, चीवर कहलाता है। चीवर शब्द वस्त्र के अर्थ में कैसे रूढ़ हो चला इसकी सुगम प्रतीति नहीं हो पाती है। 'च्यादीहि ईवरो' (उणादि) से प्राप्त व्युत्पत्ति भी इस अर्थ का गमक नहीं होती है। संभवतः यह चीर शब्द से व्युत्पन्न है।

भिक्षुओं के लिए साधारणतः तीन चीवर धारण करने का विधान है। वे हैं—अन्तरवासक, उत्तरासंग तथा संघाटी। अन्तरवासक नीचे का वस्त्र है, जो घुट्टी से चार अंगुल ऊपर तक लटका रहता है। उत्तरासंग पाँच हाथ लम्बा तथा चार हाथ चौड़ा होता है। यह एक कन्धे को ढके हुए चादर सा शरीर पर रखा जाता है। संघाटी भी उत्तरासंग के माप की दुहरी सिली हुई रहती है। यह उत्तरासंग के ऊपर कन्धे पर रखी रहती है।

चीवर को देखने से प्रकट होता है कि वह कपड़े को छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में काट कर बनाया जाता है। उसमें कई छोटे-बड़े आयत-सा देखे जाते हैं। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध ने मगध के खेतों को देख उन्हीं की आकृति का चीवर बनाने का विधान किया था—

"अद्दसा खो भगवा मगधखेत्तं अच्छिबन्धं पालिबन्धं मरियादबन्धं सिंघाटक-बन्धं, दिस्वान आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि। उस्सहसि त्वं, आनन्द, भिक्खूनं एवरूपानि चीवरानि संविदहितुं" ति (म० व० ३०३)।

चुति (च्युति)—प्रत्युत्पन्नभव की परिसमाप्ति को च्युति कहा जाता है—'चुती ति निब्बत्तभवतो मुञ्चनं'। नामरूप अभिसंज्ञक सत्त्व के वर्तमान जीवन की परिसमाप्ति चुति कृत्य है—"निब्बत्तभवतो परिगलनं चुतिकिच्चं"। कहा जाता है कि मनुष्य अपने जीवन काल में विविध प्रकार का कुशल एवं अकुशल कर्म करता है। कर्मानुसार जीवन के अन्तिम क्षण में कम्म, कम्मनिमित्त, गतिनि

मित्त संज्ञक किसी एक आलम्बन के सहारे चुतिचित्त उत्पन्न होता है। चित्तप्रवृत्ति मन्द हो जाती है। चुतिचित्त के निरुद्ध होने के अनन्तर प्रतिसन्धिचित्त उत्पन्न होता है। चुति कर्मफल के अनुसार होती है। अतः इस कृत्य को सम्पादन करने वाले दो उपेक्खा-सहगत सन्तीरण, आठ महाविपाक, नव महग्गतविपाक नामक उन्नीस विपाक चित्त होते हैं। अपायभूमि, कामसुगतिभूमि, रूपभूमि तथा अरूपभूमि नामक चार वासभूमियों से च्यवन होने की दृष्टि से चुति के चार भेद कहे जाते हैं।

तिलक्खण—विश्व के समस्त संस्कृत धर्म तीन लक्षणों से युक्त हैं। वे तीन लक्षण हैं—अनित्य, अनात्म्य एवं दुःख। कोई भी संस्कृत पदार्थ नित्य नहीं है। वस्तु का स्वरूप सरित प्रवाह सदृश है, जिसमें प्रतिक्षण ध्वंस एवं निर्मिति का क्रम लगा रहता है। किसी भी पदार्थ में आत्मा नामक नित्य सद्वस्तु नहीं है। सभी धर्म दुःखस्वरूप हैं। धर्मों के ऐसे तीन लक्षणों को तिलक्खण कहा जाता है।

तिस्सो विज्जायो—पूर्वनिवास-अनुस्मृति, दिव्यचक्षु तथा आश्रवक्षय-ज्ञान को तीन विद्यायें कहा जाता है। प्रथम विद्या के सहारे साधक अपने अनेक पूर्वजन्मों को पूर्ण विवरण सहित जानता है। द्वितीय से कर्मानुसार सत्त्वों को विविध गति योनियों में उत्पन्न होते तथा मरते देखता है। तृतीय विद्या द्वारा चार आश्रवों के क्षय को जान लेता है (म० नि० २,३३१-३२)।

तुसितपुर—यह एक कामावचर देवलोक का नाम है। स्थविरवादी बौद्ध परम्परा के अनुसार छब्बीस देवलोक बतलाये गये हैं, जो क्रमशः एक-एक के ऊपर स्थित हैं। इस क्रम में तुसितदेवलोक (तुसितपुर) का स्थान चतुर्थ है। यह यमदेवलोक के ऊपर तथा निम्मानरतिदेवलोक के नीचे स्थित है।

यह देवलोक अति पवित्र एवं रमणीय स्थान समझा जाता है। सभी बुद्ध बोधिलाभ के पूर्व यहां जन्म लेते हैं। उनका अनेक जन्मों का बोधिसत्त्व जीवन यहीं समाप्त होता है। इसकी समाप्ति के कुछ क्षण पूर्व दससहस्रलोकधातु के देवता यहाँ एकत्र हो बोधिसत्त्व से मनुष्य के रूप में जन्म लेने की याचना करते हैं। बोधिसत्त्व बोधिलाभ की संभावना तथा अन्यान्य विलोकनों को देख मनुष्यलोक में जन्म लेते हैं। गौतम बुद्ध के सम्बन्ध में भी ऐसा वर्णन उपलब्ध है। कहा जाता है कि बोधिसत्त्व के माता-पिता अर्हत्त्व लाभ के पूर्व मरणोपरान्त इस देवलोक में जन्म लेते हैं। कुशल कर्मों के फलस्वरूप अन्य सत्पुरुष भी लोकलीला समाप्त कर यहां उत्पन्न होते हैं। ऐसी भी परम्परा है कि अनागत बुद्ध आर्य मैत्रेय अभी नाथदेव के नाम से तुसितलोक में विद्यमान हैं।

तुसितलोक के निवासी देवगण बड़े ही प्रसन्नचित्त एवं सन्तुष्ट प्रकृति के होते हैं—"तुट्ठपहट्ठा ति तुसिता" (विभ० अ० ५२८)। वे एक लम्बी अवधि तक वहीं सुखपूर्वक जीवन यापन करते हैं। उनकी जीवन अवधि के सम्बन्ध में बतलाया जाता है कि मनुष्यलोक के चार सौ वर्ष उनके एक दिन के बराबर होते हैं। इस गणनाक्रम से वे चार हजार वर्षों तक जीते हैं। उन्हें त्रिरत्न में दृढ़ श्रद्धा है। वे मनुष्यलोक में आकर बुद्ध के उपदेशों को सुनते हैं, तथा कुशल कर्मों में रत मनुष्यों को देख बड़े प्रसन्न होते हैं। इस लोक के राजा का नाम सन्तुसित बतलाया जाता है। (अं० नि० १,१९४, १९८; २, १३६; ३, ३४१, ३५०; दी० नि० २, १९५; म० नि० २, ४६०; महा० वं० ३२)।

दसबल—दस बलों से उपेत होने के कारण तथागत को दसबल कहा जाता है। पटिसम्भिदामग्ग में इन दस बलों का उल्लेख इस प्रकार है—

(१) स्थान को स्थान के रूप में तथा अस्थान को अस्थान के रूप में यथार्थतः जानना।
(२) अतीत, वर्तमान तथा अनागत के कर्मों को स्थान हेतु एवं विपाक की दृष्टि से सम्यक् प्रकार से जानना।
(३) सर्वत्रगामी प्रतिपदा को यथावत् जानना।
(४) अनेक वासभूमियों से युक्त समस्त ब्रह्माण्ड को जानना।
(५) विविध स्वभाव वाले सत्त्वों को जानना।
(६) विभिन्न सत्त्वों की इन्द्रियों के परत्व अपरत्व को जानना।
(७) ध्यान, विमोक्ष, समाधि तथा समापत्ति के संक्लेश, व्यवदान एवं उत्थान को जानना।
(८) पूर्ण विवरण के साथ अपने अनेक जन्मों का स्मरण करना।
(९) दिव्य चक्षु से सत्त्वों को उत्पन्न होते तथा मृत्यु को प्राप्त करते देखना।
(१०) आश्रवों के क्षय कर आश्रव रहित चित्तविमुक्ति तथा प्रज्ञाविमुक्ति का इसी जीवन में साक्षात्कार कर विहार करना।

दससहस्स चक्कवाल—पालि-साहित्य में बहुसंख्यक चक्रवालों का उल्लेख है। उनकी चर्चा करते हुए बहुलतया सहस्सचक्कवाल, दससहस्सचक्कवाल आदि शब्द प्रयुक्त हैं। उन प्रसङ्गों में सभी चक्रवालों का पूर्ण विवरण नहीं प्राप्त होता है। इससे केवल इतना ही ध्वनित होता है कि बुद्ध के सामने एक बृहद् जगत् का चित्र था। जो हो, अङ्गुत्तरनिकाय के चूलनिकसुत्त (१,२१०) में जो अल्प सामग्री मिलती है, उसके आधार इस प्रकार कहा जा सकता है।

"जहाँ तक सूर्य एवं चंद्रमा की गति है, तथा जहाँ तक प्रकाश का प्रवेश है, उसी के मध्य ये हजारों चक्रवाल स्थित हैं। सभी चक्रवाल वृत्ताकार हैं, तथा अजटाकाश में अवस्थित हैं। प्रत्येक चक्रवाल में एक चंद्रमा, एक सूर्य, एक पृथ्वी, एक सिनेरु पर्वत, चार द्वीप (जम्बूद्वीप, अपरमोयान, उत्तर-कुरु, पूर्व विदेह), चार दिग्पाल, छः देवलोक एवं बीस ब्रह्मलोक हैं।" इनके अतिरिक्त पृथ्वी के नीचे असुरलोक, प्रेतलोक, तिर्यक् लोक तथा नरक नामक चार लोक हैं। उनके नीचे क्रमशः जलमंडल, वायुमंडल तथा अजटाकाश है। ऊपर की ओर जहाँ अन्तिम ब्रह्मलोक से बौद्ध जगत् का पर्यवसान होता है, वहाँ से अजटाकाश प्रारम्भ होता है। इस प्रकार नीचे एवं ऊपर दोनों ओर से प्रत्येक चक्रवाल अजटाकाश से वेष्ठित हैं। इन्हीं एकतीस लोकों से एक चक्रवाल की कल्पना देखी जाती है। ये सभी लोक एक-एक के ऊपर क्रम से अवस्थित कहे जाते हैं।

दस सील—भगवान् बुद्ध ने सामणेरों की प्रव्रज्या का विधान करते हुए उनके द्वारा पालनीय दस नियमों की प्रज्ञप्ति की है, जो दस शिक्षापद या दस सील कहलाते हैं। वे इस प्रकार हैं :—

१. जीवहिंसा से विरति—'पाणातिपाता वेरमणी'।
२. चोरी से विरति—'अदिन्नादाना वेरमणी'।
३. अब्रह्मचर्य से विरति—'अब्रह्मचरिया वेरमणी'।
४. असत्य कथन से विरति—'मुसावादा वेरमणी'।
५. मद्यपान से विरति —'सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठाना वेरमणी'।
६. असमय भोजन से विरति—'विकालभोजना वेरमणी'।
७. नृत्यगानादि से विरति—'नच्चगीतवादितविस्सूकदस्सना वेरमणी'।
८. मालागन्धादिधारण से विरति—'मालागन्धविलेपनधारणमण्डनविभूसनट्ठाना वेरमणी'।
९. उच्चशय्या महाशय्या से विरति—'उच्चसयनमहासयना वेरमणी'।
१०. सोना-चाँदी ग्रहण से विरति—'जातरूपरजतपटिग्गहणा वेरमणी'।

(म० व० ८६–८७)

गृह में रहते हुए भी श्रद्धालु एवं आध्यात्मतः समुन्नत गृहस्थ ऊपर के आठ शीलों का पालन करते हैं। उस दृष्टि से प्रथम आठशील अष्ट-शील कहलाते हैं। सामणेरों के लिए दसों का पालन अनिवार्य है—'अनुजानामि, भिक्खवे, सामणेरानं इमानि दस सिक्खापदानि, इमेसु च सामणेरेहि सिक्खितुं ति (म०व०८७)।

द्वेवाचिकउपासका—संघ-निर्माण के पूर्व केवल बुद्ध एवं धर्म की शरण जाने से ही उपासकत्व की प्राप्ति होती थी। ऐसी कुशल अलिभाषा सम्पन्न

पुरुष केवल 'बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि' कह कर शरण की याचना करते थे। इनके द्वारा शरणागमन के दो वचनों के प्रयुक्त होने के कारण वे द्वेवाचिक उपासक कहलाते थे। तपस्सु तथा भल्लिक नामक दो वणिक बन्धुओं ने सर्वप्रथम दो वचनों से उपासकत्व ग्रहण कर द्वेवाचिक उपासक कहलाये।

नन्दनवन—यह तावतिंस देवलोक में एक अत्यन्त सुन्दर उद्यान हैं। देवराज शक्र तथा अन्यान्य देव इस उद्यान में भ्रमण कर मनोरञ्जन करते हैं। यह विविध प्रकार के पुष्पों से सुसज्जित लतावितान से परिपूर्ण है। मध्य में पारिछत्तक वृक्ष है, जो अपनी अपूर्व शोभा तथा सुन्दरतम सुगन्ध भरे पुष्पों के लिए विख्यात है। इसकी ऐसी गरिमा को लक्ष्य कर बुद्ध ने कहा है कि—'जिसने नन्दनवन को नहीं देखा है, वह वास्तविक सुख को नहीं जान सकता है (सं०नि० १,७)। ऐसा भी कहा जाता है कि प्रत्येक देवलोक में एक नन्दनवन है।

नाग—नागों का वर्णन एक देवमनुष्य-मिश्रित जाति के रूप में पाया जाता है। इनमें कुछ लक्षण मनुष्य के, कुछ देवता के तथा कुछ विवेकहीन पशु के पाये जाते हैं। ये अपार बल एवं ऋद्धि सम्पन्न होते हैं। इन्हें सर्प के समान शरीर तथा फन होता है। इच्छानुसार ये मनुष्य का रूप धारण कर लेते हैं। भारत में प्राचीनकाल से नाग एक देवता के रूप में पूजे जाते हैं, जिन्हें दूध, पायस, लावा, माँस, मदिरा आदि का भोग दिया जाता है।

महावग्ग (९०) में नाग के मनुष्य रूप में प्रव्रज्या लेने का उल्लेख है। चुल्लवग्ग (१९८) में इनके चार राजवंश—विरुपक्ख, एरापथ, छब्यापुत्त तथा कण्हागोतम की चर्चा है। जातकों में मनुष्य कन्या के साथ नागराजकुमार के विवाह की कथाएँ भी मिलती हैं (जा० ६,१५९)। ऐसे तथ्यों के आधार पर कुछ इतिहासकारों ने इन्हें अनार्य जाति का मनुष्य बतलाया है। (ना० कु० च० भूमिका)। पालि-साहित्य में उपलब्ध विवरण के अनुसार ये मनुष्यलोक (जल एवं स्थल), देवलोक तथा पाताललोक में रहते हैं। महासमयसुत्त (दी० नि० २,१९३) के अनुसार उन्हें बुद्ध में अपार श्रद्धा देखी जाती है। वैशाली, तच्छक, कम्बल, अस्वतर, प्रयाग आदि स्थानों से आकर नागों ने बुद्ध की वन्दना की। विमुक्तिसुख में लीन बुद्ध को मुचलिन्द नाग द्वारा ऋतु-प्रकोप से बचाने का प्रसङ्ग (म० व० ५) उक्त धारणा का पोषक प्रतीत होता है। अन्यत्र उरुवेल काश्यप के आश्रम में बुद्ध द्वारा नागदमन की कथा (म० व० २६) भी उपलब्ध है। जातकों में नन्दोपनन्द, एरकपुत्त, अरवाल, महाकाल आदि ऋद्धिमान् नागों के नाम मिलते हैं।

निब्बान (निर्वाण)—बौद्ध परम्परा के अनुसार जीवन की चरम

उपलब्धि निर्वाण की प्राप्ति है। यही भगवान् बुद्ध के धर्म विनय का एकमात्र रस तथा ब्रह्मचरियवास का सर्वोत्कृष्ट फल है। यह एक सर्वमल विरहित अत्यन्त परिशुद्ध अवस्था है, जिसके अधिगम से जातिजराव्याधिमरणसमन्वित भवचक्र सदा के लिए भग्न हो जाता है तथा लोकोत्तर सुख की प्राप्ति होती है।

निब्बान की व्युत्पत्ति कई प्रकार से देखी जाती है। इसमें 'नि' उपसर्ग है, जो निषेध अर्थ का द्योतक है। 'वान' का अर्थ तृष्णा है। अतः वान अभिसंज्ञक तृष्णा का अशेष निरोध ही निब्बान है—'वानसङ्खाताय तण्हाय निक्खन्तत्ता निब्बानं' ति पवुच्चति।

निर्वाण दो प्रकार का होता है—'सउपादिसेस' तथा 'अनुपादिसेस'। पञ्चस्कन्ध को उपादि कहते हैं। इसमें क्लेश चोरों के समान छिपे रहते हैं। ब्रह्मचर्यवास के सहारे जब समस्त क्लेश नष्ट हो जाते हैं, तो ये पञ्चस्कन्ध तस्करनिहत चौर ग्राम सदृश परम शुद्ध रूप में अवशिष्ट रहते हैं। पञ्चस्कन्धों के इस अवस्था की प्राप्ति रूप जिस निर्वाण का लाभ होता है, उसे सउपादिसेसनिब्बान कहते हैं। इसे जीवनमुक्ति या अर्हत्व पद भी कहते हैं। पुनः जब इन पञ्चस्कन्धों का पर्यवसान हो जाता है और उस दशा में जिस निर्वाण की प्राप्ति होती है उसे अनुपादिसेस निब्बान कहते हैं।

निर्वाण के स्वरूप की चर्चा विविध रूपों में देखी जाती है। इसे एक भावरूप में चर्चित करते हुए—'निब्बानं परमं सुखं', 'सिवपदं', 'अमतं पदं', 'अनुत्तरं योगक्खेमं' आदि पदों से इसकी अभिव्यक्ति की गई है। निर्वाणलाभ से प्राप्त सुख से उत्कृष्टतर अन्य सुख नहीं है, ऐसे पद बहुलतया देखने को मिलते हैं—'लभति पीति पामोज्जं अमतं तं विजानतं', 'निब्बानसुखा परं नत्थि', इत्यादि।

दूसरी ओर निर्वाण के स्वरूप का प्रतिपादन 'निरोधो निब्बानं', 'तण्हाय असेसविरागनिरोधो मुत्ति', 'तण्हाय विप्पहानेन निब्बानं ति वुच्चति'—आदि पदों से करते हुए इसे एक अभावरूप जैसा कहा गया है।

अन्यत्र 'निर्वाण प्रदीपवत् बुझ जाना है', 'यह वायु से क्षिप्त अग्नि की अर्चि सदृश बुझ जाने के समान हैं', 'यह प्रज्वलित अग्नि की निर्वापित अवस्था-सा है' आदि पद भी इसे अभावात्मक या अनिर्वचनीय स्वरूपात्मक बतलाते हैं।

जो हो, इन स्वरूपगत वैविध्य को परमार्थतः अस्तिरूपात्मक दर्शाते हुए स्थविरवादी परम्परा सबल तर्कों से ऐसी स्थापना करती है कि निर्वाण एकान्ततः सुख स्वरूप भावात्मक अवस्था है—'अत्थेसा निब्बानधातु सन्ता सुखा पणीता, तं अनीतितो निरुपद्दवतो अभयतो खेमतो सन्ततो सुखतो साततो पणीततो सुचितो सीतलतो दट्ठब्बं'।

निर्वाण के ऐसे स्वरूप की स्थापना के अनन्तर उसकी अनुभूति का प्रश्न विवेच्य हो उठता है। अनुभूति का साधन एक स्कन्ध केवल विज्ञान स्कन्ध है। जब तक साधक सउपादिसेसनिब्बान की अवस्था में रहता है, तब तक विज्ञान-स्कन्ध के विद्यमान रहने के कारण इसकी अनुभूति समझी जा सकती है, पर जब अनुपादिसेसनिब्बान का लाभ होता है, तब इसकी अनुभूति कैसे होती है? उस समय तो पाँचों स्कन्धों के निरुद्ध हो जाने से अनुभूति का कोई साधन ही नहीं रह जाता है। ऐसी दशा में निर्वाण 'अमृत पद है', 'सुख स्वरूप है' आदि पदों से उसका निर्वचन करना आधारहीन प्रतीत होता है। स्थविरवादी परम्परा इसका स्पष्ट समाधान नहीं दे पाती हैं। सम्भवतः इसके स्वरूप निर्देशन में ऐसे काठिन्य का अनुभव करते हुए ही इसकी चर्चा इस प्रकार की गई है—

"खीणं पुराणं नव नत्थि सम्भवं, विरत्तचित्ता आयतिके भवस्मिं।
ते खीणबीजा अवरुल्हिछन्दा, निब्बन्ति धीरा यथायं पदीपो॥

× × ×

अच्ची यथा वातवेगेन खित्तो, अत्थं पलेति न उपेति संखं।
एवं मुनि नामकाया विमुत्तो, अत्थं पलेति न उपेति संखं॥

× × ×

अयोघनहतस्सेव जलतो जातवेदस्स,
अनुपुब्बुपसन्तस्स यथा न जायते गति।
एवं सम्मा विमुत्तानं कामबन्धोघतारिणं,
पञ्ञापेतुं गति नत्थि, पत्तो सो अचलं सुखं"॥

(दी० नि० १, ७४, १९०; २, १६७; म० नि० १, ३७५, ४०३; २, ११२–१३, १८०–८१, २०७, ४०२; सं० नि० ७३; सु० नि० ११५, ११८, १२०; थेर० गा० ३२, ६७, ७९, ९०, ९१, १३८, १७०, २२७, ३३३, ३६४, ३९६; थे० गा० १५, १६, १८, ३४, ६६, ७६, ८६, १०१, १०२, ११६, २१२, ४७६; म० व० १३; चु० व० ३५७; ध० प०; बु० व० ६; सु० व० ७; मि० प० ३४, ७२, २६३–६५, ३०४, ३०९, ३११, ३१६, ३१९; वि० म० ३५५)।

निरय (नरक)—बौद्ध जगत् व्यवस्था के अनुसार सबसे नीचे की वासभूमि को निरय या नरक कहते हैं। यह उस स्थान का नाम है, जहाँ पापकर्मी विविध प्रकार की यातनाओं को भोग कर दुःखद जीवन व्यतीत करता है। यहाँ सुख का नाम भी नहीं है—'नत्थि एत्थ अयो सुखं' ति।

नरक मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं :—उष्णनिरय तथा शीतनिरय। उष्णनिरय के आठ प्रकार कहे गये हैं। यथा—

(१) सञ्जीव—यहाँ दुःखाभितप्त प्राणि को पुनः पुनः जीवित कर यातनाएँ दी जाती हैं।

(२) कालसुत्त—यहाँ काले वर्ण के विषाक्त सूत्र से पापकर्मी को काटा जाता है।

(३) संघात—यहाँ पापी को पर्वतीय चट्टानों पर पटका जाता है।

(४) रूरव—यहाँ व्यथा के कारण रुदन ही सुनाई पड़ता है।

(५) महारूरव—यहाँ सर्वदा दुःखार्त्तों की महारुदन ध्वनि सुनाई पड़ती है।

(६) तपन—यहाँ पापकारी को अग्निदाह से तप्त किया जाता है।

(७) पतापन—यहाँ भयङ्कर ज्वाला के बीच पापी सन्तप्त होता है।

(८) अवीचि—यहाँ एक साथ कई प्रकार की यातनाएँ दी जाती हैं। नरकों में सबसे दुःखद स्थान यही समझा जाता है। ये सभी नरक एक-एक के ऊपर स्थित बतलाये जाते हैं।

शीतनिरय के दस प्रकार कहे गये हैं (सं० नि० १,१५०)। वे हैं—अब्बुद, निरब्बुद, अहट्ट, अटट, अबब, कुमुद, सोगन्धिक, उप्पल, पुण्डरीक तथा पदुम। ये भी एक-एक ऊपर क्रम से स्थित हैं।

प्रत्येक नरक सुदृढ़ प्राचीरों से घिरे हैं। इन प्राचीरों से लगे चार प्रकार के कुण्ड होते हैं। वे हैं—कुक्कुल (अग्निकुण्ड), कुणप (शवकुण्ड), खुरमग्ग (तीक्ष्ण धार से युक्त मार्ग) तथा वेतरणी नदी। देवदूतसुत्त (म० नि० ३, २५७) में नरकों की एक दूसरी सूची पायी जाती है। इसमें गूथ, कुक्कुल, सिम्बलीवन, असिपत्तवन तथा खरोदकनदी के नाम आते हैं। जातकों में खुरधार, ककोल, सत्तिसूल आदि प्रकार के नरकों के नाम आते हैं। इनके नाम मात्र से ही इनके दुःखद स्थान होने की ध्वनि मिलती है।

निरोधसमापत्ति—निर्वाण-अधिगम-क्रम में निरोधसमापत्ति एक आध्यात्मिक उपलब्धि का नाम है, जिसमें चित्त चेतसिक की समस्त वृत्तियां पूर्णतः निरुद्ध हो जाती हैं। इस प्रकार चित्त प्रवृत्तिनिरोध को इस जीवन में ही प्राप्त कर विहार करना संभवतः निर्वाण का पूर्वास्वादन रूप है। इसका लाभ केवल अनागामी एवं अर्हत्त को ही होता है।

इस अवस्था में प्रवृष्ट होने के लिए साधक प्रथम ध्यानादि क्रम से पञ्चम ध्यान की प्राप्ति करता है। पुनः उक्त ध्यान से उठ इन ध्यानों से सम्बद्ध चित्तचेतसिकों के स्वरूप पर विचार करते हुए आकिञ्चञ्चायतन ध्यान को प्राप्त

करता है। इसके अनन्तर वह ऐसा अधिट्ठान करता है कि जब तक वह निरोध समापत्ति-अवस्था में रहे तब तक उसके आवासादि विनष्ट न हों, उसे किसी प्रकार की बाधा न हो आदि। ऐसा कर वह नेवसञ्ञानासञ्ञा ध्यान की अवस्था में प्रविष्ट होता है। इसमें प्रविष्ट होने के दो अप्पणा जवनक्षणों के अनन्तर चित्त-सन्तति निरुद्ध हो जाती है। उसके चित्त चेतसिक के समस्त कार्य अधिष्ठित अवधि के लिए समाप्त हो जाते हैं। इससे उठने पर अनागामी अनागामि-फल-चित्त तथा अर्हत् अर्हत्-फल-चित्त प्राप्त करता है, जिनके एक बार प्रवृत्त होने के अनन्तर भवंगपात हो जाता है (अभि० सं० १७७-७८)।

नीवरण—कुशल चित्त की एकाग्रता ध्यान है। उसमें बाधा उत्पन्न करने वाले तत्त्वों को नीवरण कहते हैं। ध्यानक्रम में उत्पन्न होने वाले कुशल चित्तों को ये उत्पन्न होने से रोकते हैं, विवध प्रकार की बाधायें उत्पन्न करते हैं। इस कारण इन्हें नीवरण कहा जाता है—"ञानादिवसेन उप्पज्जनककुसलचित्तं निसेधेन्ति तथा तस्स उप्पज्जितुं न देन्ती ति नीवरणानि (विभा० १८९); चित्तं नीवरन्ति, परियोनन्धन्ती ति नीवरणानि (अभि० सं० १२८)।

नीवरण पांच प्रकार के होते हैं। यथा कामच्छन्द, व्यापाद, थीनमिद्ध, उद्धच्चकुकुच्च तथा विचिकिच्छा। अभिधर्म में अविज्जा को भी नीवरण माना गया है। जिससे इनकी संख्या छ हो जाती है।

वासना या भोग की वस्तुओं के प्रति प्रबल इच्छा को कामच्छन्द कहते हैं। यथा "यो कामेसु कामच्छन्दो कामरागो, कामनन्दी, कामतण्हा···कामज्झोसानं" (ध० सं० २५८)।

परविनाशचिन्ता व्यापाद है। "उसने मेरे या मेरे प्रिय जनों के प्रति अनर्थ किया है, या कर रहा है या करेगा", ऐसा चिन्तन कर उत्पन्न आघात, द्वेष, मनोप्रदोष, प्रतिविरोध आदि व्यापाद कहलाता है।

चित्त की अकल्यता को थीन तथा चेतसिक की अकल्यता को मिद्ध कहते हैं। आलस्य-सा भाव अकल्यता है। इसे अकर्मण्यता भी कहा जा सकता है। यथा—"या चित्तस्स अकल्लता अकम्मञ्ञता ओलीयना लीनं···थिनं थियना थियितत्तं चित्तस्स—इदं वुच्चति थिनं। या कायस्स अकल्लता अकम्मञ्ञता ओनाहो परियोनाहो···सोप्पं सुपना सुपितत्तं—इदं वुच्चति मिद्धं" (ध० स० २५९)।

चित्तविक्षेप, चित्तभ्रान्ति, या चित का अउपसमभाव उद्धच्च है। करणीय में अकरणीयभाव, अकरणीय में करणीयभाव, अवद्य में वद्यभाव, वद्य में अवद्यभाव, आदि कुकुच्च है। अथवा कृत एवं अकृत कर्मों के प्रति निष्प्रयोजन चिन्तन

करना कुकुच्च कहलाता है—"कताकतानुसोचनसभावं कुक्कुच्चं" (अभि० सं० २७)।

बुद्ध, धर्म, संघ, शिक्षा, पूर्वान्त, अपरान्त, पूर्वान्तापरान्त, प्रतीत्यसमुत्पन्न-भाव में सन्देह करना विचिकिच्छा है। इसे अनेकांशग्राह भी कहा गया है (ध० सं० २५९)।

अविज्जा का अर्थ अज्ञान या मोह है। वस्तुतः चार आर्यसत्य, पूर्वान्त, अपरान्त, पूर्वान्तापरान्त तथा प्रतीत्यसमुत्पन्नभाव को न जानना ही अविज्जा है (ध० सं० २६०)।

पञ्चसील (पञ्चशील)—बौद्ध गृहस्थों के लिए आदिभूत पालनीय पांच नैतिक नियमों को पंचशील कहते हैं। शील शब्द का अर्थ आधार होता है। सभी कुशल धर्मों का आधार होने के कारण इन नियमों को शील कहा जाता है—"सीलनट्ठेन सीलं, समाधानं वा, कायकम्मादीनं सुसील्यवसेन अविप्पकिण्णता ति अत्थो। उपधारणं वा कुसलानं धम्मानं पतिट्ठानवसेन आधारभावो ति अत्थो (वि० म० ५)।

इस शीर्ष में प्रज्ञप्त पांच नियम इस प्रकार हैं—

(१) पाणातिपाता वेरमणी अर्थात् जीव हिंसा से विरत रहना।

(२) अदिन्नादाना वेरमणी अर्थात् चोरी से विरत रहना।

(३) कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी अर्थात् व्यभिचार से विरत रहना।

(४) मुसावादा वेरमणी अर्थात् असत्यभाषण से विरत रहना।

(५) सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठाना वेरमणी अर्थात् मद्य-पान से विरत रहना।

पञ्चशील ग्रहण की एक विधि है। यद्यपि इसमें स्थान या कालगत कोई बन्धन नहीं है, तथापि एक ऐसी रीति-सी बन गई है कि श्रद्धालु गृहस्थ किसी भी महीने की अमावस्या या पूर्णिमा के दिन किसी बौद्ध विहार में जाकर किसी ज्ञान एवं वयोवृद्ध भिक्षु से शीलग्रहण करता है।

वह श्वेत वस्त्र धारण कर इस प्रकार याचना करता है—"ओकास, अहं भन्ते, तिसरणेन सह पञ्चसीलं धम्मं याचामि। अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते"। इसे तीन बार दुहराये जाने के अनन्तर भिक्षु त्रिशरण एवं पंचशील का क्रमशः उपदेश करते हैं। गृहस्थ तथाविध दुहराता है। इसके बाद शील के नियमों का प्रमाद रहित हो पालन करने का भिक्षु उस गृहस्थ को आदेश करते हैं—"तिसरणेन पञ्चसीलं धम्मं साधुकं सुरक्खितं कत्वा अप्पमादेन सम्पादेथ"। अन्त में यह कृत्य परित्तपाठ से सम्पन्न होता है।

पटिच्चसमुप्पाद—यह एक बौद्ध सिद्धान्त का नाम है, जिसके अनुसार बतलाया गया है कि प्रत्येक वस्तु एक दूसरे वस्तु के प्रत्यय से उत्पन्न होता है। कोई भी वस्तु स्वयंभू या किसी नित्य आदि-कारण संभूत नहीं है। वस्तुस्वरूप प्रवाहमय है, जिसमें एक की उत्पत्ति दूसरे पर आश्रित है। "इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है, इसके न होने से यह नहीं होता है, इसके निरुद्ध होने से यह भी निरुद्ध होता है—'यह उत्पत्ति एवं निरोध का क्रम इस सिद्धान्त का क्रम है।

पुनः इस सिद्धान्त के द्वारा भवचक्र के कारणों का नामकरण करते हुए उसकी प्रवृत्ति एवं निर्वृति बतलाई गई है। इसे सम्यक् प्रकार से जानने के लिए तीन अध्व, द्वादस अङ्ग, बीस आकार, तीन सन्धि, चार संखेप, तीन वृत्त तथा दो मूल को जानना आवश्यक है। भवचक्र के प्रवृत्ति-क्रम को दर्शाते हुए कहा गया है कि—

"अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं, संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान, विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप, नामरूप के प्रत्यय से सलायतन, सलायतन के प्रत्यय से स्पर्श, स्पर्श के प्रत्यय से वेदना, वेदना के प्रत्यय से तृष्णा, तृष्णा के प्रत्यय से उपादान, उपादान के प्रत्यय से भव, भव के प्रत्यय से जाति (जन्म) तथा जाति के प्रत्यय से जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य आदि उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उक्त बारह शृङ्खलाओं से आबद्ध भवचक्र चलता है एवं तदनुवर्ती दुःखस्कन्ध का समुदय होता है"। इसे अनुलोम पटिच्चसमुप्पाद कहते हैं।

भवचक्र के निरोध की चर्चा करते हुए कहा गया है, कि जिन शृङ्खलाओं के बने रहने से भवचक्र चलता है, उन्हीं के निरोध से उसका निरोध भी सम्भव है। इस क्रम को पटिलोम पटिच्चसमुप्पाद कहते हैं। यथा—"अविद्या के निरोध से संस्कार का निरोध होता है, संस्कार के निरोध से विज्ञान का, विज्ञान के निरोध से नामरूप का, नामरूप के निरोध से सलायतन का, सलायतन के निरोध से स्पर्श का, स्पर्श के निरोध से वेदना का, वेदना के निरोध से तृष्णा का, तृष्णा के निरोध से उपादान का, उपादान के निरोध से भव का, भव के निरोध से जाति का, जाति के निरोध से जरामरणादि का निरोध होता है"। इस क्रम से एक शृङ्खला के न होने से दूसरी के न होने के कारण भवचक्र निरुद्ध हो जाता है। फलतः दुःखस्कन्ध का भी निरोध हो जाता है। (म० व० १-३)।

पटिसन्धि (प्रतिसन्धि)—एक जीवन (भव) का दूसरे जीवन के साथ संयोग को पटिसन्धि कहते हैं—"भवेन भवं पटिसन्दहति संयोजेती ति पटिसन्धि" (अभि० सं० ४६)। कुशलाकुशल कर्मों के फलस्वरूप नामरूप

अभिसंख्यात सत्त्व का माँ के गर्भ में प्रवेश प्रतिसन्धि-ग्रहण है—"भवतो भवस्स पटिसन्धानं पटिसन्धिकिच्चं' (विभा० ६९)।

अभिधर्म दर्शन के अनुसार अपायभूमि, कामसुगतिभूमि, रूपभूमि तथा अरूपभूमि नामक चार वास भूमियाँ हैं। इनके अनुसार अपायपटिसन्धि, कामसुगतिपटिसन्धि, रूपावचरपटिसन्धि, अरूपावचरपटिसन्धि नामक चार प्रकार की पटिसन्धि होती है।

बुद्ध ने चेतना को कर्म कहा है। प्रत्येक सहेतुक कर्म अपना विपाक उत्पन्न करते हैं, जो पुनर्जन्म के कारण होते हैं। इस दृष्टि से उन्नीस विपाक चित्तों को प्रतिसन्धिजनक कहा गया है। वे हैं—दो उपेक्खा-सहगत सन्तीरण, आठ महाविपाक तथा नव महग्गतविपाक (अभि० सं० ८९–९१)।

पटिसम्भिदा—एक प्रकार के ज्ञानविशेष को पटिसम्भिदा कहते हैं। अत्थपटिसम्भिदा, धम्मपटिसम्भिदा, निरुत्तिपटिसम्भिदा तथा पटिभानपटिसम्भिदा नामक इसके चार भेद हैं।

इनमें अर्थ का ज्ञान अत्थपटिसम्भिदा है। अर्थ पाँच प्रकार के होते हैं। यथा—दर्शनार्थ, ज्ञातार्थ, पजाननार्थ, प्रतिवेधार्थ एवं अवभासनार्थ। ये पांचों अत्थपटिसम्भिदा के आलम्बन होने के कारण, इन्हीं का ज्ञान यहाँ अभिप्रेत है। पुनः धर्म का ज्ञान धम्मपटिसम्भिदा कहा गया है। चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या एवं आलोक पाँच धर्म उक्त पटिसम्भिदा के विषय हैं। अतः इनका ज्ञान धम्मपटिसम्भिदा समझना चाहिये।

पाँच प्रकार के अर्थ एवं पाँच धर्मों के कथन के लिए पाँच-पाँच प्रकार के व्यञ्जन-निरुक्ति-अभिलाप होते हैं। इन दस निरुक्ति-अभिलापों के निरुत्तिपटिसम्भिदा के आलम्बन होने के कारण इनका ज्ञान ही निरुत्तिपटिसम्भिदा है।

पटिभानपटिसम्भिदा को ज्ञानों का ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान शब्द से यहाँ पाँच प्रकार के अर्थ, पाँच धर्म एवं दस निरुत्ति-अभिलाप—बीस धर्मों का ज्ञान अभिप्रेत है। इन्हीं का ज्ञान पटिभानपटिसम्भिदा है। (विभं०, पटि० म० ४०४–६)।

पुनः विसुद्धिमग्ग (३०७–९) में दुःख के ज्ञान को अत्थपटिसम्भिदा, दुःख समुदय ज्ञान को धम्मपटिसम्भिदा, मागधी भाषा का प्रभेदगत ज्ञान निरुत्तिपटिसम्भिदा तथा इन सभी ज्ञानों के ज्ञान को पटिभानपटिसम्भिदा कहा गया है। उसी प्रसङ्ग में अर्थ को हेतुफल का अधिवचन तथा धर्म को पच्चय का अधिवचन कहा गया। इन्हीं का प्रभेदगत ज्ञान क्रमशः अत्थपटिसम्भिदा एवं धम्मपटिसम्भिदा है।

पण्डुकम्बलसिलासन—तावतिंसदेवलोक में पारिच्छत्रकवृक्ष के नीचे पण्डुकम्बलसिलासन है, जो परम्परा के अनुसार देवराज शक्र का सिंहासन कहा जाता है। यह साठ योजन लम्बा, पचास योजन चौड़ा तथा पन्द्रह योजन मोटा है। यह जयसुमन पुष्प-सा रक्तवर्ण के कम्बल सदृश दृष्टिगोचर होने के कारण पण्डुकम्बलसिलासन कहा जाता है। इसी पर बैठकर देवराज शक्र समस्त राजकीय कार्य सम्पन्न करते हैं। जब कोई मनुष्य कुशल कर्मों द्वारा अपरिमित पुण्य का संचय करता है, तो यह आसन उष्ण हो उठता है। सत्पुरुषों के विपत्तिकाल में भी इसे उष्ण होने की चर्चा है। ऐसी सूचना पाकर शक्र उनकी सहायता के लिए वहाँ उपस्थित होते हैं। शक्रपद की आयु की परिसमाप्ति पर भी यह उष्ण हो उठता है। भगवान् बुद्ध ने इसी सिलासन पर बैठ अपनी माँ को साक्षी कर देव-परिषद् में अभिधर्म का उपदेश किया था (दी० नि० अ० ४८२; जा० १,५०; २,९३; ३,५३; ४,८, २३८, ३२३; ५,९२; अट्ठ सा० १४)।

पब्बज्जा-उपसम्पदा—जीवनमरण प्रवाह को विविध उपसर्गों से पूर्ण जान उससे निवृत्ति के लिए गृहत्याग को प्रव्रज्या कहते हैं। मिलिन्दप्रश्न (३४ पृ०) में कहा गया है कि उत्पन्न दुःखों का नाश तथा अनुत्पन्न की अनुत्पत्ति प्रव्रज्या का उद्देश्य तथा निर्वाणलाभ इसकी चरम उपलब्धि है। सामान्यतः यह शब्द सन्यास के लिए रूढ़ हो चला है।

भारत तथा अन्यान्य देशों की धार्मिक परम्पराओं में प्रव्रज्याग्रहण विधि में भेद देखा जाता है। बौद्धपरम्परा के अनुसार इसका इतिहास भगवान बुद्ध के जीवन काल से प्रारम्भ होता है। सम्बोधिप्राप्ति के बाद उन्होंने ऋषिपतन-मृगदाव (सारनाथ) में पंचवर्गीय भिक्षुओं के समक्ष धर्मचक्रप्रवर्तन कर मध्यम मार्ग का प्रज्ञापन किया। तदनुसार साधुजीवन व्यतीत करने के लिए विभिन्न कुलों से लोग आने लगे। वे अञ्जलिबद्ध होकर याचना करते थे कि "भगवान के निकट हमें प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा मिले"। इस पर बुद्ध अनुग्रहपूर्वक कहा करते थे कि—"एहि भिक्खू" ति अर्थात् "हे भिक्षु आओ, सुकथित धर्म के अनुसार दुःख के क्षयार्थ ब्रह्मचर्यवास करो"। यही उनकी प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा होती थी। इस प्रकार प्रव्रजित हो वे साधुजीवन बिताते थे।

जब भिक्षुओं की संख्या बढ़ चली तो बुद्ध ने उन्हें सभी दिशाओं में बहुजन हिताय बहुजन सुखाय विचरण करने का आदेश दिया। साथ ही प्रव्रज्येप्सुओं को प्रव्रजित करने का उन्हें अधिकार देते हुए उसकी विधि बतलायी। प्रव्रज्याभिलाषी मुण्डित केश हो काषाय वस्त्र पहन एक कन्धे से संस्पृष्ट उत्तरासंग धारण कर उक्कुटिक ढंग से बैठ भिक्षुओं की वन्दना करते हुए इस प्रकार तीन बार

कहता था—"मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ, धर्म की शरण जाता हूँ, संघ की शरण जाता हूँ" (म० व० २४)। इस पर भिक्षु उसे प्रव्रजित करते थे। यही उसकी प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा होती थी। परम्परा के अनुसार उक्त विधि से दस शिक्षापद ग्रहण द्वारा प्रव्रज्या की चर्चा भी मिलती है। इसके बाद प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा में भेद हो चला। गृह त्यागकर संघ में प्रवेश के लिए जो प्रथम दीक्षा होती थी, वह प्रव्रज्या कहलाने लगी तथा प्रव्रजित का नाम श्रामणेर हुआ। संघ में प्रविष्ट हो साधुजीवन बिताते हुए बीस वर्ष की आयु प्रान्त करने पर दूसरी दीक्षा होती थी, उसका नाम उपसम्पदा पड़ा तथा उपसम्पन्न भिक्षु कहलाने लगा। यह दीक्षा संघ द्वारा ज्ञप्ति चतुर्थं (म० व० ५३) नय से दी जाती थी।

सर्वप्रथम उपसम्पित्सु संघ से उपसम्पदा की याचना करता था। तदनन्तर एक योग्य भिक्षु इस आशय को व्यक्त करते हुए उस आयुष्मान् को अमुक उपाध्याय की देख-रेख में उपसम्पन्न करने की इच्छा प्रकट करता था। यह ज्ञप्ति तीन बार सुनायी जाती थी। इस पर यदि संघ शान्त रहता था तो यह मान लिया जाता था कि वह आयुष्मान् अमुक उपाध्याय की देख-रेख में संघ द्वारा उपसम्पन्न किया गया।

भिक्षुसंघ के सम्यक् संचालनार्थं प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा के अनेक नियम बनाये गये। प्रव्रजित के लिये आवश्यक हो गया कि वह सविधि गृहीत आचार्य तथा उपाध्याय नामक शुभेक्षु शिक्षकों की देख-रेख में साधुजीवन के सिद्धान्त तथा भावनापक्ष की बाते सीखे तथा उनके प्रति विहित कर्त्तव्यों का पालन करे। अनधिकारी पुरुषों के प्रवेश को रोकने के लिए 'निस्सय' तथा परिवास का विधान किया गया। वस्तुतः प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा का वही अधिकारी समझा जाने लगा जो पुनर्भव के दुष्परिणामों को जान उनसे निस्सरण की अन्तःप्रेरणा से माता-पिता से अनुज्ञात पूर्ण निष्ठा के साथ संघ में प्रवेश करता था। कुष्ठ, अपस्मार, शोथ आदि के रोगी, राजभट, काराभेदक, राजघोषित चोर, ऋणी, दास, नपुंसक, पशुयोनि के जीव, माता-पिताधाती, भिक्षुनीदूषक तथा अन्धे-बहरे आदि प्रकार के विकलांगों का भी संघ प्रवेश निषिद्ध हो गया (म० व० ७६-९६)। साधुजीवन बिताते हुए श्रामणेर के लिए दश शिक्षापदों तथा भिक्षुओं के लिए पातिमोक्ख के नियमों का पालन अनिवार्य था।

परनिम्मितवसवत्ती (परनिर्मितवशवर्ती)—यह एक प्रकार के देवता का नाम है, जो कामावचर देवलोक के अन्तिम तथा छट्ठे लोक में निवास करते हैं। इनके नाम के आधार पर उस देवलोक का भी यही नाम है। ये स्वयं

अपने उपयोग के लिए किसी वस्तु का निर्माण नहीं करते हैं, बल्कि दूसरों द्वारा निर्मित वस्तुओं को अपने वश में कर लेते हैं। इनके ऐसे कार्य के लिए ही इन्हें 'परनिम्मितवसवत्ती' कहा जाता है—"ते परनिम्मितेसु कामेसु वसं वत्तेन्ति"।

आध्यात्मिक उत्थान की दृष्टि से इन देवताओं का महत्वपूर्ण स्थान है। कामावचरभूमि में ये सबसे उच्च कोटि के सत्त्व हैं। ये सोतापन्न की अवस्था तक उपलब्धि कर सकते हैं। इनका सहवास अति सुखमय होता है, जो श्रद्धा, श्रुत, शील आदि पंचांगी कुशलकर्मों के फल स्वरूप प्राप्त होता है (सं० नि० १-१३३)।

पवारणा—पवारणा शब्द का शाब्दिक अर्थ आमन्त्रित करना या मार्जन करना होता है। यह शब्द बौद्धसंघ में दोष-दिग्दर्शनार्थ आमन्त्रण के लिए रूढ़ हो चला है। विनयपिटक से (म० व० १६५-१९५) प्रकट होता है कि भगवान बुद्ध ने कोसल प्रदेश में वर्षोपगत कुछ भिक्षुओं के पशुवत् चर्या को लक्ष्य कर पवारणा का विधान किया था कि—"वर्षावास समाप्त किये भिक्षुओं को देखे-सुने परिशंकित तीन प्रकार के दोषों की पवारणा करनी चाहिए"—"वस्सं वुट्ठानं भिक्खूनं तीहि ठानेहि पवारेतुं—दिट्ठेन वा सुतेन वा परिसङ्काय वा" (म० व० १६६)।

इस विधान के अनन्तर भिक्षुओं के लिए वर्षावास के बाद पवारण एक पर्व-सा हो गया है। एक निश्चित तिथि को, विशेषतः अमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन, एक सीमा के अन्तर्गत रहने वाले भिक्षु एक स्थान में एकत्र हो पवारणा करते हैं। सन्निपतित संघ के बीच एक भिक्षु अन्य भिक्षु को आमन्त्रित करता है कि यदि उन्होंने उक्त अवधि में या कभी भी उस भिक्षु में किसी प्रकार का दोष देखा हो, अथवा सुना हो या तद्विषयक आशंका की हो, तो उसे बतलावें। इस प्रकार परस्पर दोष दिग्दर्शन के फलस्वरूप वे सामयिक स्खलनों से परिचित हो उनके निवारण के लिए यत्नवान् होते हैं। पवारणास्कन्धक में इसका पूर्ण विवरण प्राप्त होता है।

पंसुकूलिकङ्गं—तेरह धुतङ्गों में प्रथम धुतङ्ग का नाम पंसुकूलिकङ्ग है। पंसु का अर्थ है धूलि। उसके ऊपर पड़े, उससे धूसरित, क्लिष्ट, मैले वस्त्र को पंसुकूल कहा जाता है। बुद्धघोष (वि० म० ४०) के अनुसार गली, श्मशान, कूड़े की राशि पर पड़े, उससे विवर्ण वस्त्र (चिथड़े) का नाम पंसुकूल है। ऐसे चिथड़ों को एकत्र कर उनसे चीवर बनाकर पहनने के व्रत को पंसुकूलिकङ्ग धुतङ्ग कहते हैं।

पीति (पञ्चवण्णा)—चित्तविषयक प्रसन्नता को प्रीति कहते हैं। यह एक चेतसिक है। प्रियभाव उत्पन्न करना, चित्त एवं काय में अह्लाद उत्पन्न कर व्याप्त होना आदि इसका स्वरूप हैं। इसके पांच भेद कहे गये हैं। यथा खुद्दिकापीति, खणिकापीति, ओक्कन्तिकापीति, उब्बेगापीति, फरणापीति।

खुद्दिकापीति केवल रोमाञ्च मात्र उत्पन्न कर सकती है। खणिकापीति विद्युत की भांति क्षण-क्षण उत्पन्न एवं विलीन होते रहती है। ओक्कन्तिकापीति उस प्रकार शरीर को आप्लावित करती रहती है, जिस प्रकार समुद्र की ऊर्मिया समुद्रतीर को। उब्बेगापीति बलवती होती है। इसके बल से काय सहित आकाशलंघन भी सम्भव हैं। फारणापीति सम्पूर्ण शरीर को व्याप्त कर लेती है (अद० सा० ९५-९६)।

बुद्धन्तर—एक बुद्ध के महापरिनिर्वाण प्राप्त करने से लेकर दूसरे बुद्ध के उत्पन्न होने तक के काल को एक बुद्धन्तर कहा जाता है। इसकी अवधि निश्चित नहीं है। अनेक जन्मों तक अपार पुण्य के संचय से बुद्धत्व की प्राप्ति होती है। साथ ही उनके उत्पन्न होने में लोक की आवश्यकता भी कारण रूप समझी जाती है। उत्पत्तिभूत सभी कारणों के उपस्थित होने पर बुद्ध उत्पन्न होते हैं। इस दृष्टि से बुद्धन्तर की अवधि छोटी या बड़ी हो सकती है।

बुद्धवंस—यह खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत एक छोटी-सी पुस्तक है। इसमें उनतीस अध्याय हैं। इनमें सुमेधकथा से प्रारम्भ कर चौबीस बुद्धों का जीवन-वृत्त संक्षिप्ततः वर्णित है। अन्तिम अध्याय में गौतम बुद्ध के धातु-विभाजन का प्रसंग है।

भव (तीन भव)—भव का अभिप्राय यहाँ लोक से है। कामभव, रूपभव तथा अरूपभव नामक तीन लोक हैं। इन्हें कामावचरलोक, रूपावचरलोक, अरूपावचरलोक या कामधातु, रूपधातु तथा अरूपधातु भी कहा जाता है।

कामभव में दो वास भूमियाँ हैं—अपायभूमि तथा कामसुगतिभूमि। पुनः अपायभूमि में निरय, तिरच्छानयोनि, पेत्तिविसय तथा असुरकाय नामक चार उपभूमियाँ हैं। इसी प्रकार कामसुगतिभूमि में मनुस्स, चातुम्महाराजिक, तावतिंस, यामा, तुसित, निम्मानरति तथा परनिम्मितवसवत्ती नामक सात लोक या उपभूमियाँ हैं।

रूपभव के अन्तर्गत सोलह लोक हैं। यथा—ब्रह्मपारिसज्ज, ब्रह्मपुरोहित, महाब्रह्मा, परित्ताभ, अप्पमाणाभ, आभस्सर, परित्तसुभ, अप्पमाणसुभ, सुभकिण्ह, वेहप्फल, असञ्ञसत्त तथा सुद्धावास। सुद्धावास पाँच देवलोकों का सामूहिक नाम है। वे हैं—अविहा, अतप्पा, सुदस्सा, सुदस्सी, तथा अकनिट्ठा।

अरूपभव में चार लोक हैं। यथा—आकासानञ्चायतनभूमि, विञ्ञाणानञ्चायतनभूमि, आकिञ्चञ्ञायतनभूमि तथा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनभूमि। इस प्रकार सभी मिला कर बौद्ध परम्परा के अनुसार एकतीस लोक हैं, जो एक-एक के ऊपर स्थित बतलाये जाते हैं (अभि० सं० ८७–८८)।

भिक्खु—भिक्खु शब्द 'भिक्ख' धातु से—'यह उसका शील है'—इस अर्थ में, 'रू' प्रत्यय लगने से बनता है (पारादिगमिम्हा रू, ४.१.११, भिक्खादितो च, ४.१.१२)। इसका अर्थ होता है—याचक। बुद्धघोष ने इसकी व्युत्पत्ति 'इक्ख' धातु से की है। उनके अनुसार संसार अर्थात् जन्म-मरण प्रवाह में भय देखने वाले को भिक्खु कहा जाता है—'संसारे भयं इक्खती ति भिक्खु' (वि० म० पृ० ३)। भिक्खु शब्द का व्यावहारिक अर्थ है—एक बौद्ध साधु।

प्राणिमात्र को दुःख से निवृत्ति देने के लिए बुद्धों का जन्म होता है। उनकी देशना सर्वविध कल्याणप्रद होती है। उनकी देशना से उनमें अपूर्व श्रद्धा लाभकर गृहीजीवन को बाधाओं से पूर्ण तथा प्रव्रज्या को आकाश-सा मुक्त समझते हुए प्रव्रजित का नाम भिक्खु है। बुद्ध के उपदेश क्रम के प्रारम्भ में जो कोई व्यक्ति श्रद्धासम्पन्न हो प्रव्रज्या की याचना करता था, बुद्ध उसे प्रव्रजित करते थे। इसके लिए—'एहि भिक्खू' ति उनका वाक्य निःसरित होता था। इस प्रकार संघ में प्रविष्ट होने के साथ-साथ उस व्यक्ति का नाम भिक्खु हो जाता था। कालान्तर में प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा नामक दो प्रकार की दीक्षाओं का विधान हुआ। फलतः संघ में प्रवेश के समय जो प्रथम दीक्षा होती थी, उसका नाम प्रव्रज्या तथा प्रव्रजित का नाम श्रामणेर होता था। संघ में प्रविष्ट होकर निश्चित अवधि तक समुचित शिक्षा ग्रहण करने के बाद दूसरी दीक्षा होती थी, जिसे उपसम्पदा कहते थे। उपसम्पन्न ही भिक्खु कहलाता था।

भिक्षु-जीवन का आदर्श महान् है। उत्पन्न दुःखों का सर्वथा विनाश, अनुत्पन्न की अनुत्पत्ति तथा निर्वाण की प्राप्ति उसका उद्देश्य होता है। संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि जीवन-मरण-प्रवाह को सर्वदा के लिए अन्त कर देने के उद्देश्य से वह ब्रह्मचर्यवास करता है।

भिक्खु अपने वेश से सुज्ञात होता है। उसका सिर मुण्डित रहता है। उसके शरीर पर काषाय रङ्ग के तीन वस्त्रखण्ड होते हैं। एक को वह पहने रहता है, जिसे अन्तरवासक कहते हैं। दूसरा उसके एक कन्धे को स्पर्श करता हुआ शरीर को आवृत करता है, जो उत्तरासङ्ग कहलाता है। तीसरा इनके ऊपर शरीर को ढके रहता है, जिसका नाम संघाटी है। इन तीन वस्त्रखण्डों का सम्मिलित नाम चीवर है। भिक्खु के हाथ में एक गोलाकार भिक्षापात्र रहता है, जो मिट्टी, पत्थर या लोहे से बना रहता है।

भिक्खु का भोजन पिण्डपात अर्थात् भिक्षान्न है। वह प्रतिदिन पूर्वाह्न में भिक्षापात्र लिए गाँव में प्रवेश करता है और विभेदरहित प्रत्येक घर से भिक्षा माँगता है। इस प्रकार प्राप्त अन्न उसका भोजन है। उसके भोजन ग्रहण का एकमात्र उद्देश्य कायपरिहरण है।

भिक्षु सामान्यतया एक कुटी में रहता है, जो बुद्ध के बित्ते से बारह बित्ते लम्बी तथा सात बित्ते चौड़ी होती है। इसके अतिरिक्त विहार, हम्मि, गुफा, लेण, वृक्षमूल, पलालपुञ्ज, अरण्य, खुला आकाश आदि उसके आवास स्थान हैं।

भिक्खु की दिनचर्या नियमित है। वह प्रातःकाल उठकर नित्य कर्मों से निवृत्त हो चंक्रमण करता हुआ धर्म का अभ्यास करता है। पुनः अपने आचार्य या अन्य स्थविरों के प्रति अपना विहित कर्तव्यों का पालन कर धार्मिक अभ्यास में लग जाता है। पूर्वाह्न में भिक्षार्थ गाँव जाता है तथा भोजनोपरान्त स्वल्प विश्राम के साथ पुनः साधना में लग जाता है। वर्तमानकाल में बौद्ध देशों में भिक्षु भोजनोपरान्त अध्यापन कार्य करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक विहार एक-एक विद्यालय बन गया है, जिसे परिवेण कहते हैं।

भिक्खु के साधना के तीन पाद होते हैं, जिन्हें शील, समाधि तथा प्रज्ञा कहते हैं। शील से कायिका तथा वाचसिक संयम, समाधि से मानसिक संयम तथा प्रज्ञा से वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान तथा परम तत्त्व निर्वाण का साक्षात्कार होता है। इस क्रम में पहले वह पातिमोक्ख में प्रज्ञप्त नियमों से अपने को संयमित बनाता है। इन्द्रियों को स्ववश कर लेता है। पुनः चित्त के विक्षोभक नीवरणों के प्रहाण तथा एकाग्रता के साधक ध्यानाङ्गों के उदय से रूपवान् तथा रूपविरहित आलम्बनों पर ध्यान करता हुआ रूप तथा अरूप समाधि की विविध अवस्थाओं को प्राप्त करता है। समाधि के ऐसे अभ्यास से उसका चित्त परिशुद्ध मृदु तथा सूक्ष्म हो जाता है। इसके सहारे दिव्य श्रोत्र, दिव्य चक्षु, परचित्तविजानना आदि आध्यात्मिक अलौकिक शक्तियों के साथ-साथ निर्वाण का साक्षात्कार करता है। इससे उसका जन्ममरण प्रवाह सदा के लिए रुक जाता है तथा वह अचल सुख को प्राप्त करता है—'पत्तो सो अचलं सुखं'।

भिक्खु समाज के लिये एक उपयोगी प्राणी है। वह त्याग, अल्पेच्छा, सुभरता, नैतिक जागरण एवं आध्यात्मिक चेतना का प्रतीक है। उसका भिक्षार्थ प्रतिदिन जन बीच जाना घोर भौतिकता में आध्यात्मिकता की प्रेरणास्वरूप है।

मग्गसुख, फलसुख—चार लोकोत्तर मार्ग को 'मग्ग' (मार्ग) तथा चार लोकोत्तर फल को फल कहा जाता है। तज्जनित सुख मग्गसुख तथा फलसुख हैं। चार लोकोत्तर मार्ग हैं—स्रोतापत्ति मार्ग, सकृदागामी मार्ग, अनागामी

मार्ग एवं अर्हत् मार्ग। चार लोकोत्तर फल हैं—स्रोतापत्ति फल, सकृदागामी फल, अनागामी फल एवं अर्हत् फल।

निर्वाण का अभीप्सु योगावचर क्रमशः रूप एवं अरूप समाधि द्वारा अपने चित्त को सूक्ष्म एवं परिशुद्ध बनाता है। वैसे अंगणरहित, ऋजुभूत, अवदात, मृदु एवं निर्दोष चित्त से जब वह लोकोत्तरभूमि में प्रवेश करता है, तो देखता है कि उसके लक्ष्य के अधिगम में बाधक धर्म दस संयोजन अभी अवशेष हैं। जब तक इन संयोजनों का समूल विनाश नहीं हो जाता है, तब तक निर्वाण की प्राप्ति असम्भव है। अतः वह इनके प्रहाण के लिए यत्नवान् होता है।

प्रथम प्रयास में वह सक्कायदिट्ठि, विचिकिच्छा तथा सीलब्बतपरामास नामक तीन संयोजनों को काटता है। ऐसा करने से वह स्रोतापन्न कहलाता है। स्रोत का अभिप्राय यहाँ निर्वाणोन्मुखगामी स्रोत से है। उस पर आपन्न अर्थात् आरूढ़ पुरुष स्रोतापन्न है। स्रोतापन्न को राजपथारूढ़ पुरुष द्वारा राजभवन दर्शन के समान, निर्वाण का दर्शन हो जाता है, यद्यपि अभी प्राप्ति नहीं हुई रहती है। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि यदि वह इस जन्म में निर्वाण को नहीं प्राप्त कर पाता है, तो अगले सात जन्मों में अवश्य प्राप्त कर लेता है।

स्रोतापन्न द्वारा संयोजनों को विनष्ट करने की दो अवस्थायें हैं। कुछ क्षण वैसे होते हैं, जिनमें वह संयोजनों को काटता है। इसे ही स्रोतापत्ति मार्ग कहा जाता है तथा उनके विनाश से प्राप्त सुख ही मार्गसुख है। इन संयोजनों के विनष्ट हो जाने के अनन्तर कुछ ऐसे क्षण होते हैं, जब वह जान लेता है, कि वे विनष्ट हो गये। इसे स्रोतापत्ति फल कहा जाता है। तज्जनित सुख ही फल-सुख है।

द्वितीय प्रयास में वह कामराग, एवं पटिघ नामक दो बलिष्ट संयोजनों को दुर्बल कर सकृदागामी कहलाता है। यहां भी दुर्बल करने एवं जानने के भेद से मार्ग एवं फल का भेद जानना चाहिए। सकृदागामी का अर्थ है—एकबार आने वाला। यदि उसे इस जीवन में निर्वाण नहीं मिल पाता है, तो अधिक से अधिक एक बार उसे यहां आना पड़ता है।

तृतीय प्रयास में वह इन दो दुर्बल संयोजनों को समूल नष्ट कर देता है। ऐसा कर वह अनागामी कहलाता है। अनागामी का अर्थ न आने वाला होता है। यदि उसे इस जीवन में निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो पाती है, तो पुनः वह यहां नहीं आता है, कहीं देवलोक में ही उत्पन्न हो निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। अनागामी अवस्था लाभ के क्रम में संयोजनों को काटने को मग्ग तथा वे कट गये, इस ज्ञान को फल कहा गया है।

चतुर्थ प्रयास में वह अवशेष पांच संयोजन—रूपराग, अरूपराग, मान, उद्धच्च एवं अविज्जा को काट कर अर्हत् होता है। संयोजनों को विनष्ट करने तथा इसे जानने के भेद से मग्ग एवं फलका भेद समझना चाहिए।

इस प्रकार स्रोतापत्ति मार्ग, सकृदागामी मार्ग, अनागामी मार्ग एवं अर्हत्-मार्ग में प्राप्त सुख को मार्गसुख तथा स्रोतापत्तिफल, सकृदागामीफल, अनागामीफल एवं अर्हत्फल की अवस्था में प्राप्त सुख को फलसुख कहा जाता है।

मञ्जेरिकभवन—यह नागलोक में स्थित महाकाल नागराज के आवास-स्थान का नाम है। निदानकथानुसार (१७४-७६) यह पांच सौ योजन लम्बा है। इसे सुमेरुपर्वत के नीचे स्थित बतलाया जाता है। सुजाता की खीर खाकर बोधिसत्त्व ने थाल को निरञ्जरा नदी में विपरीत प्रवाहोन्मुख फेंक दिया, जो गतिमान हो मञ्जेरिक भवन में जा अन्य बुद्धों के उपभोग किये थालों के साथ किलिकिलि शब्द करता स्थिर हो गया। इसे देख नागराज ने प्रसन्नता व्यक्त की कि पुनः एक बुद्ध की उत्पत्ति हुई।

महापुरिसलक्खणानि—पालिसाहित्य में महापुरुषों के लक्षणों की चर्चा है। उनमें बत्तीस लक्षण तथा अस्सी अनुब्यंजन कहे जाते हैं। इनका कथन कर्मसिद्धान्त पर आधारित है। प्रत्येक लक्षण एक-एक कुशल कर्म के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं। इन लक्षणों से युक्त मनुष्य महापुरुष होता है। दीघनिकाय के लक्खणसुत्त तथा मज्झिमनिकाय के ब्रह्मायुसुत्त में बत्तीस लक्षणों की चर्चा निम्नलिखित प्रकार है :—

१. सुप्रतिष्ठित पाद (पैरों को ऐसा होना जो पृथ्वी पर बराबर बैठें)।
२. पैर के तलवे में सर्वाकार परिपूर्ण नाभिनेमि युक्त सहस्र अरों वाले चक्र का होना।
३. आयत-पार्ष्णि अर्थात् चौड़ी एड़ीवाला होना।
४. दीर्घ अंगुल अर्थात् बड़ी अंगुलियोंवाला होना।
५. मृदु-तरुण हस्तपाद हाथ एवं पैरों का मृदु एवं नवल होना।
६. जाल हस्तपाद—अर्थात् अंगुलियों के बीच बत्तक के पंजे की भांति चमड़ा होना।
७. उस्संखपाद—पैर का ऐसा होना जिसके ऊपर गुल्फ अवस्थित हों।
८. एणीजंघ—मृग के समान पेंडुली—भाग का होना।
९. आजानुबाहु—भुजा इतने लम्बे हों कि सीधे खड़े होने पर घुटनों को स्पर्श करें।
१०. कोषाच्छादित वस्तिगह्य अर्थात् पुरुषेन्द्रिय का कोषगत होना।

११. सुवर्ण-वर्ण तथा कञ्चन सदृश त्वचावाला होना।
१२. सूक्ष्म छवि अर्थात् ऊपर त्वचा इतनी सूक्ष्म हो कि उस पर मल न चिपक सके।
१३. एकैकलोम—एक-एक रोमकूप में एक-एक रोम का होना।
१४. उर्ध्वाग्रलोम—अञ्जन सदृश नीले एवं कुण्डलित लोमों का होना, जिनके अग्रभाग ऊपर की ओर उठे हों।
१५. ब्रह्म-ऋजु-गात्र अर्थात् लम्बे एवं सीधे शरीर का होना।
१६. सप्त-उत्सद—सातों अंगों को पूर्ण आकारयुक्त होना।
१७. सिंह-पूर्वार्द्ध-काय—पूर्वार्द्ध-काय छाती आदि का सिंह के काय सदृश होना।
१८. चितान्तरांस—दोनों कन्धों के बिचले भाग को पूर्ण होना।
१९. न्यग्रोध परिमण्डल—शरीर के अनुपात में उसकी चौड़ाई का होना।
२०. समवर्त-स्कन्ध—समान परिमाण का कन्धावाला होना।
२१. रसग्ग-सग्गी अर्थात् सुन्दर शिराओं से युक्त होना।
२२. सिंह हनु—सिंह सदृश ठोढ़ीवाला होना।
२३. चौव्वालीस-दन्त—दाँतों की संख्या चौव्वालीस होना।
२४. समदन्त—दाँतों का बराबर होना।
२५. अविवरदन्त—दाँतों का बिवररहित होना।
२६. सुशुक्ल दाठ—अति शुभ्र दाढ़वाला होना।
२७. प्रभूत-जिह्व—लम्बी जीभवाला होना।
२८. ब्रह्मस्वर—करविक पक्षी के समान मृदु एवं गम्भीर स्वरवाला होना।
२९. अभिनीलनेत्र—अतसी पुष्प सदृश नील नेत्र का होना।
३०. गोपक्ष्मा—जिसकी पलकें गाय की पलकों जैसी हो।
३१. ऊर्णा अर्थात् भौंहों के बीच श्वेत एवं मृदु कपास सदृश रोम पंक्तियों का होना।
३२. उष्णीषशीर्ष—पगड़ी बंधे जैसा समान आकार का शिर वाला होना।

महाब्रह्मा—रूपावचर तृतीय ब्रह्मलोक को महाब्रह्मा लोक कहते हैं। इस लोक के निवासी महाब्रह्मा के नाम से अभिहित होते हैं। इन्हें महाब्रह्मा कहलाने का कारण यह है कि ये पूर्व के दो लोकों के ब्रह्माओं की अपेक्षा सौन्दर्य एवं आयु में विशेष हैं—'वण्णवन्तताय चेव दीघायुकताय च महन्ततो ब्रह्मा ति महाब्रह्मा' (विभं० अ० ५२८)। अट्ठसालिनी (१६०) के अनुसार ये परिशुद्ध चित्त वाले होने के कारण महाब्रह्मा कहलाते हैं—'ब्रह्मानो निद्दोसचित्ता विहरन्ति'।

महाब्रह्मा का सहवास कुशल कर्मों के फलस्वरूप होता है। अभिधर्म परम्परा के अनुसार प्रथम-ध्यान की पूर्ण रूप से भावना के फलस्वरूप महाब्रह्मा के रूप में जन्म होता है (अभि० सं० १०२)। उनका चित्त स्वभावत: प्रथम-ध्यान के चित्त सदृश सूक्ष्म एवं परिशुद्ध होता है।

महाविहार—लङ्का द्वीप के अनुराधपुर में स्थित एक विहार का नाम है, जो वर्षों तक स्थविरवादी बौद्ध शिक्षा का केन्द्र रहा है। इसे भिक्षु महेन्द्र के सुझाव के अनुसार लङ्का नरेश देवानां प्रिय तिष्य ने बनवाया था। यह एक बड़े क्षेत्र में स्थित था, जहाँ सुव्यवस्थित ढङ्ग से बनीं अनेक कुटियाँ तथा संघाराम थे। इसके मध्य में बोधिवृक्ष, थूपाराम तथा महाथूप आदि थे।

बौद्ध धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में इसका उत्कर्ष वर्षों तक बना रहा। आचार्य बुद्धघोष जब अट्ठकथा के उद्धार के लिए लङ्का गये तो उन्होंने यहीं रह कर सिंहल अट्ठकथाओं को पढ़ा तथा समस्त पिटक ग्रन्थों पर पालि में अट्ठकथाएँ लिखीं। उन्होंने अपनी अट्ठकथाओं में सर्वत्र महाविहार की परम्परा का उल्लेख किया है—'महाविहारवासीनं दीपयन्तो विनिच्छयं'।

कालक्रम से महाविहार के भिक्षुओं में सिद्धान्तविषयक मतभेद हुए तथा वट्टगामिनी के समय में वे—महाविहारवासी तथा अभयगिरिवासी नामक दो दलों में विभक्त हो गये। राज्य प्रश्रय के लाभ एवं अभाव में तदनन्तर दोनों का उत्कर्ष एवं अपकर्ष होता रहा। अभी यह खण्डहर के रूप में विद्यमान है।

यक्ख (यक्ष)—पालिसाहित्य में उपलब्ध वर्णन के आधार पर यक्षों के सम्बन्ध में कोई निश्चित धारणा नहीं हो पाती है। ये इस प्रकार के प्राणी के रूप में चर्चित हैं, जिनमें कुछ गुण तो मनुष्य के हैं, कुछ भयावह पशुओं के तथा कुछ देवताओं के। इस आधार पर इन्हें मनुष्य तथा देवता के बीच के एक प्राणिविशेष के रूप में रखा जा सकता है।

यक्ष विविध वर्ण के विशालकाय तथा भयप्रद व्यक्तित्व से युक्त होते हैं। इन्हें आश्चर्य से भरे ऋद्धिबल होता है, जिससे ये इच्छानुकूल विविध रूप धारण कर सकते हैं। ये पृथ्वी, वृक्ष तथा आकाश में जहाँ कहीं भी मनोबल से अपना निवासस्थान बनाकर रहते हैं।

पालिसाहित्य में यक्ष शब्द का प्रयोग कई अर्थों में देखा जाता है। आटानाटियसुत्त (दी० नि० ३,१५७) में इन्हें अमनुष्य कहा गया है—'अमनुस्सो यक्खो'। गन्धत्थेनसुत्त (सं० नि० १,२०५) में यह देवता के अर्थ में प्रयुक्त है। महामौद्गल्यायन ने शक्र को यक्ष शब्द से सम्बोधित किया है। अन्यत्र यह बुद्ध के लिए भी प्रयुक्त है।

आटानाटियसुत्त तथा महासमयसुत्त से प्रकट होता है कि यक्ष भारत के सभी प्रदेशों में रहते थे, पर उत्तरी भारत के पर्वतीय भू-भाग में इनका विशेष आधिपत्य था। उत्तर दिशा के लोकपाल कुबेर (वेस्सवण्ण) इनके राजा थे, उत्तरकुरु इनका राज्य तथा अलकनन्दा इनकी राजधानी थी।

यक्षों के नाम से उनके कठोर व्यक्तित्व का परिचय मिलता है, यथा—कुवण्ण, खरलोम, खरदाठिक, चित्तरज, सिलेसलोम, सुचिलोम आदि। जातकों में ऐसी कथाएँ देखी जाती हैं, जहाँ उनके मनुष्यभक्षण, शवभक्षण, शिशुभक्षण जैसे नृशंस कार्य देखे जाते हैं। इसके विपरीत आपातत: रूक्ष स्वभाव के होते हुए भी आलवकयक्ष, हेमवतयक्ष, इन्दक, सक्कनाम आदि जैसे आध्यात्मत: समुन्नत यक्षों की कथाएँ भी उपलब्ध हैं, जिन्होंने बुद्ध से गूढ़ तत्त्वों से भरे प्रश्नों को पूछ आध्यात्मिक ग्रन्थिस्थानों का उत्तानिकरण किया है। बुद्ध धर्म के प्रसार में भी यक्षों का प्रभूत योग देखा जाता है। (दी० नि० १,८२; २,११३, १९१, १९२, २५७; ३,१५३, १५७; म० नि० २,६०; सं० नि० १,५२, २०५; अं० नि० ४०–४१; जा० १,२०५; २,१५; ३,३०९; ४,४९२; ५,२१, ३४, ४२०, ५१३; ६,११८, ३३६–३७, ४६९)।

यमकपाटिहारी—पाटिहारी आश्चर्योत्पादक कार्य का नाम है। इसे ऋद्धि प्रदर्शन भी कहा जाता है। पालिसाहित्य में पाटिहारियों का उल्लेख है। बुद्ध ने भी यदा-कदा पाटिहारी दर्शायी है। यमकपाटिहारी में दो विरोधी तत्त्वों का एक साथ प्रदर्शन होता है। बुद्ध द्वारा सम्पादित यमकपाटिहारी के प्रसङ्ग में ऐसा देखा जाता है कि उनके शरीर के एक भाग से अग्निज्वाला निकलती थी तथा दूसरे भाग से शीतल जल प्रवाह का निर्गमन होता था। एक ही काय से इन दो विरोधी तत्त्वों के सञ्चरण के कारण इसे यमकपाटिहारी कहा जाता है। पाटिहारी-प्रदर्शन चित्त की सूक्ष्मता एवं परिशुद्धता का फल है। (अट्ठ० सा० १२, १५)।

वत्थुकाम—विभिन्न वस्तुओं की इच्छा को वत्थुकाम कहते हैं। वत्थु का अभिप्राय प्रिय रूपों या वस्तुओं से है। महानिद्देस (१०, २०८) में घर, आराम, विहार आदि को वत्थु कहा गया है। यथा "वत्थु ति घरवत्थु, कोट्ठवत्थु, पुरेवत्थु, पच्छावत्थु, आरामवत्थु, विहारवत्थु"। इनके प्रति लिप्सा वत्थुकाम है। इसे कामसुख भी कहा जा सकता है।

वस्सावास (वर्षावास)—वर्षाकाल में तीन महीने तक भिक्षु द्वारा किसी एक स्थान में रह कर ध्यानाभ्यास करने की विधि को वर्षावास कहते हैं। वर्षा के समय भी चारिकारत रहने वाले भिक्षुओं द्वारा बहुसंख्यक क्षुद्र

प्राणियों की हिंसा तथा उनके ध्यानाभ्यास की परिपक्वता को लक्ष्य कर भगवान् बुद्ध ने वर्षावास का विधान किया है—'अनुजानामि भिक्खवे, वस्साने वस्सं उपगन्तुं ति' (म० व० १४४)।

वर्षावास दो प्रकार का होता है—पुरिमका तथा पच्छिमका। इनमें पहला आषाढ़ के प्रथम दिन से प्रारम्भ होता है तथा दूसरा श्रावण के प्रथम दिन से। दोनों अवस्थाओं में इसकी अवधि तीन महीनों की होती है।

वर्षावास का स्थान ग्राम से न तो अति निकट रहना चाहिये, न अति दूर ही तथा पिण्डाचार के लिए आने-जाने में सुविधा रहनी चाहिए।

सामान्यतया वर्षावास के तीन महीनों तक स्थान परित्याग का विधान नहीं है। पर कुछ ऐसी परिस्थितियों का उल्लेख है, जिनमें एक सप्ताह के लिये वर्षुपच्छेद किया जा सकता है। वे इस प्रकार हैं :—

१. किसी उपासक द्वारा संघ या बहुत भिक्षुओं के उद्देश्य से विहार, प्रासाद, हर्मि, गुहा, उदपानशाला, चंक्रमणशाला आदि बनाते हुए दर्शनार्थ एवं दानादि कर्म के लिये भिक्षुओं को बुलाये जाने पर एक सप्ताह के लिये जाना चाहिये।

२. किसी भिक्षु या माता-पिता के अस्वस्थ होने पर बिना बुलाये भी एक सप्ताह के लिये जाना चाहिये।

३. भाई-बहन सम्बन्धी आदि के अस्वस्थ होने पर बुलाये जाने पर एक सप्ताह के लिये जाना चाहिये।

४. वर्षोपगत भिक्षु को बाढ़, सर्पदंश, चोर, पिशाच, अग्निदाह आदि से जीवन भय रहने पर वह स्थान त्याग कर सकता है।

वर्षावास के लिये उपयुक्त, अनुपयुक्त स्थान, कर्त्तव्यकृत्य आदि का पूर्ण विवरण महावग्ग के वस्सूपनायिका-खन्धक में उपलब्ध है (म०व० १४४-१६४)।

विस्सकम्मा (विश्वकर्मा)—ये चातुमहाराजिक नामक कामावचर देवलोक के एक देवता या देवपुत्र हैं, जो बहुलतया शक्र की सेवा में तावतिंस लोक में रहते हुए प्रधान अभियन्ता का कार्य करते हैं। इन दो देवलोकों के राजकीय दिव्य भवनों के ये निर्माता हैं। कहा जाता है कि ये शक्र की आवश्यकतानुसार मनुष्य एवं देवलोक में पुण्यात्माओं के लिये निवासस्थान बनाते हैं। राजा सुदर्शन (दी० नि० २,१३८) तथा राजकुमार महापदान (जा० ४,३२३) के लिये इन्होंने बहुत ही सुन्दर प्रासाद का निर्माण किया था। कुद्दाल पण्डित (जा० १,३१४) तथा सुमेध तापस (नि० क० १६) के प्रव्रजित होने पर हिमालय के सुरम्य पाद में इनके द्वारा सुन्दर पर्णशालायें बनाने का उल्लेख है। हत्थिपाल, अयोधर, ज्योतिपाल, सुतसोम, तेमिय, वेस्सन्तर,

(जा० ४,४९; ४९९; ५,१३२, १९०; ६,२१-२९, ५१९) आदि के प्रसङ्ग में भी ऐसी चर्चा है। सिद्धार्थ गौतम के महाभिनिष्क्रमण के पूर्व उन्होंने उनके गृही-जीवन का अन्तिम शृङ्गार अपूर्व ढङ्ग से किया था। ऐसा ही वर्णन तेमिय के पक्ष में भी उपलब्ध होता है (जा० ६,१२)। इस प्रकार विश्वकर्मा के कार्य एक नगरनिर्माता, अभियन्ता एवं दक्ष सुशोभक के रूप में देखा जाता है।

सक्क (शक्र)—चातुमहाराजिक तथा तावतिंस नामक दो कामावचर देवलोकों के राजा का नाम शक्र (सक्क) है। ये बहुलतया देवराज शक्र कहे जाते हैं—'देवानं इन्दो सक्को'। मघव, पुरिन्दद, वासव, सहस्सक, सुजम्पति, कोसिय आदि इनके अनेक नाम पाये जाते हैं। पालि साहित्य से प्रकट होता है कि शक्र किसी देवविशेष का नाम नहीं है, बल्कि यह एक पद है। कुशलकर्मों के फलस्वरूप मनुष्य इस पद को प्राप्त करते हैं। जो शक्र गौतम बुद्ध के समय थे, वे इस जन्म के पूर्व मगध के एक ब्राह्मण कुल में मघ नामक माणवक के रूप में उत्पन्न थे।

शक्र का व्यक्तित्व बहुत ही सुन्दर ढङ्ग से चित्रित है। वे एक चतुर शासक, महान् योद्धा, प्राणिमात्र के हितैषी तथा श्रद्धासम्पन्न साधक हैं। उनके प्रासाद का नाम 'वेजयन्त' तथा सिंहासन का नाम पण्डुकम्बल सिलासन है। कहा जाता है कि जब कोई मनुष्य कुशल कर्मों में अतिशयता प्राप्त करता है, तो उनका पण्डुकम्बल सिलासन उष्ण हो जाता है। सत्पुरुषों के विपत्तिकाल में भी उसके उष्ण होने का उल्लेख है। दोनों दशा में शक्र उनके निकट पहुँच यथोचित हितकर कार्य करते हैं। शक्र को त्रिरत्न में अपार श्रद्धा है तथा वे बुद्ध धर्म के प्रसार में सदा तत्पर रहा करते हैं। (दी० नि० २,१५६, १६५, २०१; म० नि० १,३११; अं० नि० १,१३३; ३,८२, २२१, २३३; सं० नि० १,२०७, २३०-२३२; जा० २,३१२)।

सपदान पिण्डाचार—ग्राम में भिक्षा के लिये प्रविष्ट हो क्रम से सभी घरों से भिक्षा माँगना सपदान पिण्डाचार है। इसमें धनी, निर्धन, ऊँच-नीच कुल, प्रासाद या कुटी के विभेद से रहित सभी घर का भिक्षान्न ग्रहण किया जाता है।

सब्बञ्ञुता (सर्वज्ञता)—संस्कृत असंस्कृत समस्त धर्मों के अनवशेष ज्ञान को सर्वज्ञता कहते हैं। ऐसे ज्ञान से विशिष्ट पुरुष को सर्वज्ञ कहा जाता है। उसे अतीत अनागत प्रत्युत्पन्न के विविध धर्मों के जानने के विषय में आवरण नहीं रहता है। विश्व के समस्त पदार्थ उससे सुज्ञात होते हैं (पटि० म० १४५-४७)। ऐसे कथन का यह अर्थ नहीं कि विश्व की समस्त वस्तुएँ सर्वदा उसके मानस-पटल पर जमघट लगाये रहती हैं, वरन् इसका अभिप्राय यह है कि सर्वज्ञता प्राप्त

मनुष्य समस्त वस्तुओं को जानने की शक्ति से विशिष्ट रहता है। जब जिसको जानना चाहता है, उसका आवर्जन कर जान लेता है। इसलिए बौद्ध परम्परा में ऐसी सर्वज्ञता को आवर्जनप्रतिबद्ध सर्वज्ञता कहते हैं—'आवज्जनपटिबद्धं सब्बञ्ञुतञाणं, आवज्जित्वा यदिच्छितं जानाति' (मि० प० १०५)।

समणपरिक्खार—एक प्रव्रजित की आवश्यक सामग्रियों को समणपरिक्खार कहते हैं। वे आठ हैं। यथा—

तिचीवरं च पत्तो च, वासी सूचि च बन्धनं।
परिस्सावनेन अट्ठेते, युत्तयोगस्स भिक्खुनो॥ (नि० क० १६२)

अर्थात् तीन चीवर, पात्र, अस्तुरा, सुई, कायबन्धन तथा जल छानने का वस्त्र। कहा जाता है कि बोधिसत्व के प्रव्रजित होने पर घटीकार ब्रह्मा नामक उनके मित्र ब्रह्मा ने उन्हें ये आठ परिक्खार दिया था।

सहम्पति ब्रह्मा—सहम्पति ब्रह्मा रूपावचर ब्रह्मलोक के एक देवता या ब्रह्मा हैं। पालिसाहित्य में ब्रह्माओं की एक लम्बी सूची पायी जाती है, जिसमें सहम्पति ब्रह्मा का सर्वत्र प्रमुख स्थान है। इसका कारण यह है कि ये रूपलोक के प्राणि होते हुए भी मानव मात्र के कल्याण में सदा रत रहते हैं। इनके अधिक कार्यकलाप मनुष्यलोक में देखे जाते हैं।

बोधिलाभ के बाद बुद्ध के मन में धर्मोपदेश करने से विरक्ति उत्पन्न हुई। उन्होंने संसार के मनुष्यों को इसके लिए उपयुक्त नहीं पाया। सम्पति ब्रह्मा ने उनके मनोवितर्क को जान उनसे धर्म देशना की याचना की। फलतः उन्होंने धर्मचक्र-प्रवर्तन किया (म० व० ५-१२)। संयुक्तनिकाय (५.२०१) से प्रकट होता है कि बुद्ध द्वारा पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी उपदेश की सहम्पति ब्रह्मा ने जन कल्याण की भावना से भूरि-भूरि प्रशंसा की। उनके ऐसे कार्य सतिपट्ठान के उपदेश के समय भी देखे जाते हैं (सं० नि० ५. १४३-४४)।

सहम्पति ब्रह्मा का व्यक्तित्व अति सुन्दर एवं प्रभासम्पन्न है। ये जहां कहीं प्रकट होते हैं, वह स्थान उनके शरीर से निःसृत आभा से आलोकित हो उठता है (सं० नि० १. १५४)। विरोधियों पर भी उनके ऐसे व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ता है, और वे धर्म के तत्त्व को समझ जाते हैं। इसलिए इन्हें महाब्रह्मा भी कहा जाता है।

सुद्धावास (शुद्धावास)—रूपावचर ब्रह्मलोक के अन्तिम लोक को शुद्धावास कहा जाता है। इसके निवासी शुद्धावास देवता या ब्रह्मा कहे जाते हैं। शुद्धावास ब्रह्मलोक पांच ब्रह्मलोकों का सामूहिक नाम है। वे हैं—अविहा, अतप्पा, सुदस्सा, सुदस्सी तथा अकनिट्ठा—(दी० नि० ३. १८४; अभि० सं०

८८)। इस प्रकार शुद्धावास से उक्त नामक पांच प्रकार के ब्रह्मा अभिप्रेत हैं। इनके ऐसे नाम का कारण भी है। अभिधर्म दर्शन के अनुसार शुद्धि का तात्पर्य चित्तशुद्धि से है। रूपावचर पञ्चम ध्यान की भावना पूर्ण रूप से करने के फलस्वरूप इस लोक में जन्म होता है। फलतः इस लोक के ब्रह्माओं का चित्त स्वभावतः उतना सूक्ष्म तथा परिशुद्ध रहता है, जितना पञ्चम ध्यान का होता है। ध्यान परम्परा में परिशुद्धता का यह पर्यवसान रूप है। ऐसे चित्त-सम्पन्न होने के कारण ये शुद्धावास कहे जाते हैं तथा उनका लोक भी शुद्धावास ब्रह्मलोक कहलाता है। अनागामी फल प्रतिष्ठित योगावचर यहीं उत्पन्न होकर अर्हत्व का लाभ करता है।

संसार सागर—जीवन-मरण परम्परा को संसार कहते हैं। मिलिन्द प्रश्न में (८०) नागसेन ने बतलाया है कि "यहीं उत्पन्न होकर यहीं मरना, यहां मरकर अन्यत्र उत्पन्न होना, वहां उत्पन्न होकर वहीं मरना, वहां मरकर अन्यत्र उत्पन्न होना ही संसार है'। बुद्धघोष ने भी कहा है कि—

खन्धानं च पटिपाटि, धातु आयतनानं च।
अब्बोच्छिन्नं वत्तमाना, संसारोति पवुच्चति॥
(अट्ठ० सा० १०)

यह संसार चक्रवत् गतिशील रहता है। इसमें सत्त्वों की उत्पत्ति के प्रारम्भ का पता नहीं चलता है। कितने कल्प पूर्व, किस राजा के या बुद्ध के काल में सत्त्व उत्पन्न हुए, उसके पूर्व न थे, ऐसा स्पष्ट परिच्छेद नहीं देखा जाता है। इस दृष्टि से यह भी सागर सा अवगाहन के परे होने के कारण संसार-सागर कहलाता है।

सद्दानुक्कमणिका

आ

इ

उ

न

प

स

गाथानुक्कमणिका

र

ल

व

स

ह

सुद्धिपण्णं

पिट्ठे	पन्तियं	असुद्धपाठो	सुद्धपाठो
४	६	परिच्छदो	परिच्छेदो
८	३	अब्यार्धि	अब्याधिं
१४	२७	तत्थत्पधानं	तत्थप्पधानं
१८	२५	तिदण्डकूण्डिकादिके	तिदण्डकुण्डिकादिके
५६	१	पटिघ	पटिघं
६४	९, २६	उपद्दतो	उपद्दुतो
९०	४	भिक्खूसंघो	भिक्खुसंघो
९४	२९	निब्बत्तिसुं	निब्बत्तिंसु
१२२	१९	लोक सम्मतं	लोकसम्मतं
१३०	२१	उप्पनो	उप्पन्नो
१३०	२७	निक्खत्तमणिरतनं	निक्खित्तमणिरतनं
१३४	२४	त्तो	पुत्तो
१३६	२	अञ्जलिं	अञ्जलिं
१४६	२४	महापदान	महापदाने
१५४	५	पग्घरितखेला	पग्घरितखेला
१८०	९	मञ्जेरिकं	मञ्जेरिकं
१८४	११	वंसकळोरे	वंसकळीरे
१९०	५	पुप्पुनं	पुनप्पुनं
२१४	१	इसिपतत	इसिपतने
२२४	१७	कोडञ्ञो	कोण्डञ्ञो
२३०	२	निसन्नेन	निसिन्नेन